'अज्ञेय'

जन्म १९११, प्रकाशित रचनाएँ 'भग्नदूत' (कविता) १९३३, 'विपथगा' (कहानियाँ) १९३७, 'शेखर एक जीवनी' (उपन्यास) प्रथम भाग १९४१, द्वितीय भाग १९४४, 'चिन्ता' (काव्य) १९४२, 'परम्परा' (कहानियाँ) १९४४, 'कोठरी की बात' (कहानियाँ) १९४५, 'त्रिशकु' (निबन्ध-सग्रह) १९४५, 'इत्यलम' (कविता) १९४६, 'शरणार्थी' (कहानी-कविताए) १९४८, 'हरी घास पर क्षण भर' (कविता) १९४९, 'जय-दोल' (कहानियाँ) १९५१, 'अरे यायावर रहेगा याद?' (भ्रमण) १९५३, 'बावरा अहेरी' (कविता) १९५४, 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' (कविता) १९५६, 'अरी ओ करुणा प्रभामय' (कविता) १९५९, 'आत्मनेपद' (निबन्ध) १९६०, 'एक बूंद उछली' (भ्रमण) १९६०। अग्रेजी में 'प्रिजन डेज़ एड अदर पोएम्स' (कविताएँ) १९४६।

सम्पादित ग्रन्थ 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (निबन्ध-संग्रह) १९४३, 'तार सप्तक' (कविता-सग्रह) १९४३, 'दूसरा सप्तक' (कविता-सग्रह) १९५१, 'पुष्करिणी' (कविता-सग्रह) १९५८, 'तीसरा सप्तक' (कविता-सग्रह) १९५९, रूपाम्बरा (कविता-सग्रह) १९६०। सयुक्त-रूप से : 'नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ' १९४९, 'नये एकांकी' (नाटक-सग्रह) १९५१, 'हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ' १९५१। अँग्रेजी मे 'इडिया लाइ-ब्रेरी' के अन्तर्गत 'श्रीकान्त' (शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय का अनुवाद) १९४४, 'द रेज़िग्नेशन' (जैनेन्द्रकुमार के 'त्यागपत्र' का अनुवाद) १९४६।

नदी के द्वीप

'अज्ञेय'

सरस्वती प्रेस
वाराणसी

द्वितीय (सशोधित) सस्करण १९५७
तृतीय (सशोधित) सस्करण १९६०

मूल्य आठ रुपये

मुद्रक
नेशनल हेरल्ड प्रेस
लखनऊ

दूसरे संस्करण की भूमिका

'नदी के द्वीप' के दूसरे संस्करण में यत्किंचित् शाब्दिक हेर-फेर के अतिरिक्त स्थान-स्थान पर उद्धृत हिन्देतर भाषाओं के पदों का भावानुवाद भी कर दिया गया है, जिस से केवल हिन्दी जाननेवाले पाठक को असुविधा न हो। ऐसे अनुवादो में मूल का पूरा भाव तो नही ही आ सकता; साथ उद्धरण का पूरा तात्पर्य ग्रहण करने के लिए सन्दर्भ की भी आवश्यकता होती है। फिर भी आशा है कि पाठक को कथा-प्रवाह के और उस की अन्तःसंवेदना के साथ चलने में अधिक बाधा न होगी।

रचना ऐसी होनी चाहिए कि उसके साथ चलने मे पाठक को बिलकुल परिश्रम न करना पड़े ऐसा 'नदी के द्वीप' का लेखक नहीं मानता; फिर भी वह यत्नशील है कि मार्ग बीहड़ हो कर भी अनाकर्षक न हो जाये, क्योंकि वह चाहता है कि पाठक साथ चले। साथ लेखक के नहीं, कृति के। लेखक कृति से जितना अलग है, पाठक लेखक से भी उतना ही अलग रहे, यही तीनों के लिए श्रेय है।

और आलोचक? आज हिन्दी का आलोचक केवल अपने साथ चलता है, और किसी के नहीं। ऐसा साथ फलप्रद तो क्या ही हो सकता है; वन्ध्य हो कर भी वह रुचिकर ही बना रहे ऐसी प्रार्थना उस के लिए की जा सकती है।

—लेखक

तीसरे संस्करण की भूमिका

आलोचक ने नया कुछ नहीं कहा है, इसलिए उसे नया कुछ कहने का प्रयोजन लेखक का भी नही है। और पाठक से तो उसे नया कहने को हो भी क्या सकता है—कृति से अलग कुछ हो ही क्यो, सिवा आलोचक द्वारा सिरजे गये पूर्वग्रहों से मुक्त रहने के अनुरोध के?

कृति पाठको को रुचे, और उनके अन्तःकरण की समृद्धि में भाग दे, यह लेखक की सब से बड़ी सफलता होगी और इसी की वह कामना करता है।

—लेखक

क्रम

"मेनी ए ग्रीन आइल नीड्स मस्ट बी
इन द डीप वाइड सी आफ मिज़्री
ऑर द मैरिनर, थोर्न एंड वान
नेवर दस कुड वायेज ऑन।"*

—शैली

"दुःख सब को माँजता है
और—
चाहे स्वयं सब को मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु—
जिन को मांजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें।"

—'अज्ञेय'

---

* कई हरे-भरे द्वीप अवश्य ही होंगे
व्यथा के गहरे और फैले सागर में
नहीं तो थका-हारा सागरिक
कभी ऐसे यात्रा करता न रह सकता।

भुवन

गाडी जब तक प्रतापगढ से नही चली, तब तक भुवन ने नही जाना कि उसे अपने बारे मे सोचने की कुछ जरूरत है, और गाडी चलने पर भी ठीक इस रूप में ही उसने यह बात जानी हो, ऐसा भी नही, वह केवल हक्का-बक्का-सा चलती गाडी का हैंडल पकडे खडा रह गया—विस्मय से अपने मुक्त दूसरे हाथ की ओर देखता हुआ, मानो वह उस का नही, कोई पराया हाथ हो जो किसी रहस्यमय क्रिया से उस के शरीर के साथ लग गया हो और अब अपने और पराये के सन्धिस्थल उसकी कुहनी पर चुनचुनाहट हो रही हो।

वह सवार ही चलती गाडी पर हुआ था, उस के प्लेटफार्म पर खडे रेखा से बाते करते-करते कब गाडी चल पडी थी यह उसे मालूम नही हुआ था, और अगर रेखा ही सहसा उसकी कुहनी पकड कर मुस्करा कर उसे ठेलती हुई न कहती—"अच्छा, जल्दी से सवार हो जाइये, आप की गाडी जा रही है," तो वह जरूर गाडी से रह जाता।

और यही से उस के विस्मय का आरम्भ होता था। क्योकि यद्यपि वास्तव मे रेखा ने उसे ठेल कर गाडी पर सवार करा दिया था, तथापि उस बहुत हल्के धक्के मे यही लगा था कि रेखा वास्तव मे उसे कुहनी पकड कर खीच रही है कि उस के शब्द और उस की क्रिया भी उसके वास्तविक अभिप्राय को झुठला रहे है और वह वास्तव मे उसे रोक ही लेना चाहती है। और जहाँ उसने भुवन की कुहनी को छुआ था, वही यह अद्भुत, अपूर्व-परिचित चुनचुनाहट हो रही थी—उसकी कुहनी में, जो सदा अपने साथियो पर हँसता आया है कि उन्हे स्त्री का सान्निध्य सहन नही होता, वे उसे सहज भाव से न ले पा कर उत्तेजित या अस्थिर हो उठते है—उसने यहाँ तक देखा है कि किसी स्त्री द्वारा चाय का प्याला दिया जाने पर लोगो के हाथ ऐसे काँपने लगे कि चाय छलक जाय!

और आज एक स्त्री के द्वारा सहज भाव से ठेल कर गाडी पर सवार करा दिये जाने पर उसी की कुहनी मे स्पर्शित स्थल पर चुनचुनाहट होने लगी है और वह यह रूमानी कल्पना कर रहा है कि रेखा ने वास्तव मे उसे ठेला नही बल्कि खीचा था भुवन बाबू, यो हक्के-बक्के अपने हाथ की ओर ताकते और अपनी कुहनी को पहचानते न खडे रहिए, आखिर आपको हुआ क्या है?

पीछे किसी ने चिडचिडे स्वर मे कहा, "अजी साहब, फुटबोर्ड पर क्यो लटके खडे है, भीतर चले आइये और दरवाजा बन्द कर दीजिए।"

चिडचिडापन वाजिब था, क्योकि इंटर क्लास ही सही, रात को सोते सब है, और तडके तीन बजे दरवाजा खोल कर खडे हो जाना दूसरे मुसाफिरो को न सुहाये तो अचम्भा नही होना चाहिए।

भुवन ने भीतर प्रवेश कर के दरवाजा बन्द किया और एक सीट पर सिमट कर बैठ गया। उस के विस्मय की जडता कुछ कम हुई तो उसकी स्मृति धीरे-धीरे पिछले कुछ घटो की दृश्यावली के पन्ने उलटने लगी।

रेखा से उसका परिचय लम्बा नही था। बल्कि परिचय कहलाने लायक भी नही था, क्योकि एक सप्ताह पहले ही अपने मित्र चन्द्रमाधव के घर पर एक छोटी चाय-पार्टी मे इनकी पहली भेट हुई थी। और उसके बाद दो-तीन वार हजरतगज के कोने पर या काफी हाउस मे, उनका कुछ वार्त्तालाप हुआ था। भुवन को लखनऊ से इलाहावाद जाना था, रेखा किसी परिचित परिवार के पास कुछ दिन बिताने प्रतापगढ जाने वाली थी, बातचीत के सिलसिले मे यह जान कर कि दोनो एक ही दिन एक ही गाडी से जा रहे है, चन्द्रमाधव की सलाह से यह निश्चय हुआ था कि तीनो साथ हजरतगज मे कही भोजन कर के स्टेशन पहुँच जावेगे और दोनो को गाडी पर सवार करा कर चन्द्रमाधव लौट जायगा—भुवन का सामान तो चन्द्रमाधव का नौकर ले जायगा, और रेखा का सामान उनके आतिथेय का चपरासी पहुँचा आयेगा।

यह तो बिलकुल साधारण बात थी। लेकिन गाडी मे भीड बहुत थी, पहले यह सोचा गया कि दोनो अलग-अलग स्थान खोजे, क्योकि शायद जनाने डिब्बे मे कुछ अधिक जगह हो तो रेखा क्यो अधिक कष्ट उठाये ? चन्द्रमाधव उसे विठाने जनाने डिब्बे की ओर गया, और भुवन अपने लिए स्थान खोजने निकला। कोई पन्द्रह मिनट मे, अनेक डिब्बो का मुआइना कर के आँखो-आँखो से प्रत्येक मे मिल सकने वाली जगह के घन इच और वर्ग इच का हिसाब लगाने के बाद जब भुवन ने एक डिब्बे मे खिडकी के रास्ते अपना छोटा-सा बक्स और सक्षिप्त बिस्तर अन्दर ठेल दिया, और तय कर लिया कि किवाड के आगे लगे सामान के ढेर के कारण उधर से न जा सकने पर भी खिडकी के रास्ते घुस सकेगा, वह यह देखने लौटा कि रेखा पर कैसी बीत रही है। मन-ही-मन उसने यह भी सोचा, इसी गाडी मे जाना ऐसा क्या जरूरी है ? एक दिन देर भी हो सकती है। इलाहावाद पहुँचना कोई ऐसा जरूरी तो है नही, मुफ्त मे तकलीफ का सफर क्यो ? क्यो न कल पर टाल दिया जाय ? यही सोचते-सोचते वह वहाँ पहुँचा जहाँ चन्द्रमाधव एक खिडकी के पास खडा था। रेखा डिब्बे के भीतर तो पहुँच गयी थी, पर डिब्बा अपना यह देसी नाम इतना सार्थक कर रहा था कि जहाँ वह खडी थी वहाँ उसे इधर-उधर मुडने लायक भी स्थान नही था, वह खडी थी तो बस, जैसे खडी थी वैसे खडी रह सकती थी।

भुवन ने मुस्कराते हुए पुकार कर अग्रेजी मे पूछा, "रेखा जी, कैसा चल रहा है ?"

रेखा ने जरा गर्दन उनकी ओर मोड कर, हँसते हुए कहा, "स्विमिंग्ली ! मैं जैसे सागर की मछली हूँ, जमीन से पैर उठा लूँ तो भी गिरूँगी नही, तैरती रह जाऊँगी।"

भुवन ने चन्द्रमाधव से कहा, "चन्द्र, रेखा जी का इसी गाडी से जाना क्या ऐसा जरूरी है ?"

चन्द्र ने फौरन शह लेते हुए आवाज दी, "रेखाजी, अब भी सोच लीजिये, आज जाना क्या जरूरी है ? मेरा कल के शो का निमन्त्रण अभी ज्यो-का-त्यो है—अब भी लौट चलिए, कल रात चली जाइयेगा।"

रेखा ने भुवन की ओर उन्मुख होने की चेष्टा करते हुए पूछा, "आप को कैसी जगह मिली ?"

"सामान तो भीतर पहुँच गया है। यो तो खिडकियो से रास्ता है—अभी तो हवा भी मजे मे आ-जा सकती है।"

"तो आप का क्या मत है ?"

"मै तो चन्द्र से बिलकुल सहमत हूँ। आप और एक दिन रुक जाइये—कल चली जाइयेगा—"

रेखा के चेहरे पर विकल्प की हल्की-सी रेखा पहचान कर चन्द्र ने जोर दिया। "हाँ, हाँ, आइये, बस! बल्कि अभी तो आज रात का शो भी देखा जा सकता है—" और वह खिडकी मे से भीतर झुक कर रेखा का सूटकेस पकडने लगा।

रेखा उतर आयी। उतर कर भुवन से बोली, "और आप ?" फिर चन्द्र की ओर उन्मुख होकर "मिस्टर चन्द्र, अपने मित्र को भी रोक लीजिए न ?"

चन्द्र ने कहा, "इन्हे जाने कौन देता है! आप रुक जायेगी तो यह नही जा सकेंगे, इतने अनगैलेंट यह नही हो सकते—क्या हुआ प्रोफेसर है तो! क्यो भुवन ? कहाँ है तुम्हारा सामान ?"

भुवन ने आनाकानी की। स्वय उसने सफर एक दिन टाल जाने की बात सोची थी, पर रेखा को वैसा करते देख न जाने क्यो एक प्रतीप-भाव उसके मन में उमड आया—कि जो निश्चय किया सो किया, अब बदलना ढुलमुलपन है और ढुलमुलपन बुरी चीज है, आदमी की सकल्प-शक्ति दृढ होनी चाहिये, ऐसी दृढ कि बस फौलाद!

रेखा ने कहा, "हाँ, डाक्टर भुवन, आप भी रह जाइये न ? छुट्टी तो आप की अभी कई दिन और है—"

"लेकिन—"

"बस अब लेकिन-वेकिन कुछ नही", चन्द्र ने डपट कर कहा। "चलो आगे, बताओ सामान कहाँ रखा है।" और जिस कुली ने रेखा का सामान उठाया था, उसी को आगे करके वह भुवन के डिब्बे की ओर बढ चला।

स्मृति के पन्ने उलटते हुए भुवन ने सोचा, यहाँ तक भी ठीक था, रुक जाना कोई असाधारण बात नही हुई थी, और दोनो के रुक जाने मे भी कोई बात नही थी, अगर उसे इलाहाबाद मे जरूरी काम नही था तो रेखा को प्रतापगढ़ मे और भी कम काम था, वह घूमती हुई और एक जगह कुछ दिन बिताने जा रही थी। और चन्द्र दोनो का मित्र था, और खासा दिलचस्प आदमी, उसके आग्रह का असर होना स्वाभाविक था।

और इस प्रकार दोनो रुक गये थे, और अगली शाम को उसी प्रकार उसी गाडी के लिए पहुँचे थे।

फिर भीड थी, पर उतनी नही, फिर अलग-अलग डिब्बों मे सवार हुआ गया—रेखा को जनाने डिब्बे मे बैठने लायक स्थान मिल गया यद्यपि बिल्कुल दरवाजे के पास, और भुवन ने भी अपना बक्स जमा कर अपने बैठने लायक सीट बना ली। विदा-नमस्ते कर के सीटी के साथ वह अपने डिब्बे की ओर चला और सवार हो गया।

यहाँ तक भी ठीक था। और अगर बीच मे थोडी-थोडी देर बाद गाडी के रुकने पर वह रेखा के डिब्बे तक जा कर उससे एक-आध बात कर आता रहा, तो यह भी कोई ऐसी असाधारण बात नही थी; यह साधारण शिष्टाचार ही है, और अगर रात दस बजे के बाद भी हुआ तो भी अधिक-से-अधिक कोई यह कह सकता है कि शिष्टाचार मे कुछ अनावश्यक मुस्तैदी थी, या दिखावा था। वह स्वय यही जानता था कि रेखा बडी मेधावी स्त्री है और उससे बातचीत विचारोत्तेजक है और मानसिक स्फूर्ति देती है, बस। बाते भी वे ऐसी ही करते आये थे; और प्रतापगढ मे जब रेखा उतर गयी और भुवन ने कहा, "आप से भेंट कर के बहुत प्रसन्नता हुई—मेरा लखनऊ प्रवास बडा सुखद रहा", तो उसने अपने स्वर मे शिष्टाचार से—यद्यपि हार्दिक शिष्टाचार, निरी औपचारिक शिष्टता नही—अधिक कुछ नही पाया था। रेखा ने भी वैसे ही अव्यक्तिक पर सच्चे विनय से कहा था, "मै आप की बडी कृतज्ञ हूँ—और आप ने तो इस वापसी की यात्रा को भी प्रीतिकर बना दिया—"

तब ?

और फिर भुवन ने अपने हाथ और कुहनी की ओर देखा, फिर उसे लगा कि वह चुनचुनाहट अभी गयी नही है, वह अपनी कुहनी पर अब भी रेखा के स्पर्श का दबाव अनुभव कर सकता है, और वह दबाव ढकेलने का नही है, खीचने का है।

तब ?

स्पष्ट ही केवल यात्रा का प्रत्यवलोकन काफी नही है, थोडा और पीछे देखना होगा। और पीछे देखने मे—या क्रम से विश्लेषणपूर्वक देखने मे—उसे झिझक क्यो है, वह अनमना क्यो है ? सप्ताह-भर से कम का सामान्य सामाजिक परिचय—कौन उसमें ऐसे छायावेष्टित रह स्थल है जिन मे जिज्ञासा की किरण के पहुँचने से वहाँ पलती कोई छुई-मुई अनुरागानुभति मर जायगी !

*　　*　　*

आग की लौ आलोक देती है : उस से हम आलोक विकीर्ण हुआ देखते है। और व्यक्ति की तुलना लौ से करे तो यही ध्वनित होता है कि उस से कुछ उत्सृष्ट हो कर

फैलता है। लेकिन रेखा मानो एक शीतल आलोक से घिरी हुई, उस के आवेष्टन में सँची हुई, अलग, दूर और अस्पृश्य खडी थी।

भुवन ने एक बार सिर से पैर तक उसे देखा। घूरना इस बीसवी सदी मे भी अशिष्ट है, लेकिन एक ऐसी पारखी दृष्टि भी होती है जिसे घूरना नही कहा जा सकता और जो न केवल अशिष्ट नही है बल्कि सौन्दर्य का नैवेद्य मानी जाती है। तब मन-ही-मन भुवन ने कहा, यो ही नही रेखा देवी की इतनी चर्चा होती। उन मे कुछ है जिसका उन्मेष जीवन का उन्मेष है और जिसे जान सकना ही एक महान् अनुभूति होगी—फिर वह जानना सुखद हो, दु खद हो।

और उसने मुडकर रेखा की सुनाई मे आ सकने वाले विनय के स्वर में अपने साथी से पूछा, "क्यो मिस्टर चन्द्रमाधव, रेखाजी काफी पीती है—हम लोग काफी हाउस चलें?"

इस परोक्ष निमन्त्रण का उतना ही परोक्ष उत्तर देते हुए रेखा ने कहा, "हा, चन्द्र, तुम बहुत बार काफी पिला चुके हो मुझे, आज मेरा निमन्त्रण रहा, और—तुम्हारे मित्र भी आवें।"

चन्द्रमाधव ने कहा, "वाह, यह नही हो सकता, मैं तो स्थायी मेजबान हूँ।"

तब भुवन ने कुछ साहस बटोर कर कहा, "रेखा देवी, अगर आज मुझे ही मेजवान होने का गौरव प्रदान करे तो—"

रेखा ने कुछ मुस्करा कर छद्म-विनय से कहा, "आप की प्रार्थना स्वीकार की जाती है।"

हजरतगज का कोना युक्तप्रान्त के नागरिक जीवन की धुरी है। यह दूसरी बात है कि जीवन वहा जिया नही जाता, वहां केवल जीवन से विश्रान्ति की व्यवस्था है। तथापि जो लोग उस जीवन का संचालन और नियमन करते रहे है उनका एक स्वाभाविक सगम वह कोना है। इसी लिए भुवन जब से लखनऊ आया है तब से रोज चन्द्र के साथ काफी हाउस आता है. दिन मे एक बार तो अवश्य, कभी-कभी दो-दो तीन-तीन बार—और उस रूप-रस-गन्ध-सिक्त मानव-प्रवाह को किनारे से देखकर मन-ही-मन यह समझता चला जाता है कि वह भी जीवन के प्रवाह के बीच में है, कि जीवन का तीव्र स्पन्दन जिस नाडी मे हो रहा है, उसे वह पकडे है, और चाहे तो दबा कर रुद्ध भी कर दे सकता है!

लखनऊ आये उसे कुल तीन दिन हुए है। चन्द्रमाधव उसका कालेज का सहपाठी और मित्र, स्थानीय 'पायनियर' का विशेष सवाददाता है और लखनऊ से परिचित है, यो भी बहुधन्धी आदमी है। उस के साथ रहने-घूमने से जीवन के प्रवाह को अनुशासित कर सकने का यह भ्रम सहज ही हो जा सकता है। इस से क्या कि कालेज के बाद से चन्द्रमाधव निरन्तर सनसनी की खोज मे दौडा किया है—अफ्रीका, अबीसीनिया, इटली, जर्मनी, चीन, कोरिया—और वह चार-छ. वर्ष वैज्ञानिक खोज और देशाटन में लगा कर,

पहले से भी कुछ अधिक अन्तर्मुखी और तटस्थ हो कर एक कस्बे के कालेज मे लेक्चरर हो गया है जो कि यो ही दुनिया के प्रवाह से बहुत दूर रहता है ? यह जीवन की धमनी को पकडे रहने का भ्रम वडा ही लुभावना और अह को पुष्ट करने वाला है ..

और इससे क्या कि चन्द्र का कहना है, वह जीवन के निरन्तर दबाव से वच कर दो मिनट चैन से विताने के लिए ही काफी हाउस आता है ? शयद उस को वही भ्रम लुभा सकता हो

और रेखा ?

भुवन को याद आया, तीन दिन पहले चन्द्र के यहाँ उसने पहली बार रेखा को देखा था। परिचय के समय उसने लक्ष्य किया था कि रेखा के पास रूप भी है और बुद्धि भी है, किन्तु वुद्धि मानो तीव्र सवेदना के साथ गुँथी हुई है और रूप एक अदृश्य, अस्पृश्य कवच-सा पहने हुए है, पर इस आरम्भिक धारणा को उसने तूल नही दिया था। प्रचलित धारणा है कि वुद्धिजीवी स्त्री के आवेग शिथिल होते है, और अगर किसी को चट से 'फ़्रिजिड वूमन' का बिल्ला दे दिया जा सकता हो तो उसे ले कर माथा-पच्ची कौन करे ? फलत. परिचय के साधारण शिष्टाचार के बाद भुवन अपने मे खिच गया था और रेखा चन्द्र के यहाँ जुटे हुए वुद्धिप्राण मानव-जीवो के गिरोह मे खो गयी थी——चन्द्र ने भुवन को मिलाने के लिए लखनऊ का साहित्यिक समाज इकट्ठा किया था .

किन्तु उपेक्षा की जिस पिटारी में भुवन ने उसे डाल दिया था, उसे हठात् झकझोर कर रेखा वाहर निकल आयी थी। वैठक के दौरान मे भुवन ने दो बार उड़ती नजर से रेखा के चेहरे पर क्लान्ति और खेद के चिन्ह देखे थे; जव साहित्य-चर्चा ने जोर पकडा और वातावरण मे गर्मी आयी तो भुवन की दृष्टि कौतूहलवश फिर रेखा को खोजती हुई गयी और सहसा ठिठक गयी।

रेखा कमरे की ओर शून्य के एक छोटे से वृत्त के बीचोवीच कुरसी पर वैठी थी। उस का सिर कुरसी की पीठ पर टिका था, पलके बन्द थी। वह बिजली के प्रकाश से कुछ वच कर वैठी थी, अत उसका माथा और आँखे अँधेरे मे थी, बाकी चेहरे पर आड़ा प्रकाश पड रहा था जिससे नाक, ओठ और ठोडी की आकार-रेखा सुनहली हो उभर आयी थी। और इसी स्वर्णाभ निश्चलता पर भुवन का कौतूहल आ कर टिक गया था।

कहते है कि आँखे आत्मा के झरोखे है। झरोखे वन्द भी हो सकते है, पर ओठो की कोर एक ऐसा सूचक है कि कभी चूकता नही; और इन्ही की ओर भुवन अपलक देखता रहा। वह कुछ क्षणो की तन्द्रा मानो रेखा को उस कमरे से दूर अलग कही ले गयी थी, जहाँ ओठो की कोरो का कसाव, विना तनिक-सा काँपे भी, जैसे अनजाने कुछ नरम पड गया था; मुँह के आसपास की असख्य शिराओ का अदृश्य तनाव कुछ ढीला हो गया था और जीवन का अदम्य लचकीलापन जैसे फिर उभर कर एक स्निग्ध लहर बन गया था। जहाँ तक भुवन जान पाया, किसी और ने यह परिवर्तन नही लक्ष्य किया था, पर उस क्षण

के सहज शैथिल्य के द्वारा मानो रेखा ने अपनी सारी क्लान्त शक्तियो को विश्राम देकर पुनरुद्दीपित कर लिया था। वैसे ही जैसे नास्तिको की भीड में कोई भक्त अनदेखे क्षण-भर आँख बन्द कर के अपने आराध्य का ध्यान कर ले और उस के द्वारा नये विश्वास से भर कर कर्म-रत हो जाय। रेखा जैसी आधुनिका के लिए भक्त की उपमा शायद ठीक न हो पर उस तुलना के द्वारा रेखा का पार्थक्य और उभर आता था, और यह बात बार-बार भुवन के सामने आती थी कि रेखा में एक दूरी है, एक अलगाव है, कि वह जिस समाज से घिरी है और जिस का केन्द्र है उस से अछूती भी है—यद्यपि कहाँ, अस्तित्व के कौन से स्तर पर वह विभाजन-रेखा है जो दोनो को अलग रखती है, इस की कल्पना वह नही कर सकता था

काफी पीते-पीते ये सब बाते चलचित्र-सी उस के आगे घूम गयी। और जैसे रेखा की रहस्यमयता उसे चुनौती देने लगी। यो व्यक्तित्व की चुनौती की प्रतिक्रिया भुवन मे प्राय सर्वदा नकारात्मक ही होती है—वह अपने को समझा लेता है कि चुनौती के उत्तर मे किसी व्यक्तित्व मे पैठना चाहना अनधिकार चेष्टा है, टाँग अडाना है, क्योकि व्यक्तित्वो का सम्मिलन या परिचय तो फूल के खिलने की तरह एक सहज क्रिया होना चाहिये। पर रेखा के व्यक्तित्व की चुनौती को उसने इस प्रकार नही टाला, टालने की बात ही उस के मन मे नही आयी, रहस्यमयता की चुनौती स्वीकार करना तो और भी अधिक 'टाँग अडाना' है—क्योकि किसी का रहस्य उद्घाटित करना चाहने वाला कोई कौन होता है?—यह भी उसने नही सोचा। पर अनधिकार हस्तक्षेप की भावना भी उस के मन मे नही थी। यह जो जन-समुदाय से घिरे रह कर भी उस से अलग जा कर, किसी अलक्षित शक्ति के स्पर्श से दीप्त हो उठने जैसी बात उसने देखी थी, रह-रह कर वही भुवन को झकझोर जाती थी, जैसे किसी बडे चौडे पाट वाली नदी में एक छोटे-से द्वीप का तरु-पल्लवित मुकुट किसी को अपनी अनपेक्षितता से चौका जाय। या कि अँधेरे में किसी शीतल चमकती चीज को देख कर बार-बार उसे छू कर देखने को मन चाहे—कहाँ से, किस रहस्यमय रासायनिक क्रिया से यह ठडा आलोक उत्पन्न होता है?

रेखा को देखते और इस ढग की बात सोचते हुए भुवन कदाचित् अनमना हो गया था, क्योकि उसने सहसा जाना, चन्द्र और रेखा मे यह बहस चल रही है कि सत्य क्या है, और कब कैसे यह आरम्भ हो गयी उसने लक्ष्य नही किया था।

चन्द्र कह रहा था, "सत्य सभी कुछ है—सभी कुछ जो है। होना ही सत्य की एक-मात्र कसौटी है।"

रेखा ने टोका, "लेकिन होने को तो झूठ भी है, छल भी है, भ्रम भी है—क्या वह सब भी सत्य है? या कि आप होने की कुछ दूसरी परिभाषा करेंगे—पर यह कहना तो यही हुआ कि सत्य वह है जो सत्य है।"

"नही, सभी कुछ जो है। यानी उस मे मिथ्या भी शामिल है, भ्रम भी। मुझे अगर

भ्रम है, तो उस का होना भी होना है, और इस लिए वह भी सत्य है। और मुझे भूत दीखते है, तो भूत सत्य है, यो चाहे होते हो या न होते हो। यो कह ले कि भूत मेरा सत्य है, दूसरो का चाहे न हो।"

"तो सत्य बिल्कुल मुझ पर आश्रित है—व्यक्ति-सापेक्ष्य है ? निरपेक्ष सत्य कुछ है ही नही ?" रेखा ने आपत्ति के स्वर मे कहा, "क्यो, डाक्टर भुवन, आप भी ऐसा ही मानते है ?"

भुवन कुछ कहे, इस से पहले ही चन्द्र ने कहा, "हॉ। सत्य सापेक्ष्य ही है। निरपेक्ष वह हो ही कैसे सकता है ? निरपेक्ष तो चीजें है—पदार्थ। पदार्थ सत्य नही है, निरा पदार्थ। सत्य तो पदार्थ का हमारा बोध है—और बोध व्यक्तिगत है।"

भुवन ने कहा, "मुझे तो लगता है कि हम सत्य और वस्तु का भेद भूल रहे है। भूत हो या न हो, अगर मेरे लिए है तो है—यानी यथार्थ है। पर सत्य—सत्य तो दूसरी बात है। यो चन्द्र जो पदार्थ और सत्य मे भेद कर रहे है वह मै मानता हूँ, पर वह अधूरी बात लगती है।"

"क्यो ? आगे और क्या है ?"

"पदार्थ वास्तव मे एक अंश है। वास्तव मे और भी बहुत कुछ आता है। विचार, कल्पनाएँ, घटनाएँ, परिस्थितियाँ—ये सब भी वास्तव के अग है जिन्हे पदार्थ नही कहा जा सकता—"

"मै कब कहता हूँ। लेकिन सत्य तो कहा जा सकता है ?" चन्द्र ने विजय के स्वर मे कहा, "यही तो मै कह रहा था।"

"नही। मै वास्तव में और सत्य में भेद करना चाहता हूँ। या कहिए कि सापेक्ष्य और निरपेक्ष सत्य के प्रश्न को दूसरी तरह देखना चाहता हूँ।" भुवन क्षण भर रुका। "एक उदाहरण लीजिए. दो और दो चार होते है, इस बात को आप क्या कहेगे ?"

"सत्य। और क्या ?"

"लेकिन मै नही कहूँगा। मै कहूँगा यह तथ्य है। और इस तरह के सब 'सत्य' केवल तथ्य है। सत्य की सज्ञा उन्हे तब मिल सकती है जब उनके साथ हमारा रागात्मक सम्बन्ध हो। यानी जो तथ्य हमारे भावजगत् की यथार्थता है, वह सत्य है; जो निरे वस्तु-जगत् की है, वह तथ्य है, वास्तविकता है, यथार्थता है, जो कह लीजिए, पर सत्य से वह ऊनी पडती है।"

क्षण भर सब चुप रहे। फिर रेखा ने, कुछ इस बात को स्वीकार करते हुए और कुछ विषयान्तर करते हुए-से, कहा, "सत्य को कटु क्यो कहते है, कटु वह कैसे हो सकता है ? अग्रेजी में भी कहते है 'पेनफुल ट्रुथ'—अगर हम उसे सत्य मानते है, जानते है, तो वह पेनफुल क्यो होता है ?

भुवन ने कहा, "मै तो कहूगा कि सत्य मात्र पेनफुल है, रागात्मक सम्बन्ध का यह

मोल हमे चुकाना पडता है । सत्य, तथ्य का रचनात्मक, सृजनात्मक रूप है, और सृजन सब पेनफ़ुल होता है 'अपने ताप की तपन मे सब कुछ उसने रचा'—रचना के सत्य का कितना सुन्दर वर्णन है इस वाक्य में !"

रेखा ने कहा, "यह सचमुच वडी सुन्दर बात है। पर पेनफुल ट्रुथ की वात इस से हल नही हुई—मुझे तो नही लगता कि हल हो गयी ।"

"शायद नही हुई। पेनफुल सत्य का एक उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि 'क' 'ख' से प्रेम करता है। उन का प्रेम एक तथ्य है आप वडी आसानी से कह सकते है कि 'क' 'ख' से प्रेम करता है—आप का अपना कोई लगाव 'क' 'ख' से नही है इसी लिए। अब कल्पना कीजिए उस स्थिति की जिस में अपनी ओर से यह वात कहनी हो। 'क' 'ख' से प्रेम करता है यह कह देना कितना आसान है, और 'मै तुम से प्रेम करता हूँ' यह कह पाना कितना कठिन—कितना पेनफ़ुल। क्योकि एक तथ्य है, दूसरा सत्य—और सत्य न कहना आसान है, न सहना आसान है।" भुवन साँस लेने के लिए तनिक-सा रुका और फिर वोला, "अंग्रेजी की कविता है, 'द पेन आफ़ लविंग यू इज़ आलमोस्ट मोर दैन आइ कैन वेयर'—तुम्हारे प्रेम की व्यथा दुस्सह है। बड़ी सच बात है, जरूर दुस्सह होगी, और जरूर व्यथा होगी—अगर सचमुच प्रेम है।"

चन्द्र ने कुछ ठट्ठे के स्वर में कहा, "तब तो सत्य भी खतरनाक चीज है, और प्रेम भी। लेकिन ऋषि लोग सत्य को साध्य बता गये, प्रेम को धोखा—"

रेखा ने कहा, "वे लोग कदाचित् ऋषि न रहे होगे मिस्टर चन्द्र, प्रेम को धोखा रोमाटिको ने बताया है, और आप कितने भी ऋषि-भक्त क्यो न हो रोमाटिक ऋषि को नही पसन्द करेगे। मै तो यही जानती थी कि ऋषियो ने प्रेम और सत्य को एक माना है क्योकि दोनो को ईश्वर का रूप माना है।"

"क्योकि दोनो स्रष्टा है," भुवन ने जोड़ दिया। और फिर सहसा न जाने क्यो, उसे अपने वोलने पर और सारी बातचीत पर एक अजब-सी झिझक हो आयी . वह कैसे इतना बोल गया, और सो भी प्रेम का विषय लेकर? उसे याद आया, अग्रेजी का जो काव्य-पद उसने सुनाया था, वह वास्तव में यों आरम्भ होता था, 'डीयरेस्ट, द पेन आफ़ लविंग यू', पर उद्धरण देते समय वह पहला सम्बोधन शब्द छोड गया था—अवश्य ही जान-बूझ कर और सकोचवश, यद्यपि उस समय उसे यह भी ध्यान न हुआ था कि वह कोई शब्द छोड रहा है। सत्य की चर्चा में प्रेम की वात ले आना और ऐसे सन्दर्भ देना—रेखा क्या सोचेगी कि इन प्रोफेसर साहव के दिमाग में प्रेम भरा हुआ है। और सृजन—क्या-क्या वक गया वह .

बातचीत का सिलसिला टूट गया। तीनो चुपचाप काफी पीते रहे।

चन्द्र के साथ तो भुवन टिका ही था, रेखा से भी उस के वाद प्रतिदिन भेंट होती रही। यो तो चन्द्र के नित्यप्रति काफी हाउस जाने के प्रोग्राम में शामिल हो जाना ही

काफी था—वही भेंट हो जाती थी और चन्द्र का विश्वास था कि अच्छे पत्रकार के लिए काफी हाउस मे घण्टो बिताना आवश्यक है—'शहर में क्या हुआ है, क्या होने वाला है, क्या हो रहा है, सब काफी हाउस का वातावरण सूँघ लेने भर से भाप लिया जा सकता है।' भुवन अनुभव करता था कि दूसरे पत्रकार भी ऐसा मानते है, क्योकि यहाँ प्राय उनका जमाव रहता था और सब वहाँ ऐसे कर्म-रत भाव से निठल्ले बैठ कर, ऐसे अर्थ-भरे भाव से व्यर्थ की बातें किया करते थे कि वह चकित हो जाता था। लेकिन पत्रकार साहित्यकार नही है, यह वह समझता था, साहित्यकार जो क्षणिक है उस मे से सनातन की छाप को, या जो सनातन है उस की तात्क्षणिक प्रासगिकता को खोजता और उस से उलझता है, पर पत्रकार के लिए क्षणिक की क्षणिक प्रासगिकता ही सनातन है, और जहाँ वह उस प्रासगिकता को तत्काल नही पहचानता वहाँ उस का आरोप करता चलता है लेकिन बीच मे एक दिन वह अकेला भी गया था। चन्द्र को किसी मन्त्री से आवश्यक भेंट के लिए कौंसिल हाउस जाना था, दिन में अपने को सूना पाकर भुवन हजरतगज की ओर चल दिया था और एक पटरी पर चलते-चलते सहसा उसने देखा था, दूसरी पटरी पर दूसरी ओर से आती हुई रेखा सड़क पार करने के लिए ठिठक कर इधर-उधर देख रही है कि मोटरे न आ रही हो। वह रुक कर उसे देखने लगा था। रेखा ने बिना किनारे की सफेद रेशमी साडी पहन रखी थी और वैसा ही ब्लाउज, रेशम की सफेदी मे एक स्निग्धता होती है जैसे हाथी दाँत के रग मे, और उस पर रेखा का साँवला रग बहुत भला लग रहा था। आभरण-अलकार कोई नही था, केवल उस के एक ओर मुडने पर भुवन ने लक्ष्य किया था कि जूडे मे एक फूल है।

रेखा के इस पार पहुँचते ही भुवन ने बढ कर नमस्कार करते हुए पूछा, "क्या काफी हाउस चल कर बैठना अच्छा न रहेगा? आप मालूम होता है काफी देर से घूमती रही है—लाइये, एक-आध वडल मुझे दे दीजिए," क्योकि रेखा के हाथ मे कई एक पुलिन्दे थे।

"धन्यवाद, मैं अपना बोझा ढोने की आदी हूँ।" कहते-कहते भी मुस्कराती रेखा ने दो-तीन पैकेट उसे दे दिये। "मैं उपहार देने के लिए कुछ चीजे खरीद रही थी, उपहार देना यो भी अच्छा लगता है और मैं तो इतना आतिथ्य पाती हूँ कि चाहिए भी। लेकिन आज काफी हाउस का निमन्त्रण मेरा है—"

"निमन्त्रण तो—अगर आप न्याय करें तो—मेरा ही था।" भुवन ने हलके प्रतिवाद के स्वर में कहा।

रेखा केवल हँस दी।

"काफी हाउस का भी एक चस्का है," रेखा ने कहा, "काफी के चस्के से शायद ज्यादा गहरा वही है।"

"हाँ, चन्द्र को ही देखिए, अपने जीवन का छठा अश वह यहाँ बिताता है या बिताना

चाहता है—हालाँकि अच्छी और बुरी काफी की पहचान भी शायद उसे नही है ?"

"आपको कैसा लगता है ?"

भुवन ने सीधे उत्तर न दे कर कहा, "चन्द्र का विचार है कि जीवन से तटस्थ हो कर दो मिनट बैठने के लिए ऐसी अच्छी जगह दूसरी नही—तटस्थ भी हो और देखते भी चले, यह यहाँ का लाभ है।"

"पर आप तो ऐसा न मानते होगे—आप तो यो ही इतने तटस्थ जान पडते है—" रेखा थोडा हँस दी—"कि दो मिनट की तटस्थता का आप के लिए क्या आकर्षण होगा!"

भुवन उस की तीखी दृष्टि पर कुछ चौंका, पर सहज भाव से ही बोला, "हाँ, मैं तो आता हूँ कि थोडी देर के लिए जीवन के भरपूर प्रवाह में अपने को डाल सकूँ—मुझे तो हमेशा यह डर रहता है कि कही तटस्थता के नाम पर मै बिलकुल दूर ही न जा पडूँ। यहाँ बैठ कर अपने को मानवता का अग मान सकता हूँ—उसके समूचे जीवन का स्पन्दन अनुभव कर सकता हूँ—"

"लेकिन, डाक्टर भुवन, काफी हाउस मे मानवता का जो अश आता है उस का जीवन मानवता का जीवन नही है। वह तो—वह तो—" रेखा के स्वर मे थोड़ा-सा आवेश आ गया—"वह तो केवल एक भँवर है, वह भी बहुत छोटा-सा, और जीवन का प्रवाह—" वह सहसा चुप हो गयी, फिर बोली, "और मानवता क्या है ? मुझे तो लगता है, जब आप मानव से हट कर मानवता की बात सोचने लगते है, तभी आप जीवन से दूर चले जाते है, क्योकि जीवन मानव का है, मानव यथार्थ है, मानवता केवल एक उद्‌भावना—एक युक्ति-सत्य—"

भुवन ने कुछ सकुचित हो कर कहा, "आप शायद ठीक कहती है। लेकिन मानवता न सही, जीवन की बात जब मै कहता हूँ, तब अपने जीवन से बडे एक सयुक्त, व्यापक, समष्टिगत जीवन की बात सोचता हूँ—उसी से एक होना चाहता हूँ—अगर वह बहुत बडा प्रवाह है, तो उस की धारा को बाँहो से घेर लेना चाहता हूँ—या वह छोटे मुँह बडी बात लगे तो कहूँ कि उस पर एक पुल बाँधना चाहता हूँ चाहे क्षण-भर के लिए—" यहाँ वह रुक गया, क्योकि उसे लगा कि वह बडी-बडी बाते कर रहा है, और रेखा के चेहरे पर भी उसने एक हलकी-सी आमोद की मुस्कराहट देखी। "आप हसती है ? बात भी शायद हँसी की है—काफी हाउस में बैठ कर जीवन की नदी पर पुल बाँधने की बात तो अफीमची की पिनक की बात है।"

"नही, डाक्टर भुवन, सच कहूँ तो मुझे आप पर थोडी ईर्ष्या ही हो रही थी। काफी हाउस की तो बात खैर छोडिए, वह तो एक प्रतीक बन गया जिस के सहारे हम जीवन ही के प्रति अपने दृष्टिकोण व्यक्त कर रहे है। इस लिए यह तो मुझे नही लगता कि हम यो ही बडी बाते कर रहे है। पर—पर जीवन की नदी पर सेतु बाँधने की कल्पना कर सकना ही इतनी बडी बात है कि मुझे ईर्ष्या होती है।"

भुवन ने कहा, "हाँ, यो सेतु बनना चाहना है बडी मूर्खता—क्योकि सेतु दोनो ओर से केवल रौंदा ही जाता है।"

"हाँ, मगर सचमुच सेतु बन सके तो दोनो ओर से रौंदे जाने मे भी सुख है, और रौंदे जा कर टूट कर प्रवाह में गिर पड़ने मे भी सिद्धि। पर मै तो कह रही हूँ कि मै तो उतनी कल्पना भी नही कर पाती—मै तो समझती हूँ, हम अधिक-से-अधिक इस प्रवाह मे छोटे-छोटे द्वीप है, उस प्रवाह से घिरे हुए भी, उस से कटे हुए भी, भूमि से बँधे और स्थिर भी, पर प्रवाह मे सर्वदा असहाय भी—न जाने कब प्रवाह की एक स्वैरिणी लहर आ कर मिटा दे, बहा ले जाय, फिर चाहे द्वीप का फूल-पत्ते का आच्छादन कितना ही सुन्दर क्यो न रहा हो!"

भुवन तनिक विस्मय से रेखा की ओर देखता रहा। उस के शब्दो मे, उस की वाणी में, चित्रो को उभार कर सामने रख देने की अद्भुत शक्ति थी। भुवन अपनी आँखो के सामने स्पष्ट देख सकता था—एक दिगन्तस्पर्शी प्रवाह, उस मे छोटे-छोटे द्वीप—मानो तैरते दीप—और एक बड़ी अँधेरी रवहीन तरग—नही, नही! उसने अपने को सँभाल कर कहा, "रेखाजी, आप क्यो काफी हाउस आती है?"

"मै? मै!" एक ही शब्द की दो प्रकार के स्वरो मे आवृत्ति—बिना कुछ कहे भी रेखा कितना कुछ कह सकती थी। थोडी देर बाद उसने कहा, "मै तो—आप मानिए'!—काफी पीने ही आती हूँ। थक कर आती हूँ, पर विश्राम के लिए नही, काफी पी कर फिर चल पडने के लिए। जैसे इजन ईधन झोकने या पानी लेने रुकता है या फिर साथ के लिए आती हूँ—कुछ लोगो से मिलने, बात करने—और यहाँ इस लिए कि यहाँ वे सहज भाव से मिलते है। और मानव और मानव का सहज भाव से साक्षात्—वही हमारा मानव जीवन से और मानवता के जीवन से एक मात्र सम्पर्क हो सकता है। नही तो मानवता—यानी हमारी कल्पना—एक विशाल मरु-भूमि है!"

बात कुछ अतिरिक्त गम्भीर हो गयी थी। दोनो सहसा चुप हो कर सोचते रहे। थोडी देर बाद भुवन ने कहा, "क्या हम लोग एक ही बात या दृष्टिकोण को समान्तर ढग से नही कह रहे है? आप जिसे व्यक्तियो का सहज साक्षात् कहती है मै उसे—"

"नही, डाक्टर भुवन, आप एक और सम्पूर्ण की बात कहते है, मै एक और दूसरे एक की। सम्पूर्ण मेरे लिए केवल युक्ति-सत्य है—अपने-आप मे कुछ नही, केवल एक और एक की अन्तहीन आवृत्ति से पाया हुआ एक काल्पनिक योग-फल। आप की मानवता एक विशाल मरु-भूमि है—और मेरे ये सहज साक्षात् छोटे-छोटे हरे ओएसिस। न एक हरियाली से सम्पूर्ण मरु की कल्पना हो सकती है, न असख्य हरियालियो को जोड देने से एक मरुभूमि बनती है। ये चीजे ही अलग है—"

भुवन ने जैसे मौका पा कर कहा, "ठीक। असख्य हरियालियो से एक मरु नही बनता। तो यह क्यो न मानिए कि यह मरु नही है, सम्पूर्ण जो है, वह जीवन का उद्यान है?"

रेखा थोडी देर स्थिर दृष्टि से उसे देखती रही। फिर सहसा खिल कर बोली, "इसी लिए तो मैं कहती हूँ, डाक्टर भुवन, मुझे आप से ईर्ष्या है। मैं एक-एक ओएसिस से ही इतनी अभिभूत हूँ कि दो को जोड नही सकती, और जोडना चाहती भी नही। कहिए कि इतनी पगु हूँ कि अगर ओएसिस है तो मरु है ही ऐसा मानना जरूरी समझती हूँ—जब कि आप विना मरु के ही, ओएसिस का अस्तित्व मानते है। आप भाग्यवान् हैं—"

भुवन समझ रहा था कि रेखा यो वात टाल रही है—या कि उसे फिर गम्भीर से उतार कर साधारण के तल पर ला रही है—काफी हाउस के उपयुक्त तल पर। पर वह आग्रह कर के वात आगे चलाना चाहता था, यद्यपि यह उसे लग रहा था कि अगर रेखा वात आगे चलाने को राजी न होगी तो उस के किये कुछ न होगा। मगर इतने में ही कुछ दूर से चन्द्र का स्वर आया, "भाग्यवान् मैं हूँ, रेखा देवी, कि आप दोनो को यहाँ पा लिया। लेकिन भुवन को किस वात पर आप वधाई दे रही है—क्यो भुवन, कुछ नोवेल पुरस्कार मिलने की वात है क्या ?"

रेखा ने सहसा एक और ही स्तर पर आ कर कहा, "हाँ, आप तो सब से अधिक भाग्यवान् हैं—आप तो विना ओएसिस के मरुभूमि में ही खुश है !"

"अगर उस मे आप लोगो का साथ हो, और अच्छी काफी मिल जाय।" चन्द्र ने बैठते हुए कहा, और पुकारा, "वेयरा !"

भुवन को विस्मय हुआ। रेखा की वात विल्कुल चिकनी और साफ थी, और हलकी हँसी उस वातावरण के विल्कुल अनुकूल, पर क्या उस में कही गहरे में एक विद्रूप का भाव नही था—विद्रूप और, हाँ, एक अस्वीकार का, तिरस्कार का ? रेखा और चन्द्रमाधव मित्र है, इतना ही वह जानता था, लेकिन—लेकिन

"रेखा देवी, आप तो और काफी लेगी न—और भुवन, तुम ?"

भुवन ने सँभल कर कहा, "हूँ—हाँ। वेयरा, तीन काफी और ले आओ, एक क्रीम।" बेयरा गया तो उसने पूछा, "चन्द्र, तुम्हारा इटरव्यू कैसा रहा ? भेट हुई तो ?"

"वताता हूँ, जरा काफी आने दो—उन की वातचीत का जायका धो लूँ—"

उस विषय की ओर फिर लौटना नही हुआ।

* * *

जिस दिन पहली वार स्टेशन जाने का निश्चय हुआ था, उस दिन भोजन के लिए वाहर जाने से पहले रेखा चन्द्रमाधव के यहाँ भी आयी थी, तय हुआ था कि वही से साथ वाहर चला जायगा। घर पर अधिक वातचीत नही हुई, क्योकि भुवन सामान ठीक-ठाक करने मे कुछ व्यस्त था, और चन्द्र को डिनर के लिए तैयारी करनी थी। डिनर उस ने कार्लटन मे ठीक किया था, और वहाँ जाने के लिए उस का कहना था कि वेश की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। यो उसे कपडे की कोई परवाह नही है, पर प्रमुख दैनिक

के विशेष सवाददाता के नाते उसे सब करना ही पडता है—यो लोग पत्रकार को कुछ नही वताते पर उस के रग-ढग से यह लगे कि उस की अच्छे समाज में पहुँच है, तो वहुत से लोग इसी लिए कुछ वताने को राजी बल्कि आतुर हो जाते है कि किसी दूसरे ने तो बताया ही होगा ! और अच्छे जर्नलिस्ट का काम यही है कि सब को यह इम्प्रेशन दे कि आप जो वता रहे है, वह वास्तव मे दूसरों से उसे पता लग चुका है, फिर भी आप का वताना और चीज है। क्यो और चीज है, उसके अलग कारण हो सकते है—एक तो यह पत्रकार पर आप के विश्वास का सूचक है—और वह कृतज्ञ है कि आपने उसे विश्वास दिया, या वह प्रसन्न है कि आप ने उस की पात्रता को पहचाना। दूसरे बात जानना एक चीज है और प्रामाणिक ढग से जानना दूसरी चीज—आप के वताने में वह प्रामाणिकता है। प्रश्न सारा यही है कि किस व्यक्ति को कितना 'फ्लैटर' करना उचित है—आज उस का जो पद है उसे ध्यान मे रखते हुए, या कल उस से जो काम निकालना है उसे देखते हुए। पम्प कर के बात निकालने के लिए उसी अनुपात मे पम्प से फूँक भरना भी तो होगा—यह पजाबी मुहावरा कितना मौजूँ है ! और आप की चाटुकारिता को कोई कितना सीरियसली ले, यह आप की पोशाक पर निर्भर है—अगर आप अच्छे कपडे पहने है तो आप की की हुई प्रशसा ठीक है और स्वीकार्य है, आप पारखी पत्र-प्रतिनिधि है, अगर रद्दी कपडे पहने है तो वह काम निकालने के लिए की गयी झूठी खुशामद है, आप टुटपुँजिये रिपोर्टर है और तिरस्कार का पूरा नुस्खा सुन लिया था। बल्कि इसी मे पैकिंग मे उसे देर हुई। फिर भी वह जैसे-तैसे आ कर रेखा के पास वैठ गया था।

"आप मेरी चिन्ता न कीजिए, मै प्रतीक्षा करने की आदी हूँ और यहाँ तो वहुत-सी दिलचस्प चीजे विखरी है—" रेखा ने एक पुस्तक उठाते हुए कहा, "पीटर चेनी मैंने पढा नही, सुना है वडी दिलचस्प कहानियाँ लिखता है।"

"जी हाँ। चन्द्र से सुना होगा आपने। या कि आप फौजदारी अदालत की रिपोर्टरी की उम्मीदवार है ?"

रेखा ने हँस कर किताव रख दी। भीतर से चन्द्रमाधव ने पुकारा, "मेरी साहित्यिक रुचि की वुराई कर रहे हो भुवन ? लेकिन पीटर चेनी क्यो वुरा है ? पीटर चेनी पढ़ने वाले कम-से-कम दूसरो की नुक्ताचीनी तो नही करते, अपने खुश रहते है। और तुम्हारे साहित्य पढने वाले सुपीरियर लोग—सव को हिकारत की नजर से देखते है। दोनो मे कौन अच्छा है, रेखा देवी ? कौन-सा दृष्टिकोण स्वस्थ है ?"

"ठीक है, मिस्टर चन्द्र, आपका दृष्टिकोण कलाकार का दृष्टिकोण है—सर्व-स्वीकारी। आप के मित्र आलोचक है—आलोचना तो रचनाशक्ति की मृत्यु का दूसरा नाम है।"

भुवन ने फिर चौंक कर रेखा की ओर देखा। क्या वह चन्द्रमाधव पर हँस रही है ? क्यो ? या कि दोनो पर ही हँस रही है ? रेखा ने उस की भौचक मुद्रा को लक्ष्य किया और सहसा हँस दी। "आप ठीक सोच रहे है डाक्टर भुवन, मै सिर्फ हँसी कर रही थी।"

भुवन ने पूछना चाहा, लेकिन किस की ? या किस-किस की ? पर कुछ बोला नही।

चन्द्रमाधव ने बाहर आ कर टाई सीधी करते हुए कहा, "अब मै सब तरह तैयार हूँ—रेडी फॉर एनीथिंग।"

रेखा ने फिर चमकती आँखो से कहा, "हाँ, पीटर चेनी के एक दृश्य के लिए भी।"

चन्द्रमाधव ने बिना झेपते हुए कहा, "हाँ।"

" 'सेटिंग कार्लटन होटल का डाइनिंग रूम। भोजन करते-करते रेखा देवी औंधे-मुँह सूप प्लेट पर गिर गयी—हत्या के कारण का कोई अनुमान नही हो सका। लखनऊ के स्टार पत्रकार चन्द्रमाधव पडताल कर रहे है! प्रोफेसर भुवन भी घटना-स्थल पर मौजूद थे'—लेकिन क्या सचमुच ? या कि तटस्थता से—"

"क्या कह रही है आप, रेखा देवी ? ऐसी मनहूस कल्पना मत कीजिए।"

"मै कहाँ ? यह तो पीटर चेनी—"

"पीटर चेनी के लायक पात्र कार्लटन मे ढेरो और है, आप को वह कष्ट नही देगा।"

रेखा ने कृत्रिम निराशा का भाव दर्शाते कहा, "तो मै पीटर चेनी के लायक भी नही—"

भुवन अतिरिक्त सजगता से रेखा को देखने लगा था। मन-ही-मन उसने सहमत होते हुए कहा, "पीटर चेनी के लायक तो कदापि नही।" पर फिर किस के ? हार्डी के ? हाँ, ऐसी कठपुतली पा कर भाग्य भी अपना भाग्य सराहेगा। पर रेखा उतनी भोली नही है, उस मे एक बुनियादी दृढता है जो दोस्तोयेव्स्की ? लेकिन क्या उस की चेतना वैसी विभाजित है—क्या उसमे वह अतिमानवी तर्क-सगति है जो वास्तव मे पागलपन का ही एक रूप है ? प्राचीन ग्रीक ट्रेजेडीकार—एक बनाम समूचा देव-वर्ग लेकिन रेखा मे उतना अह क्या है कि देवता उसे चुनें—कि वह चुनी जा कर कष्ट पावे ? तब सार्त्र—क्षण की असीमता, यातना के क्षण की असीमता निस्सन्देह असीम सहिष्णुता उस मे है—व्यथा पाने का असीम अन्त सामर्थ्य, लेकिन वह इसी लिए कि आनन्द की असीम क्षमता उस मे है आनन्द की परा सीमा, यातना की परा सीमा—चुन सकते है उसे देवता, क्योकि परा सीमाए उस मे सोती है, नभ काक्षी मानव, मृत्कामी देवता—ट्रेजेडी के सहज यान—इकारस के पख, प्रमथ्यु की आग ग्रीक ट्रेजेडी केवल अह की ट्रेजेडी तो नही है, वह मानव की सम्भावनाओ की ट्रेजेडी है

कुछ-कुछ यह अनुभव करते हुए कि बात बहुत देर से कही जा रही है और कदाचित् नही कहनी चाहिए, उसने कहा ही "रेखा जी, चेनी के या किसी भी लेखक के पात्र होना क्यो चाहा जाय ? हर किसी का अपना जीवन अद्वितीय होता है—"

"सो तो है। हम कदम-कदम पर अपनी अनुभूतियो की तुलना साहित्य के पात्रो से करते चलते है, पर है वे अद्वितीय और अद्वितीयता में ही वे हमारे निकट मूल्यवान् है। उन्ही की अनुभूतियाँ भोगे—ऐसे छायाजीवी भी होते है।"

न जाने क्यो, भुवन ने एक बार फिर चन्द्र की ओर देखा, उसने सहसा जाना कि वह चन्द्र के चेहरे को ध्यान से देख रहा है मानो उस की रेखाओ से पूछ रहा है, "जिस अनुभूति की तुम रेखाएँ हो, वह क्या सच है, मौलिक है, या कि छाया ?" कोई शीशा आस-पास नही था, नही तो कदाचित् वह अपना चेहरा भी देखने लगता।

रेखा ने पूछा, "कार्लटन मे आर्केस्ट्रा भी होगा ?" भुवन ने लक्ष्य किया कि विषय बदल दिया गया है।

* * * *

उस रात स्टेशन से गाडी जान-बूझ कर छोड आने के बाद, भुवन को अपने पर हल्की-सी खीझ आयी थी। क्यो वह गाडी छोड कर लौट आया ? कुछ काम की क्षति नही हुई, ठीक है,पर एक निश्चय निश्चय होता है,अकारण वदलने से इच्छा-शक्ति क्षीण होती है। यो क्षण की प्रेरणाओ पर अपने को छोड देने से आदमी शीघ्र ही आँधी पर उडता तिनका वन जाता है—क्योकि प्रत्येक वार सकल्प-शक्ति कुछ क्षीणतर हो जाती है और सहज प्रेरणा की मन्द हवा कुछ तेज हो कर आँधी-सी क्यो नही वह चला गया ? रेखा न जाती तो न जाती—रेखा से उसे क्या ?

और अपने कमरे मे टहलते-टहलते वह सहसा निकल कर चन्द्रमाधव के कमरे मे चला गया था। चन्द्र लेट गया था और सोने की तैयारी कर रहा था, पर भुवन ने विना भूमिका के पूछा था, "चन्द्र, यह रेखा देवी कौन है, क्या है,—मुझे उसकी वात और वताओ, जो तुम्हे मालूम हो।"

चन्द्र ने एक लम्बे क्षण तक उस की ओर देखा। फिर कुछ मुस्करा कर कहा था, "क्यो, ठेस खा गये दोस्त ? रेखा तुम्हारी केमिस्ट्री की इक्वेशन नही जो झट हल कर लोगे—वडा पेचीदा मामला है।"

"वकवास मत करो। मुझे उस से कोई मतलव नही है। सिर्फ एक दिलचस्प चरित्र है—मुझे वौद्धिक कौतूहल है, वस। वौद्धिकता से तुम्हारा छत्तीस का नाता है, यह जानता हूँ, पर तुम जैसा दिलफेंक स्वभाव मुझे नही मिला तो नही मिला, मै क्या करूँ ?"

"तैश मे मत आओ, दोस्त," चन्द्र ने उठ कर वैठते हुए कहा था, "वह कुरसी खीच लो और वैठ जाओ।" भुवन के वैठ जाने पर, "हाँ, अव पूछो, क्या जानना चाहते हो ?"

"जो वता दो . वह कौन है, क्या है, कहाँ की है, क्या करती रही है, क्या करती है, अकेली क्यो घूमती है—"

"रुको इतना पहले वता लूँ तो और पूछना; नही तो मेरा सिर चकरा जायगा।"

लेकिन वता कर क्या वताया जा सकता है ? स्वय वही जव कहता है कि तथ्य और सत्य मे अन्तर है, तव निरे तथ्य जान कर सत्य तक पहुँचने की व्यर्थ कोशिश वह क्यों कर

रहा है ? "सत्य अपने अन्तर की पीडा से जाना जाता है।" वही मानते हो, तो ठीक है; वही क्यो न परीक्षा कर के देखो ?

तथ्य कुछ अधिक थे भी नही।

रेखा की आयु यही सत्ताईस के लगभग होगी, वह विवाहिता है, विवाह आठ वर्ष पहले हुआ था, पर विवाह के दो-एक वर्ष वाद ही पति-पत्नी अलग हो गये थे। कारण कोई ठीक नही जानता, और रेखा से पूछने का साहस किसे है ? कोई कहते है, विवाह से पहले रेखा का किसी से प्रेम था पर उस से विवाह हो नही सकता था, उसने वाद मे दूसरा विवाह कर लिया तो मर्माहत रेखा ने उस के माता-पिता ने जो वर ठीक किया उसे चुपचाप स्वीकार कर लिया पर उसे वह दे न सकी जो पति को देना चाहिए, कोई यह कहते है कि पति की ही आदते शुरू से खराब थी और वह पत्नी के प्रति अत्यन्त उदासीन था, मित्रो को ला कर घर छोड जाया करता था और स्वय न जाने कहाँ-कहाँ जा रहता था—सच क्या है भगवान् जाने, पर छ वर्ष से दोनो अलग है, और तीन-चार वर्ष हुए पति एक विदेशी रवर कम्पनी मे अच्छी नौकरी स्वीकार कर के मलय चला गया है, वहाँ उस के साथ मलय या एग्लो-मलय या यूरोपियन-मलय मिश्र रक्त की कोई स्त्री भी रहती है। रेखा नौकरी करती है, पढाती रहती है, फिर किसी रियासत मे राजकुमारियो की गवर्नेस थी, वहाँ से हाल मे इस्तीफा दे कर आयी है। अभी कुछ नही कर रही है लेकिन नौकरी की तलाश मे है।

"और घर कहाँ है ? माता-पिता है ?"

"नही। पिता वडे नामी डाक्टर थे, माँ भक्त थी और मरी तो वहुत-सी सम्पत्ति रामकृष्ण मिशन को छोड गयी। वैसे शायद कश्मीरी है, पर दादा कलकत्ते मे आ वसे थे और तव से तीसरी पीढी वगाली ही अधिक है—रेखा हिन्दी और वँगला दोनो वोलती है और वँगला सगीत मे उसकी अच्छी पहुँच है।"

"अच्छा ? और ?"

चन्द्रमाधव ने कहा, "और क्या ? जो तुम पूछो सो वताऊँ ?"

"तुम से परिचय कव से, और कैसे हुआ ?"

"मुझ से !" चन्द्र ने तकिये के पास से टटोल कर सिगरेट का पेकेट निकाला, सिगरेट सुलगा कर, उठते हुए वोला, "मुझ से ? तुम तो जानते हो, पत्रकार का परिचय हर किसी से होता है। समझ लो वैसे ही।"

"वनो मत ! और ये सव वाते तुम्हे कैसे मालूम हुई ?"

"मै पहले से जानता था। वल्कि सुन रक्खी थी, इसी लिए कौतूहल अधिक था, जव भेट हुई तो सोचा, इस अद्भुत स्त्री से अवश्य परिचय करना चाहिए।"

"क्यो ? और वह अद्भुत क्यो है ?"

"यह मुझ से पूछते हो ? देख कर ही नही छाप पडती कि यह स्त्री कुछ भिन्न है—

असाधारण है ? और क्यो की भली पूछी । जिस स्त्री का इतिहास होता है, उस मे किसे नही दिलचस्पी होती ?"

"भुवन ने तनिक रुखाई से कहा, "हाँ जर्नलिस्ट को तो जरूर होनी चाहिए—"

"जर्नलिस्ट ही क्यो, हर किसी को होती है । तुम्ही क्यो इतना जानने को उत्सुक हो ?"

"मै तो जानने से पहले ही उत्सुक था, इतिहास जान कर तो नही हुआ—"

"मानते हो न ? तभी तो कहता हूँ वह असाधारण स्त्री है । तुम भी मानते हो, नही तो पूछते क्यो ? तुम्हे किसी स्त्री मे दिलचस्पी हो, यह तो कभी देखा-सुना नही, कालेज मे भी तुम गव्बू प्रसिद्ध थे ।" चन्द्र जोर से हँस दिया ।

भुवन ने अन्तिम बात को अनसुनी करते हुए कहा, "और क्यो दिलचस्पी है ? और यह जो इतिहास वाली बात है, उसका आकर्षण क्या निरी लोलुपता नही होती कि अगर पहले से इतिहास है तो एक अध्याय शायद हम भी जोड ले, ऐसा कुछ लोभ ?"

"हो सकता है । आधुनिक समाज मे कोई समझदार विवाहित से नही उलझता, यह तो तुम जानते हो—उसमे खतरा बहुत होता है । हाँ, विवाहिता मगर वियुक्ता की बात और है—उस मे दोनो ओर के लाभ है । और यह जो लोभ की बात—"

"छि, चन्द्र, क्या बात तुम करते हो ! यह आधुनिक समाज की नही, अठारहवी सदी के यूरोप के समाज की मनोवृत्ति है—बल्कि उस समय के भी दरबारी समाज की ।"

"अच्छा, अच्छा, गरम मत होओ मेरे दोस्त । और मुझे छि-छि कहने से क्या लाभ है—मै तो हर किसी की बात कह रहा था, अपनी थोडे ही ?"

"क्यो, तुमने अपनी दिलचस्पी की बात नही कही थी अभी ?"

"कही थी । पर वह बात और है । मै तो रेखा देवी का बहुत सम्मान करता हूँ । बल्कि वैसी स्त्री—" सहसा चन्द्र बात अधूरी छोड कर चुप हो गया ।

"कहो, कहो—वैसी स्त्री क्या ?"

"कुछ नही !" कह कर चन्द्र ने चुप लगा ली, और फिर भुवन के बहुत पूछने पर भी कुछ नही बोला ।

* * *

अन्तिम दिन वे तीनो सिनेमा गये थे । यो शाम के शो मे भी जाया जा सकता था, पर एक बजे काफी हाउस मे मिलने की ठहरी थी और भुवन का प्रस्ताव था कि वही से तीन बजे के शो मे चला जाय—ताकि शाम को थोडा घूमने का समय मिल सके ।

अँग्रेजी चित्र था, जिस मे एक दुर्घटना मे नायक का स्मृतिलोप हो जाता है, और वह अपनी गृहस्थी की बात भूल कर पुन प्रेम करने लगता है; और फिर एक वैसी ही दुर्घटना देखकर उसकी पहली स्मृति लौट आती है और नया स्मृति-सचय मिट जाता है । कहानी

भी मार्मिक थी और अभिनय भी भावोद्वेलक, पर उसे ध्यान से देखते हुए भी भुवन मन-ही-मन सोचता जाता था कि इस की रेखा पर क्या प्रतिक्रिया हो रही होगी। क्योंकि सम्पूर्ण तटस्थ भाव से तो कुछ देखा नही जाता, हम अनजाने कथावस्तु पर अपना आरोप करते चलते है, या फिर अपने पर ही कथा की घटनाएँ घटित करते चलते हैं--और मन की यह भी एक शक्ति है कि जरा-से भी साम्य के सहारे वह सहज ही सम्पूर्ण लयकारी सम्बन्ध जोड लेता है। क्या रेखा अपने को अमुक स्थिति मे देख रही है? क्या. बीच-बीच में वह खीझ कर अपने को झकझोर लेता कि नही, रेखा की बात वह नही सोचेगा, पर फिर थोडी देर में वैसा ही प्रश्न उसके मन मे उठ आता--अगर रेखा का पति

बाहर आकर तीनो टहलते हुए गोमती की ओर निकल गये थे। पुल के पास घाट की सीढियो पर तीनो बैठ गये थे। चलते-चलते चित्र के विषय मे कुछ बात हुई थी, पर "अच्छा है" से अधिक रेखा ने कोई मत व्यक्त नही किया था, वह स्पष्ट ही कुछ अनमनी थी।

सहसा भुवन ने पूछा, "रेखा जी, आप गाती नही?"

"गाती नही, यह तो नही कह सकती, पर गाना जानती नही हूँ।"

चन्द्र ने साभिप्राय भुवन की ओर देखा।

"आप की मातृभाषा तो बँगला है न?"

रेखा ने एक बार दृष्टि उठा कर भुवन से मिलायी। उसमे बडा हल्का-सा अचम्भा था, और कुछ यह भाव कि आपने पूछा है तो उत्तर देती हूँ, पर अपने बारे में प्रश्नो का उत्तर देने का मुझे अभ्यास नही। फिर उसने कहा, "उँ--हाँ, वही मेरी भाषा है।"

"तो बँगला में ही एक गाना गा दीजिए न--मेरा यह आग्रह गुस्ताखी तो न होगा?"

रेखा थोडी देर चुप रही। फिर धीरे-धीरे बोली, "नदी का किनारा है, गान यहाँ होना ही चाहिए--आप की मान्यताएँ भी इतनी रोमांटिक होगी ऐसा नही समझती थी।"

भुवन ने आहत भाव से प्रतिवाद करना चाहा, पर बोला नही। चन्द्र मानो आँखो से कह रहा था, "तुम हो दुस्साहसी, पर देखें तुम्हारी बात सुनती है कि नही--मेरी तो कभी नही सुनी।"

सहसा दोनो निश्चल हो गये, क्योकि रेखा कुछ गुनगुना रही थी। फिर उसने धीमे किन्तु स्पष्ट स्वर में गाना शुरू किया

आमार रात पोहालो शारद प्राते--
आमार रात पोहालो।
बाशी तोमाय दिये जाबो काहार हाते--
आमार रात पोहालो।
तोमार बूके बाजलो धुनि, विदाय गाँथा आगमनि
कत ये फाल्गुने श्रावणे कत प्रभाते राते--

आमार रात पोहालो।
ये कथा रय प्राणेर भीतर अगोचरे
गाने-गाने निये छिले चूरि करे
समय ये तार हल गत, निशि शेषे तारार मत,
तारे शेष करे दाओ शिउलि फूलेर मरण साथे—
आमार रात पोहालो ! *

अन्तिम पक्ति गाते-गाते ही वह उठी और धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतरने लगी, अन्तिम स्वर उस बढती हुई दूरी मे ही खो गये और ठीक पता न लगा कि गाना पहले बन्द हुआ कि सुनना। नीचे पहुँच कर रेखा पानी के निकट खडी हो गयी, एक बार मानो हाथ से पानी हिलाने के लिए झुकी, पर फिर इरादा बदल कर सीधी हो गयी। भुवन और चन्द्र दोनो ऊपर बैठे रहे। पुल के ऊपर दो-तीन बन्दर आ कर बैठ गये और कौतूहल से दोनो की ओर देखने लगे। घिरती साँझ के आकाश के पट पर बन्दरो के आकार अजब लग रहे थे।

चन्द्र ने पुकारा, "रेखा जी, अब चला जाय ?"

रेखा ने घूमते हुए आवाज़ दी, "आयी।" और धीरे-धीरे सीढियाँ चढने लगी।

भुवन ने कहा, "रेखा जी, आपने हमें यह कहने का मौका ही नही दिया कि आप बहुत अच्छा गाती है—"

"तो आप को आभार मानना चाहिए कि अनावश्यक शिष्टाचार से मैंने आपको बचा लिया ! जैसा गाती हूँ, वह मै जानती हूँ, सीखना ज़रूर चाहती थी, पर—" हाथो की एक अस्पष्ट मुद्रा ने बाकी वाक्य का स्थान ले लिया।

उस के बाद स्टेशन पहुँचने तक एक अजब-सा दुराव सब के बीच में आ गया था। सभी चुप रहे थे, चलने से कुछ पहले भुवन सामान देखने का बहाना कर के अलग हट गया था कि उस की वजह से वह खिचाव हो तो दूर हो जाय; पर जब वह बाहर घूम घाम कर सीढी पर पैर पटकता हुआ लौटा, तब भी दोनो चुपचाप ही बैठे थे, बल्कि तनाव कुछ अधिक ही जान पड रहा था—चन्द्र के चेहरे पर कुठित-सा भाव था, और रेखा के चेहरे पर एक अनमनापन, आँखो मे एक असीम दूरी, मानो वह बहुत, बहुत दूर कही पर हो ..

भुवन ने कुछ ऊँचे स्वर से कहा, "और आज भी भीड हुई तो ? मै तो जैसे-तैसे जाऊँगा ही—चाहे फुटबोर्ड पर लटकते हुए ही—"

---

* मेरी रात चुक गयी शारद प्रात में; बंशी, तुम्हें, किसके हाथ सौंप जाऊं ? कितने फागुन-सावन में, कितने प्रभात-रात में तुम्हारे हृदय में विदा से गुँथी हुई आगमनी की धुन बजी है। प्राणों के भीतर जो कथा अगोचर थी, तुमने गान में चुरा ली थी। उसका समय बीत गया निशा-शेष के तारों-सा, उसे अब शेफ़ाली के फूल के मरण के साथ समाप्त कर दो।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रेखा ने कहा, "नही, आज मै आप को रोकने का आग्रह नही करूँगी—कल भी आप रुक गये इस के लिए बहुत कृतज्ञ हूँ।"

भुवन ने मन-ही-मन सोचा, 'कल भी आपने कौन-सा आग्रह किया था—'पर प्रत्यक्ष उसने नही कहा। बोला, "कृतज्ञ मुझे—हम दोनो को होना चाहिए कि आप रुक गयी—".

चन्द्र ने प्रकृतस्थ हो कर कहा, "हाँ, और नही तो क्या। बल्कि मुझे आप दोनो का—"

"चलिए, हम सब-के-सब कृतज्ञ है।" रेखा मुस्करा दी। "अब चले—राह मे मेरा सामान लेते चलेंगे—"

भुवन अपने कमरे की ओर सामान उठाने चला। पीछे उसने सुना, रेखा पूछ रही है, "आप के मित्र को इलाहाबाद मे बहुत जरूरी काम है ? या घर पहुँचने की जल्दी है—बीवी—"

वह सहसा ठिठक गया। चन्द्र ठठा कर हँसा। "अरे, भुवन तो निघरा है, उसे कही पहुँचने की जल्दी नही है।" भुवन आगे बढ गया। रेखा ने फिर कहा, "अकेले है, तभी लीक पकड कर चलते है।"

इस वाक्य का कुछ भी अभिप्राय भुवन नही समझ सका—कोई भी अर्थ न उस पर लागू होता था, न रेखा या चन्द्र पर ही किसी तरह लगाया जा सकता था। चन्द्र ने फिर क्या कहा, यह उसने नही सुना।

दस बजे रात को गाडी लखनऊ से छूटी थी। रेखा के डिब्बे के सामने ही उस ने चन्द्र-माधव से विदा ली थी, और उसे वही छोड कर अपने डिब्बे की ओर चला गया था। रेखा का डिब्बा आगे की ओर था; गाडी जब चली तब प्लेटफार्म पर खडा चन्द्र फिर उस के सामने आ गया और उस ने हाथ हिला कर फिर विदा माँग ली।

उस के बाद अगर वह ऊँघता रहता, और प्रतापगढ तक फिर रेखा को देखने न जाता, तो कोई असाधारण बात न होती—वैसा कुछ उस से अपेक्षित नही हो सकता था। बल्कि प्रतापगढ मे भी अगर न उतरता, तो बहुत अधिक चूक न होती, चाहे रेखा ही उसे वहाँ देखकर नमस्कार करती हुई चली जाती। रेखा की यात्रा का या उस यात्रा में उसकी सुरक्षा या सुविधा का कोई दायित्व भुवन पर कैसे था ?

पर गाडी पैसेंजर थी, हर स्टेशन पर रुकती थी। ऊँघने की चेष्टा बेकार थी—यो भुवन ने उधर ध्यान भी नही दिया। पहले ही स्टेशन पर गाडी रुकी तो वह रेखा के डिब्बे पर पहुँच गया, दरवाजे के पास ही रेखा बैठी थी और उस की आँखे बिल्कुल सजग थी और शायद बाहर अन्धकार की ओर देखती रही थी।

भुवन ने कहा, "आप काफी सफर करती है ?"

"हाँ, अधिक सफर ही करती हूँ। इधर के बहुत कम वेटिंगरूम है जो मेरे अपरिचित

होगे। जब मुसाफिर नही होती तब मेहमान होती हूँ—और दोनो मे कौन अधिक उखडा है यह कभी तय नही कर पायी।"

"लेकिन उखडापन तो भावना की बात है, रेखा जी! मानने से होता है। व्यक्ति की जडें घरो मे नही होती—समाज-जीवन में होती है—नही ? और यायावरो का भी अपना समाज होता है—"

"तो समझ लीजिए कि मै ज्ञान के तरु की तरह हूँ—ऊर्ध्व-मूल—मेरी जडे आकाश मे खोयी फिरती है! लेकिन यह न समझिए कि मै शिकायत कर रही हूँ—"

गाडी चल दी थी। अगले स्टेशन पर भुवन ने फिर कहा था, "आप जैसा व्यक्ति भटकता है तो यही मानना चाहिए कि स्वेच्छा से, पसन्द से भटकता है—लाचारी तो समझ मे नही आती। और स्वेच्छा का भटकना तो भीतरी शक्ति का द्योतक है।"

रेखा हँस पडी। "भटकने से ही शक्ति आती है, डाक्टर भुवन! क्योकि जब मिट्टी से बाँधने वाली जडे नही रहती, तब हवा पर उडते हुए जीने के लिए कही-न-कही से और साधन जुटाने पडते है। स्वेच्छा से भटकना? हाँ, इस अर्थ मे जरूर स्वेच्छा है कि पडा-पडा पिस क्यो नही जाता, अधेरे गर्त मे धँस क्यो नही जाता, हाथ-पैर क्यो पटकता है ?"

"मै आप को क्लेश पहुंचाना नही चाहता था, रेखा जी—मेरा मतलब था—व्यक्तित्व जडे तो फेकने लगता है बिल्कुल बचपन से और—और—" वह कुछ झिझका, "आप का भटकना—"

"कह डालिए न, आप का भटकना पाँच-छ. वर्ष का ही है, आप जानते तो होगे कि मेरा विवाह हुए आठ वर्ष हो गये और विवाह के दो वर्ष बाद से—"

भुवन चुप रह गया।

"आप की बात ठीक है। कुछ सम्बन्ध बने भी रह सकते थे, और उन्हे काट कर वह निकलना स्वेच्छा से ही हुआ। पर—जडो का ही रूपक लिये चले तो—यह आप नही मानते कि कुछ जडे वास्तव में जीवन का आधार होती है,और सतही जडो का बहुत बडा जाल भी एक गहरी जड की बराबरी नही करता ?"

"हाँ—"

"तब एक जड के कट जाने से भी पेड मर सकता है—और मरे नही तो भी निराधार तो हो ही सकता है। मै मरी नही—"

गाडी फिर चल दी। इस समय शायद भुवन को गाडी के चल देने से तसल्ली ही हुई, क्योंकि ऐसे में क्या कहे वह सोच नही सकता था।

बात ज्यो-ज्यो आगे चलती थी, अगले स्टेशन पर फिर न जा पहुँचना उतना ही अनुचित जान पडता था, अनुचित ही नही, भुवन स्वय भी बात आगे सुनने को उत्सुक था।

अगले स्टेशन पर रेखा ने कहा, "डाक्टर भुवन, मै अपनी बात के लिए क्षमा चाहती हूं। इस तरह की बात करने की मै बिल्कुल आदी नही हूँ, आप माने। पर रेल का सफर

शायद इस तरह के आत्म-प्रकाशन को सहज बनाता है---चलती गाडी मे हम अजनबी को भी बहुत-सी ऐसी निजी बाते कह देते है जो अपने ठिकाने पर घनिष्ट मित्रो से भी न कहे।" वह कुछ रुकी। फिर बोली, "यह शायद जडो वाली बात का एक पहलू है; चलती गाडी मे मुझ-जैसे व्यक्ति को एक स्वच्छन्दता का बोध होता है जब कि स्थिरता की सूचक किसी जगह मे मुझे अपना बेमेलपन ही अखरता रहता और मै गूंगी हो जाती। इस लिए मेरी बात पर ध्यान न दें---वह चलती बात है।" अपने श्लेष पर वह स्वय हँ दी। भुवन ही नही हँस सका।

रेखा ने फिर कहा, "यो भी शायद में एग्जैजरेट कर रही हूँ---उतना गहरा आघात शायद वह नही था। वैसा कहना दोतरफा अन्याय है। असल में जहाँ मै आ पहुंची हूँ, उस का कोई एक कारण नही है—मेरा सारा जीवन ही कारण है। और यह कहने से कुछ बात नही बनती---क्योकि 'जीवन का सारा जीवन ही कारण है' यह कहने के क्या मानी है?"

"मानी है," भुवन इतना ही कह पाया, गाडी फिर चल दी। और अगले स्टेशन पर उसने देखा कि रेखा का चेहरा इतना बदला हुआ है कि बात का सूत्र फिर उठाने का साहस ही उसे नही हुआ।

रेखा ने कहा, "एक बात पूछूं, डाक्टर भुवन? बुरा तो न मानेंगे? आपने शादी क्यो नही की?'

भुवन अचकचा गया। पैतरा काटता हुआ बोला, "पहले तो डाक्टर कहना आवश्यक नही है रेखा जी, नही तो मुझे लगेगा कि श्रीमती रेखा देवी न कहने मे मुझ से चूक होती रही है। दूसरे---कोई काम न करने के लिए क्यो कारण ढूंढा जाय? कारण तो कुछ करने के लिए होना चाहिए, न करना तो स्वयसिद्ध है।"

"हाँ, यो तो ठीक है, पर शादी के बारे में नही। वह तो धर्म है न---शास्त्रोक्त भी, स्वाभाविक भी---"

"रात के दो बजे शास्त्रार्थ करने लायक ज्ञान तो मुझ में है नही। और कही अस्वाभाविकता अपने जीवन में अखरी हो, ऐसा भी नही है---"

"अरे हाँ, मैं भी कैसा अत्याचार कर रही हूँ यह---बस अब अगले स्टेशन पर आप नही आवेंगे। मै प्रतापगढ स्वय उतर जाऊँगी। आप जा कर आराम कीजिए, डाक्टर भुवन जी!"

भुवन ने कहा, "रेखा जी, आपन जिसे अनावश्यक शिष्टाचार कहा था, यह बात भी क्या उसी के अन्तर्गत नही आती?"

अगला स्टेशन प्रतापगढ था। यहाँ तो दस-बारह मिनट गाडी ठहरेगी। भुवन लपक कर पहुँचा कि सामान उतरवा दे; पर यहाँ तक आते डिब्बे की सब सवारियो पर ऐसी शिथिलता छा गयी थी कि सब अपने-अपने स्थान पर पोटलियो-सी पडी थी, और ऊपर की बर्थ से सामान उतार लेने मे कोई अडचन या झिझक नही हो सकती थी। भुवन के

पहुँचने तक रेखा ने सामान उतार लिया था, एक कुली भी आ गया था।

रेखा ने कहा, "इस स्टेशन पर तो आप के न आने की बात थी?"

"न आता तो आप 'मिस' न करती, यह जानता हूँ, समझ लीजिए कि यह भी फालतू शिष्टाचार है--"

"जो आप अपने सौजन्य के साथ रगे दे रहे है।" रेखा हसी।

कुली ने सामान उठा लिया था। रेखा ने कहा, "वेटिंग-रूम में ले चलो, हम आते है।" कुली चला गया।

भुवन ने कहा, "रेखा जी, आप से भेंट करके मुझे बडी प्रसन्नता हुई। मेरा लखनऊ का प्रवास बडा सुखद रहा। इस बात को आप शिष्टाचार ही न माने--" फिर तनिक-सा रुक कर, "सुखद शायद ठीक शब्द नही है--किन्तु ठीक शब्द तत्काल मिल नही रहा है, सोच कर शायद ढूँढ निकालूँ।"

रेखा ने गम्भीर हो कर कहा, "भुवनजी, मैं भी आप की कृतज्ञ हू। आपने इस वापसी की यात्रा को भी प्रीतिकर बना दिया। बल्कि मै सोचती हू, यह यात्रा कुछ और लम्बी हो सकती थी।" फिर कुछ मुस्करा कर, "बात-चीत का यह इटरमिटेट तरीका कुछ बुरा नही है--ये बीच-बीच के ब्रेक अपने-आप मे एक तटस्थता दे देने वाले है, फिर चाहे बात-चीत कोई कैसी ही करे। मैं सोचती हूँ मुझे कभी ईसाइयो की तरह कनफेशन करना हो तो गिरजा में जा कर नही, रेलगाड़ी मे ही करूँ।"

भुवन ने भी हँस कर कहा, "और कनफेसर मै होऊ--मुझे विश्वास है कि मेरा काम बहुत हलका रहे। आपने ऐसे बहुत कर्म किये होगे जिन का आत्मा पर बोझ हो, ऐसा नही लगता।"

रेखा जोर से हँस दी। अग्रेजी मे उसने एक पक्ति कही, जिस का अर्थ था 'कितना छल-रूपी होता है पापी!' फिर सहसा स्वर बदल कर गम्भीर हो कर उसने पूछा, "अच्छा सच बताइये, मैंने आप के इलाहाबाद जाने में जो एक दिन देर कर दी, उसके लिए आप नाराज तो नही है न?"

अब भुवन हसा। "वह बात अभी तक आप को याद ही है। मुझे कही पहुँचना नहीं था, और एक दिन जो अधिक रह गया वह और भी अच्छा बीता--नाराजी का प्रश्न ही कैसे उठता है?- कृतज्ञ--"

"नही, मुझे बहुत डर लगा रहता है। जो रास्ते वाले है उन्हें रास्ते से एक इच भी इधर-उधर नही ले जाना चाहिए--मेरी बात तो दूसरी है, मेरे आगे रास्ता ही नही है।"

भुवन ने कहा, "स्पष्ट क्यो नही कहती? आप समर्थ है, रास्ता बनाती चलती है हम दूसरो की बनायी हुई लीके पीटते है--"

रेखा ने जोर दे कर कहा, "नही, यह मेरा आशय बिल्कुल नही था।"

भुवन को रेखा की शाम को कही हुई बात याद आ गयी--"अकेले है, तभी लीक पकड

कर चलते है ।" उसने चाहा, अभी पूछ ले कि रेखा का क्या अभिप्राय था । पर वह बात उसे नही, चन्द्रमाधव को कही गयी थी, उसे सुननी भी नही चाहिए थी । उसने पूछा, "तब कुछ स्पष्ट कर के कहिए न ?"

"कुछ नही । दूसरो की बनायी हुई लीको की बात मै नही सोच रही थी । व्यक्तित्व की अपनी लीके होती है—एक रुझान होता है । और उस के आगे, व्यक्ति अपने वर्तमान और भविष्य के बारे में जो समझता है, जो कल्पना करता है, मनसूबे बाँधता है, उन से भी तो एक लीक बनती है—लीक कहिए, चौखटा कहिए, ढाचा कहिए । या कह लीजिए दुनिया मे अपना एक स्थान । मेरा यही मतलब था । आप के सामने—ऐसा मेरा अनुमान है—भविष्य का एक चित्र है, कही मजिल है, ठिकाना है । इस लिए रास्ता भी है—"

"रास्ते तो कई हो सकते है, और शार्ट-कट होते नही—"

"शार्टकट नही होते, पर कई रास्तो वाला तर्क बडा खतरनाक होता है, भुवन जी; आप के सामने एक रास्ता है, वह जिस पर आप है । दूसरे रास्ते हो सकते हैं पर चलता रास्ता एक ही है—जिस पर आप है । चलना तभी सम्भव है ।"

गार्ड ने सीटी दे दी थी । गाडी भी सीटी दे चुकी थी । भुवन ने कहा, "रेखा जी, आप-से व्यक्तित्व को देख कर कोई यह नही कह सकता कि आप के सामने रास्ता नही है—आप का ऐसा स्पष्ट, सुनिश्चित, रूपाकार-युक्त व्यक्तित्व है कि—" वह शब्दो के लिए कुछ अटका, तो रेखा ने कहा, "आप चल कर गाडी पर सवार हो जाइये, फिर आगे बात होगी ।"

भुवन ने कहा, "अभी चलने में बहुत देर है ।" फिर कुछ शरारत से एलियट की पक्तियाँ दुहरा दी,

"बिट्वीन द आइडिया
एंड द रिएलिटी
बिट्वीन द मोशन
एंड द एक्ट
फाल्स द शैडो
फार दाइन इज़ द किंग्डम्—"*

रेखा हसी, कुछ बोली नही । भुवन ने कहा, "लेकिन मेरा सवाल बीच ही में रह जाता है—आप के पास ऐसी स्पष्ट प्रखर दृष्टि है—"

"कि मुझे सब रास्ते एक साथ दीखते है ।" रेखा बात काट कर हंस पड़ी । "और हर

* कल्पना और यथार्थ के बीच, गति और कर्म के बीच आ जाती है (तेरी) छाया, क्यो कि तू ही शास्ता है—

रास्ते के आगे एक मजिल भी दीखती है, जिसे मरीचिका मानना कठिन है।" वह तनिक रुकी, फिर गम्भीर हो कर उस ने कहा, "और इसीलिए सब मजिले झूठ हो जाती है, और कोई रास्ता नही रहता। मै सचमुच कही भी पहुँचना नही चाहती—चाहना ही नही चाहती। मेरे लिए काल का प्रवाह भी प्रवाह नही, केवल क्षण और क्षण और क्षण का योग-फल है—मानवता की तरह ही काल-प्रवाह भी मेरे निकट युक्ति-सत्य है, वास्तविकता क्षण ही की है। क्षण सनातन है।"

भुवन चुपचाप रेखा का मुँह ताकता रहा। रेखा जैसे दूर कही से कुछ गुनगुना उठी; भुवन ने कान देकर सुना, वह लारेस की कुछ पक्तियाँ दुहरा रही थी।

"डार्क ग्रासेज़ अंडर माई फ़ीट
सीम टु डैब्ल् इन मी
लाइक ग्रासेज इन ए ब्रुक।
ओः, एंड इट इज स्वीट टु बी
आल दीज थिंग्स, नाट टु बी
एनीमोर माइसेल्फ़,
फ़ार लुक—
आई एम वेयरी आफ़ माइसेल्फ़!"*

रेखा का स्वर भुवन स्पष्ट नही सुन सकता था और शब्द छूट जाते थे, पर कविता उसकी पढी हुई थी और वह बिना पूरा सुने भी साथ गुनगुना सका; लेकिन रेखा के पढने में कितनी एकात्मता थी उन पक्तियो के आशय के साथ—मानो सचमुच ही भुवन देख सकता, वहाँ रेखा नही, घास की झूमती हुई पत्तियाँ है—पत्तियाँ भी नही, पानी में पडी हुई पत्तियो की परछाइयाँ उसे और किसी कवि की कविता याद आयी जिसने कहा है, "सरोवर के पानी में झाक कर जो घास और शैवाल देखता है वह भगवान का मुँह देखता है और जो अपनी परछाइँ देखता है वह एक मूर्ख का मुँह देखता है—" और उसने सोचा, इस समय निस्सन्देह रेखा मूर्ख का मुँह नही देख रही है, यद्यपि भगवान का साक्षात् वह कर रही है या नही, यह

ठीक इसी समय रेखा ने उस की कुहनी पकड कर उसे ठेलते हुए कहा था, "अरे, आप की गाडी तो जा रही है"—और उसने मुड कर देखा था कि सचमुच पर उस का डिब्बा, जो पीछे था, अभी जहाँ वे खडे थे वहाँ से गुज़रा नही था। उसने कहा था, "आप चिन्ता न करे—" और सवार हो गया था, कब रेखा ने उस की कुहनी छोडी थी इस का उसे ठीक

*मेरे पैरो तले की घास मानो मुझ में ऊब-डूब कर रही है जैसे झरने में किनारे की घास। कितना मधुर है ये सब वस्तुएं हो जाना और अपना-आप न रहना, क्योंकि मैं अपने-आप से ऊब गया हूं।

पता नही था---तत्काल ही, या जब उसने डिब्बे का हैंडल पकड कर तख्ते पर पैर रखा था और गाडी की गति ने उसे खीच लिया था तब, उसने यही देखा था कि रेखा का हाथ अभी वैसा ही ऊपर उठा हुआ है, उँगलियो की स्थिति वैसी ही अनिश्चित है जैसे किसी एक क्रिया के पूरी होने के बाद दूसरी क्रिया के आरम्भ होने से पहले होती है---सकल्प-शक्ति की उस जड अन्तरावस्था मे ।

और ठीक उस के बाद उस ने सहसा जाना था कि वह भीतर कही विचलित है, और उस की कुहनी चुनचुना रही है, और उस का हाथ उस का अपना अवयव नही है, और सब पर्याय विपर्यय है और आस-पास सब कुछ एक गोरखधन्धा है जिस का हल, कम-से-कम उस समय, उसे भूल गया है---और गोरखधन्धे का हल न जानने मे उतनी छटपटाहट नही होती जितनी जानते हुए भी उस क्षण न पा सकने मे

पटरी के मोड पर रेखा गाडी की ओट हो गयी थी, भुवन अपना हाथ देखता रह गया था । तभी एक चिडचिडे स्वर ने उसे वापस, ठोस धरती पर ला गिराया था ।

क्षितिज मे फीका-सा रग भरने लगा था, सप्ताह-भर की घटनाओ का---यदि घटना उन्हे कहा जा सकता है--पर्यवलोकन कर के भुवन फिर वही-का-वही आ गया था । तथ्य और सत्य--सत्य वह तथ्य है जिस से रागात्मक लगाव--उँह, सब बाते है, तथ्य कि सत्य यह कि फाफामऊ स्टेशन आ रहा है, आगे गगा है जिस का पाट इस धुँधली रोशनी मे मुकुर-सा चमकता होगा---गगा, प्रयाग की गगा

भुवन ने एक लम्बी साँस ली, फिर अपनी चढी हुई आस्तीने नीचे उतार ली---चाहे हल्की-सी ठड से बचने से लिए, चाहे कुहनी पर की छाप को छिपा या मिटा देने के लिए । खडे हो कर उसने एक अगडाई ली । इलाहाबाद वह नही ठहरेगा, वापस चला जायगा, छुट्टी के दो-चार दिन बाकी है तो क्या हुआ ।

या कि और कही हो आये---बनारस, सारनाथ---मथुरा-आगरा-दिल्ली, दिल्ली में कई मित्र है, गौरा के माता-पिता है, उस के प्रोफेसर भी आज-कल है---

नही, क्या होगा कही जा कर, इलाहाबाद से सीधे वापस, अपनी छोटी-सी जगह अच्छी है, कुछ पढना-लिखना होगा--

'अकेले है न, तभी लीक पकड कर चलते है ।'

गडगडाहट---यह गगा का पुल आ गया । दूर कही पर अभी दीखते होगे धुँधले-से भोर के दीप ?

एक दिगन्तस्पर्शी प्रवाह, उस मे छोटे-छोटे द्वीप---मानो तैरते दीप---और एक बडी, अधेरी, रवहीन तरग--नही, नही, नही !

चन्द्रमाधव

स्टेशन से चन्द्रमाधव की घर जाने की इच्छा नही हुई। हजरतगंज की सडक पर टहला जा सकता था, और रात के दस बजे यहाँ चहल-कदमी करते नजर आना बुरा नही है, उस से प्रतिष्ठा बढती ही है—पर अकेले टहलना चन्द्र की समझ मे कभी नही आया—कोई बात है भला! अकेले वे टहलते है जो किसी की ताक मे रहते है—बल्कि वे भी अकेले नही टहलते, जैसे कि जिन की ताक में वे डोलते है वे भी अकेली कम ही नजर आती है। अकेले टहलते है पागल—या कवि, जो असल मे पागल ही होते है पर रेस्पेक्टेबल होने के लिए जीनियस का ढोग रचते है। शब्दो पर अधिकार—रचना—हुँह, वह अधिकार तो पत्रकार का है, वही असल रचियता है, स्रष्टा है। कुछ बात ले कर बात बनाना भी कोई बात है भला? कला वह जो न-कुछ को ले कर खडा कर दे, सनसनी फैला दे, दगे-बलवे-इनकलाब करवा दे! कभी किसी कवि ने, कलाकार ने इनकलाब नही कराया, जर्नलिस्ट ही अपनी मुट्ठी मे इनकलाब लिये फिरता है। चन्द्र ने मन-ही-मन जरा सुर से कहा,'मैं मुट्ठी में इनकलाब लिये फिरता हूँ, आँखो-आँखो मे ख्वाब लिये फिरता हूँ'—और फिर अवज्ञा से अपने को ही मुँह बिचका दिया। फिर उसने सोचा, मै बराबर ही अपने को ही मुँह बिचकाता आता हूँ—दुनिया मेरे बनाये या चाहे ढग से नही चलती तो दुनिया मुझे मुँह बिचका कर चली जाती है, मै भला क्यो अपने को मुँह बिचकाता हूँ? उस ने जेब टटोला, हाँ सिगरेट थे अभी, एक सिगरेट सुलगा कर लम्बा कश खीचा, मुँह गोल कर धुएँ की पिचकारी छोडी—यह धुआँ अगर वैसा ही जमा-का-जमा तीर-सा जाता, हवा को छेद देता, तो उसे कुछ सन्तोष होता, पर वह बिखर गया, कमबख्त उड कर उसी की आँखो मे आ कर चुभने लगा। चन्द्र ने रिक्शा वाले से कहा, "सिनेमा ले चलो।"

"कौन से सिनेमा, हुजूर? मेफेयर?"

"हाँ।" चन्द्रमाधव बिना सोचे कह गया।

फिर सहसा उसे याद आया, मेफेयर मे तो वह आज ही मैटनी देख कर गया है, बोला, "नही, मेफेयर तो हम दिन मे गये थे। और कही ले चलो—"

रिक्शावाले ने कहा "एल्फिन्स्टन मे 'जवानी की रीत' लगा है—वहाँ जाइयेगा?"

"अच्छा वही चलो।"

रिक्शा वाला बढ चला। धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाता वह पैडल फेकता चला जा रहा था, उस की गति कुछ तेज हो गयी थी। चन्द्र ने सोचा, सिनेमा मै जा रहा हूँ, मस्त यह हो रहा है। इसी तरह लोग दूसरो के मजे मे मस्त दिन काटते चले जाते है—क्या जिन्दगी है! जैसे दूसरे के घर से सवेरे अस्त-व्यस्त निकली अलसाती सुन्दरी को देख कर

कोई खुश हो ले । उस का मुँह कडवा हो आया---हुँह, सीला हुआ सिगरेट है ! उसने सिगरेट निकाल कर फेंक दिया, एक ओर झुक कर जोर से थूका ।

पुराने जमाने मे प्रतिनिधियो की मारफत शादी हो जाती थी---वर जहाँ खुद नही जा सकता था प्रतिनिधि भेज देता था । क्या बेहूदगी है । प्रातिनिधिक शादी हो सकती है तो प्रातिनिधिक सुहाग-रात---! पर यहाँ भी तो राजा लोग अपनी रानियो को नियोग के लिए भेजा करते थे ऋषियो के पास–वह भी तो प्रातिनिधिक उसे असल में ऋषि होना चाहिए था–पुरानें जमाने का; पर कमबख्त नये जमाने का महन्त भी तो न हुआ–हो गया स्पेशल रेप्रेजेंटेटिव एक अखबार का ! जाट की घोडी के बछेरे की तरह 'माँगा था नीचे, दे दिया ऊपर ।' दुनिया मे इतना कुछ होता है, उसी के साथ कुछ नही होता ; वह केवल खबरें पाता और देता है, टिप्पणी करता है---टिप्पणी भी नही, दूसरो की टिप्पणियो का सग्रह करता है---

रिक्शा रुक गया । सामने एलिफन्स्टन की रंगीन बत्तियाँ थी, एक बडे भारी पोस्टर पर वही परिचित तिरछी खडी कोई 'लडकी', वही परिचित कन्धे पर से झाकता हुआ 'लडका'–पोस्टर मे नही आया, लेकिन दाहने को जरूर एक पेड की शाखा होगी, जिस पर बडा-सा मैग्नोलिया का फूल होगा शायद कागज का, या दो शाखो पर दो फूल भी हो सकते हैं और लडकी-लडके के तुक-ताल बँधे फ्लर्टेशन मे बीच-बीच मे दोनो पास-पास लाये जायँगे और फिर दूर हट जायेंगे, छुएँगे नही, क्योकि सेंसर के नियम मे चुम्बन अभारतीय है,चाहे मुँह से सटा और न्योतता मुँह पाँच मिनट तक स्क्रीन पर स्थिर खडा रहे, और चवन्नी वाले सिटकारियाँ मारते और फबतियाँ कसते रहे ।

चन्द्रमाधव ने जेब मे हाथ डाल कर पैसे निकालते हुए बडे रूखे स्वर मे रिक्शा वाले से कहा, "लो !"

उस की रुखाई से रिक्शा वाले ने समझा कि बाबू साहब थोडे पैसे दे रहे होंगे, पर हथेली पर एक-एक रुपये के दो नोट देख कर वह चौंक गया; फिर तत्परता से हाथ उठा कर बोला, "सलाम हुजूर !" उदारता के लिए धन्यवाद देने का और तरीका ही उसे नही आता था ।

पर चन्द्रमाधव मे उदारता नही थी । उसने जवाब मे गुर्रा कर कहा, "हूँ !" मानो कह रहा हो, 'जा साले, तू भी प्रातिनिधिक फ्लर्टेशन कर ले–और क्या तेरे भाग्य मे बदा है !'

* * *

फिर वह सिनेमा के पोर्च के अन्दर घुस गया ।

तथ्य और सत्य के बारे मे चन्द्रमाधव और भुवन की राय नही मिलती । कालेज ही से इस बात को ले कर उन में बहस होती आयी है । रागात्मक लगाव की बात तो दूर

रही—तथ्य ही लोगो के अलग-अलग होते है। इतिहास की घटनाओ से तो हमारा रागात्मक सम्बन्ध नही होता—फिर क्यो दो इतिहासकार दो इतिहास लिखते है? इस लिए कि दोनो भिन्न-भिन्न तथ्य चुनते हैं। रागात्मक लगाव वाली बात मान ले, तो जो सत्य हैं, वही झूठ है क्योंकि वह पूर्वग्रह-युक्त तथ्य है—और ऐतिसासिक तथ्यो पर पूर्वग्रह लादना ही सारे झूठ की जड है और ऐसे झूठे इतिहासो ने ही दुनिया मे फूट और लडाई के विप-बीज बोये है. . .

चन्द्रमाधव के जीवन के ही तथ्य ले ले। भुवन को यही दीखता है कि अच्छी तरह पास कर के वह विदेश चला गया था, विदेशो में बहुत घूमा है और सदा सनसनी की खोज मे—भुवन के मत से उस का सारा जीवन सनसनी की लम्बी खोज है, और वह यह भी जरूर सोचता होगा कि निरी सनसनी की खोज से व्यक्ति की सूक्ष्मतर सवेदनाएँ भोडी हो जाती है और वह सिवाय तीखी उत्तेजना के कुछ समझता ही नही, लिहाज़ा चन्द्रमाधव भी एक तरह का नशेबाज है और जीवन की महत्त्वपूर्ण चीजो को नही पहचान सकता। भुवन का दु ख-पूजा का एक सिद्धान्त है पीडा से दृष्टि मिलती है। इस लिए आत्मपीडन ही आत्म-दर्शन का माध्यम है? क्या दलील है!

भुवन अकेला है, घर-गिरस्ती की चिन्ताए उसने जानी नही, दु ख की दूर से रोमाटिक कल्पना की है, इसीलिए बातें बना सकता है। अगर सचमुच दु ख उस ने जाना होता—दु ख कैसे तोड कर, चूर-चूर कर के रख देता है, दृष्टि देना तो क्या, आँखो को अन्धा कर के, पपोटे निकाल कर उन मे कीचड भर देता है, यह देखा होता—तो उस की जबान ऐठ जाती

चन्द्रमाधव ने सनसनी खोजी है? असल मे उसने जीवन खोजा है, तीव्र वहता हुआ प्लवनकारी जीवन, और वह उसे मिला कहाँ है? मिली है ये छोटी-छोटी टुच्ची अनुभूतियाँ, चुटकियाँ और चिकोटियाँ—और उस के किस दोप के कारण? प्यार? नही, बीवी-वच्चे। स्वातन्त्र्य? नही, तनखाह। जीवनानन्द? नही, सहूलियत, घर, जेब-खर्च, सिनेमा, पान-सिगरेट, मित्रो की हिर्स . . .

कालेज छोडने के अगले वर्ष उस की शादी हो गयी थी। लडकी साधारण पढी थी मैट्रिक और भूषण पास; साधारण सुन्दरी थी—साफ रग, अच्छे नख-शिख, साधारण बुद्धिमती थी—घर सँभाल लेती थी, साथ घूम लेती थी, मित्रो-मेहमानो से निबाह लेती थी और पढे-लिखो की बातचीत मे आत्म-विश्वास नही खोती थी। पत्नी ने उससे कुछ अधिक माँगा नही था, साधारण गिरस्ती की जो माँगे होती है बस; कुछ अधिक दिया भी नही था, साधारण गिरस्ती जो देती है, बस। दो बच्चे, साफ-सुथरा घर, बिना झझट के खाना-सोना, छोटा-सा बैंक बैलेंस, दिल-बहलाव की साधारण सहूलियते।

मध्यवर्गीय मानदडो से उस के सब कुछ था—और कोई क्या चाह सकता है? पर दूसरे बच्चे के—पहली सन्तान लडकी थी, दूसरी लडका—बाद वह गिरस्ती से टूट

गया था। कोई झगडा हुआ हो, गिकायत हो, ऐसी बात नही थी; बस यों ही तबियत उचट गयी थी, और वह पत्नी और बच्चो को छोड आया था। खर्चा भेज देता था, कभी-कबाह चिट्‌ठी लिख देता था, बस इससे अधिक उलझन नही थी, न वह चाहता था। बच्चे बडे होगे तब पढाई-वढाई का प्रश्न उठेगा, अभी तो कोई चिन्ता नही, और पहले दो-चार बरस तो माँ ही देख-भाल लेगी---फिर बडी तो लडकी है, उसकी पढाई की कौन इतनी चिन्ता है, लडके की शुरू से फिक्र होती है....

अकेले रहना बुरा नही था। गिरस्ती का अनुभव हो जाने के बाद तो वह प्रीतिकर भी था---उस मे एक आजादी और आत्म-निर्भरता थी जिस का मूल्य शायद बिना गिरस्ती के अनुभव के समझा ही नही जा सकता था। और वह जो काफी हाउस का उस के जीवन मे एक स्थान बन गया है, यह भी एक चीज है। उसे समझने के लिए भी वैसा बैकग्राउड चाहिए। बिना भोगे कोई इस स्थिति को नही समझ सकता है।

बिना भोगे। लेकिन बिना क्या भोगे? क्या उसी ने कोई कष्ट भोगा है, दु ख जाना है? बराबर ही तो साधारण सहूलियत का जीवन उसने बिताया है---बडे पैमाने पर ऐश नही की तो दरिद्र हो कर टुकडो को भी तो नही तरसा---ऐसे मे दु ख भी अगर हो तो उसी स्केल पर तो होगा, साधारण छोटा दु ख! पर यही तो असल बात है---यह साधारणपन ही तो असली खा जाने वाला घुन है, यह तो सब से बडा, सब से चुभने वाला, अकिचनता की कसक से बराबर सालते रहने वाला दु ख है! 'तुम्हे साधारण से बडा दु ख नही होगा'--यही तो बडे आनन्द की, बडे सुख की, विराट् की अनुभूति की मौत का परवाना है।--'तुम्हे साधारण से बडा कुछ नही होगा!'

लेकिन--क्या वह द्राविड प्राणायाम से भुवन वाले नतीजे पर पहुँचा है? क्या वह भी बडे दु ख की पूजा कर रहा है? नही, दु ख अपने आप मे इष्ट है यह वह कहाँ मानता है? लेकिन बडा दु ख बडी सम्भावना का द्योतक तो है; सम्भावना हो, अनुभूति की सामर्थ्य हो, तभी तो बडी अनुभूति होगी. . .

पर क्या भुवन दु ख को इष्ट मानता है? क्या रेखा भी वैसा मानती है? विराट् अनुभूति के प्रति खुले रहने का ही क्या वे अनुमोदन नही करते---विराट् के प्रति समर्पित होने का?

रेखा। रेखा क्षण के प्रति समर्पित होने की ही बात करती है। क्षण को ही विराट् मानती है।

लेकिन क्या सचमुच मानती है? क्या जब भी क्षण के प्रति आत्म-समर्पण का अवसर आया है, उसने इनकार नही किया है? वह अपने को सँजो-सँजो कर रखती है, कोई असूर्यम्पश्या भी इस तरह बचा-बचा कर कदम न रखती होगी---और बात करती है क्षण के प्रति समर्पण की। जैसे भुवन अनुभूति से बचता है, और विराट् अनभूति के प्रति समर्पण की बात करता है। असल में सब सिद्धान्त क्षतिपूरक होते है· आप जो है, जैसे है,

उस से ठीक उल्टा सिद्धान्त गढ कर उस का प्रचार करते फिरते है। इस से एक तो आप अपने लिए एक सन्तुलन स्थापित कर लेते है, दूसरे औरो को गलत लीक पर डाल देते है ताकि आप को ठीक-ठीक कोई पकड न पा सके। रेखा ही कहती है कि मै कुछ नही हूं, जीवन के प्रवाह मे एक अणु हूँ—पर कितना अह है उस मे, कि

चन्द्रमाधव का रेखा से परिचय पुराना था। रेखा के पति को भी वह थोडा जानता था, विवाह के कुछ समय बाद ही दोनो से उस की पहले-पहल भेंट हुई थी। यद्यपि कोई घनिष्टता किसी से नही थी, तथापि तब से वह उन में रेखा के पति का ही परिचित गिना जाता था, और उन के विच्छेद के बाद जब वह रेखा से मिला, तब पहले रेखा ने उस से पति के मित्र के अनुकूल ही व्यवहार किया था—शिष्ट, विनीत पर बिल्कुल असम्पृक्त और दूर। उन के विच्छेद की बात सहसा नही फैली थी, क्योकि दोनो के दुराव को लोगो ने धीरे-धीरे ही जाना था : पति के मलय चले जाने के बाद भी लोग यही समझते रहे थे कि वह नौकरी के लिए ही गया है, और बहुधा रेखा से उस का हाल-चाल भी पूछ लेते थे। इतना ही अचम्भा उन्हें होता था कि वह पत्नी को साथ क्यो नही ले गया। पीछे जब रेखा ने अलग नौकरी कर ली, और यह भी खुल गया कि मलय में उस के पति के साथ कोई और स्त्री रहती है, तभी लोगो को उन के दुराव का पूरा पता लगा। और ऐसे में जैसा होता है, लोगो को पहले इसी बात का गुस्सा आया कि वे इतने दिनो तक भुलावे में ही क्यो रहे—या रखे गये। पति तो दूर चला गया था, रेखा पर यह गुस्सा भरपूर प्रकट हुआ। एक के बाद एक कई नौकरियाँ उसे छोडनी पडी, और उस के साथ-साथ यह भी बात बन चली कि वह कही टिकती नही, दो-चार महीने बाद काम छोड देती है, जिस से आगे नौकरी मिलने मे क्रमश कठिनाई बढती गयी।

इसी बीच चन्द्रमाधव फिर से मिला था। उस की स्थिति पर सहानुभति प्रकट कर के, कुछ शिकायत भी की थी कि रेखा ने उसे क्यो न याद किया, वह जरूर कुछ सहायता करता। रेखा ने सहज विस्मय से कुछ झिझकते हुए कहा था, "आप तो—उन के मित्र है, मै समझती थी कि आप जानते होगे—और आप से सहानुभूति की आशा भी कैसे कर सकती थी ?" चन्द्र इस बात से कट गया था, पर उसने प्रकट नही होने दिया था, और सहायता करने और काम दिलाने का वचन दिया था।

वह उसने किया भी था। कई जगह उसने बात की थी, फिर एक जगह नौकरी मिल भी गयी थी। चन्द्र बीच-बीच में आ कर उस से मिल भी जाता था।

लेकिन यह नौकरी भी और नौकरियो की तरह छूट गयी थी। बल्कि, रेखा चाहे न जानती हो, उस के छूट जाने मे चन्द्र का भी हाथ था। उस के बार-बार मिलने आने पर स्कूल की कमेटी के एक सदस्य ने उस से पूछा था तो उस ने कहा था कि रेखा के पति के मित्र के नाते वह अभिभावक है; पर रेखा, जिसे यो भी छिपाव पसन्द नही था और जो जानती थी कि छिपाना है भी व्यर्थ, लोग जान तो जावेंगे ही, कमेटी को पहले बता चुकी

थी कि पति से उस का वर्षों से कोई सम्बन्ध नही है। बात समिति तक गयी थी, और उन्होने रेखा को--यद्यपि बडे शिष्ट ढग से--नोटिस दे दिया था।

इस के बाद रियासत मे गवर्नेस का पद दिलाने मे भी चन्द्रमाधव ने सहायता की थी। पत्र-प्रतिनिधि के नाते रियासतो में उस की वाकफियत भी काफी थी, आतक भी कुछ था--राष्ट्रीय उत्तेजना के उस जमाने में रियासतो का पत्रकारो से डरना स्वाभाविक ही था।

यहाँ भी चन्द्र बराबर मिलने आता था। एक बार दो-एक दिन ठहर भी गया। दुबारा जब आ कर ठहरने की बात उस ने की तो रेखा के उत्तर से वह भाँप सका कि वह नही चाहती, और तडाक से पूछ बैठा, "रेखा देवी, अब मेरे आने पर आप को आपत्ति है ?"

रेखा ने धीरे-से कहा, "मै आप की बहुत कृतज्ञ हूँ, मिस्टर चन्द्रमाधव। आप जरूर आइयें---और अब की बार अपनी पत्नी को भी साथ लाइये---उन्हें क्यो नही लाते आप ?"

चद्रमाधव थोडी देर सन्न रह गया, मानो किसी ने उसे चपत मार दिया हो। फिर उसने कहा, "तो आप को मुझ पर विश्वास नही है---आप मुझ से डरती है।"

"विश्वास की बात नही है, मिस्टर चन्द्र। पर वह शोभन है। और मै उन से भेंट करना भी चाहती हूँ।"

चन्द्रमाधव उठ कर थोडी देर कमरे में टहलता रहा। टहलते-टहलते उसने एक बडा निश्चय किया। बोला, "रेखा जी, आप शायद मेरे बारे में बहुत कम जानती है। मै अपनी जीवन-कहानी आप को सुनाना चाहता हूँ। सुनेंगी ?"

रेखा ने झिझकते स्वर मे कहा, "आप सुनाना चाहते है, तो जरूर सुनूंगी। पर कहानी जितनी अपने-आप कही जाय, उतनी ही ठीक होती है। जो सुनायी जाती है, उस पर पीछे अनुताप भी हो सकता है और मै नही चाहती कि आप ऐसा कुछ करे जिस से पीछे अनुताप हो---मेरे कारण ऐसा करेगे तो मेरा बोझ---"

"नही, आप को सुनना होगा। क्योकि आपने अभी जो बात मुझे कही, वह दुबारा कहें, ऐसा मौका मैं नही आने देना चाहता।"

जितनी देर चन्द्रमाधव बोलता रहा, रेखा एक शब्द नही बोली। न उसने चन्द्र की ओर देखा ही। बल्कि जब कहते-कहते चन्द्र का स्वर कुछ भर्रा आया, तब उसने नीरव पैरो से उठ कर बडे टेबल लैम्प का प्रकाश मन्द कर दिया, और फिर अपनी जगह आ कर बैठ गयी। खिडकी के बाहर एक शेफाली का छोटा पेड था, उसकी ओर देखती रही।

चन्द्र चुप हो गया। रेखा तब भी नही बोली। देर तक दोनो चुप रहे। फिर चन्द्र ने धीरे से कहा, "रेखा जी।" उस का स्वर अभी आविष्ट था।

रेखा ने धीमे, किन्तु साफ और ठडे स्वर मे पूछा, "यह सब आप मुझे क्यो बताते है ?"

चन्द्र सहसा खडा हो गया। नये आवेश से बोला, "अब भी मुझ से यह पूछ सकती हो, रेखा ! रेखा !"

रेखा सहसा खडी हो गयी, यद्यपि अपने स्थान से हिली नही, न शेफाली की ओर से उसने मुँह फेरा। केवल उस का हाथ तनिक-सा मुड कर ऊँचा हो गया, उँगलियो में एक हल्का-सा निषेध या वर्जना का भाव आ गया।

चन्द्र ने फिर कहा, "तुम कैसे यह पूछ सकती हो, रेखा !" एक अधूरा कदम उस ने रेखा की ओर बढाया, पर ठिठक गया, रेखा की विमुख निष्कम्प देह-वल्ली को उसने एक बार सिर से पैर तक देखा, फिर उस के उस मुडे हुए हाथ को, फिर बोला, "रेखा ! रेखा देवी ! मुझे क्षमा कीजिए रेखा देवी--" और जल्दी से बाहर चला गया।

लौट कर उसने एक क्षमा-याचना का पत्र भी लिखा। दो-तीन दिन बाद ही रेखा का उत्तर आया, उस में सारी घटना का कोई उल्लेख ही नही था—यही लिखा था कि चन्द्र-माधव को बार-बार वहाँ आने मे कष्ट होता है, अब की बार वही मिलने आवेगी। उस के ठहरने के लिए चन्द्र को कष्ट नही करना होगा, रियासत वालो का एक गेस्ट हाउस लखनऊ में है और वही उसे ठहरने की अनुमति मिल गयी है। बच्चे रानी के साथ ननिहाल जा रहे है अत उसे कुछ दिन की छुट्टी है।

* * *

भुवन से जब रेखा की भेट हुई, उस से पहले भी एकाधिक बार रेखा लखनऊ आ कर रह गयी थी। अकसर वह रियासत के गेस्ट हाउस में ही रहती थी, एक-आध बार लड-कियो के कालेज के होस्टल मे भी किसी परिचिता के पास रह गयी थी। चन्द्रमाधव से वह बराबर मिलती, पर अपने ठिकाने पर उसे कभी नही ले गयी थी, चन्द्र पहुँचाने जाता तो फाटक पर ही उसे विदा कर के भीतर चली जाती। एक बार चन्द्र ने कहा भी था, "आप अपने पास किसी को आने नही देती, जैसे—"

रेखा ने तुरन्त हँस कर कहा था, "मेरे आसपास दुर्भाग्य का एक मडल जो रहता है, उस के भीतर किसी को नही आने देती कि छूत न लग जाय !"

पर अगर उसने यह कहा होता कि 'मेरे आसपास एक प्रभामडल है जो किसी के छूने से मैला हो जायगा', तो चन्द्र को लगता कि उसने अपने मन के अधिक निकट की बात कही है।

अपनी जीवन-कहानी कह देने के बाद से फिर कभी चन्द्र ने घनिष्टता की कोई चेष्टा नही की थी। रेखा ने भी कभी उस की याद नही दिलायी, उस के व्यवहार में कोई मैल या दुराव नही था न कोई अधिक समीपता ही थी, पर उस का स्वर पहले से कुछ अधिक

नरम रहता था और चन्द्र को कभी-कभी लगता था कि उस की आँखो मे एक करुणा भी है। कभी-कभी वह चन्द्र को 'तुम' भी कहने लगी थी; उसने भी सोचा था कि उसे 'तुम' कहे, पर उस दिन के अपने विस्फोट की बात याद कर के रह जाता था—रेखा ही जब उसे कहेगी तभी कहेगा अब ..

बडे दिनो की छुट्टियो में जब रेखा आयी, तब अपनी सरक्षित कुमारियो के साथ ही आयी थी—रानी भी आयी थी, और सब गेस्ट हाउस में ही ठहरे थे। आने के तीसरे दिन तक वह चन्द्रमाधव से मिलने नही गयी, जा ही नही सकी क्योकि रानी के अनुरोध से वच्चो को ले कर घुमाती रही। तीसरे दिन शाम के लगभग वह चन्द्रमाधव के घर गयी तो देखा, वह अगीठी मे आग जलाये उस के निकट झुका बैठा है, घुटनो पर कुहनियाँ, हथेलियो पर ठोडी टेके, निर्निमेष दृष्टि से आग को देख रहा है। उस की झुकी हुई पीठ, शिथिल पैर, माथे पर लटके हुए बाल, उदासी की उस मूर्ति को देख कर रेखा में सहसा करुणा उमड आयी, उसने द्वार से ही पुकारा, "चन्द्र—क्या बात है चन्द्र ?"

चन्द्र नही बोला।

रेखा ने फिर कहा, "अच्छे तो हो, चन्द्र ? बोलते क्यो नही ?"

चन्द्र फिर नही बोला। रेखा ने उस के कन्धे पर हल्का हाथ रख कर कहा, "अगर मै डिस्टर्ब कर रही हूँ तो चली जाऊँ ? सबेरे फिर आ जाऊँगी—"

चन्द्र ने बिना हिले कहा, "आप को मिल गयी .फ़ुरसत इधर आने की ? अभी शाम को आने की क्या जल्दी थी—कल ही आ सकती थी—

रेखा को धक्का लगा। पर साथ ही तसल्ली भी हुई, क्योकि बात उस की समझ मे आ गयी।

"चन्द्र, मै रानी साहिबा और बच्चो के साथ आयी हूँ, उन्होने छोडा नही। अभी थोडी फ़ुरसत मिली है—वे सब किसी पार्टी मे गये है—"

"आप को नही ले गये ? आप भी जाती—"

"चन्द्र, मै सचमुच पहले आ सकती तो आती—परसो से आयी हुई हूँ—"

"परसो से ? मैने तो कल—नही, मै कौन होता हूँ, मेरी ओर से तो आप अभी आयी है—"

रेखा ने मुस्कराहट दबा कर पूछा, "तुमने कब जाना—देखा था ?"

"और नही तो। वच्चो को लिये वनारसीबाग के फाटक पर मूँगफली खरीद रही थी—वहाँ से यह स्थान कुछ भी दूर नही है—"

"अच्छा, आज सुबह ! तुम ने देखा था तो तुम्ही आ जाते—"

चन्द्र ने फिर तुनुक कर कहा, "जहाँ ज़रूरत न हो, वहाँ जा घुसने की आदत मेरी नहीं है।"

रेखा ने कहा, "वहुत अच्छी आदत है तुम्हारी। अच्छा उठो, घूमने चलना है, फिर

काफी पियेंगे। फिर मुझे ठिकाने तक छोड आना। और सर्दी है, कोट पहन लो।"

चन्द्र अनमना उठ खडा हुआ।

बाहर घूमते हुए उसे लगा, रेखा ने न केवल उसे क्षमा कर दिया है वल्कि उस के निकट भी आ गयी है। उसे अचम्भा भी नही हुआ, क्योकि स्त्रियो में यह होता ही है, जब बहुत अधिक दुत्कार देती है तब भीतर द्रवित भी हो जाती है। रेखा लाख असाधारण हो, पर स्त्री तो है! उस का बुझा हुआ मन धीरे-धीरे खिलने लगा। उसने कहा, "रेखा जी, मेरे इन मूड्स का बुरा तो नहीं मानती ?"

रेखा ने मानो किसी दूसरी विचार-तरग मे उत्तर दिया—बल्कि प्रश्न पूछा, "चन्द्र, तुम्हे अपना बचपन याद है ?"

"हाँ तो, क्यो ?"

"यो ही। अच्छे दिन होते है वचपन के।"

चन्द्र उसकी बात ठीक-ठीक नही समझा। "मै तो कभी-कभी सोचता हूँ, फिर आ सकते तो—आप को कभी लगता है कि फिर आ सकते तो कितना अच्छा होता ?"

"स्त्रियाँ वडी व्यावहारिक होती हैं—यह किसी तरह नही भूल सकती कि बीते दिन फिर नही आते और असम्भव कभी माँगती नही। यो भी—मुझे निरन्तर बडे होते चलना अच्छा लगता है—"

"बडे होना—यानी बूढे होना, आप ऐसी बातें कैसे कह सकती है ?"

"जो क्षण मे जीता है, क्षण को स्वीकार कर लेता है, वह बूढा होता ही नही। यों अगर मै कहूँ कि पुरुष की तुलना मे स्त्री हमेशा बूढी होती है तो आप समझ लेंगे मेरी बात ?"

चन्द्र ने प्रतिवाद करते हुए कहा, "रेखा जी, आप पर यह बात बिल्कुल लागू नही होती। आप—" पर फिर झिझक कर रुक गया—मुँह से कुछ ऐसी-वैसी बात निकल गयी तो फिर नाराज हो जायगी . सँभल कर बोला, "आप की बात ठीक है, क्षण को मान लेने वाला कभी बूढा नही होता, आप इस की ज्वलन्त प्रमाण है।" इस ढग से कह देने में तो कोई आपत्ति हो नही सकती .

रेखा ने कहा, "उस का मैं प्रमाण हूँ या नही, नही जानती, पर इस का आप जरूर है कि पुरुष की तुलना मे स्त्री हमेशा बूढी होती है—" फिर सहसा विषय बदल कर बोली, "आप शामें कैसे बिताते है ?"

चन्द्र ने कहा, "मै कहाँ बिताता हूँ। अपने-आप न जाने कैसे बीतती हैं। पहले काफी हाउस जाता था, पर अब—अब आप के साथ जाने की आदत पड गयी है और अच्छा नही लगता। रेखा जी, आप—यू आर वेरी गुड कम्पनी—"

रेखा ने भी अंग्रेजी में, पर हलके स्वर में कहा, "एंड दैट्स ए वेरी नाइस काम्प्लि-मेंट !" फिर कुछ गम्भीर होकर, "मगर चन्द्र, तुम कभी अपने बारें में नही सोचते—

कभी खूब गम्भीर हो कर नही सोचते कि जीवन--जीवन नही, तुम्हारा जीवन, एक, विशेष और अद्वितीय--क्या है, क्यो है, कहाँ जा रहा है ? कि उसका क्या बनाना चाहिए, वह कहाँ जा रहा है या जा सकता है ? मै तो कभी तुम्हारी बात सोचती हूँ तो अचम्भे मे रह जाती हूँ।"

"आप मेरी बात सोचती है ?" चन्द्र को परितोष हुआ। "मै तो समझता था कोई नही सोचता, इसीलिए मै भी नही सोचता था। और सोचने को है भी क्या ? पीछे देखता हूँ तो--लेकिन वह तो मै आप को बता चुका हूँ। कभी सोचता हूँ कि अतीत के प्रति कोई बहुत बडी ग्रीवेस होती तो वह भी कुछ बात होती--उसी की कड़ुवाहट एक सहारा हो जाती, एक उत्पीड़ित मसीहा की तरह मैं चल निकलता। बहुत से लोग इस उत्पीडन के आक्रोश के सहारे ही जीते है--उस मे से बड़े-बड़े जीवन-सिद्धात भी निकालते है और दूसरो का उत्पीडन करने का जस्टिफ़िकेशन भी। पर ग्रीवेस मुझे क्या है--यही तो कि ग्रीवेस के लायक भी कुछ नही मिला। वर्त्तमान जो है सो आप देख रही है--उसमे आप ही एक रोशनी है नही तो . . ..और फिर भविष्य की बात मै क्या सोचूँ ? मै तो ऐसा फेटलिस्ट हो गया हूँ कि सोचता हूँ, मेरा भविष्य और कोई बना दे तो बना दे--मेरे बस का नही।"

रेखा ने कहा, "मेरा वश होता, और भविष्य बने-बनाये मिलते, तो मै आप को एक ऐसा सुन्दर भविष्य ला देती कि बस। उसके चार पाये चार इन्द्रधनुष होते, और फूलो पर पडी हुई चाँदनी का उस का ऊपर होता, तितलियो के पंखो से रग ले कर उसे रगा जाता और--"

चन्द्र ने कुछ हँस कर कहा, "और उस चाँदनी की कुरसी पर जब मै बैठता तो चारो इन्द्रधनुषो के बीच मे चित हो जाता--क्योकि चाँदनी किस का बोझ सहार सकती है ? पर, जोकिग एपार्ट, रेखा जी, आप सचमुच मेरा भविष्य बना सकती है--"

"मै ?" रेखा ने अतिरिक्त सन्देह से कहा . उसने अनुभव किया कि बातचीत फिर एक कँटीले स्तर पर चल रही है। "अन्धे क्या रास्ता दिखायेगे ? मैंने भविष्य मानना ही छोड़ दिया है। भविप्य हई नही, एक निरन्तर विकासमान वर्त्तमान ही सब कुछ है। आपने कभी पानी के फव्वारे पर टिकी हुई गेंद देखी है ? बस जीवन वैसा ही है, क्षणो की धारा पर उछलता हुआ--जब तक धारा है तब तक बिल्कुल सुरक्षित, सुस्थापित, नही तो पानी पर टिके होने से अधिक बेपाया क्या चीज होगी !"

"रेखा जी, आपकी कल्पना बडी सुन्दर है। लेकिन आप उस जीवन को अरक्षित समझें, है असल में वह एक्स्टेसी का जीवन, और एक्स्टेसी क्षणिक भी हो तो ग्राह्य--उस पर सौ सेक्योर जीवन निछावर है।"

रेखा चुप रही। वह बात का रुख बिलकुल बदल देना चाहती थी, पर चन्द्र को क्लेश

भी नही पहुँचाना चाहती थी । चन्द्र ने ही फिर कहा, "रेखा जी, आप को कभी छुट्टियाँ नही होती ?"

"क्यो ?"

"अब की हो तो चलिए न, कही पहाड चला जाय ? आप भी तो बहुत दिन से न गयी होगी ?"

"गयी तो नही । पर अब की बार शायद नौकरी पर ही जाना पडेगा—"

"कहाँ ?"

"शायद मसूरी—"

"अरे नही । वह भी कोई जगह है, इतना भीड-भडक्का ! यो तो ख़ैर अच्छी भी है, रौनक रहती है, ऐसा भी क्या पहाड कि बिलकुल मनहूसियत छायी रहे—पर नही ,दूर किसी पहाड पर चलिए—हिमालय की भीतरी किसी शृखला मे—कुलू चलिए या कालिम्पोग या ऐसी किसी जगह—"

"मेरा जाना तो पराधीन है—"

"छुट्टी ले लीजिए न ? नही तो फिर जाना ही क्या हुआ अगर अर्दली मे ही रहना पडे तो—"

रेखा हँस दी, मानो टाल रही हो कि अभी तो जाने का कोई प्रश्न नही, जब सम्भावना होगी तो देखा जायगा ।

चन्द्र ने आग्रह किया । "चलिए न। अच्छा, यही रहे कि अगर आप को छुट्टी हो तो चलेगी ।" फिर कुछ रुक कर, "चाहे और किसी को, जिसे आप चाहे ले चलिए—हाँ मेरा एक मित्र है, कालेज मे पढाता है, उसे मै निमन्त्रित कर सकता हूँ—यो आपका टाइप तो नही है, किताबी जीव है, पर कम-से-कम न्यूसेंस नही होगा, और बात-चीत मे कभी जोश मे आ जाय तो दिलचस्प भी हो सकता है ।"

रेखा ने कहा, "मै भविष्य ही नही मानती, और आप भविष्य बाँधना चाहते है। देखा जायगा—"

"तब तो आप के लिए वायदा कर देना और भी आसान होना चाहिए । न होगा तो न जाइयेगा—पर जाने की बात रहे इसमे आपको क्या एतराज है ? मै सोच-सोच कर ही खुश हो लूंगा—"

रेखा ने कहना चाहा, "यही तो खतरा है," पर सहसा कह नही सकी । बोली, "अच्छा, रहा ।"

चन्द्र ने कहा, "मै भुवन को निमन्त्रित भी कर देता हूँ—अबकी छुट्टी मे आ जाय । होली-ईस्टर जो हो । आप भी आवेगी न ?"

"देखो—शायद—होली मे छुट्टी तो होगी पर होली मे कोई लखनऊ क्या आयेगा ।"

चन्द्र ने उत्साह से अग्रेजी मे कहा, "इट्स ए डेट ।"

लेकिन चन्द्रमाधव ने भुवन को पत्र लिखने मे लगभग एक महीने की देर कर दी थी। और जब लिखा था, तब रेखा का कोई उल्लेख नही किया था। वह जानता था कि किसी स्त्री से भेट कराने की बात से ही भुवन बिदक जायगा, फिर वह परिचय कराना ठीक चाहता ही था यह कहना भी कठिन है। भुवन से उसकी पुरानी मैत्री थी, ठीक है, पर मैत्री-मैत्री मे भी फर्क होता है, और रेखा के साथ भुवन की बात वह कभी सोच ही न सकता अगर उसे यह ध्यान न आता कि वैसे शान्त-गम्भीर 'सूफियाना' तबीयत के आदमी की उपस्थिति शायद रेखा की दृष्टि से उपयोगी हो, नही तो अकेले चन्द्र के साथ तो वह पहाड कभी नही जा सकती दोनो का परिचय वह उतना ही चाहता था जिससे रेखा की तसल्ली हो जाय, पर भुवन की मनहूसियत उस पर हावी न हो जाय!

लेकिन ईस्टर की छुट्टियो मे भुवन के लखनऊ मे बिताये हुए एक सप्ताह का ठीक वही असर हुआ, यह उसे नही लगा। बल्कि उसे अचम्भा, निराशा—और कुछ खीझ भी हुई, कि न तो भुवन उतना गब्बू ही साबित हुआ जितना वह जानता (और चाहता) था, और न उस की उपस्थिति से चन्द्र की ब्रिलियेंस का वह प्रभाव ही रेखा पर पडा जिस की उसने आशा की थी। जिस मुहावरे मे सोचने का वह आदी था उस मे भुवन उस से 'बाज़ी ले गया' था, स्पष्ट ही रेखा उस की बातो से प्रभावित हुई थी, और उस की अप्रगलभ गहराई के प्रति एक सम्मान का भाव उस में आ गया था—मानो अप्रगलभता ही गहराई हो। 'तावदेव शोभते—', पर भुवन बोला तो काफी था, प्रभाव उस की चुप्पी का नही था. .. भुवन पढता-बढता रहता है, कोटेशन भी उसे बहुत याद है; और यह जो बारीक-बारीक भेद करने की बात है, इस का प्रभाव भी शायद स्त्रियो पर बहुत पडता है—वे खुद जो मोटी-मोटी व्यावहारिक बाते सोचती है। यो रेखा भी सोचने वाली है, पर एक बात यह भी है कि पुरुष की उदासीनता का अपना एक आकर्षण होता है—खास कर उस स्त्री के लिए, जो बराबर पुरुषो का अटेंशन पाती रही हो . . .रेखा सुन्दर है—अपने यू०पी०-पजाब के स्टैंडर्ड-से चाहे न हो, जहाँ गोरा-चिट्टा होना ही रूप है, यो चाहे चीनी का खिलौना हो, या कि रगीन रोएँदार इल्ली जैसी तितली निकलने से पहले होती है—पर वैसे अत्यन्त रूपवती है, और उस का रूप एक सप्राण, तेजोमय पर्सनेलिटी के प्रकाश से भीतर से दीप्त है, भले ही एक कडा रिज़र्व उस प्रकाश को भी घेरे है—चन्द्र को एक बड़ी सी चन्द्रकान्त मणि का ध्यान आता, जो बाहर चिकनी सफेद होती है, अन्दर बिखरे से इन्द्र-धनु के रंग लिये, पर एकदम भीतर कही एक सुलगती आग का लाल आलोक—और पत्थरो का 'पानी' देखा जाता है, पर चन्द्रकान्त मे 'आग' से ही उस का मोल आँका जाता है और ऐसी मणि आज कई बरस से पारखी की खोज में भटकती फिर रही है!—तो क्या निरन्तर ही एडमायरर उसे न घेरे रहते होगे? यही वह देखता है, उसी के यहाँ रेखा को जिसने आते-जाते देखा है, उस के बारे मे पूछे बिना नही रह सका है, और जिसने पूछा है, उस की मानो दीठ से ही टपकती लार का लिसलिसापन वह अनुभव कर सका है जब से रेखा उस के यहाँ

आती-जाती है, तब से उसके मित्र भी मानो बढ गये हैं। और काफी हाउस मे भी लोग 'हेलो' करने आ जाते हैं, और काफी पिलाने का आग्रह करते हैं . और ऐसे मे एक आदमी आये जिसके लिए स्त्री और एक रासायनिक फार्मूला एक बराबर है कि देखा और हल कर के एक तरफ रख दिया—

पर भुवन के आकर्षण का अपने लिए सन्तोपजनक कारण पा लेना तो काफी नही था; वह तो मानव-सम्बन्धो का अध्ययन करने नही बैठा है, वह जिन्दगी का तमाशाई नही है, वह खिलाडी है, नायक है, वह जिन्दगी को अगूर के गुच्छे की तरह तोड कर उस का रस निचोड लेगा, लता को झझोड डालेगा, कुज मे आग लगा देगा, वह आराम से नही वैठेगा! एक पैनी ईर्ष्या की नोक उसे सालने लगी भुवन को रेखा ने देख लिया है, भुवन जायगा तो वह पहाड चलने को राजी हो जायगी, पर चन्द्र को भुवन और रेखा के साथ नही जाना है, भुवन को चन्द्र और रेखा के साथ जाना है, क्योकि एक ओट के रूप में उस की उपयोगिता है। भुवन को बुलाया तो जायगा, पर उसे ठीक जगह रखने की भी व्यवस्था करनी होगी। और जल्दी ही कुछ करना होगा——रेखा को छुट्टी की अडचन अब न हो, यह तो पक्का हुआ, पर और भी कई 'कुछ' अभी बाकी हैं

छुट्टी की अडचन न हो, इस की व्यवस्था से वह अपने पर खुश था। रेखा के जाने के कुछ समय बाद लखनऊ मे रियासती प्रतिनिधियो की एक बैठक हुई थी, बात-चीत के सिलसिले मे चन्द्र ने एक उच्च अधिकारी से अमुक रियासत की राजकुमारियो की गवर्नेस की कुछ चर्चा कर दी थी। फिर पूछे जाने पर उस की नेकी, सच्चरित्रता और लगन की बडी प्रशसा की थी। 'क्या वह उसे काफी देर से जानता है?' 'हाँ, उसे ही नही, उस के पति को भी जानता है, उस के दो-एक प्रेमिको को भी——रेखा देवी बडी समझदार और सावधान स्त्री है, कभी अपने पर आँच नही आने देती, न कभी किसी को सकट मे डालती है, उस से कभी किसी की बुराई नही सुनी गयी।' .यो आजकल ऋषि-मुनियो का जमाना थोडे ही है, अच्छा वह जिसके नाम पर कोई धव्वा न हो, इस से आगे किसी के निजी जीवन को कुरेदना भी नही चाहिए। 'मै रेखा देवी को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ——जी हाँ, इतना कि मै चाहूँ तो अपनी बात कहनी नही चाहिए, पर वहाँ उन्हे नौकरी भी मैंने ही दिलायी थी——' और चन्द्र कुछ ऐसे ढग से मुस्कराया था, कि रेखा को जानने मे, और उसे नौकरी दिलाने की लाचारी मे, कोई सम्बन्ध हो——और चन्द्रमाधव जैसा उत्तरदायी आदमी जिसे अपने निकट लेता है, उस का ध्यान रखता है——उस की उचित व्यवस्था करता है

चन्द्र के सामने कोई स्पष्ट योजना रही हो, ऐसा नही था, कुछ तो शेखी मे वह बात करता था, कुछ इस प्रकार रेखा को अहसान से बाँधने की नीयत से, और कुछ शायद यह भी था कि रेखा की चर्चा से रियासत में लोगो की आँखे उसकी ओर जायेगी, कुछ तनाव पैदा होगा और रेखा फिर उस से साहाय्य चाहेगी. यही हुआ भी, क्योकि ये अफसर लौट

कर रेखा से मिले, रेखा को पार्टी पर निमन्त्रित किया, रेखा नही गयी, पर उनके निमन्त्रण के बाद और भी निमन्त्रण उसे मिले, लोग उसके घर पर मिलने भी आये। वह जो सदा किसी की आँखो के आगे होने से बचती थी, सहसा अपने को इस हलचल का केन्द्र पा कर समझ न सकी कि मामला क्या है। रानी ने भी दो-एक बार हल्की-सी चुटकी ली, यद्यपि उस में नापसन्दी या आलोचना की भावना बिल्कुल न थी। तब एक दिन सहसा रेखा ने इस्तीफा दे दिया—कारण उसने यही बताया कि उस का स्वास्थ्य कुछ ठीक नही है और वह विश्राम चाहती है। रानी ने वास्तविक अनिच्छा से उसे छोड दिया, यह भी कहा कि वह चाहे तो लम्बी छुट्टी ले ले और फिर लौट आये, और जब रेखा ने नही माना तो यह भी कहा कि भविष्य मे जब भी वह पुन. आना चाहे आ सकती है, उन्हे हर्ष ही होगा। कभी उनकी सहायता की जरूरत हो तो वह निस्सकोच उन्हे लिखे।

इस प्रकार, सर्वथा सद्भाव के साथ, रेखा नौकरी छोड आयी। स्थिति-परिवर्तन का कारण उसे ज्ञात न था। चन्द्र को उसने पत्र लिख कर सूचना दे दी, कारण ठीक-ठीक लिख दिया कि रियासत के कर्मचारियो की उस मे आवश्यकता से अधिक दिलचस्पी है। चन्द्र मन-ही-मन मुस्कराया, फिर उसने लिखा कि रेखा लखनऊ आ जाय, दो-एक और नौकरियाँ उस की निगाह मे है पर रेखा के आने से उस की सलाह से प्रबन्ध करेगा।

रेखा तत्काल नही आयी थी, आते-आते ईस्टर निकट आ गया था और लखनऊ से वह एक परिचित परिवार के यहाँ कुछ दिन बिताने प्रतापगढ जाने को वचनबद्ध हो आयी थी।

चन्द्र ने सवेदना बता कर यह भी प्रस्ताव किया था कि अब गर्मी के बाद ही रेखा नया काम करे—कुछ घूम-घाम ले और पहाड भी हो आये। और इस सिलसिले मे जाडो की बात की याद भी दिला दी थी, पर आग्रह नही किया था। ईस्टर मे भुवन आयेगा, यह भी बता दिया था।

* * *

भीड के साथ सिनेमाघर से बाहर निकला, तब चन्द्रमाधव की मानसिक स्थिति में विशेष परिवर्तन नही हुआ था। एक खीझ अब भी उस के मन मे भरी थी, पर खीझ जैसे केवल विमुख करती है, वैसा भाव उस मे नही था। खीझ मे एक अन्तर्धारा किसी गोपन आशका की थी, मानो एक चिन्ता उसे खा रही हो कि कुछ जल्दी करना है नही तो न जाने क्या एक शोचनीय बात हो जायगी। न उस शकनीय बात को, न उस काम को जो करना होगा, वह कोई नाम दे सकता था, या देना चाहता था, पर खीझ के भीतर से जैसे इस चाबुक की प्रेरणा उसे हाँक रही थी। उसने रिक्शा नही लिया, पैदल ही तेज चाल से घर की ओर चल पडा। सिनेमा से छूटी हुई भीड क्रमश: फैलती और छटती गयी। मरही वाले मोड पर बचे-खुचे लोग भी मुड़ गये और वह रास्ते पर अकेला रह गया। हवा

बहुत तेज चल रही थी, धूल उस इलाके मे अधिक नही फिर भी कभी-कभी कोई नुकीला कण आ कर उसके गाल पर चिनगी-सा चुभ जाता—हवा इतनी तेज न होती तो शायद इस रास्ते पर नीबू के फूलो का सौरभ पाया जा सकता, पर अब तो कोई गन्ध नही है, उसी के कपडो मे से सिगरेट के सीले हुए धुँए की महक आ रही है जो सिनेमाघरो की विशेष देन है—दूसरो की धूमिल साँसो की गन्ध बहुत से लोग इसी से तग आ कर सिगरेट पीना शुरू कर देते होगे—दूसरो की गन्ध से हरदम दम घुटता रहे, इससे अच्छा है कि स्वय अपना दम घोट लो—अपने जहर से साँप नही मरता ? चन्द्र और भी तेज चलने लगा। अपना जहर .नही, वह भुवन को निमन्त्रित करेगा ही, और इतना ही नही, रेखा को लिखेगा कि वह भी भुवन को निमन्त्रित करे, दोनो के निमन्त्रण से भुवन अवश्य आ जायगा, और फिर रेखा को आना ही होगा—उसी के निमन्त्रण पर भुवन आवे और फिर वह रह जाय यह कैसे हो सकता है? भीतर से रेखा इन औपचारिक बातो को जितना ही नगण्य मानती है, बाहर से उनके निर्वाह मे उतनी ही सतर्क रहती है. .

घर पहुच कर उसने सब खिडकियाँ बन्द की, सहसा स्तब्ध हो गये वातावरण मे उसने कपडे बदले, बालो को उँगलियो से थोडा मसल कर, हाथो मे थोडा कोलोन-जल डाल कर माथे पर और कनपटी पर मल लिया, फिर कघी से बाल सँवारे और टेबल लैम्प जला कर पत्र लिखने बैठ गया।

भुवन को जो पत्र लिखा गया वह छोटा ही था। भुवन के जाने के तत्काल बाद क्यो पत्र लिखा जा रहा है, इसकी सफाई देते हुए उसने लिखा कि 'यह बात वह बहुत दिनो से कहना चाह रहा था पर कुछ झिझक ही रही क्योकि भुवन एक तो अपने वैज्ञानिक कार्यों और पढाई मे व्यस्त रहता है, दूसरे चन्द्र को यह भी डर रहता है कि वह कही खाहमखाह भुवन के स्वायत्त, स्वत सम्पूर्ण जीवन मे टाँग न अडा रहा हो। उसकी बहुत दिनो से इच्छा है कि भुवन के साथ कही पहाड की यात्रा करे, पर कभी मौका नही बना है, क्या अब की छुट्टियो मे वह सम्भव हो सकेगा? यदि भुवन चलने को राजी हो तो वह भी एक महीने की छुट्टी ले रखेगा—उसके काम मे तो पहले से छुट्टी का प्रबन्ध कर रखना नितान्त आवश्यक है, इसी लिए वह इतना पहले पूछ रहा है। और जाने के लिए वह तो कुलू की बात सोच रहा है, पर भुवन की जहाँ इच्छा हो वही जाया जा सकता है, उसे भरोसा है कि भुवन अच्छी ही जगह चुनेगा क्योकि वह तो और भी अधिक शान्त-एकान्त जगह चाहता है।'

फिर 'पुनश्च' कर के उसने जोड दिया था 'रेखा देवी ने भी पहाड़ जाने की इच्छा प्रकट की थी, और कुलू या वैसे ही किसी एकान्त स्थल की। पर तुम जानते हो, उस के साथ अकेले मेरा जाना कैसा लगेगा, वह तो सर्वथा मुक्त विहगम है, पर मेरी तुम समझ सकते हो कि कैसी स्थिति होगी—मेरे काम में एक विशेष प्रकार की प्रतिष्ठा की बडी आवश्यकता है, क्यो कि जर्नलिस्ट को यो ही लफंगा समझ लिया जाता है और इस लिए

उस के लिए दामन बचा कर चलने की विशेष आवश्यकता है। अगर तुम भी साथ चलो, तो आपत्ति की कोई बात न होगी; तुम्हारा उत्तर आने पर मैं रेखा देवी को सूचना दे दूँगा। आशा है कि तुम्हे उसके साथ पर आपत्ति न होगी।'

रेखा को उसने लिखा . 'आप को यह बताने को भूल गया कि इस बार भुवन ने स्वय कही पहाड चलने की बात की थी। मेरा विचार है कि अब गर्मियो मे चलने का प्रोग्राम बनाया जाय तो वह सहर्ष चलेगा। यह नही कह सकता कि उसका साथ आप को कैसा लगेगा। है तो वह बिलकुल किताबी दुनिया का जीव, पर यो दिल का भला है, सामाजिक पालिश उस मे नही है पर पहाड-जगल मे उस के अनगढपन को कौन देखेगा, उस का सामीप्य कोई कठिनाई नही पैदा कर सकता। आप का विचार हो, तो हो न हो आप भी उसे एक पत्र लिख दीजिए--मैंने अभी तक तो नही कहा कि आप भी चलेगी पर आप स्वय लिखे तो बहुत अच्छा होगा। आप काम के विषय में चिन्तित होंगी, मैं उस के लिए दत्तचित्त हूँ। और शीघ्र ही कुछ कर सकने की आशा करता हूँ। पर मेरी राय यही है कि आप गर्मियो के बाद कार्यारम्भ करे; वही ठीक सीजन है और उस समय अच्छा काम मिलने की सम्भावना होती है, गर्मियो मे तो ऐसे लोग काम देते है जो वेतन दे कर खरीदने और खून चूसने के आदी होते है '

फिर नये पैरा मे उस ने उसी रात देखे हुए फिल्म का वर्णन किया था। रेखा के चले जाने के बाद उस का जी नही लगा, मन बहलाने वह सिनेमा चला गया था। 'रेखा नही जानती है, पर उस के लखनऊ में बिताये हुए दिन चन्द्रमाधव के लिए एक सुनहली धूप के दिन होते है: उनकी मधुर गरमाई उसे देर तक अभिभूत किये रहती है पर साथ ही एक कसक भी छोड जाती है क्योकि तुलना मे और दिन फीके और एक अजीब कुहासे से निरालोक-से जान पडते है।'

यहाँ पर पृष्ठ समाप्त कर के चन्द्र कुछ देर रुक गया था। इतना भी उसने अटक-अटक कर लिखा था इस के बाद उस ने अपने सामने एक नया पन्ना रखा और थोडी देर लैम्प के छादन की ओर सूनी दृष्टि से ताकता हुआ बैठा रहा। आँत के बने हुए उस छादन पर एक काली छायाकृति अँकी हुई थी--दोनो हाथ ऊँचे उठाये एक नगी स्त्री-आकृति, हाथो मे कमल के आकार के फूल. .अनमने से भाव से उस ने लैम्प को घुमा दिया, दूसरी ओर वैसी ही एक आकृति घुटने टेके आगे को झुकी हुई थी। आगे बढे हुये हाथो मे फूल थे, कुहनी और घुटनो के बीच मे कुचो को कुछ अतिरिक्त प्रशस्तता मिल जाती थी--उन का नुकीलापन बाकी आकार की प्रवहमान गोलाई को एक नया लचकीलापन दे देता था। सहसा आगे झुक कर चन्द्रमाधव ने जल्दी-जल्दी लिखना शुरू किया। बडे डाकघर के घडियाल ने दो खडकाये तब वह अभी लिख रहा था, कई पन्ने रँग कर उस ने एक ओर को गिरा दिये थे। रुक कर उस ने उन्हें सँवारा और अनुक्रम से रखा, फिर सख्या दी--३, ४, ५, ६ ..१३, १४, १५। फिर पन्ना उलट कर उस ने १६ लिखने को हाथ बढाया और

खीच लिया, सारे कागज़ एक साथ उठाये और दो-एक बार उलटे-पलटे, फिर सब फाड कर छोटी-छोटी चिन्दियाँ बना कर रद्दी की टोकरी मे डाल दी और उठ कर टहलने लगा। थोडी देर वाद आ कर उसने पहले के दो पन्ने उठाये और उन्हें शुरू से अन्त तक पढ डाला, बैठ कर फिर नया पन्ना लिया और दो-तीन पक्तियाँ जोड कर पत्र समाप्त कर दिया। दोनो पत्र लिफाफो मे डाल कर बन्द किये, पते लिख कर मेज के एक कोने मे रख दिये, ऊपर दाव के लिए आलपीनदान रख दिया। फिर वह टहलने लगा।

अनन्तर रात मे उसने फिर पैड सामने खीच कर कलम हाथ मे साधा, थोडी देर कागज़ को देखते रह कर वह उठा, मेज़ पर जितने कागज़, किताबे, पुराने पत्र, कलम-दान, फूलदान, अखबार के कटिंग वगैरह थे, सब समेट कर उठाये और ले जा कर मैंटल पर रख दिये, दुबारा आ कर ताज़े लिखे हुएं दोनो पत्र भी उठाये और अन्य सब चीजो के ऊपर उसी प्रकार दाब दे कर रख दिये। सूनी मेज़ पर रह गया केवल पैड, कलम, और टेवल लैम्प। उसे भी चन्द्र ने घुमा कर ऐसे रखा कि दोनो ओर की कोई आकृति उसे न दीखे, केवल वीच का अन्तराल, आँत के मैले पीले रग मे से पार का आलोक मंद्धिम हो कर आता था और उस से छादन मे जहाँ आँत का जोड था वहाँ एक धुँधली-सी, कही आलोकित और कही घनी टेढी-तिरछी लकीर झलक उठी थी, जैसे पहाडी प्रदेश के नकशो मे कोई नाला आँका गया हो। एक सन्तुष्ट दृष्टि पूरे पैड पर डाल कर उसने फिर लिखा 'प्रिय गौरा'।

यह पत्र समाप्त कर के वह जब उठा, तब भोर का आकारहीन फीकापन क्षितिज पर छा गया था। डाकघर का गजर खडकता रहा कि नही, चन्द्रमाधव ने नही सुना।

मेंटल पर रखे हुए पत्रो में से भुवन वाला पत्र उसने फिर उठाया, और सावधानी से खोल लिया। 'पुनश्च' के नीचे लिखा 'दूसरी बार पुनश्च गौरा आजकल कहाँ है? उस से तुम्हारा पत्र-व्यवहार होता है? उसे पत्र लिखो, तो मेरा नमस्कार भी लिखना, और लिखना कि उस का कुशल-समाचार पा कर मैं अपने को धन्य मानूँगा। शायद मैं भी उसे लिखूँ।"

पत्र फिर बन्द कर के उसने पूर्ववत् रखा, वत्ती बुझा दी, और बिछौने पर धम से लेट गया। बाहर क्षितिज कुछ स्पष्ट होने लगा था, एक वार त्यौरियाँ चढे चेहरे से चन्द्र ने उधर ताका, फिर औंधा हो कर तकिये में मुँह छिपा लिया, ज़रा हिल-डुल कर शरीर को ढीला किया, नाक के सामने से तकिये को दवा कर साँस की सुविधा की, फिर बाँह मोड कर चेहरे को उस की ओट दे दी और अधखुली मुट्ठी सिर पर ऐसी लगने लगी मानो चोट से वचने को ओट की गयी हो।

दो-तीन मिनट बाद ही उस की साँस नियमित चलने लगी—उस नियम से जो हमारी सकल्पना का नही, उस से निरपेक्ष प्रकृति का अनुशासित है, और उस के औंधे शरीर की सब रेखाओ मे एक बेबस शिथिलता आ गयी।

गौरा

गौरा से भुवन का परिचय यो तो चौदह-पन्द्रह वर्ष का गिना जा सकता है, जब वह पाँच-छ. वर्ष की थी और दो चोटियाँ गूँथ कर फ्राक पहने स्कूल जाया करती थी। वह चित्र भुवन को याद है, यह भी याद है कि कभी-कभी वह भुवन को खिझाने के लिए बडी तीखी किलकारी मारा करती थी। बच्चो को यो भी किलकारी मारने मे आनन्द मिलता है, पर भुवन तीखी आवाज़ सह नही सकता यह जान कर ही वह उसके पास आ कर किलकारती थी और भाग जाती थी, भुवन का सारा शरीर झनझना जाता था और तब वह दौड कर हँसती हुई गौरा को पकड कर उठा लेता और डराने के लिए उछाल देता था। डर कर गौरा और भी किलकती थी और उसके गले से चिपट जाती थी, उसके रूखे बालो की सोंधी गन्ध भुवन के नासा-पुटो मे भर जाती थी, तब वह यह कह कर कि "ठहरो, तुम्हारे बाल सुलझा दे", उस की दोनो चोटियाँ पकड कर सिर के ऊपर गाँठ बाँध देता था और हँसता था। गौरा झल्लाती थी और फिर किलकारने की धमकी देती थी, पर भुवन 'सुलह' कर लेता था और गौरा उसे 'माफ़' कर देती थी। चोटियाँ सिर बाँधे उसका नयी धूप-सा खिला बाल-मुखडा भुवन को इतना सुन्दर जान पडता था कि वह प्राय कहता, "तुम्हारा नाम जुगनू है, गौरा भी कोई नाम होता है भला ?" और गौरा कहती, "धत् ! जुगनू तो सीली-सडी जगह में होते है !" या "गौरा तो देवी पार्वती का नाम है, हिमालय की चोटी पर रहती है वह।" भुवन कहता, "नही, गौरा सरस्वती का नाम है, वह उजली होती है और उजले कपडे पहनती है। तुम तो—"फिर सहसा दुष्टता से भर कर, "हाँ, हिडिम्बा हो, हिडिम्बा !"

मगर वह तो बहुत पहले की बात है, उसके बाद कई वर्षो का अन्तराल था इस लिए उसे नही भी गिना जा सकता है। अत कहना चाहिए कि परिचय आरम्भ हुआ १९३२ मे, जब उसने मैट्रिक के लिए जम कर तैयारी करनी शुरू की। भुवन तब नया-नया एम० एस-सी० कर चुका था, रिसर्च के लिए छात्र-वृत्ति मिलेगी या नही यह अनिश्चित था और वह कुछ छोटे-मोटे काम की ताक में था जिससे मन भी लगा रहे और कुछ आय भी हो। आय की दृष्टि से तो गौरा को पढाने का महत्त्व नही था—भुवन ने ही गौरा के पिता का वह प्रस्ताव टाल दिया था—पर मन लगने के लिए यह अच्छा था, गौरा ने स्वय उस से पढने की बात उठायी थी और उस का कालेज का रेकार्ड तो उसकी पात्रता का प्रमाण था ही। भुवन ने उसे पढाना आरम्भ कर दिया था, और आय के लिए एक आई० सी० एस० अधिकारी के बिगडे हुए और पढाई के प्रति उदासीन लडके की ट्यूशन भी स्वीकार कर ली थी जिस से उसे सवा सौ मासिक मिल जाता था।

गौरा पढने मे तेज थी। विज्ञान यद्यपि उस के लिये हुए विषयो मे गौण ही स्थान रखता था—मैट्रिक का साइस होता ही क्या है ?—पर भुवन को साहित्य आदि मे भी यथेष्ट रुचि रही थी और इस लिए उसकी पढाई गौरा के लिए जितनी उपयोगी थी उसके लिए भी उतनी ही रुचिकर। पहले ही दिन तेरह वर्ष की इस लम्बी, कृशतनु, गम्भीर गौरा को देख कर वह थोडी देर देखता रहा था, फिर उसने पूछा था, "सुना है, तुमने स्वय मुझे मास्टर चुना है—क्यो ।"

गौरा ने आँखे नीची किये ही सिर हिला दिया था, "हाँ।"

"क्यो ? मै तो बडी कस कर पढाई करूँगा—उतनी मेहनत करोगी ?"

गौरा ने फिर वैसे ही सिर हिला दिया था।

गम्भीरता को तोडने के लिए भुवन ने पूछा था, "और अगर मेरे कान मे किलकारी मारी तो ?"

एक अवश मुस्कान सहसा उसके चेहरे पर बिखर गयी थी, उसका चेहरा ईषत् लाल हो आया था। उस शव्दहीन खिलखिलाहट मे भुवन ने सात-आठ वर्ष पहले की वालिका को पहचान लिया था। फिर तत्काल ही गौरा ने आँचल से मुँह चॉप कर हँसी दबा ली थी, थोडी देर वाद पहले-सी गम्भीर मुद्रा वना कर कहा था, "आप हिडिम्बा कहेगे ?"

भुवन ने कुछ पसीज कर कहा था, "नही, लेकिन समझौता कर लो कि गौरा पार्वती का नही, सरस्वती का नाम है। तभी विद्या आयेगी ।"

तव से वह परिचय वना ही हुआ था। दो वर्ष बाद गौरा ने मैट्रिक कर लिया था। प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हो कर कालेज मे भर्ती हो गयी थी। उसके बाद पढाई तो बन्द हो गयी थी, पर परिचय वढता रहा था, क्योकि गौरा कालेज मे भी जव-तब उससे न केवल विज्ञान वल्कि साहित्य के विपय मे वहुत कुछ पूछती रहती थी, और भुवन जब यह कह कर अपनी अपात्रता जताता था कि, "भई, मेरा विपय तो विज्ञान है, वह भी भौतिक विज्ञान, ये वाते तो तुम्हारे प्रोफ़ेसर ही बतायेगे," तब वह आग्रह करके कहती थी, "इसी लिए तो आप ठीक बतायेगे। उनका जो विषय है वे लोग किताबो मे से बताते है, आप रुचि से वताते है, आप की वात ज्यादा सच होती है और मेरी समझ में जल्दी आ जाती है।" भुवन हँसी मे कहता, "इसका मतलब है कि विज्ञान पढने तुम उनके पास जाओगी ? अच्छी वात है, अब विज्ञान अपने अग्रेजी के प्रोफ़ेसर से पूछना, खबरदार मुझसे कभी कोई प्रश्न पूछा जो !" पर साथ ही मन लगा कर उस की जिज्ञासाओ का उत्तर भी देता। कभी-कभी इस मे स्वय उसे काफी परिश्रम करना पडता, पर वह मानता था कि अध्यापन का श्रेष्ठ सम्वन्ध वही होता है जिसमें अध्यापक भी कुछ सीखता है, और इस परिश्रम मे कोताही नही करता था। वल्कि इस तरह अपने साहित्य-ज्ञान के विकास में उसे अतिरिक्त आनन्द मिलता था।

गौरा ने विधिवत् सगीत सीखना भी आरम्भ कर दिया था, और कालेज की नाटक

आदि अन्य कार्रवाइयो मे हिस्सा लेना भी। इस के लिए भी वह बहुधा भुवन से परामर्श लेती, भुवन इन मामलो मे बिल्कुल कोरा होने की दुहाई देता तो वह कहती, "और सब भी तो कोरे है—आप कुछ ढूंढ दीजिए न, या सोच कर बताइये न!" और उसके आग्रह की प्रेरणा से भुवन तरह-तरह की पुस्तके पढता, खोज करता, अनुमान भिडाता और उनकी पुष्टि के लिए फिर और पढता या कभी दूर-दूर के विशेषज्ञो से पत्र-व्यवहार करता। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रो की शोध मे, उन के असमान सम्बन्ध मे क्रमश परिवर्तन होता गया था, 'मास्टर जी' से वह क्रमश 'भुवन मास्टर जी' होकर 'भुवन दा' हो गया था और एक नया, समान प्रीतिकर सख्य भाव उन में आ गया था।

जाडो मे एक दिन गौरा ने आ कर सहसा कहा, "भुवन दा, आप हमे मालविकाग्निमित्र का एक रूपान्तर कर देगे। बडे दिनो मे हम नाटक खेलना चाहते है, और किसी ने सुझाया है।"

भुवन ने अचकचा कर कहा, "क्या?"

"जी। मालविकाग्निमित्र। शायद सस्कृत के प्रोफेसर साहब की राय थी—"

"तुम्हारा दिमाग खराब है क्या? मैंने तो पढा भी नही—इतना जानता हूँ कि कालिदास का नाटक है, मालविका के नृत्य का एक चित्र भी कही देखा है, बस—"

"तो क्या हुआ, पढ लीजिए न? कितनी देर लगती है? कहानी तो मै अभी बता देती हूँ—"

"यह खूब रही। अरे भई, एडैप्टेशन किसी जानकार का काम है, मै कैसे कर सकता हूँ? और तुम क्या मालविका का पार्ट करोगी? नाचना आता है?"

गौरा कुछ सकपका गयी। फिर बोली, "सीखना तो शुरू किया है।"

"अच्छा! तब तो और मुसीबत हुई। कल को मुझ से त-त-थेई और त्राम्-त्राम् के मतलब पूछोगी—"

"नही भुवन दा, ये तो कथक बोल है, मालविका तो भारत नाट्य करेगी।"

"हाँ तो। पर उस के बोल कैसे होते है यह तो मुझे नही मालूम न! मेरे लिए तो त्राम्-त्राम् ही है। यानी त्राहि माम्।"

"आप पढ तो लीजिए न। मै साथ लायी हूँ। सस्कृत भी, एक अग्रेजी अनुवाद भी।"

"बाप रे! तुम्हारी एफिशेंसी तो वैज्ञानिक की है। काश कि बुद्धि भी वैसी होती। हो तुम निरी—"

"देखिये भुवन दा! चिढाइये मत! नही तो मै भी वैसा ही जवाब दूंगी—"

सहसा वह सकपका कर चुप हो गयी और उस का चेहरा तमतमा गया, क्योकि साथ के दूसरे कमरे से एक व्यक्ति ने बाहर निकल कर कहा, "भुवन, मेरा इटरपशन माफ करना, मै थोडी देर बाहर जा रहा हूँ।" और फिर गौरा की ओर तनिक कौतुक-भरी

दृष्टि से देख कर फिर भुवन की ओर मुड कर पलकें उठायी, मानो कहता हो, "यह कौन है, परिचय—"

भुवन ने कहा, "ओह, गौरा जी, यह हैं मेरे मित्र और पुराने सहपाठी चन्द्रमाधव, विलायत जाने वाले हैं, आज ही यहाँ आये हैं। चन्द्र, यह हैं गौरा जी, कालेज मे पढती हैं —पहले कुछ दिन मैंने भी पढाया था—"

"तुम्हारी पढाई के लक्षण तो देख ही रहा हूँ!" चन्द्र ने दबी दुष्टता के साथ कहा, "मिस गौरा, आप से मिल कर बडी प्रसन्नता हुई, इस लिए और भी अधिक कि भुवन के परिचितो मे कोई ऐसा भी है जिसे साहित्यिक रुचि है—भुवन तो विज्ञान मे गर्क हो गया है।"

गौरा ने कुछ दूर से कहा, "मास्टर साहब से मैंने साहित्य भी पढा है।"

"सो तो है, सो तो है। साहित्य ही क्यो, देखता हूँ कि मेरे साथ के बाद से उन्हे नाटक, सगीत, नृत्य बहुत-से विषयो में रुचि हो गयी है, बलिक पहुँच भी रखते है अब—"

भुवन ने कहा, "रहने दो चन्द्र, गौरा जी के सामने उनके मास्टर का मज़ाक बनाना क्या उचित है?"

"आइ एम सॉरी, आइ बेग योर पार्डन, गौरा जी। मुझे इजाज़त दीजिए—ज़रा बाहर जाना है। मुझे आशा है आप का नाटक सफल होगा। मै तो समझता हूँ, भुवन उस मे अभिनय भी करे तो—"

भुवन ने थोडा घुडक कर कहा, "फिर?"

चन्द्र चला गया तो गौरा ने पूछा, "आप ने बताया क्यो नही?"

भुवन ने हँस कर पूछा, "क्या?"

"आप बहुत बुरे हैं। मुझे क्या मालूम था कि दूसरे कमरे में वह है, नही तो मै कभी ऐसी बात न करती! आप भी—"

"तो हुआ क्या? ऐसी कौन-सी बात थी?"

"नही, मेरे मास्टर जी का मज़ाक बनाने वाला कोई कौन होता है? और मैंने ही उस मे मदद दी—"

भुवन ज़ोर से हँस दिया। बोला, "अच्छा, मालविकाग्निमित्र छोड जाओ, पढ डालूँगा। कल फिर सलाह कर लेंगे।"

दूसरे दिन गौरा ने आ कर बड़े अदब से नमस्कार किया। फिर चारो ओर एक नज़र दौडा कर कहा, "भुवन मास्टर साहब, आप ने पुस्तक पढ ली? अब बताइये—"

भुवन ने हँस कर कहा, "इतने तकल्लुफ की ज़रूरत नही, गौरा, चन्द्रमाधव बाहर गया है।"

"हाँ तो भुवन दा, आप की क्या राय है?"

"मेरी राय तो यही है कि यह नाटक तुम न खेलो। क्यो नही कोई आधुनिक हिन्दी नाटक लेती ?"

"जैसे ?"

"प्रसाद का कोई छोटा नाटक, 'राज्यश्री' या 'ध्रुवस्वामिनी'—"

"ये मैंने नही पढे—"

भुवन ने हँस कर कहा, "तो यह थी एफिशेसी की पोल ! खुल गयी न ?"

गौरा ने थोडा रूठकर कहा, "सर्वज्ञ तो सिर्फ वैज्ञानिक होता है। फिर मं वैसे ही अनपढ हूँ। क्या करूँ, आपने कुछ पढाया ही नही—"

"ठीक है। तो लो, अब प्रायश्चित्त करता हूँ। तुम कल तक दोनो नाटक पढ कर आओ—"

"और अगर उनमे भी कुछ हेर-फेर करना पडा तो ? आप करेंगे न ?"

"देखा जायगा," भुवन हँसा, "तुम्हारी वात तो ऐसी है मानो नाटक से उस का एडैप्टेशन ही ज्यादा महत्त्व का हो।"

"हाँ, मेरे काम मे आप का भाग ज़रूरी है, भुवन दा।" कह कर गौरा कुछ रुक गयी। "आप के मित्र तो कहते थे, आप अभिनय भी कर सकते हैं, तो—"

"एक वह पागल है और एक तुम !" भुवन कुछ और कहने जा रहा था पर रुक गया। "पुस्तके तुम्हे मिल जायेगी न ?"

"जरूर।"

वाहर शव्द सुनाई दिया। "लो, चन्द्रमाधव भी आ गये। नाटको के वारे में तो इन से पूछो—यह साहित्य और कला के विद्यार्थी है—"

"हलो, गौरा जी। क्या वात है—आप के अभिनय की क्या वात ठहरी ? भुवन तो रात सोये नही, आप की दी हुई पुस्तकें पढते रहे।"

गौरा जल्दी चली गयी। चन्द्र ने कहा, "यार, अपनी इस विद्यार्थिन की कुछ वात तो वताओ। लडकी तो तेज़ मालूम होती है, तुम्हारे साथ कैसे उलझ गयी ?"

भुवन ने गम्भीर हो कर कहा, "हाँ, मैंने दो वर्ष उसे पढाया था। अच्छी पास हुई है। और उस में जीवन है, जीवन की लालसा है—ऐसी जो उसे कई दिशाओ मे अन्वेषण की प्रेरणा देती है। पढने में वहुत अच्छी है, लेकिन सोचता हूँ, आगे क्या ? तो खेद होता है कि हमारे देश में लडकी के लिए सिवाय मास्टरी के या इधर कुछ-कुछ डाक्टरी के और कोई केरीयर ही खुला नही है। और ये दोनो गौरा के लिए नही है। उस का व्यक्तित्व वहुत कोमल भी है, वहुत सम्पन्न भी, उस की अभिव्यक्ति इन मे नही है। वह कोई रचनात्मक एक्सप्रेशन चाहता है, न जाने क्या।"

"क्यो ? भारतीय नारी का जो सव से पहला केरीयर है—गृहस्थी—वह तुम ठीक नही समझते ?"

"उसे बेठीक कैसे समझा जा सकता है ? और एक प्रकार की रचनात्मक अभिव्यक्ति उस मे भी हो सकती है, मैं मानता हूँ, पर—"

"पर गौरा के लिए तुम वह ठीक नही समझते ।"

"नही यह नही, मैं समझता हूँ कि उस दृष्टि से तो वह आदमी बहुत भाग्यवान् होगा जिसे गौरा जैसी पत्नी मिलेगी । पर सोच यह भी तो सकता हूँ कि उसे पा कर गौरा भी भाग्यवती होगी या नही ? और वैसा कौन होगा, यह सोच नही सकता ।"

चन्द्र ने चिढाते हुए कहा, "यह सोच गौरा पर छोड देना क्या उचित न होगा ?"

"आफ कोर्स, आफ कोर्स ।" भुवन थोडा-सा झेप गया । "हर मामले मे सलाह देते-देते कुछ आदत पड गयी है कि सब सवालो के जवाब पहले से सोच रखूँ ?" वह हँस दिया ।

"तो क्या यह सवाल जल्दी उठने वाला है ?"

"अभी तो कोई लक्षण नही है । लेकिन क्या मालूम । लडकी जब हुई परायी थाती, तब कभी भी सौपने का सवाल उठ सकता है, सौंप देने का नही तो कम-से-कम बद देने का तो ज़रूर—"

"हूँ ।"

भुवन ने विषय बदलने को कहा, "सुनो, चन्द्र, तुम तो नाटक-वाटक खेलते रहे हो, तुम क्यो नही उसे कुछ सलाह देते ? 'राज्यश्री' या 'ध्रुवस्वामिनी' का एडैप्टेशन कर दो न—"

"अरे, हिन्दी ! राम-राम । हिन्दी नाटक मैं नही छूने का—"

"यही-तो मुश्किल है । कोई छूता नही, हर साल सब कालेज-वालेज अग्रेजी नाटक खेलते है, हिन्दी मे भी अग्रेजी नाटक अनुवाद कर के—"

"सो तो होगा । वे खेले जा सकते है, खेलने के लिए लिखे जाते है । हिन्दी नाटक तो पढना भी टार्चर है । एक तो ज़बान ही ऐसी होती है—"

"लेकिन तुम अगर रूसी के अग्रेजी अनुवाद के हिन्दी अनुवाद की भाषा अपने अनुकूल बना कर उसे खेल सकते हो, तो क्या सीधे हिन्दी की भाषा नही ठीक कर सकते ?" कालेज में चन्द्रमाधव ने चेखोव के 'चेरी आर्चर्ड' के अभिनय मे भाग लिया था, उसी की ओर भुवन का इशारा था ।

"यही तो बात है । रूसी दूर है । उनके लिखे को उलट-पलट लो, कोई कुछ नही कहेगा । लेकिन अपने देश के लेखक का एक वाक्य इधर-उधर कर तो लो—जान को आ जायेंगे सब । हमारे यहाँ कोई नाटक थोडे ही लिखता है ? सब शास्तर लिखा जाता है, सब लेखक ऋषि होते है—'आर्षवाक्य प्रमाणम्', और तुम झख मारते रहो । शेक्सपियर भी स्टेज पर जा कर एक्टरो से सीख कर अपने डायलाग बदलता था, लेकिन यहाँ सब सीखे-सिखाये कोख से निकलते है ।"

"तुम्हारी बात में सार है, मैं मानता हूँ । लेकिन दूसरा पक्ष भी कुछ हो सकता है ।

एडैप्ट कर के अपने देश-काल मे ले आना हमेशा ठीक नही होता, खुद भी दूसरे देश-काल मे जा सकना चाहिए। अगर आज 'शाकुन्तल' ज्यो का त्यो स्वाभाविक नही, तो ज़रूरी नही है कि शकुन्तला को ड्राइगरूम हिरोइन बनाया जाय, हमी क्यो न कण्व के आश्रम मे जा सके ? ग्रीक नाटक तक तो हम चले जाते है—"

"वह दूसरी बात है। लेकिन हमारे देश में न स्टेज है, न एक्टर है, न नाटक है, फिर नाटक-लेखक ऐंठे किस बात पर रहते है ? सब कुछ हमी को सीखना है, उन्हे कुछ नही सीखना है ?"

"ऐंठ का जवाब ऐंठ हो भी सकता है, पर उस से स्थिति नही बदलती। हिन्दी नाटक ले कर कुछ कर के दिखाओगे, तभी तो आगे कुछ होगा, नही तो आगे भी यही स्थिति रहेगी—न स्टेज, न एक्टर, न नाटक।"

"हाँ, तो मेरी ओर से रहे। खुदाई खिदमतगारी का शौक तुम्हे है, तुम करो। मै तो दुनिया को जैसी है वैसी ले कर चलता हूँ।"

भुवन ने कहा, "तो जाने दो।" बात समाप्त हो गयी।

लेकिन शाम को चन्द्रमाधव घूमने गया, तो दोनो नाटक लेता आया। रात में पढ डाले, फिर पेंसिल ले कर बहुत से निशान लगाये, हाशिये में नोट लिखे, क्या अश छोडा जा सकता है, क्या हेर-फेर हो सकता है, वाचिक में क्या परिवर्तन अपेक्षित है, इत्यादि। बीच-बीच मे शब्दो पर वह झल्लाता, फिर रेखाकित कर के हाशिये में दूसरे शब्द या पद लिख देता जिनसे वार्त्तालाप अधिक सहज और स्वाभाविक बन सके।

* * *

दूसरे दिन गौरा आयी तो चन्द्रमाधव मौजूद था। दोनो को नमस्कार कर के गौरा ने कहा, "मास्टर साहब, मैंने नाटक पढ लिये, और भी दो-एक लडकियो से सलाह कर ली। हम 'ध्रुवस्वामिनी' खेलेंगे, लेकिन—"

"लेकिन यह कि मुझे मेहनत करनी होगी, यही न ?"

"हाँ।"

यहाँ पर चन्द्रमाधव ने कहा, "मेरी बात टाँग अडाना न समझी जाय, तो निवेदन करूँ कि मैंने 'ध्रुवस्वामिनी' पर कुछ नोट लिये है अगर वे कुछ काम आ सकें—"

भुवन ने कुछ विस्मय से भँवें ऊँची की, लेकिन तुरत सँभल कर बोला, "गुड फेलो ! लाओ देखें—"

चन्द्रमाधव उठ कर भीतर गया तो गौरा ने घने उलाहने से भरी आँखें भुवन पर टिका दी, और एकटक उसे देखती रही। वह चितवन भुवन तक पहुँची, पर उसने जान-बूझ कर उसे न देख कर सम स्वर से कहा, "लो, तुम्हारा काम आसान हो गया।"

"मेरा क्या, आप का कहिए। आप ने क्यो—"

वाक्य अधूरा रह गया। चन्द्रमाधव पुस्तक ले आया, भुवन ने पन्ने उलट-पलट कर देखे और कहा, "ठीक तो है।" फिर पुस्तक गौरा को दे दी। गौरा ने अनिच्छुक भाव से उसे लिया, इधर-उधर देखा, फिर मानो कर्त्तव्य का ध्यान कर सधे शब्दो मे कहा, "आप के मित्र ने बहुत परिश्रम किया है, मै उन की बडी कृतज्ञ हूँ।" फिर चन्द्रमाधव की ओर मुड कर कहा, "आप का बहुत-बहुत धन्यवाद। बल्कि मास्टर साहब की ओर से भी, जिन का कष्ट बचाने के लिए आप को मेहनत करनी पडी।" कहते-कहते उसने कनखियो से भुवन की ओर देखा, कि यह चोट ठीक बैठी है कि नही।

चन्द्रमाधव ने सफेद झूठ बोलते हुए कहा, "नही मिस गौरा, मुझे धन्यवाद देने की कोई बात नही है—मास्टर साहब की ओर से भी नही, क्योकि ये नोट तो मेरे पहले के है। पिछले साल एक बार हमने अभिनय करने की सोची थी, तब के। तब स्टेज की दृष्टि से भी विचार किया था—"

भुवन ने भँवे उठा कर स्थिर दृष्टि से चन्द्रमाधव को देखा, एक बहुत दबी मुस्कान उस के ओठो की कोर मे ही खो गयी। फिर उसने गौरा की ओर मुड कर कहा, "लीजिये, मेरा एलिबाई पक्का है न ? मेरे लिए चन्द्र ने वह नही किया, अपने ही लिए किया है।"

गौरा ने आँखें सकोच कर उस की ओर क्षण-भर देखा, मानो कहती हो, "जाइये!" फिर चन्द्रमाधव से पूछा, "तो आपने पोशाको की बात भी सोची होगी ?"

"ज़रूर—"

"अच्छा, हमारी ड्रेस रिहर्सल तक अगर आप यहाँ ठहरे तो एक बार आइयेगा।" फिर भुवन की ओर मुड कर, "मास्टर साहब, उस दिन आप इन्हे भी साथ लाइयेगा, मै कह दूँगी—"

"यानी ?"

"यानी यह कि निर्देशन आप करेंगे—आप को रोज़ आना पडेगा।" गौरा ने स्थिर दृष्टि से उसे देखा, फिर कहा, "हाँ-आँ!"

भुवन हँस दिया। चन्द्र ने कहा, "मै अधिक तो ठहर नही रहा, अभी एक-आध दिन आ सकता हूँ, फिर पीछे मास्टर साहब निर्देशन करते ही रहेगे।"

"अच्छा देखिए, तय हो जाय—"

गौरा चली गयी तो चन्द्र ने कहा, "अब बताओ, कास्ट्यूम का क्या होगा ?"

भुवन ने कहा, "तुम जानो, तुमने तो पहले से सोच रखा है न, पिछले साल से ?"

"मैने तुम्हारी इज्ज़त बचा ली है। अब—"

"ओह, तो इज्ज़त के बदले इज्ज़त चाहिए। लेकिन मैने तो ऐसा सौदा नही किया ?"

"मै नही जानता, मै तुम पर टाल दूँगा।"

दो-एक दिन चन्द्रमाधव कालेज जा कर गौरा और अन्य अभिनेताओ से मिल आया। इधर-उधर की कई बाते उसने की, पोशाक का प्रश्न उठने पर उसने कहा कि उसने अपने

नोट सब भुवन को दे दिये हैं, उन से पूरा निर्देश मिल जायगा।

चन्द्रमाधव को स्टेशन छोडने भुवन के साथ गौरा भी गयी थी, उस की दो-एक और सहपाठिनियाँ भी। चन्द्र ने कहा, "गौरा जी, आप के नाटक के कोई फोटो लिये जायें तो एक-आध मुझे भी भेजिएगा, मुझे बहुत दिलचस्पी रहेगी।"

गौरा ने कहा, "मास्टर साहब अगर खिंचवा देंगे तो होंगे। तब आप उन्ही से मँगा भी लीजिएगा।"

चन्द्र नही समझ सका कि इस मे केवल भुवन के प्रति सहज सम्मान है, या भुवन को ही कोई अस्पष्ट उलहना, या कि चन्द्र के आत्मीयता-प्रकाशन की ही परोक्ष अवहेलना —'आप का परिचय मुझ से नही, भुवन से है, उन्ही की मारफत मैं '। उसने कहा, "विलायत से मैं पत्र लिखूँ तो उत्तर देंगी न?" फिर गौरा के चेहरे को देख कर उस के कुछ उत्तर देने से पहले ही उसने जोड दिया, "मेरे मित्र बहुत थोडे हैं, और भुवन मास्टर साहब तो शायद पत्र लिखना ही गवारा न करे, उनकी ओर से ही आप—"

गौरा ने कहा, "अच्छा, मास्टर साहब को भी मैं कोच दिया करूँगी—" और हँस दी।

"थैंक यू।"

लेकिन भुवन को कोचने के अवसर गौरा को अधिक न मिले, अगले सेशन मे भुवन को रिसर्च के लिए एक वृत्ति मिल गयी और वह बगलोर चला गया। वहाँ दो वर्ष मे अपना प्रायोगिक काम पूरा कर के उसने फिर नौकरी कर ली थीसिस वह वहाँ से भी लिख कर भेज सकेगा इस की सुविधा उसे थी। छ महीने का काम उस के लिए अपेक्षित था उस के बाद थीसिस तो अगले वर्ष ही जायगा, इस लिए काम कर लेना ही अच्छा है गौरा से पत्र-व्यवहार भी उस का बहुत अनियमित था, गौरा के पत्रो मे भी उस हठीले उत्साह का स्थान एक गाम्भीर्य ले रहा था और भुवन तो यो ही कम लिखता था। उस की धारणा थी कि अच्छा पत्र-व्यवहार कभी नियमित हो ही नही सकता, जीवन मे जब-तब ही पत्र लिखे जाये तभी अच्छे होते हैं।

चन्द्रमाधव से गौरा का पत्र-व्यवहार भी अनियमित चलता रहा। चन्द्र उसे जब-तब पुस्तके या चित्र भेज देता, पत्र में ऐसे स्थलो के वर्णन भी जिन में गौरा को दिलचस्पी हो सके—इगलैंड मे शेक्सपियर के घर का, ताल-प्रदेश का जहाँ वर्डस्वर्थ और कोलरिज की काव्य-प्रतिभा मुखरित हुई, फ्रास के ह्यूगो के स्मारक का, नोत्रदाम का, लूव्र सग्रहालय का, जर्मनी मे गयटे के घर का, ओबरामरगाउ के ईसा के जीवन-नाटक का दो-एक अपने फोटो भी उसने भेजे थे, पहले अव्यक्त आशा मे कि गौरा भी उसे अपना फोटो भेजेगी, फिर इस स्पष्ट प्रार्थना के साथ। गौरा ने अपना कोई फोटो नही भेजा था, पर दो-तीन पत्रो के आग्रह के बाद 'ध्रुवस्वामिनी' का एक ग्रुप भेज दिया था जिस मे अभिनेतृ-समुदाय के साथ भुवन भी था। पत्रो मे वह प्राय भुवन के समाचार ही अधिक देती, अपने विषय

में कम लिखती या लिखती तो कालेज की 'एक्टिविटीज' का वर्णन कर देती। चन्द्र के पत्रों मे व्यक्तिगत अधिक होता, विदेशो मे मिले लोगो और विशेषकर स्त्रियो की बातें होती, और निरन्तर वहाँ की स्वाधीनता और यहाँ के बन्धनों की तुलना और उस पर एक आक्रोश का स्वर उस के पत्रो मे पाया जाता। गौरा ने एक बार लिखा, "स्वाधीनता केवल सामाजिक गुण नही है। वह एक दृष्टिकोण है, व्यक्ति के मानस की एक प्रवृत्ति है। हम कहते हैं कि समाज हमे स्वाधीनता नही देता; पर समाज दे कैसे ? हमी तो अपने दृष्टिकोण से समाज बनाते हैं। मै अपने-आप को बद्ध नही मानती हूँ, और स्वाधीनता के लिए अपने मन को ट्रेन करती हूँ। सफलता की बात नही जानती, उतनी शक्ति मेरे भीतर होगी तो क्यो नही होऊँगी सफल ? और मै सोचती हूँ कि सब लोग यत्नपूर्वक अपने को स्वाधीनता के लिए ट्रेन करें तो शायद हमारा समाज भी स्वाधीन हो सके।"

चन्द्र ने उत्तर मे उसे बधाई देते हुए लिखा था, "आप ऐसा मान सकती हैं, और ट्रेनिंग की सुविधा पा सकती है,क्योकि आपका जीवन सरक्षित है,उसे छत्रच्छाया मिली है। उन की सोचिए जो जीवन के अथाह सागर पर फेंक दिये जाते है एक खाली टीन के डिब्बे की तरह क्या वे भी स्वाधीन हैं, अपने को ट्रेन कर सकते है ? जीवन वैसा ही है—और हम सब वह रहे है, बह रहे हैं, खाली डिब्बा ऊब-डूब करता है तो समझता है कि मैं स्वाधीन हूँ, और सागर पर सवार हूँ, पर कहाँ छोर हैं, कब वह जा लगेगा, या कि राह में डूब जायगा—क्या वह जानता है ? या उस के बारे में कुछ कर सकता है ? नही गौरा जी, हमें जिस को जहाँ जितना थोडा-सा सुख मिलता है, उतना ही हमें आतुर और कृतज्ञ हाथो ले लेना चाहिए—उसी का नाम स्वाधीनता है, बाकी सब सघर्ष है, सघर्ष, अन्तहीन आशाहीन सघर्ष "

औरा गौरा ने "शायद हम अलग-अलग दुनिया मे रहते हैं, अलग-अलग मुहावरे बोलते है। आप को यूरोप के समकालीन निराशावाद ने पकड लिया है—है न ? इस यूरोप के लिए आशा नही है। यह तो मरेगा ही। पर क्या एक दूसरा यूरोप नही उठेगा ? नही, ऊब-डूब करते डिब्बो का यूरोप नही, फिर एक स्वाधीन यूरोप, लेकिन जिस की स्वाधीनता नये और दृढतर पायो पर टिकी हो ? मै तो समझती हूँ, हम यहाँ हिन्दुस्तान में भी न केवल अपनी वरन् यूरोप की भी स्वाधीनता का उद्योग कर सकते हैं हर कोई हर जगह सारे विश्व की स्वाधीनता की लडाई लड सकता है क्योकि अविभाजित और अविभाज्य स्वाधीनता ही स्वाधीनता है, जब तक वह नही तब तक स्वाधीनता हो कर भी अधूरी और अरक्षित है।"

दो-एक ऐसे पत्रो के बाद चन्द्रमाधव विषय को छोड देता था और फिर बिलकुल व्यक्तिगत बातों पर आ जाता था, उस में से फिर कोई साधारण सूत्र उठाकर गौरा दूर हट जाती थी।

जो डूबने-उतराने को मानता है, वह डूबता-उतराता है, जो स्वाधीनता के लिए साधना करता है, वह—

> यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
> तस्य तस्याचलां श्रद्धा तामेव विदधाम्यहम् ।।

* * *

मैत्री, सख्य, प्रेम—इन का विकास धीरे-धीरे होता है ऐसा हम मानते हैं, 'प्रथम दर्शन से ही प्रेम' की सम्भावना स्वीकार कर लेने से भी इस मे कोई अन्तर नही आता। पर धीरे-धीरे होता हुआ भी वह सम गति से बढने वाला विकास नही होता, सीढियो की तरह बढने वाली उसकी गति होती है, क्रमश नये-नये उच्चतर स्तर पर पहुँचने वाली। कली का प्रस्फुटन उस की ठीक उपमा नही है, जिस का क्रम-विकास हम अनुक्षण देख सके धीरे-धीरे रग भरता है, पखुडियाँ खिलती हैं, सौरभ सचित होता है और डोलती हवाएँ रूप को निखार देती जाती हैं। ठीक उपमा शायद साँझ का आकाश है एक क्षण सूना, कि सहसा हम देखते हैं, अरे, वह तारा! और जब तक हम चौक कर सोचे कि यह हमने क्षण भर पहले क्यो न देखा—क्या तब नही था? तब तक इधर-उधर, आगे, ऊपर कितने ही तारे खिल आयें, तारे ही नही, राशि-राशि नक्षत्र-मडल, धूमिल उल्का-कुल, मुक्त-प्रवाहिनी नभ-पयस्विनी—अरे, आकाश सूना कहाँ है, यह तो भरा हुआ है रहस्यो से जो हमारे आगे उद्घाटित हैं प्यार भी ऐसा ही है, एक समोन्नत ढलान नही, परिचिति के, आध्यात्मिक सस्पर्श के नये-नये स्तरो का उन्मेप उस की गति तीव्र हो या मन्द, प्रत्यक्ष हो या परोक्ष, वाछित हो या वाछातीत। आकाश चदोवा नही है कि चाहे तो तान दे, वह है तो है, और है तो तारो-भरा है, नही है तो शून्य शून्य ही है जो सब-कुछ को धारण करता हुआ रिक्त बना रहता है

गौरा से भुवन का चौदह वर्ष का—या कि सात-आठ वर्ष का—परिचय भी ऐसा ही था। इस लम्बे अन्तराल के बाद जो नया परिचय हुआ था, वह पहले परिचय से बिल्कुल भिन्न स्तर पर था, दूसरे स्तर पर वह सम गति से चल रहा था कि सहसा एक झोके से वह एक स्तर और उठा—या गहरे में चला गया।

भुवन को कालेज की नौकरी करते एक वर्ष हुआ था। थीसिस भी उसने भेज दिया था, वर्ष-भर के अन्दर उसे परिणाम की सूचना मिलेगी और, जैसा कि उसे पूरा विश्वास है, अगर उसे डाक्टर की उपाधि मिल जायगी तो कालेज में उन्नति तो होगी ही, आगे काम की सुविधा भी मिलेगी, शायद विश्वविद्यालय मे भी कुछ कर सके। एक स्थिरता उस के मानसिक जीवन मे आ गयी थी जो गतिहीनता नही थी, सधी हुई, निर्दिष्ट गति की सूचक थी।

गौरा ने बी० ए० की परीक्षा दे दी थी, साथ ही सगीत की एक परीक्षा भी दी थी।

भुवन ने उसे एक उत्साह-वर्द्धक पत्र लिखा था, और लिखा था, कि वह आशा करता है कि गौरा अच्छी तरह पास होगी क्योकि वह चाहता है कि गौरा जो कुछ करे अच्छी तरह करे, पर साथ ही उस की यह भी धारणा है कि गौरा मे जो कलात्मक सवेदना है उस की अभिव्यक्ति और निष्पत्ति बी० ए०-एम० ए० की डिगरियो मे नही, रचनात्मक कर्म मे है, अपनी प्रतिभा का उपयोग न करना, प्रस्फुटित होने का मार्ग न देना, उसे जीवनानन्द की शोध मे न लगाना निष्क्रिय आत्म-हनन है, अन्धकार को आत्म-समर्पण है जब कि वह गौरा को हमेशा एक उजली और दौडती हुई धूप के रूप मे ही देखता है . पहाड पर बदली मे से फूटी हुई किरण जैसे धन-खेतो पर लहरती दौडती चली जाती है, वैसी ही।

उस के पत्र के उत्तर में देर हुई थी। जब आया था, तब जो आया था, उस के लिए वह बिलकुल तैयार नही था। उस मे उसके पत्र की किसी बात का कोई उल्लेख नही था, बहुत छोटे पत्र में उतना ही लिखा था

भुवन दा,

आप क्या दो-चार दिन के लिए भी नही आ सकते ! मुझे आगे मार्ग नही दीखता है, और मैं अँधेरे मे डूबना नही चाहती, नही चाहती ! जल्दी आइये।

आप की
गौरा

भुवन की समझ में कुछ भी न आया। उसे ध्यान आया, गौरा का परीक्षा-फल निकल गया होगा गौरा ने लिखा क्यो नही ? कही फेल तो नही हो गयी—पर असम्भव ! उसने रजिस्ट्रार को जवाबी तार दे कर परीक्षा-फल माँगा, उसी रात उत्तर आ गया "प्रथम श्रेणी, दूसरा स्थान।" हाँ, यही हो सकता था, फेल होने की कल्पना भी क्यो उस के मन मे आयी ? पर बात क्या है ? गौरा को वह क्या उत्तर दे? क्या चला जाय ? लेकिन क्यो—पहले जाने तो कि बात क्या है ?

और तब, सहसा, आकाश मे एक तारा फूट आया था। तो गौरा के विवाह का प्रश्न उठा है। आखिर उठा ही और वह आगे मार्ग नही देख पा रही है, और भुवन हाँ, भुवन उसे जानता है, बहुत निकट से जानता है—आज अगर गौरा जीवन के इतने बडे निर्णय के सामने उस की राय पूछ रही है और उसी पर चल पडेगी, इतना बडा दायित्व उस पर थोप रही है तो क्यो ? क्योकि उसने पहले देखा है जो भुवन को पहले देखना चाहिए था कि भुवन उसे, उस की सम्भावनाओ को, उस से भी अच्छी तरह पहचानता है।

और आकाश तारों से भर गया था। भुवन तटस्थ है, पर गौरा के भविष्य मे उसे गहरी दिलचस्पी है, वह क्या करती है या नही करती है—उस का क्या होता है—यह भुवन के लिए अत्यन्त महत्त्व रखता है .क्यो ? क्योकि वह उस की भूतपूर्व शिष्या है ?

नही, यद्यपि हाँ, वह भी—उस नाते वह किसी हद तक उस के भविष्य का उत्तरदायी है पर मुख्यतया इस लिए कि वह कुछ है जो जीवन से भुवन ने पाया है और जिस के सहारे उसने स्वय अपने को अधिक पाया है सहसा उस का अन्तर गौरा के प्रति स्नेह ही नही, एक अद्भुत कृतज्ञता से द्रवित हो आया। 'अच्छा अध्यापन वही है जिस मे अध्यापक भी सीखता जाय' इतना ही नही, वह स्थायी सम्वन्ध है जिस का आलोक भविष्य मे भी दोनो का मार्ग उज्ज्वल करता है

भुवन ने गौरा को लिखा

गौरा,

तुम्हारा पत्र मिला है। तुम्हारे स्नेह का दावा मुझ पर सदैव रहा है, पर इतनी दूर से तुम सहसा बिना कारण वताये वुला भेजोगी, यह नही सोचा था। मेरे पत्र की किसी बात का उत्तर तुमने नही दिया, और परीक्षा-फल तक नही सूचित किया—क्या मैंने कभी कल्पना की थी कि तुम्हारा परीक्षा-फल रजिस्ट्रार को तार दे कर मँगाना पडेगा ? पर तुम्हारे कारण न देने से ही शायद मै कारण का ठीक-ठीक अनुमान लगा सका हूँ। और तुम्हारे मौन से मुझे आलोक मिला है, शक्ति मिली है—जिस के सहारे मै दो-एक बाते लिखने बैठ गया हूँ जो कदाचित् तुम्हारे कुछ काम आवे।

गौरा, कोई किसी के जीवन का निर्देशन करे, यह मै सदा से गलत मानता आया हूँ तुम जानती हो। दिशा-निर्देशन भीतर का आलोक ही कर सकता है, वही स्वाधीन नैतिक जीवन है, बाकी सब गुलामी है। दूसरे यही कर सकते है कि उस आलोक को अधिक द्युतिमान बनाने मे भरसक सहायता दे। वही मैंने जब-तब करना चाहा है, और उस प्रयत्न मे स्वय भी आलोक पा सका हूँ, यह मै कह ही चुका। तुम्हारे भीतर स्वय तीव्र सवेदना के साथ मानो एक वोध भी रहा है जो नीति का मूल है, तुम्हे मै क्या निर्देश देता ?

अभी किस प्रश्न को लेकर तुम चिन्तित हो, यह शायद मै समझ सका हूँ। पर उस प्रश्न में सहसा इतनी चिन्त्य तात्कालिकता क्यो आ गयी कि तुम ने मुझे वुला भेजा, यह तुम्हारी ओर से किसी सूचना की अनुपस्थिति मे कैसे जानूँ ? यह प्रश्न आगे-पीछे उठता ही, मै समझता हूँ कि परीक्षा-फल के साथ-साथ ही भविष्य-निर्णय का प्रश्न तुम्हारे माता-पिता के सामने उठा होगा। यह भी हो सकता है कि उन्होने पहले से कुछ सोच रखा हो —चाहे कह भी रखा हो—और अव, जब उन की समझ मे तुम्हारी शिक्षा पूरी हो गयी और वय भी हो गयी, तब तुम्हे पूछा या वताया हो। उन पर मेरी श्रद्धा है और मै समझता हूँ कि तुम्हारा अहित उन से नही होगा, इतना ही नही, मै यह भी समझता हूँ कि तुम्हारे हिताहित के विषय मे तुम्हारी धारणा को वे अमान्य नही करेगे—उस से क्लेश होगा तब भी नही। एक वार तुम्हारे पिता ने मुझ से कहा था "सन्तान को पढा-लिखा कर फिर अपनी इच्छा पर चलाना चाहने का मतलव है स्वय अपनी दी हुई शिक्षा-दीक्षा

को अमान्य करना, अपने को अमान्य करना, क्योकि बीस बरस मे माँ-बाप सन्तान को स्वतन्त्र विचार करना भी न सिखा सके तो उन्होने क्या सिखाया ?" जो व्यक्ति ऐसी बात मान सकता है, उस के विचार-परिपाटी के बुनियादी मान ठीक है, और मुझे विश्वास है कि वह चाहे वचन-बद्ध भी हो चुके हो—जो मेरी समझ मे न हुए होगे—उन से साफ-साफ बात करना शुभ परिणाम देगा।

पर यह बाहर की बात है। तुम्हारे भीतर ? यहाँ कुछ कहते दोहरा सकोच होता है, फिर भी कुछ कहूँगा ही हाँ, इसे तुम मेरा मत ही समझो, वह भी पूर्वग्रह-दूषित मत, उस से अधिक कुछ नही। आगे-पीछे इस प्रश्न का सामना करना ही होता है, और जहाँ तक निरे सिद्धान्त का प्रश्न है, मैं मानता हूँ कि जब तक कोई स्पष्टतया मनोवैज्ञानिक 'केस' न हो विवाह सहज धर्म है और है व्यक्ति की प्रगति और उत्तम अभिव्यक्ति की एक स्वाभाविक सीढी। लेकिन सिद्धान्त के प्रतिपादन से ही प्रश्न का उत्तर नही हो जाता, व्यक्तित्व के प्रश्न के आगे व्यक्ति का जो प्रश्न है, वह बना रहता है। उस के विषय मे यह कह सकता हूँ कि व्यक्ति का स्वतन्त्र विकास जब तक पूरा नही हो जाता, तब तक उसे इकाई से बाहर प्रसृत करने का प्रश्न नही उठता, वह प्रश्न तभी उठना चाहिए जब उस के बिना और विकास के मार्ग न हो। और प्रश्न उठने के बाद फिर व्यक्ति-विशेष की खोज होती है उस मे जोखम अनिवार्य है, पर आन्तरिक आलोक कुछ भी काम नही देता यह कैसे माना जाय ? जोखम भी कौन-सा उठाने लायक है, कौन-सा नही, इस के निर्णय मे अन्त करण का साक्ष्य अवश्य सहायक होता है। राह चलना हो, तो हर मोड, हर चौराहे पर राही को जोखम उठाना होता है और वह उठाता है, उस समय आँखें बन्द कर के दूसरे के निर्देश पर अपने को नही छोड देता। और गार्हस्थ्य एक लम्बी यात्रा है—बल्कि पथ-यात्रा नही, सागर-यात्रा, जिस मे मोड-चौराहे पर नही, क्षण-क्षण पर सकल्प-पूर्वक जोखम का वरण करना होता है और कोई लीके आँकी हुई नही मिलती, नक्शे और कम्पास और अन्ततोगत्वा अपनी बुद्धि और अपने साहस के सहारे चलना होता है।

तुम्हे जो राह दीखती है, उस पर चलो, गौरा। धैर्य के साथ, साहस के साथ। और हाँ, जो तुम से सहमत नही है उनके प्रति उदारता के साथ, जो बाधक है उन के प्रति करुणा के साथ। और राह पर जब ऐसा साथी मिलेगा जिस का साथ तुम्हे प्रीतिकर, वाछनीय, कल्याणप्रद लगे, तब किसी की बात न सुनना, जान लेना कि अब स्वतन्त्र रूप से जोखम वरने का समय आ गया।

यही मैं मानता हूँ। स्वय उस आदर्श को नही पाता, वह दूसरी बात है। पर वह ठीक है इस के बारे मे मुझे ज़रा भी सशय नही है।

और अभी क्या लिखूं ? तुम क्या करती हो, क्या करोगी, लिखना। अब भी अगर बुलाओगी, तो आ जाऊँगा। यो छुट्टियों से तत्काल पहले छुट्टी मिलना कठिन होता है पर

आना हो तो एकदम छुट्टियों मे ही आने से काम न चलेगा ?

तुम्हारा
भुवन दा

गौरा के दूसरे पत्र से भुवन ने जाना कि बात विवाह की ही थी। प्रस्तावित लडका गौरा के कालेज में पढता रहा था, उस से तीन-चार वर्ष आगे, उस के पिता की ओर से बात पहले उठायी गयी थी जब गौरा ने इटर पास किया था—लडका तब विदेश मे था। गौरा के माता-पिता ने तब इसी आधार पर टाल दिया था कि लडका तो विदेश है, पर माँ यही मानती थी कि वे लगभग वचन-बद्ध हैं। लडका जाडो मे लौट आया था इजीनियर बन कर, तब से बात चल रही थी और गौरा की परीक्षा के बाद ही प्रबल हो कर उठी। यो लडके वाले राजी थे कि गौरा आगे भी पढना चाहे तो पढे, पर पक्की बात वे तुरत चाहते थे, और विवाह भी इसी वर्ष नही तो अगले वर्ष। लडके को गौरा ने देखा अवश्य था पर उसकी बहुत हल्की-सी स्मृति ही उसे थी, और यह कहने का कोई कारण नही था कि उन मे कोई विशेष अनुकूलता है। विवाह की बात लडके की इच्छा पर ही उठी थी, पर एक बी० ए० के विद्यार्थी का एक फर्स्ट ईयर की लडकी के प्रति आकर्षण अपने-आप मे कोई महत्त्व नही रखता।

गौरा ने यह भी लिखा था कि भुवन के पत्र से उसे बहुत सहारा मिला और आगे का मार्ग कुछ-कुछ उसे दीखता भी है, माँ की अनशन की धमकी स्वय एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है, पिता तो दु खी पर चुप है, किन्तु माँ का कहना है कि उन दोनो के जीवन का दारोमदार इसी पर है। गौरा इसे स्पष्ट अन्याय समझती है, पर क्या माता-पिता की इच्छा पर अपने को उत्सर्ग कर देना भी एक रास्ता नही है ? सारी परम्परा तो इसी का समर्थन करती है कि यही रास्ता है और ऐसे आत्म-बलिदान में सुख भी होता है यदि वह कल्याण की भावना से किया जाय, खीझ कर, आत्म-दहन की भावना से नही। यही सब वह सोचती है, और किसी निर्णय पर नही पहुँच पाती, पर भुवन दा की यह बात वह खूब समझती है कि अन्ततोगत्वा निर्णय उस के माता-पिता का नही, उसी का है, वह जो कुछ भी करे, परिणामो के लिए उत्तरदायी वही होगी। शीघ्र ही वह कुछ तय कर लेगी और बिलकुल नही ही कर सकी, तो फिर भुवन दा को बुला भेजेगी छुट्टी वह न लें, अवकाश आरम्भ होते ही आ जावे और तब तक वह बात टाल लेगी

भुवन ने फिर एक छोटा-सा पत्र उसे लिखा .

गौरा,

तुम्हारे पत्र से पूरी बात मालूम हुई।-नया मुझे कुछ नही कहना है।

ठीक है, तुम्हारे निर्णय की प्रतीक्षा करूँगा। पूरे विश्वास के साथ कि जो भी तुम करोगी, भूल नही करोगी।

आत्म-बलिदान की बात हमारी पीढी की हर युवती सोचती है। युवती ही क्यो, युवक भी। बलिदान ही हो, तो कोई दूसरा क्या कह सकता है? अपनी जिन्दगी लुटाने का हक हर किसी को है, और ऐसे मौके भी हो सकते है जब अन्याय को चुनौती देने का कोई दूसरा उपाय ही न रहे, यह मै समझता हूँ। "जानते हो, मै तुम्हारी जान ले सकता हूँ?" "हाँ, दस्यु, और तुम जानते हो, मै जान गँवा कर तुम्हारी अवहेलना कर सकता हूँ?" यह उत्तर कायर का नही, साहसी का है। पर आत्म-बलिदान आत्म-प्रवचना नही है, यह खूब अच्छी तरह पडताल कर के देख लेना चाहिए। और मै नही मानता कि इस मामले मे हमारे सब युवक-युवतियाँ सतर्क रहती है। इस तरह का झुकना बलिदान नही, पलायन है कटु निर्णय से, स्वाधीनता के जोखम से पलायन। स्वाधीनता साहस माँगती है, दुस्साहस भी माँग सकती है। स्वाधीनता साहसी का धर्म है।

हमारा सस्कार है, हाँ, पर श्रवणकुमार का जो आदर्श है, वही—जरा-सी चूक पर!—हमारी सारी पीढी की पराजय और क्लीवता का बडा अच्छा प्रतीक भी है। कन्धे पर लदी हुई बहँगी पितृभक्ति का, आदर्श-परायणता का, आत्म-बलिदान का प्रतीक नही, जड-पूजा का, आत्म-प्रवचना का, स्वाधीन जीवन की अपात्रता का प्रतीक है! श्रवण के लिए वह क्या था, इस का निर्णय करना मेरे लिए आवश्यक नही है, मेरी पीढी के लिए वह क्या है यह मै ठीक जानता हूँ।

तुम पर मुझे आस्था है। आत्म-बलिदान करती हो, तो मेरा श्रद्धापूर्ण प्रणाम लो। सच्चा बलिदान भी स्वाधीन व्यक्ति का कर्म है।

पत्र दोगी? मै देखो कितने तपाक से पत्र लिख रहा हूँ!

तुम्हारा
भुवन

इसका उत्तर उसे बहुत दिनो तक नही मिला। पहले कुछ दिन उसने प्रतीक्षा की, फिर मान लिया कि गौरा ने विवाह की स्वीकृति दे दी है, और दे दी है तो भुवन को और लिखने को अभी क्या होगा? दो-चार मास बाद—या क्या जाने, विवाह के बाद!—ही वह लिखेगी। आवकाश आरम्भ हो गया, उसने सामान तैयार किया कि अगर गौरा बुलायेगी तो वहाँ, नही तो कुछ दिन के लिए पहाड-वहाड कही चला जायगा, पर चार-छ. दिन ऐसे भी बीत गये। सहसा एक दिन मद्रास से गौरा का पत्र आया

भुवन दा,

मैने एक साथ कई निश्चय कर लिये। वह बात समाप्त हो गयी है। माँ बहुत रोयी-धोयी, पर मान लेगी ऐसा विश्वास है। पिता ने भी यही कहा, बोले, "बेटी, हम दोनो तुम्हारा कल्याण चाहते है, यह विश्वास न खोना। तुम्हारी माता समझ जायेगी और

हमारा पूरा विश्वास तुम पर बना है, यह मैं तुम्हे कहता हूँ ।" और कुछ उन से कहते नही बना । कहते तो शायद मैं न सह सकती ।

दूसरा निश्चय मैं आगे पढाई नही कर रही । सगीत के लिए आयी हूँ । एक वर्ष यहाँ और एक वर्ष मैसूर में रहूँगी, इतनी दूर स्पष्ट दीखता है, और इस मे इतना काम है कि आगे देखना अभी ज़रूरी नही जान पडता । यो यह भी लगता है कि असल चुनाव मैंने कर लिया है, आगे इतनी कडी परीक्षा अब न होगी ।

भुवन दा, पलायन इधर भी हो सकता है, उधर भी । बिना मन के भीतर घुसे, केवल कर्म के आधार पर कोई निर्णय नही दिया जा सकता । आप ने एक बार कहा था, "आत्मा के नक्शे नही होते कि हम चट से फैसला दे दे इस सीमान्त के इधर स्वदेश, उधर विदेश, इधर पुण्य उधर पाप । आत्मा के प्रदेश में सीमान्त हर क्षण, हर साँस के साथ बदल सकता है क्योकि हर क्षण एक सीमान्त है ।"

वह बात आज समझ रही हूँ । जीवन एक बार का वरण नही है, वह अनन्त वरण है, प्रत्येक क्षण हम स्वीकार और परिहार करते चलते हैं ।

भुवन दा, मै भाग कर नही आयी, माँ के दुख से भी नही । सामने काम है, और बडा अर्जेंट, बडा ज़रूरी काम । इसी झझट में मैंने इतनी देर कर दी, पर आप ज़रूर-ज़रूर मेरी बात ठीक-ठीक समझेंगे और तब आप को यह देर भी अच्छी लगेगी ।

आप की कृतज्ञ

गौरा

पुनश्च

अब मैं आप को नही बुलाऊँगी ! अवकाश आप कहाँ बितायेंगे ? कही पहाड चले जाइये । पिता जी मसूरी जायेंगे वही आप जाये तो उनसे मिलिएगा, आप से मिल कर उन्हे तसल्ली होगी ।

गौरा

उसी डाक मे बगलौर से पत्र आया कि उस का थीसिस स्वीकृत हुआ है और डाक्टरेट प्रदान करने का अनुमोदन किया गया है अगले कनवोकेशन में उसे डिगरी मिल जायगी ।

* * *

दक्षिण मे ही गौरा ने पहले-पहल समझा कि कलाकार कैसे देश-काल के बन्धन मे मुक्त हो जाता है कोई भी लगन, कोई भी गहरी साधना व्यक्ति को इन बन्धनो से परे ले जाती है । देह का अपना धर्म है, उस से तो मुक्ति नही मिलती, पर आत्मा—या आत्मा की बात न करे क्योकि उस के साथ तो अजर-अमर होने की प्रतिज्ञा ही है—मन भी जरा-मुक्त, चिर युवा रह जाता है एक दिन साधक सहसा पाता है कि अरे, यह देह तो बूढी

हो गयी जब कि भीतर का जीव ज्यो-का-त्यो है, बल्कि अधिक स्फूर्तियुक्त, अधिक समर्थ तब अगर वह मन को देह पर छोड देता है तभी मन भी जरा का अनुगत हो जाता है, नही तो अन्त तक—देह के विघटन-विलयन तक—भी वह वैसा ही अछूता चला जायगा, ऐसा गौरा को लगता है। पढाई के साथ-साथ भी वह सगीत-साधना करती रही थी, पर वहाँ वह गौण थी, अपने को उस में वहा नही दिया जा सकता था, समर्पण नही हो सकता था और साधना शर्तबन्द नही होती, वह आशिक नही होती। या होती है, या नही होती और अब

यो सम्पूर्ण साधक कम ही होते है अधिकतर या तो सब समय अधूरा समर्पण, या कुछ समय पूरा समर्पण दे सकते है—सब समय पूरा समर्पण तो पागलपन है जो देवत्व का समकक्षी है, वह तो दुर्लभ है गौरा जानती है कि वह वैसी सम्पूर्ण साधिका—बल्कि वैसी सम्पूर्णता हो तो साधिका क्यो, सिद्ध—नही है, और भीतर यह भी अनुभव करती है कि वैसी वह होना भी नही चाहती। पर जितनी साधना, या जितना शोध, जितनी तपश्चर्या उसे करनी है, वह सम्पूर्ण हो यह वह चाहती है, और इस के लिए कृत-सकल्प है। उसने पाया कि सगीत के अध्ययन के साथ सस्कृत का अध्ययन आवश्यक है, वह भी उसने आरम्भ कर दिया, फिर उसी से सम्बद्ध सस्कृत काव्यो का अध्ययन, इस मे उसने पाया कि सगीत अकेला नही खडा होता, उसे वास्तव में स्वायत्त करने के लिए थोडा इधर-उधर भी वढना आवश्यक है, नाटच-शास्त्र तक पहुँचते न पहुँचते उसने जान लिया कि दो वर्प तो क्या होते है, उसे बीस वर्ष भी थोडे हैं। पर व्यक्ति की कुछ सीमाएँ है जिन्हे वह मान ही लेना चाहती है. सम्पूर्ण साधक उन्हे अमान्य भी कर सकता, वह जानती है, और वैसी लगन के लिए जो कठोरता और एक विशेष प्रकार की आत्म-परता चाहिए उसे वह निरी स्वार्थ-परता नही कहेगी, पर उसे अभी वह इष्ट नही है, वह इन मर्यादाओं को स्वीकार ही कर लेगी दो वर्ष पूरे कर के कही काम करना होगा—पिता-माता पर निर्भर करता अव उचित न होगा—और काम के साथ-साथ ही सगीत-साधना आगे चलानी होगी।

वीच-वीच में वह भुवन को पत्र लिखती उसमें अपना उत्साह, अपनी चिन्ताएँ, अपने सकल्प, सभी व्यक्त करती। पर भुवन के पत्र फिर विरले हो गये थे, एक वार उसने लिखा कि "तुम्हारी लगन से मुझे अपनी चूक का ध्यान हो आता है—साधना से समझौता मैंने भी किया है क्योंकि नौकरी मैं भी करता हूँ, पर समझौते में जितना अपनी साधना को देना चाहिए वह तो कम-से-कम निरालस, निर्वन्ध भाव से देना चाहिए" गौरा इस पत्र से मुदित भी हुई, पर उस के वाद से उसने अपने पत्र भी विरल कर दिये, महीने में एक पत्र से अधिक वह न लिखती, कभी दो महीने भी हो जाते। भुवन वंगलोर आयेगा शायद तव भेंट होगी, यह आशा उस के मन थी, पर उसने व्यक्त न की, भुवन नही आया और निराशा भी व्यक्त करने का कोई प्रश्न न उठा।

परीक्षा-फल निकलने के तुरत बाद उसे चन्द्रमाधव का बधाई का पत्र मिला था। उसने उत्तर तत्काल नही दिया था—तब वह अशान्त थी; मद्रास आने पर उत्तर देने से पहले चन्द्र का एक और लम्बा पत्र उसे मिला। चन्द्र ने लखनऊ में अपने नये कार्य की बात लिखी थी, और उस के पिछले पत्र का, जो एक वर्ष से अधिक पूर्व उस के भारत लौटने से पहले गौरा ने उसे लिखा था, हवाला देते हुए कहा था कि "यूरोप का निराशावाद शीघ्र ही सारी दुनिया पर छा जायगा, एक महान् विस्फोट आ रहा है, गौरा जी, और उस की लपटे भारत को अछूता न छोड जायेगी! स्वाधीनता का आन्दोलन है, ठीक है, लेकिन उस लपट का धुआँ व्यक्ति के स्वातन्त्र्य का दम घोट जायगा, ऊब-डूब की ही स्वाधीनता रह जायगी, बस! देखें, आप का आशावाद क्या करता है तब" अनन्तर और कई बातो के बाद लिखा था, "सुना था कि आप के विवाह का निश्चय हुआ था, फिर सुना कि बात टूट गयी यह भी सुना कि 'मास्टर साहब' के परामर्श से आप इसे मेरी अनधिकार चर्चा न समझे, गौरा जी, स्वाधीनता का मै खूब सम्मान करता हूँ और यूरोप से लौट कर मुक्त रहने का महत्त्व और भी समझने लगा हूँ—पर भुवन जैसे विज्ञान के नशेबाज़ की बात को ज़रूरत से ज्यादा अहमियत भी दे दी जा सकती है। वह तो ऊब-डूब भी नही है डूब ही डूब है · और उस सागर से उबरना नही होता! यो आप के सामने निश्चय ही, स्पष्ट कर्तव्य-पथ होगा ऐसा मेरा विश्वास है "

इस पत्र ने गौरा के पहले पत्र का उत्तर न देने का सकोच मिटा दिया था, और उसने दो महीने तक कोई पत्र नही लिखा था। फिर जब लिखा था, तब क्षमा-याचना करते हुए यह भी लिख दिया था कि दूसरे पत्र से वह विरक्त हो गयी थी। "आप जो सुनते है, सुन सकते है, पर हर सुनी बात की पडताल आवश्यक नही होती। और मास्टर साहब के बारे मे आपने जो लिखा है, उस से मै पूर्ण सहमत हूँ, पर आप उस से जो परिणाम निकालते है उस से नही। वह विज्ञान मे डूबे है, ठीक है, उसे आप नशा भी कह लीजिए। पर इस लिए वह राय नही दे सकते, यह मै नही मानती। यो वह राय कभी देते ही नही, पर जब देगे तब वह अधिक सम्मान्य होगी क्योकि वह अनासक्त होगी, ऐसा मै जानती हूँ। जिसे आप नशेबाज कहते है और मै—आप अनुमति दे—साधक कहूँगी वह अपने नशे से इतर बातो मे बिल्कुल असम्पृक्त होता है यही उस की शक्ति है। आप कहते है कि वह इस लिए अविश्वास्य है, मै कहती हूँ कि इसी लिए वह विश्वास्य है, क्योकि विश्वास-अविश्वास दोनो ही उसे नही छूते पर अपने भविष्य-निर्णय के बारे मे मेरा कोई मत ही नही था, ऐसा आपने क्यो मान लिया? क्या यूरोप के निराशावाद मे यह उदासीनता भी शामिल है?"

चन्द्रमाधव ने तुरंत क्षमा-याचना कर ली थी। आप को क्लेश पहुँचाना, या आप की या भुवन जी की अवहेलना करना मुझे बिल्कुल अभीष्ट न था, आप की शुभाशंसा से ही मैंने यह सब लिखा था. वापस लेता हूँ। आप के पत्र से स्पष्ट विदित होता है कि

आप मे प्रवल सकल्प-शक्ति है और आप को आप के मनोनीत पथ से कोई नही हटा सकता, मै इस पत्र से आश्वस्त ही नही, वहुत प्रभावित भी हुआ हूँ "आगे चल कर उसने पूछा था कि गौरा दक्षिण मे क्या कर रही है, और क्या विश्व की इस सकटापन्न अवस्थिति मे उसे सगीत की साधना पर्याप्त जान पडती है ?

गौरा ने उस की क्षमा-याचना शिष्ट ढग से स्वीकार कर ली। सगीत के बारे में उसने लिखा, "मैंने पहले भी एक वार लिखा था कि हम लोग भिन्न-भिन्न भाषा वोलते है, हमारा मुहावरा अलग है। फिर भी कहूँ कि मेरी समझ मे तो एक विश्व-सकट यह भी है कि साधना आज इतनी नगण्य हो गयी है, कि हमारा साध्य जीवन का आनन्द न रह कर जीवन की सुविधाएँ रह गया है यानी जीवन की हमारी परिभाषा ही वदल गयी है, वह जीवन का नही, जीवन की क्रियाओ का नाम हो गया है। इस लिए आज हम जीवन के शोध की नही, जीवन की दौड की वात कहने लगे है, जीवन का बाह्यीकरण करते-करते हमने उस का बहिष्कार ही कर दिया है। आप यह बात नही समझेंगे क्योकि आप 'दूसरी तरफ' है, आप दौड मे है। गणित की भाषा मे कहूँ—जो शायद हमारे आप के मुहावरे के अध-वीच आ सके—तो कहूँगी कि दौड का अर्थ है देश ÷ काल, जब कि शोध का अर्थ है देश × काल। आप विभाजन-फल माँगते है, मै (या कह ही लेने दीजिए अपने समूचे वर्ग की ओर से, हम) गुणन-फल के अन्वेषी है। आप की माँग का अन्तिम परिणाम है न-कुछ, यानी कुछ इतना स्वल्प कि नगण्य, हमारी साध का अन्त है सब-कुछ, कुछ इतना विशाल कि आप भी उस मे समा जायें! यह अहकारोक्ति लगती है न ? पर है नही, मै न-कुछ हो कर ही सब-कुछ की शोध मे हूँ, अहकार इस तरफ नही हो सकता, अहकार तो सब से बडा विभाजक है "

* * *

सितम्बर १९३९ . यूरोप में युद्ध आरम्भ हो गया, तो चन्द्रमाधव और गौरा मे और दो-एक पत्रों का विनिमय हुआ। और तव भुवन का भी एक पत्र गौरा को मिला। भुवन के पत्र मे गहरी वेदना थी। विज्ञान की एफिशेसी स्वय साध्य वन कर मानव को कहाँ ले जाती है, युद्ध की घोषणा में इस का भीषण परिणाम उसे दीख रहा था। पुराने ज़माने में जव वैज्ञानिक और नीतिज्ञ एक ही था, तव विज्ञान नीति को पुष्ट करता था, और विज्ञान के विकास का इतिहास पहले एक पुष्ट नैतिकता का ही इतिहास रहा . नैतिकता ने किसी दैवी, अलौकिक प्रतिमान पर आधारित एक अन्ध-विश्वास या तर्कातीत श्रद्धा से हट कर एक वुद्धि-सगत, लौकिक, मानववादी नैतिक वोध का रूप लिया। यहाँ तक वैज्ञानिक सव नीतिज्ञ नही तो नैतिक अवश्य थे, और यहाँ तक विज्ञान का रेकार्ड वैज्ञानिको के लिए गौरव का विपय है।मध्ययुग में वुद्धि की महानिशा में वैज्ञानिक सन्तो ने ही ज्ञान के टिमटिमाते आलोक को अपनी गुदड़ी के भीतर छिपा कर उसकी रक्षा की पर किस

लिए ? कि औद्योगिक क्रान्ति के साथ वह सुविधा का गुलाम बन कर एक के बाद एक विभ्राट् उत्पन्न करता चले ? क्या यही मानव का भविष्य है क्योकि यह उसकी श्रेष्ठ उपलब्धि विज्ञान का भविष्य है ? वह यह नही मान सकता पर निस्सन्देह यह विज्ञान का सूक्ष्म-काल तो है ही, और उस के साथ नैतिकता का भी क्राइसिस है, सस्कृति का भी, क्योकि विज्ञान का क्राइसिस वैज्ञानिक नैतिकता और वैज्ञानिक सस्कृति का भी क्राइसिस है। इस से यह सीखना होगा कि नीति से अलग विज्ञान बिना सवार का घोडा है, या बिना चालक का एजिन · वह विनाश ही कर सकता है। और सस्कृति से अलग विज्ञान केवल सुविधाओ और सहूलियतो का सचय है, और वह सचय भी एक को वचित कर के दूसरे के हक मे, और इस अम्बार के नीचे मानव की आत्मा कुचली जाती है, उस की नैतिकता भी कुचली जाती है, वह एक सुविधावादी पशु हो जाता है और यह केवल युद्ध की बात नही है, सुविधा पर आश्रित जो वाद आजकल चलते है वे भी वैज्ञानिक इसी अर्थ मे है कि वे नीति-निरपेक्ष है मानव का नही, मानव-पशु का सगठन ही उन का इष्ट है। कोई भी नीति-निरपेक्ष व्यवस्था अनिवार्यत सर्वसत्तावादी व्यवस्था होगी, क्योकि नीति को छोड देने के बाद दूसरा प्रतिमान सत्ता का रह जाता है "मेरे लिए यही इस युद्ध का सबक है। यह युद्ध किस लिए लडा जा रहा है, सहसा नही कह दिया जा सकता, ठीक स्वाधीनता के लिए ही है, यह कह देना भोलापन होगा क्योकि 'स्वाधीनता' के साथ कितने इतर स्वार्थ भी तो मिले हुए है, पर यह जरूर कहा जा सकता है कि इस युद्ध से आरम्भ कर के हमे सस्कृति के उन मानो के लिए सघर्ष करना है जिन को स्वय हमारी इस सस्कृति ने ही नष्ट कर दिया या जोखम मे डाल दिया। हमे केवल युद्ध नही जीतना है, हमें शान्ति भी नही जीतनी है, हमे सस्कृति जीतनी है, विज्ञान जीतना है, नीति जीतनी है : हमें मानव की स्वाधीनता और प्रतिष्ठा जीतनी है। क्या इस युद्ध का सबक हमें वैसे वैज्ञानिक देगा जो विज्ञान को नीति से नही, नीति के लिए मुक्त रखेंगे ? हमे आशा नही खोनी होगी "

चन्द्रमाधव के पत्र में निराशा भी थी, और कुछ गर्व का भाव भी कि उस की दुर्वाणी सच निकली। "यह सस्कृति का अन्तिम युद्ध है, क्योकि जिसे हम सस्कृति कहते है वह एक सडा हुआ चौखटा है। और उस मे जो जीव बन्द है, वह जीव इसी लिए है, कि वह पशु है, अगर पशु न हो कर तथा-कथित सस्कृत मानव होता तो वह भी मर गया होता—जैसे कि सर्वत्र सस्कृत मानव मर गया है। इस युद्ध मे से एक नयी बर्बरता निकलेगी और सारी दुनिया पर राज्य करेगी मै कहता हूँ आने दो उस बर्बरता को। जिस तल पर हम है उस तल से ऊँचे की व्यवस्था स्वय एक अभिशाप है क्योकि उस से हमारा सम्पर्क हो ही नही सकता। डिमाक्रेसी धोखा है, गिनतियो का राज बनिये का राज है " आगे चल कर फिर उसने प्रश्न उठाया था, "क्या आप अब भी मानती है कि कलाओ का और सगीत का कोई आत्यन्तिक मूल्य है—इस जीवन मे कोई स्थान है ? है शायद—युद्ध के कार्यो को

आगे बढाने मे वे सहायक हो सकती है कला यानी पोस्टर, सगीत यानी फौजी बैंड और साहित्य यानी पैम्फलेट, परचे, अखबारनवीसी, रिपोर्ताज का नया माध्यम जो न पूरा तथ्य है न पूरी कल्पना—क्योंकि तथ्य और कल्पना का अन्तर उस परम्परा का अवशिष्ट है, जिस मे सनातन सत्य कुछ होता था और उस का शोध होता था, अब तथ्य ही तथ्य है, सत्य केवल तथ्य का वह रूप है जिसे आज हम देखते या जानते या भाँपते है—यानी तथ्य–हमारी कल्पना या हमारा पूर्वग्रह ...सत्य अगर पूर्वग्रह-युक्त तथ्य है, तो रिपोर्ताज श्रेष्ठ साहित्य है, सीधी बात है ... कैसी उथल-पुथल है · जो कुछ था, जैसे उसके नीचे से धरती खिसकी जा रही है हमारे इस बेपेंदी के जगत् को देख कर एक बार अट्टहास करने को जी होता है—हा-हा-हा-हा ।"

गौरा ने पहले उत्तेजित हो कर उत्तर लिखना चाहा, थोडा-सा लिखा था फिर फाड दिया। क्या उत्तर हो सकता है इस का ?

भुवन को उसने लिखा :

भुवन दा,

आप के पत्र कभी-कभी आते है, पर जब भी आते है, तो मै अपने को आप के समानान्तर चलता पाती हूँ। इस पत्र मे जो व्यथा है उसे मै ठीक-ठीक पकड सकती हूँ यह कैसे कहूँ—मै बहुत छोटी और क्षुद्र हूँ—पर मै चाहती हूँ कि आप के साथ-साथ चल सकूँ। 'मानव की स्वाधीनता और प्रतिष्ठा' का मूल्य कुछ-कुछ मैने भी समझा है आप की सीख से, मेरा क्षेत्र (यद्यपि उसे 'मेरा' कहना कितनी बडी स्पर्धा है मेरी !) आप के क्षेत्र से दूर है, पर उस मे भी मेरी थोडी-सी शक्ति के लिए कुछ करने को है .इस सकट मे हम हार जायेगे मै नही मानती, और मुझे लगता है कि यह न मानना भी स्वय एक मोर्चा है क्योकि मानव-नियति मे विश्वास खोना मानव की प्रतिष्ठा की लडाई हार जाना है भुवन दा, आप वडे है, मै जैसे राम जी की सेवा में गयी गिलहरी से अधिक कुछ नही हूँ, पर आप के आदेश से कुछ भी कर सकूँ तो अपना गौरव मानूँगी " फिर सहसा विषय वदल कर उसने मैसूर की अपनी सगीत-शिक्षा की कुछ बाते लिखी थी, और अन्त मे लिखा था कि आगामी गर्मियो में वह लौट जायगी। यही उसने कुछ दिन बाद चन्द्रमाधव को भी लिख दिया ।

२६ जून १९४० को सवेरे जव गौरा दिल्ली पहुँची, तव रेडियो से घोषणा हो रही थी कि फ्रास की लडाई समाप्त हो गयी; सारा फ्रास जर्मनी का अधिकृत हो गया। गौरा ने सोचा था कि वह दिल्ली पहुँचते हीं भुवन को सूचना देगी कि वह वहाँ है और भुवन आ कर मिल जावे, पर आने के वाद वह पत्र नही लिख सकी। उस के अनेक कारण हुए, यह दूसरी वात है कि भुवन ने न पत्र लिखने की उस की इच्छा जानी, न पत्र न लिखने के कारण ।

चन्द्रमाधव को उसने लिखा

प्रिय श्री चन्द्रमाधव,

आप के दोनो पत्र मिल गये। भुवन दा के जो समाचार आप ने दिये, उनके लिए आभारी हूँ। आप ने मुझे उन्हें पत्र लिखने को कहा है, पर मेरे पास अपनी ओर से अभी कुछ लिखने को नही है और आप ने जो बातें लिखी हैं, उन के बारे में कुछ कहने का अधिकार अगर भुवन दा समझेंगे तो स्वय मुझे लिख ही देंगे। तब तक मैं इस के सिवा क्या समझ सकती हूँ कि उन के जीवन में हस्तक्षेप करने का मेरा कोई अधिकार नही है ? वह बडे हैं, और मेरे श्रद्धेय हैं, इतना मेरे लिए काफी है।

आप शीघ्र यहाँ आने वाले है, आइये। मैं अभी यही हूँ, कुछ दिन तो रहूँगी ही। काम की तलाश करूँगी ।

आपकी

गौरा

पत्र भेज कर वह फिर एकान्त मे बैठ कर चन्द्र के दोनो पत्र उलट-पलट कर देख गयी; एक-आध स्थल पर उसने कोई वाक्य पढा पर वैसे लगातार पढ नही सकी; अक्षर उसकी आँखो के आगे तैर गये। उसने पत्र हटा दिये और सगीत की एक कापी उठा कर जल्दी-जल्दी उलट कर एक जगह से खोली, उस के पन्ने पर अपने हाथ की लिखावट पर आँखें जमा दी। लेकिन उस की अपनी लिखाई भी तैर गयी सहसा दो बडी-बडी बूँदें उस पर पडी और लिखाई फैल गयी। गौरा ने आँचल से उसे पोछा, पर उस से फैली हुई स्याही का एक लम्बा धब्बा कागज़ पर बन गया। सहसा गौरा बिल्कुल अवश हो गयी और कापी पर बाँहें और सिर टेक कर फफक कर रो उठी।

अन्तराल

रेखा द्वारा चन्द्रमाधव को

प्रिय चन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला है। सोचती तो हूँ कि चलो, हो ही आऊँ कुछ दिन पहाड़ पर, मगर कुछ निश्चय नही कर पाती हूँ। यो अभी सोचने और निश्चय करने के लिए काफी समय भी तो है।

पर तुम्हारे मित्र को मै क्यो लिखूं ? और मेरी बात का उन पर क्या असर होगा ? उन की बातचीत और सम्पर्क से मै बहुत प्रभावित हुई हूँ निस्सन्देह , और लखनऊ से प्रतापगढ तक की यात्रा तो एक 'रेवेलेशन' ही था मानो—तुम जानते हो,रेलगाडी मे बिलकुल अजनबी से कभी-कभी ऐसा निकट सम्पर्क हो जाता है जिसे साधारण सामाजिक जीवन में प्राप्त करते बरसो भी लग सकते है, समाज मे आदमी अपने सब छद्म, कवच, अस्त्र-शस्त्र जो धारण किये रहता है और सब ओर से चौकस रहता है, रेल में वह उन्हे उतार कर सहज स्वाभाविक मानव प्राणी हो जाता है लेकिन यह मै अपनी बात कहती हूँ, डा० भुवन स्वय असम्पृक्त और दूर है और वह जो तय करेगे अपने मन से ठीक-बेठीक और सुविधा विचार कर ही करेगे। फिर भी, तुम ने कहा है, इसलिए यह पत्र साथ में है, तुम्ही अपने पत्र के साथ उन्हें भेज देना !

इस बार लखनऊ का प्रवास सुखद रहा। इसके लिए तुम्हारी बहुत कृतज्ञ हूँ । सच-मुच, चन्द्र, मेरे लिए तुम जो कुछ करते रहे हो, जब सोचती हूँ तो गड जाती हूँ—कितने अपात्र को तुमने अपनी करुणा दी है। यो मै तुम से बडी हूँ, पर लेकिन जो नही कह सकूँगी, उसे कहने का यत्न नही करूँगी। पर मै सच तुम्हारी ऋणी हूँ।

आशा है तुम प्रसन्न हो, और यथावत् काफी हाउस जाते हो। दो-एक प्याले काफी के मेरी ओर से भी पी लेना—पर काफी अधिक मत पिया करो !

तुम्हारी
रेखा

इस के साथ का पत्र, रेखा द्वारा भुवन के नाम .

प्रिय भुवन जी,

यह पत्र लिख तो रही हूँ चन्द्र के आग्रह से, पर इससे आपको एक बार फिर सच्चे

मन से धन्यवाद देने का जो अवसर मिला है उस का अभिनन्दन करती हूँ। आप का परिचय मेरे इधर के धुँधले वर्षों में एक प्रखर ज्योति-किरण सा है, मैं तो किसी हद तक कर्मवादी हूँ और सोचती हूँ कि मेरा इस बार का लखनऊ जाना और आप से भेंट होना और आप के साथ प्रतापगढ तक लौटना 'लिखा हुआ' था। यों तो मानव-जीवन एक अकारण, अनिर्दिष्ट, आकारहीन गतिमयता-सा लगता है, पर मेरा खयाल है, बीच-बीच में विधि मानवों के जीवन में थोडा-सा हस्तक्षेप जरूर करती है—एक-एक गोट को उठा कर एक-एक दिशा दे देती है इस सब को वैज्ञानिक थ्योरी मान कर इस का खडन-मडन न करें—मैं अपनी भावना की बात कहती हूँ।

चन्द्र का पहाड चलने का आग्रह है। मैंने अभी कुछ निश्चय नहीं किया, मेरी कठिनाइयाँ तो आप देखेंगे ही। चन्द्र का विचार था कि आप भी चलें, क्या ऐसा हो सकेगा? बल्कि आप भी चलें, और अपने परिचित और किसी को भी साथ ले—पुरुष, स्त्री, परिवार, जो आप चाहें और जिनका साथ आप को प्रीतिकर रहे। 'चलें' तो मैं कह गयी, पर अपने जाने का निश्चय तभी करूँगी जब आप का पक्का पता आ जाय।

मेरा पता ऊपर दिया है। आप उत्तर चाहें मुझे दें, चाहे चन्द्रमाधव को ही सीधे दे दें।

विनीत

रेखा

(यह पत्र चन्द्रमाधव के पत्र के साथ भुवन को मिला तो उसके हाशिये पर जगह-जगह चन्द्र के नोट थे। 'ज्योति-किरण' वाली बात के बराबर लिखा था "मेरी बधाई स्वीकार करो, दोस्त!" 'विधि के हस्तक्षेप' वाली के बराबर लिखा था "अब निस्तार नहीं है—विधि ने जो दिशा दे दी वह तो पकडनी ही होगी!" अन्त में लिखा था "न, तुम उत्तर सीधे ही देना—तुम्हारी गति उसी दिशा में है।")

भुवन द्वारा रेखा को

प्रिय रेखा जी,

आप के पत्र के लिए कृतज्ञ हूँ, यद्यपि उस से साथ ही अपनी अकिंचनता का बोध बडे ज़ोर से हो आया। आप अगर कर्मवादी हैं तो धन्यवाद देने का प्रश्न यों भी नहीं उठना चाहिए, फिर मैं तो किसी तरह अधिकारी नहीं हूँ। बल्कि मुझ से कूप-मडूक को जब-तब कोई बाहर का प्रकाश दिखा दे, तो मुझे कृतज्ञ होना चाहिए—भले ही उस प्रकाश में चौंध भी लगे!

पहाड की बात चन्द्र ने भी लिखी है। निमन्त्रण के लिए मैं आप दोनों का आभारी हूँ। और जा सकता तो मुझे बडी प्रसन्नता होती, पर अभी कुछ ठीक नहीं कह सकता।

इस की बहुत काफी सम्भावना है कि ग्रीष्मावकाश मे मुझे एक वैज्ञानिक मडल के साथ, या उस की ओर से कही जाना पडे। बहुत सम्भव है कि पहाड ही जाना पडे, क्योकि कॉस्मिक रश्मियो के सम्बन्ध का काम है और उस के लिए मापक यन्त्रो को पहाडी ऊँचाइयो पर या जल की गहराई मे ले जाना होगा। यदि ऐसा हुआ, तो सम्भव है, कुछ दिन के लिए मैं कही पहाड पर आप लोगो को मिल जाऊँ। नही तो फिर किसी सुअवसर की प्रतीक्षा करनी होगी। पर कुलू कदाचित् न हो सके—उधर जोज़ी-ला पर एक दूसरा दल जायगा यह निश्चित है। मैं या भूमध्य रेखा की ओर लका मे कही जाऊँगा या किसी निर्जन पहाडी झील पर—शायद कश्मीर मे। कुछ निश्चय होते ही सूचित करूँगा।

आशा है आप प्रसन्न हैं।

आप का
भुवन

भुवन द्वारा चन्द्रमाधव को

प्रिय चन्द्र,

तुम्हारा पत्र और उस के साथ रेखा देवी का पत्र और उस पर तुम्हारी बदतमीज़ियाँ सब मिली। रेखा जी को मैंने उत्तर तभी दे दिया था। लिख दिया था कि मेरे जा सकने का कोई ठीक नही है, क्योकि मैं शायद काम से कही जाऊँ। तुम्हे चिट्ठी लिखने मे इसी लिए देर की कि कुछ पक्का पता लग जाय। अब यह तय है कि मैं कश्मीर जाऊँगा, पहलगाँव से ऊपर तुलियन झील है, वहाँ पर। मैं कॉस्मिक रेज़ पर कुछ काम करता रहा हूँ, तुम जानते हो, उसी सिलसिले में कुछ नये मेज़रमेंट लेने होगे अन्यत्र लिये गये मेजरमेंट की चेकिंग के लिए। एक टोली रोहतग के पार जोज़ी-ला जा रही है ऊँचाइयो पर माप लेने के लिए, मैं तुलियन झील में पानी की गहराई मे माप लूँगा।

इस लिए कुलू का तो कोई सवाल नही है। अधिक-से-अधिक एक बात हो सकती है। अगर तुम लोग कश्मीर जाओ, तो मैं चार-छ दिन शायद कही मिल सकता हूँ। यहाँ से कुछ यन्त्र वगैरह साथ ले कर चलूँगा; दिल्ली से उन्हे बुक कर देना होगा और उन के पहुचने मे कुछ दिन लगेगे ही। यह समय या तो दिल्ली में बिता सकता हूँ, या फिर आगे कही जा सकता हूँ। तुम लोग जैसा प्रोग्राम बनाओगे, मुझे सूचना देना।

रेखा जी को अलग पत्र नही लिख रहा हूँ। मैंने कहा तो था कि पक्का होते ही सूचना दूँगा, पर तुम्ही लिख देना; फिर जैसा तय होगा मुझे बता देना।

और क्या हाल-चाल हैं? लखनऊ अभी कायम है या कि तुमने उलट दिया अपनी अखबारनवीसी से?

तुम्हारा
भुवन

भुवन द्वारा गौरा को :

प्रिय गौरा,

यह बिना तुम्हारी ओर से प्रेरणा या 'कोच' के लिखा गया पत्र पाकर तुम्हें अचम्भा होगा। होगा न ? पर कोई कोयला इतना काला नही होता कि सुलग कर राख न हो सके ! मुझे भी दैवी अनुकम्पा कभी छू जाती है और नेक काम कर बैठता हूँ।

ग्रीष्मावकाश मे, शायद, तुम से भेट न हो सके। मै काम से कश्मीर जा रहा हूँ। कॉस्मिक रश्मियो की तलाश में। कभी सोचता हूँ, इन रश्मियो को हम ठीक समझ सके, विश्व मे बिखरी हुई इस मुक्त शक्ति को काम मे ला सके, तो मानव का कितना बडा कल्याण उसके द्वारा हो सकेगा—सच ही 'शिव' सर्वत्र फैला हुआ, घटघटव्यापी और अन्तर्यामी है, उसे पहचान सकने, उससे सम्पृक्त हो सकने की ही बात है   फिर ध्यान आता है, आज जो इतनी तत्परता कॉस्मिक रश्मियो की खोज मे दिखायी जा रही है, वह क्या उनकी कल्याणकारी सम्भावनाओ के लिए ? या कि ध्वस के रथ-चक्र मे एक और अरा लगा देने के लिए, जिस से उस की गति और तीव्र हो सके ? लेकिन उस डर से विज्ञान को रुकना नही होगा   वैज्ञानिक को तथ्य की शोध भी करनी होगी और विवेक को भी जगाना होगा ।

कुछ दिन पहले लखनऊ गया था। चन्द्रमाधव अच्छी तरह है, काफी और शहर का स्कैंडल—राजनैतिक-सामाजिक—उस का मुख्य खाद्य है। और वह इस पर पनप भी रहा है। उस के यहाँ एक और रिमार्केबल व्यक्ति से परिचय हुआ—एक श्रीमती रेखा देवी से। तुम उन्हे देखती तो अवश्य प्रभावित होती—एक स्वाधीन व्यक्ति जिसका व्यक्तित्व प्रतिभा के सहज तेज से नही, दु ख की आँच से निखरा है। दु ख तोडता भी है पर जब नही तोडता या तोड पाता, तब व्यक्ति को मुक्त करता है। ऐसा ही कुछ मुझे उनमे लगा। हम लोगो की कई तरह की बहस हुई—सत्य पर, मानवता पर, काफी पीने पर ! एक गाना भी उनसे सुना—बँगला का—गला बहुत अच्छा है पर गाने की बात पर न जाने किस रागात्मक गाँठ का बोझ है। जो अच्छा गा सकता है, वह क्यो नही गाते समय सब राग-विराग से मुक्त हो ? सगीत को तो गायक को ही नही, श्रोता को भी राग-मुक्त कर देना चाहिए। परिणाम यही निकलता है कि सगीत से उन का कलाकार का सम्बन्ध नही है, भावुक का है। पर तर्कवाद को यहाँ तक क्यो ले जाया जाय ? उन की आवाज़ बहुत अच्छी थी, और उस मे 'सोज़' था ।

तुम क्या कर रही हो—कब इधर आती हो ? कश्मीर से लौट कर तो शायद भेट होगी ही। आगे क्या करने का विचार है ? लिखना ! और क्या जाने, दैव-कृपा फिर मुझे छू जाय और मैं फिर पत्र लिख दूं।

तुम्हारा स्नेही

भुवन

चन्द्र द्वारा रेखा को

प्रिय रेखा जी,

भुवन का पत्र आया है। कुलू तो वह नही जा सकेगा—कश्मीर जा रहा है कुछ रिसर्च के सिलसिले मे—पर उसने लिखा है कि अगर हम लोग कश्मीर में कही मिल सके तो वह कुछ दिन हमारे साथ रहना चाहेगा। क्यो न वैसा ही प्रोग्राम वनाया जाय ? कश्मीर चले, वही भुवन साथ हो लेगा और वहाँ से फिर उसे आगे जहाँ जाना होगा चला जायगा। आप चाहे वही रह जाइयेगा चाहे लौट आइयेगा। यह भी हो सकता है कि हम सव दिल्ली मिले और वही से साथ चलें। मैंने छुट्टी ले ली है, अव आप अगर न चलेंगी तो मुझे वहुत-वहुत सख्त सदमा पहुँचेगा।

मेरे खयाल मे सव से अच्छा होगा कि हम लोग मिल कर कुछ पक्का प्रोग्राम वना ले, और भुवन को सूचना दे दे। उसने भी यही लिखा है। आप एक-आध दिन फिर लखनऊ आ जाइये न—या मुझे लिखें, मै प्रतापगढ आ जाऊँ ? दो घटे का तो रास्ता है।

प्रतीक्षा में,

आप का

चन्द्र

पुन चन्द्र द्वारा रेखा को

रेखा,

तुम (हाँ, मै जानता हूँ तुम इस सम्वोधन से चौंकोगी; यद्यपि तुम मुझे तुम कह सकती हो, पचासो औरत-आदमी एक दूसरे को तुम कहते है और कोई नही चौंकता, पर तुम्हारा चौंकना ठीक भी है क्योकि मै हजारो की तरह तुम्हें तुम नही कह रहा हूँ, वैसे कह रहा हूँ जैसे एक एक को कहता है) तुम यहाँ आओगी, दिन-भर के लिए और रात की गाडी से वापस चली जाओगी। ठीक है, इतना ही सही। यह भी हो सकता है कि इतना भी तुम इस लिए कर रही हो कि भुवन के पास जाने की वात है, नही तो न आती। वह भी सही। यह होता ही है कि स्त्रियाँ जहाँ उदासीनता देखती है, वहाँ आकृष्ट होती है। पर रेखा, तुम नही जानती कि मैंने कितनी वार तुम्हें वुलाना चाहा है, 'तुम' कह कर ही नही, 'तू' कह कर—कुछ न कह कर केवल आँखो से, मन से, हृदय की धडकन से, अपने समूचे अस्तित्व से ! तुम अगर डेस्टिनी को मानती हो तो कहूँ कि जव से तुम्हे देखा है, तव से यह जानता रहा हूँ कि डेस्टिनी ने मुझे तुम्हारे साथ वाँधा है, और मै चाहूँ न चाहूँ इसके सिवाय कोई उपाय नही है कि मै तुम्हारी ओर वढता जाऊँ, तुम दूर जाओ तो तुम्हारे पीछे जाऊँ पृथ्वी के परले छोर तक भी ! और आज तीन वर्षो से यह वात मै तुम से कहना चाहता हूँ, एक-आध दफे मैने ठान कर प्रयत्न भी किया है पर तुम टाल गयी हो। पर आज मैंने निश्चय किया है कि मै कहूँगा ही, किसी तरह नही रुकूँगा।

उस दिन जब मैंने अपने जीवन की , अपने विवाह की कहानी तुम्हें सुनायी थी, तब तुमने पूछा था कि यह सब क्यो मैं तुम्हे बता रहा हूँ। उस दिन भी मैंने चाहा था कि पूरी बात तुम से कह दूँ। फिर बडे दिनो मे भी—पर तब भी तुम और-और बाते करके टाल गयी थी। पिछली बार भुवन के कारण कोई मौका ही नहीं मिला। पर एक तरह से मैं उससे खुश ही हूँ। क्योकि उस बार मुझे और भी स्पष्ट दीख गया कि तुम्हारे बिना मेरी गति नही है। यह भी तब मैंने अनुभव किया—तुम चाहे इसे न मानो—कि तुम्हारे अधूरेपन को मै ही पूरा कर सकता हूँ, मै ही, और कोई नही, कोई नही! तुम अधूरेपन से भी इनकार करोगी, तुम भविष्य से भी इनकार करती हो—तुमने अपने को बचाये रखने के लिए बहुत-सी बोगस थ्योरियाँ गढ रखी हैं जिन्हे तुम भी नही मानती हो, मैं जानता हूँ! और भुवन से तुम्हारे व्यवहार मे यह मुझे स्पष्ट दीखा कि तुम्हारी सब थ्योरियाँ केवल एक रक्षा कवच है, ताबीज की तरह तुम ने उन्हे बाँध रखा है क्योकि तुम्हारी सारी प्रवृत्तियाँ उनके विरुद्ध हैं और तुम स्वय अपनी प्रवृत्तियो से डरती हो। क्यो डरती हो? जो सहज प्रवृत्तियाँ है, वे कल्याणकारी हैं। और तुम्हारी प्रवृत्तियाँ और मेरी प्रवृत्तियाँ समानान्तर हैं, रेखा! भुवन दूसरी दुनिया का आदमी है। हो सकता है कि मुझ से ऊँचा, अच्छी दुनिया का ही हो, पर वह दूसरी दुनिया है, दूसरा स्तर है, और वह स्तर हमारे-तुम्हारे स्तर को कही नही काटता। क्यो तुम और अपनी प्रतारणा करती हो—क्या तुम्हारे जीवन मे पहले ही यथेष्ट प्रतारणा नही रही?

रेखा, तुम बार-बार कह देती हो कि तुम मुझ से बडी हो, पर यह भी एक कवच है तुम्हारा। उम्र मे भी तुम मुझ से दो-तीन बरस छोटी तो हो ही, वैसे भी किस बात मे बडी हो? यो मैं तुम्हारा सम्मान करता हूँ, सदा करूँगा, तुम्हारे पैर चूमूँगा, वह बात दूसरी है, पर कौन-सा अनुभव तुम्हे इतनी दूर ऊपर उठा ले जाता है? मैं बच्चा नही हूँ, रेखा, दो बच्चो का पिता हूँ क्लेश तुम ने भोगा है अवश्य, पर मैं उससे अछूता होऊँ यह नही है। और विवाह के बाद मैं यूरोप घूमा हूँ—युद्ध के आसन्न सकट से निराश, नीति-हीन प्रतिमान-हीन यूरोप—और उस में जो अनुभव मैंने पाये हैं वे—क्षमा करना—एक विवाह और एक विच्छेद से कही अधिक तीखे, कटु और पका देने वाले हैं तभी तो, लौट कर फिर मैं गृहस्थी मे खप न सका, घर गया, कुछ रहा, हाँ, पत्नी के साथ सोया भी और उस मे एक बच्चा भी पैदा किया, पर इन सब अनुभवो ने उस गर्म कडाहे को और तपाया ही, उस तेल को और तचाया ही जिस मे जल कर मैं आज वह बना हूँ जो मैं हूँ। तुम ने एक बार कहा था कि तुम्हारे आसपास दुर्भाग्य का एक मडल है, पर मैं देखता हूँ, जानता हूँ, अनुभव करता हूँ कि तुम मेरी आत्मा के घावो की मरहम हो, तुम्हारा साया मेरे लिए राहत है, और —यदि तुम वह मुझे दे सको तो—तुम्हारा प्यार मेरे लिए जन्नत है मैं बडा लालची रहा हूँ, जीवन से मैंने बहुत माँगा है, छोटी चीज कभी नही माँगी, बडी से बडी माँगता आया हूँ, मैं सच कहता हूँ कि इस से आगे मेरी और कोई माँग नही है, न होगी—यह मेरी

सारी चाहनाओं, कल्पनाओं, वासनाओं, आकांक्षाओं की अन्तिम सीमा हैं, मेरे अरमानों की इति, मेरी थकी प्यासी आत्मा की अन्तिम मंजिल। रेखा, तुम में असीम करुणा है—तुम तत्काल प्यार नही दे सकती तो करुणा ही दो, मुक्त करुणा, फिर उसी में से प्यार उपजेगा।

मैं लालची हूँ, मैं स्वार्थी भी हूँ। पर इतना स्वार्थी नही, रेखा, कि इस बात को मैंने तुम्हारी ओर से न सोचा हो। तुम अकेली हो, मुक्त हो, नौकरियाँ करती हो। पर कहाँ तक? किस लिए? मुक्ति आज नारी चाहती हैं, चलो ठीक है, यद्यपि आज मुक्त कोई नही है और है तो इस महायुद्ध के बाद शायद वह भी न रहेगा—पर नौकरी तो कोई नही चाहता? मुक्ति के लिए नौकरी, नौकरी के लिए मुक्ति, दोहरा धोखा है। सेक्योरिटी हर कोई चाहता है, और उसी में मुक्ति है। पुरुष के लिए भी, और स्त्री के लिए और भी अधिक।

इन बातो की यहाँ क्या रेलेवेंस है? बताता हूँ। हेमेन्द्र (हम दोनों के बीच कभी उसका नाम नही लिया गया है, आज ले रहा हूँ, लाचारी है) मलय में जिसके साथ रहता है उसके या और किसी के साथ शीघ्र ही शादी करना चाहेगा—या न चाह कर भी करेगा क्योंकि इस के बगैर उसका वहाँ अधिक दिन रहना सम्भव नही होगा—जग दोनो को अलग कर देगा और हेमेन्द्र को यहाँ ला फेंकेगा या जेल में डाल देगा। और इस के लिए वह तुम्हे डाइवोर्स करेगा ही। उस के लिए सब से आसान तरीका यह होगा कि धर्म-परिवर्तन कर के डाइवोर्स माँगें—तुम न धर्म-परिवर्तन करोगी, न उस के पास जाओगी, बस। तुम डाइवोर्स माँगती तो वह न देता—और शादी के लिए माँगती तो और भी नही, तुम्हे वह गुलाम रख कर सताना ही चाहता—पर अपनी सुविधा के लिए वह सब करेगा।

और मैं? तुम्हारा सिविल विवाह था, तुम्हारी बात और है। मेरी स्थिति दूसरी है। पर मैं अपने विवाह को विवाह कभी नही मान सका हूँ—ऐसा विवाह सन्तान को जायज़ करने की रस्म से अधिक कुछ नही है, न हो सकता है। मैं अलग हूँ, अपने को अलग और मुक्त मानता हूँ, और मेरा परिवार भी मुझसे न कुछ चाहता है, न कुछ अपेक्षा रखता है सिवाय खर्चे के जो मैं भेजता हूँ और भेजता रहूँगा। सच रेखा, मुझे कभी उस बेचारी स्त्री पर बडी दया आती है। बल्कि उसका किसी से प्रेम हो, वह किसी से शादी करना चाहे, तो मैं कभी बाधा न दूँ बल्कि भरसक मदद करूँ—खुद जाकर कन्या-दान कर आऊँ—जो कुमारी नही है उसे कन्या कहना असम्मत तो नही है न?

रेखा भविष्य है, होता है, तुम मानो! पर तुम्हारे बिना मेरा भविष्य नही है, यह मैं क्षण-क्षण अनुभव करता हूँ। मैं चाहता हूँ, किसी तरह अपनी सुलगती भावना की तपी हुई सलाख से यह बात तुम्हारी चेतना पर दाग दूँ, कि तुम्हारी और मेरी गति, हमारी नियति एक है, कि तुम मेरी हो, रेखा, मेरी, मेरी जान, आत्मा, मेरी डेस्टिनी, मेरा सब कुछ—कि मुझसे मिले बिना तुम नही रह सकोगी, नही रह सकोगी; तुम्हे मेरे पास आना

ही होगा, मुझसे मिलना ही होगा, एक होना ही होगा।

तुम्हारा अभिन्न और तुम से दूर
च०

पुनश्च

यह पत्र शायद प्रतापगढ भेजना ठीक न होगा। तुम आओगी, तो यही तुम्हे दूँगा। तुम दोपहर को पहुँचोगी, स्टेशन से ही सीधे काफी हाउस चलेंगे, वहाँ से पुरानी रेजिडेंसी; उस के खँडहरो मे एकान्त मे वैठ कर ही तुमसे वात करूँगा—वही यह पत्र तुम्हे दूँगा, वही पढवाऊँगा . मै देखना चाहता हूँ इसे पढते हुए तुम्हारे चेहरे की एक-एक सूक्ष्म-से-सूक्ष्म गति—क्योकि उस में मेरा भाग्य लिखा होगा .. रेखा, अभी तक मै भी खँडहर हूँ। तुम भी खँडहर हो, पर वहाँ से हम खँडहर नही, एक नयी, सुन्दर, सम्पूर्ण, जगमगाती इमारत निर्माण कर के निकलेंगे ऐसा मेरा मन कहता है .

चन्द्रमाधव द्वारा गौरा को :

प्रिय गौरा जी,

वहुत दिनो से आपने मुझे याद नही किया। मैने पिछले महीने जो पत्र लिखा था, उसकी पहुँच भी आपने न दी। फिर भी सगीत के तरन्नुम में हम वेसुरे लोगो को बिलकुल भूल न गयी होगी ऐसी आशा करता हूँ।

पर आज कोई वेसुरा तर्क भी मै छेडने नही जा रहा हूँ; मैने निश्चय किया है कि अब अपनी वात नही किया करूँगा, हर किसी से उस के प्रिय विषय की चर्चा किया करूँगा। समझ लीजिए कि यही मेरी साधना होगी—देखिए, मै भी साधना-धर्म को मान गया, और यह आप की व्यक्तिगत विजय है।

भुवन जी यहाँ आये थे, यह मैने आप को पिछले पत्र में लिखा था। रेखा देवी के विषय में भी लिखा था। वह वास्तव में वडी प्रभावशालिनी महिला है, नही तो भुवन सरीखा आदमी अपनी यात्रा का प्रोग्राम किसी के साथ के लिए बदल दे, यह क्या सम्भव है?

रेखा जी अभी हाल में फिर यहाँ आयी थी। इधर भुवन से उन का कुछ पत्र-व्यवहार भी हुआ था, उन्होने भुवन को पहाड चलने के लिए निमन्त्रित किया था। पहले मेरे भी साथ चलने की वात थी, पर अब प्रोग्राम कुछ वदल गया है। भुवन जी रिसर्च के लिए कश्मीर जा रहे है न, मै तो वहाँ न जा सकूँगा, पर रेखा जी कदाचित् कश्मीर ही जायेगी। इधर वह कोई नौकरी नही कर रही है, इसीलिए पूरी छुट्टी है।

मै सोचता हूँ मै भी जा सकता। डा० भुवन जैसे लगन वाले वैज्ञानिक के साथ पहाड में कही कुछ दिन रह सकता, तो कुछ सीख ही लेता। वह है भौतिक विज्ञान के माहिर, पर और कितना कुछ जानते है. एक मै हूँ कि स्वय अपने विषय का ऊपरी ज्ञान रखता हूँ—पर जर्नलिज्म की यही तो मार है; कही गहरे नही जाने देता, सब कुछ का ज्ञान होना

चाहिए, पर उथला ज्ञान, कही भी गहरे गये कि दूसरे जर्नलिस्ट सन्देह से देखने लगते हैं, यह कौन उजबक हमारे बीच मे आ गया.

भुवन के गुणो से मैं क्रमश अधिकाधिक प्रभावित होता जाता हूँ। पर सब से बडा गुण उन का यह मानता हूँ कि उन के द्वारा मेरा आप से परिचय हुआ। है स्वार्थ-दृष्टि, पर मेरे लिए तो यही गुण सब से अधिक सुखद सिद्ध हुआ न !

यह पत्र न मालूम आप को समय पर मिलेगा या नही, आप कदाचित् दक्षिण से चल देने वाली हो। पर वहाँ न भी मिला तो आशा है रिडायरेक्ट तो हो ही जायगा। दिल्ली पहुँचे तो मुझे सूचित कीजिएगा। मैं कुछ दिन के लिए वहाँ जाने की सोच रहा हूँ। छुट्टी पहाड जाने के लिए ली थी, पर भुवन दा का साथ तो हुआ नही, अब यह सोचता हूँ कि दिल्ली हो कर मसूरी ही कुछ दिन रह आऊँ। आप का क्या मसूरी जाने का विचार नही है ! आप के पिताजी तो जायेंगे—बल्कि वही होगे ?

आप का स्नेही
चन्द्रमाधव

चन्द्र द्वारा भुवन को

भाई भुवन,

रेखा जी दो-चार दिन पहले यहाँ आयी थी। मेरा पहाड़ जाना तो न हो सकेगा। मेरा साथ उन्हे अभीष्ट भी नही है। वह तुम्हारे साथ ही जाना चाहती है। खुशकिस्मत हो, दोस्त ! बुद्धू हो तो क्या हुआ।

कभी जब पहाड से उतरोगे, तो मुझे भी याद कर लेना। मैं वही का वही हूँ, चन्द्र-माधव, जर्नलिस्ट, तुम्हारा अनुगत और प्रशसक, और अब तुम्हारे तेज से अभिभूत।

चन्द्र

रेखा द्वारा भुवन को

प्रिय भुवन जी,

आप के पिछले पत्र के बाद आशा की थी कि कुछ निश्चय होने पर आप फिर लिखेंगे। आप का कोई पत्र नही आया। हाँ, चन्द्रमाधव जी की ओर से सूचना मिली थी कि उनको आप का पत्र आया है, जिस में आप ने कश्मीर की बात लिखी थी। वही का प्रोग्राम बताने के लिए उन्होने मुझे लखनऊ बुलाया भी था, और मैं एक दिन दुपहर को जा कर रात की उसी गाडी से लौट आयी थी जिस से हम लोगो ने साथ यात्रा की थी।

भुवन जी, पहाड जाने के सारे प्रोग्राम को रद्द समझें। वह प्रोग्राम चन्द्रमाधव जी की प्रेरणा से बना था, उन्ही के साथ हम लोगो के जाने की बात थी और इसी के लिए मैंने भी आप से अनुरोध किया था, पर अब मैं उन के साथ न जा सकूँगी—न अकेले, न पार्टी मे—इसलिए जाने की बात छोड देनी चाहिए। हाँ, आप अगर और लोगो को

साथ ले कर जाने वाले हो तो मैं चल सकूँगी और आप का साथ पा कर प्रसन्न हूँगी—हाँ, आप मेरा साथ चाहे तव ।

आप को व्यर्थ ही इतना कष्ट देने के लिए क्षमा चाहती हूँ ।

आप की
रेखा

(आगे नया पन्ना जोड कर .)

भुवन जी, चन्द्रमाधव जी आप के मित्र है और उन का आप का परिचय बहुत पुराना है । ऐसे मे मैं कोई कटुता लाना नही चाहती, और जिस स्थिति मे फँस गयी हूँ उस के कारण लज्जा और सकोच के मारे गडी जा रही हूँ । फिर भी मैंने जो लिखा कि चन्द्रमाधव जी के साथ कही न जा सकूँगी उस के स्पष्टीकरण में कुछ तो कहना ही होगा। चन्द्रमाधव जी ने मुझे लखनऊ बुलाया था, मैं दोपहर को पहुँची तो पहले हम लोग काफी हाउस गये । वहाँ आप के विषय मे वाते होती रही, मैंने लक्ष्य किया कि उन की बातो मे बार-बार एक छिपी ईर्ष्या व्यक्त हो उठती है जिस का कारण न समझ सकी । फिर उन्होंने कहा, "यहाँ से रेज़िडेंसी चला जाय ।" बाहर आँधी के आसार थे—आजकल धूल के कैसे झक्कड आते है, आप तो जानते है—मैंने आपत्ति की तो बोले, "रेखा जी, तुम ज़रा-सी आँधी से डरती हो?" वह मुझे सदा आप कहते है, आप और तुम की खिचडी कुछ अद्‌भुत लगी पर शायद दिल्ली का मुहावरा है इसलिए मैंने ध्यान न दिया, यह भी न लक्ष्य किया कि उन का स्वर आविष्ट है—बाद में यह भी याद आया ।

हम लोग रेज़िडेंसी पहुँचे तो वडे ज़ोर की आँधी आयी । वह ज़ोर से हँसे और बोले, "ठीक है, विल्कुल मौजूँ है ।" तब मैंने सँभल कर वापस चलने को कहा, पर उन्होंने कहा, "यहाँ तक आयी हो तो मेरी बात सुन कर जाओ ।"

भुवनजी, आप समझदार है और मैं स्त्री हूँ । पूरी बात कहने की आवश्यकता भी नही है और उसमे व्यर्थ सब को ग्लानि ही होगी ; आप को इस कीचड़ मे खीचना भी न चाहिए । सक्षेप मे कहूँ कि चन्द्रमाधव ने अपना प्रेम निवेदन किया—जबानी भी और एक लिखा हुआ पत्र दे कर भी । पत्र मैंने वहाँ नही पढा, उन की बातो से ही स्तब्ध और अवाक् हो गयी क्योकि मैं उन्हे अपना हितैषी, मित्र और सहायक मानती थी—उस नाते उन की बहुत कृतज्ञ भी हूँ—यह नही जानती थी कि उन के हृदय मे कैसे भाव भरे है । मैं वहाँ से तत्काल एक शब्द भी कहे विना लौट आयी, वह वही रहे—पीछे मैंने सुना कि रो रहे है पर मैं रुकी नही—फिर ताँगा पा कर मैं सीधी स्टेशन पहुँची, काफी पीने बैठी तो ध्यान आया कि उन का पत्र मेरे हाथ मे है । वह मैंने नही पढा । फिर वेटिंग रूम में बैठी रही, रात की गाडी से लौट आयी ।

प्लेटफ़ार्म पर चन्द्रमाधव जी थे । उन्होंने मुझ से पूछा कि चिट्ठी का उत्तर क्या

उन्हे दूँगी ? मैंने कहा कि अपनी समझ से उत्तर तो मैं दे आयी जब चली आयी। तब उन्होंने अपना पत्र वापस माँगा। मैंने दे दिया।

भुवन जी, मैं बहुत ही लज्जित हूँ सारी घटना से, पर समझ मे नही आता कि क्यो मेरे साथ ऐसी बात होती है—सिवा इसके कि फिर नियति की बात कहूँ ! मेरे साथ दुर्भाग्य का एक मडल चलता है—जो छूता नही, ग्रसता है क्या आप मुझे क्षमा दे सकेगे ?

रेखा

रेखा द्वारा भुवन के नाम

प्रिय भुवन जी,

परसो एक पत्र भेज चुकी हूँ। आज फिर कष्ट दे रही हूँ। साथ में चन्द्रमाधव जी का पत्र है जो मुझे अभी इसी डाक से मिला है। पत्र अपनी बात स्वय कहता है।

आप से अनुरोध करती हूँ कि मेरे कारण आप उन के प्रति अपने मन मे मैल न आने दे। मैत्री दुर्लभ चीज है, और मेरी लिखी बातो की उन के जीवन मे कोई अहमियत होगी ऐसा नही है, वह शीघ्र ही भूल जायेगे। इसी लिए यह भी प्रार्थना करती हूँ कि आप उन्हें न जतावे कि मैंने यह सब आप को लिखा है मैं नही चाहती कि यह जानकर उन्हें और ग्लानि हो और आप के उन के बीच में सदा के लिए ग्लानि की दरार पड जाय।

आप की चिट्ठी की बाट देखती रहूँगी। अब बल्कि सोचती हूँ, कुछ दिन आप के निकट इसी लिए रह सकूँ कि जानूँ, आप ने मुझे क्षमा कर दिया है, नही तो एक गहरा परिताप मुझे सालता रहेगा।

आप की

रेखा

इस के साथ का पत्र, चन्द्रमाधव की ओर से रेखा को

रेखा,

मैंने अपनी ही मूर्खता और अपटुता से तुम्हें खो ही दिया, तो अब तुम से यही प्रार्थना करता हूँ कि अब मुझ से कोई सम्पर्क न रखना, मेरा मुँह न देखना, न अपना मुँह मुझे दिखाना। लखनऊ आना बेशक, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो आना-जाना, पर कभी मुझ से अचानक मुठभेड हो ही जाय तो मुझे पहचानना मत, बुलाना-बोलना मत—कही रहो, खुश रहो. पर मेरे जीवन से निकल जाओ, बस !

यही नही कि मैं तुम्हे चाहता नही, या कि उस पत्र में लिखी बाते सच नही हैं। पर—बस ! और कुछ लिखने की सामर्थ्य मुझ में नही है।

तुम्हारा अभागा

च०

रेखा

• रेखा स्टेशन पर गाडी रुकते-न-रुकते उतर पडी, पर प्लेटफार्म की पटरी से पैर छूते ही मानो उसके भीतर की स्फूर्ति सुन्न हो गयी, उसने एक बार नजर उठाकर इधर-उधर देखा भी नही कि कोई उसे लेने आया है या नही। यन्त्रवत् उस ने सामान उतरवाया, कुली के सिर-कन्धे उठवाया, कुली के प्रश्न 'बाहर, बीबी जी ?' के उत्तर मे अस्पष्ट 'हाँ' कहा, और फिर कुली की गति से मन्त्रबद्ध-सी खिंची चल पडने को थी कि पास ही भुवन के स्वर ने कहा, "नमस्कार, रेखा जी !"

तब वह चौंकी नही। एक धुन्ध-सी मानो कट गयी, मानो वह जानती थी कि भुवन आयेगा ही, वह मुडी तो एक खुला आलोक उस के चेहरे पर दमक रहा था "नमस्कार भुवन जी, मैंने तो समझा कि आप नही आयेंगे।"

"आप बडी जल्दी उतर पडी—मैं तो डिब्बो की ओर ही देखता रहा। अच्छी तो है ? देखने से तो पहले से अच्छी ही मालूम होती हैं—"

रेखा ने किंचित् विनोदी दृष्टि से उसे सिर से पैर तक देख कर कहा, "और आप—पहले से भी अधिक व्यस्त और अन्तर्मुखी—"

"नही तो—ये तो मेरी छुट्टियाँ है।"

"हाँ, काम से नही, काम के लिए ! पर अच्छा है—काम में ही मुक्ति दीख सके, कितना बडा सौभाग्य होता है !"

कुली ने पूछा, "जी, चलूं ?"

"हाँ चलो, बाहर ले चलो," भुवन ने कहा। "चलिए, रेखा जी—"

"हाँ। सुनिए, मै वाई० डब्ल्यू० में ठहरूँगी—मैंने पहले सूचना दे रखी है। आत्म-निर्भर अर्थात् नौकरी करने वाली स्त्रियाँ वहाँ रह सकती हैं—"

"ठीक है, वही सही। मैं तो कालेज में ठहरा हूँ, एक प्रोफेसर के साथ।"

"रहेंगे ?"

"यही चार-छ दिन रहूँगा। यहाँ से सामान भेज कर फिर कश्मीर जाऊँगा।"

"हाँ—चन्द्रमाधव ने लिखा था—"कह कर रेखा सहसा चुप हो गयी। एक बोझल मौन उन के बीच में आ कर जम गया।

ताँगे पर सवार हो कर रेखा ने फिर पूछा, "भुवन जी, एक स्वार्थ की बात कहूँ ?"

"क्या—"

"मै दो-चार दिन यहाँ रुक जाऊँ, तो आप अपना कुछ समय मुझे देंगे ? दिल्ली में मेरे परिचित तो बहुत हैं, पर वह खुशी की बात अधिक है या डर की, नही जानती !"

"मुझे तो यहाँ कोई काम नही है, दो-एक व्यक्तियो से ही मिलता-जुलता हूँ, मेरे पास बहुत समय है ।"

"उबाऊँगी नही, यह वचन देती हूँ ।" रेखा हँस दी । "ऊब आने से पहले ही हट जाऊँगी—मुझे और कुछ तो नही आता पर ऊब के पूर्व-लक्षण खूब पहचानती हूँ । कहूँ कि मेरे जीवन का मुख्य पाठ यही रहा है—ऊब की सात सीढियाँ !"

"वह खतरा मुझे नही है, मैं ही उबा सकता हूँ, क्योकि मेरे पास कहने को बहुत कम है, अधिक बात जिस विषय की कर सकता हूँ वह स्वय उबानेवाला है—विज्ञान !"

"भुवन जी, आप अपने बारे मे बात करते हैं—करते रहे हैं ?"

"नही तो—या बहुत कम । वह भी कोई विषय है ?"

"तो ठीक है, कहना चाहिए कि वह नया विषय है—मेरे लिए तो है ही, आपके लिए भी है !" रेखा की आँखे हँसी से चमक उठी । "और मैं वायदा करती हूँ, इस विषय से नही उबूँगी—आप ही जब छोड़ें तो छोड़े । बल्कि मैं फिर-फिर लौट आऊँ तो आप बुरा तो न मानेगे ?"

भुवन ने थोडा-सा सकुचाते हुए, यद्यपि कुछ तोष भी पा कर, कहा, "न—नही तो, पर मैं फिर आप को वार्न करता हूँ, वह विषय बडा नीरस है, और कही पहुँचाता नही ।"

"मैं तो पहले ही बता चुकी हूँ कि कही पहुँचने का लोभ ही मुझे नही है—ऐसी यात्रा पर हूँ जो कही पहुँचती ही नही, अन्तहीन है, यही क्या कही पहुँच जाना नही है ?"

"यह भी एक दृष्टिकोण हो तो सकता है—" कह कर भुवन निरुत्तर-सा कुछ सोचने लग गया ।

कश्मीरी गेट मे वाई० डब्ल्यू० मे समान उतार कर दुमजिले पर पहुँचाया गया, भुवन को 'लाउज' मे बिठा कर रेखा ने कहा, "आप जरा बैठिए, मैं अभी आती हूँ" और सामान के साथ अपने कमरे की ओर चली गयी ।

जब तक वह मुँह-हाथ धो कर लौट कर आवे, तब तक मन बहलाने के लिए भुवन कुछ ढूँढने लगा—इस लिए भी कि जब-तब कोई स्त्री आती और लाउज मे उसे देख कर लौट जाती, कोई कौतूहल से उसे घूर कर, कोई सकपका कर—और वह खाली बैठने के सकोच से मुक्त होना चाहता था । पर कुछ भी उसे नही मिला । एक ताक में कुछ पत्र रखे हुए थे, उस ने निकाले । 'लेडीज होम जर्नल', 'वोग' 'वुमॅन एड होम'—कही उस का मन रमा नही । वह सब पुन वहीं रखने को था कि ताक के भीतर एक छोटे आकार का पत्र उसे दीखा, उसने खीच कर निकाला 'मेन ओनली ।' उस ने मुस्करा कर उसे वही रख कर ऊपर सब दूसरे पत्र लाद दिये ।

वह सोचने लगा, पुरुषो के लिए जो पत्र होते हैं, उनका क्षेत्र तो इतना सकुचित नही होता—स्त्रियो के पत्र क्यो ऐसे होते है ? पर पुरुषो के पत्र वास्तव मे केवल उनके नही होते, सबके होते हैं, और स्त्रियो के केवल 'स्त्रियोपयोगी'. लेकिन क्या स्त्री के लिए बस

यही बातें उपयोगी हैं—'हाउ टु विन ए मैन'—'हाउ टु होल्ड ए मैन'—'फीड द ब्रूट'—'द वे टु ए मैन्स हार्ट—थ्रू हिज़ बेली'—आदमी को फासो कैसे, वश मे कैसे रखो, रिझाओ कैसे—मानो सम्मोहन-वशीकरण के तन्त्र-मन्त्र के युग से हम अभी कुछ भी आगे नही गये। और स्वय स्त्री केवल यह नही चाहती, इस का प्रमाण वह नीचे छिपा हुआ 'मेनओनली' है, हो सकता है कि उस मे केवल यह कौतूहल हो कि पुरुष क्या पढते है, कैसे मज़ाक आपस मे या स्त्रियो के बारे मे करते है—वैसा ही कौतूहल, जैसा बहुत-से पुरुषो को स्त्रियो के बारे मे हुआ करता है जिस के कारण वह स्त्रियो के जमाव की बाते किवाड-दरारो मे कान लगा कर सुना करते है।

एक काल्पनिक समस्या उस के सामने आयी। अगर ये सब पत्र-पत्रिकाएँ बिछी हो, और कोई देखने वाला न हो तो अकेली स्त्री कौन-सा पत्र उठायेगी? क्या किसी का चेहरा देख कर तय किया जा सकता है? कौतुकवश उसने सोचा, अच्छा, अब जो स्त्री लाउज मे आयेगी उसे देख कर अनुमान लगाऊँगा कि वह 'वोग' पढेगी कि 'लेडीज होम' कि 'मेन ओनली'—

धत! पहली स्त्री जो आयी वह रेखा थी। भुवन ने तुरन्त अपना खेल बन्द कर दिया। रेखा ने पूछा, "मैंने बहुत देर कर दी न? आप इतनी देर क्या करते रहे? यहाँ आप के पढने लायक भी तो कुछ नही है—"

भुवन ने पूछा, "रेखा जी, ये जो इतने जर्नल्स यहाँ है, इन मे आप को कौन-सा पसन्द है?"

"कौन-से? अरे ये! ये तो मैंने कभी देखे नही। कभी बुनाई वगैरह के डिज़ाइन के लिए कोई देखा हो, पर इन्हे पढूं, ऐसी हालत तो कभी नही हुई।"

"यही मै सोच रहा था—कि इन्हे कौन पढता होगा। और सब के नीचे मैंने देखा, 'मेन ओनली' दबा पडा है।"

रेखा हँस पडी। "हाँ! वह तो स्वाभाविक है। स्त्रियो की दिलचस्पी किस चीज़ मे है? इन 'मेन ओनली'। यह यहाँ का स्थायी मज़ाक है।"

एक कुरसी खीच कर वह बैठ गयी। "अच्छा, अब बताइये, यहाँ क्या-क्या किया जायगा—आप का क्या प्रोग्राम है?"

"आप ही प्रोग्राम बनाइये—"

तय हुआ कि उस दिन रेखा आराम करेगी, तीसरे पहर अगर भुवन आ जाय तो वह घूमने चलेगी—अगर भुवन को अवकाश है। लेकिन अभी तत्काल चल कर काफी तो पी ही जाय।

दोनो नीचे उतरे। भुवन ने देखा, रेखा ने कपडे बदल लिये थे। गाडी मे वह रगीन साडी पहने थी, अब फिर सफेद रेशम पहन लिया था—भुवन को ध्यान आया कि रेखा को उसने रगीन साडी कम ही पहने देखा है, पर सफेद पहने तो कभी देखा ही नही, सफेद

वह पहनती है तो रेशम, जो वास्तव मे सफेद नही होता, उस में हाथी दाँत की-सी, या मोतिये के फूल-सी, या पिसे चन्दन-सी एक हल्की आभा होती है .यो तो शुभ्र श्वेत भी ऐसा होता है कि पहननेवाले को दूर अलग ले जाता है, पर यह रेशमी सफेद तो और भी दूर ले जाता है, दूर ही नही, एक ऊँचाई पर भी; रेखा मानो उस के साथ चलती हुई भी एक अलग मर्यादा से घिरी हुई चल रही है।

रेखा ने कहा, "क्या सोच रहे है, भुवन जी ?"

"ऊँ—कुछ नही। आपकी बात सोच रहा था—नही, कुछ सोच नही रहा था, केवल आप को देख रहा था—"

"देखिए आप को काम्प्लिमेंट देना भी नही आता न ? कितने अच्छे है आप, जिस के साथ सतर्क नही रहना पडता !"

अब की बार भुवन हँस दिया। पर क्यो, यह वह स्वय नही जान पाया।

काफी पीते-पीते रेखा ने पूछा, "भुवन जी, आप ने पहाड जाने के लिए और किसी को आमन्त्रित नही किया ?"

"नही तो। फिर मेरा जाना ही तो नही हुआ—"

"अच्छा, आप जहाँ रिसर्च के लिए जाना चाहते है वहाँ मै आ जाऊँ तो आप के काम का बहुत हर्ज होगा ?"

भुवन ने चौक कर कहा, "वह तो एकदम बियावान जगल है रेखा जी। वहाँ—"

"फिर भी—फर्ज कीजिए—"

"नही—आप ही हर्ज करना न चाहे तो—खास नही होगा—इतना ही कि आप की असुविधा का ध्यान हमेशा रहेगा—"

"और काम मे बाधक होगा !" रेखा हँस दी। "ठीक है, मै तो यो ही कह रही थी।"

वापस पहुच कर रेखा ने नीचे ही कहा, "जीना चढने की कोई आवश्यकता नही है—मै यही से विदा लेती हूँ। मै यही रहूँगी—आप तीसरे पहर जब भी आवे। मै तैयार मिलूँगी।"

* * *

कुदसिया बाग मे उन दिनो फूल लगभग नही होते—कोई फूल ही उन दिनो मे नही होता सिवा वैजयन्ती के, जो चटक रगीन चूनर ओढे बीबी शटल्लो बनी धूप में खडी रहती है। लेकिन खँहडर पर चढी हुई 'बेगमबैरिया' लता की छाह सुहावनी थी—फूल इसमें भी कई तेज़ रगो के भी होते है, पर इसकी लम्बी पतली बाँहो मे, हवा में झूमने गुच्छा-गुच्छा फूलो में एक अल्हडपन होता है जो वैजयन्ती के भूनिष्ठ आत्म-सन्तोष से सर्वथा भिन्न होता है . और फिर इस विशेष लता के फूल भी तेज़ रग के नही थे, एक

धूमिल गुलाबी रग ही उन में था जो पत्तियो के गहरे हरे रग की उदासी कुछ कम कर देता था, बस ।

भुवन नीचे घास पर कोहनी टेके बैठा बेंच पर बैठी रेखा को देख रहा था । रेखा पहले बेंच पर बैठ गयी थी, जब भुवन नीचे बैठा तो वह भी उतरने लगी पर भुवन ने कहा, "नही-नही, आप वही रहिए, इस बैकग्राउड पर आप की साडी बहुत सुन्दर दीखती है ।" रेखा ने एक फीके कोकनी रग की साडी पहन रखी थी, बेगमबैरिया के फूल उस का सन्तुलन कर रहे थे, मानो एक ही गीत दो स्वरो मे गाया जा रहा हो, रेखा का मन्द्र, अन्तर्मुख और गहराई खोजता हुआ, लता का तार, बहिर्निवेदित और उडना चाहने वाला .

रेखा को एक आदत थी—सहसा, मानो अनजाने, उस का हाथ उठता और कनपटी के पास मानो कुछ खोजने लगता, फिर बालो की किसी छूटी हुई लट—कभी-कभी काल्पनिक ही लट !—को कानो के पीछे डालता हुआ धीरे-धीरे लौट आता । सारी क्रिया एक बडे कोमल और आयासहीन ढग से दुहरायी जाती थी । चलते हुए भी दो-चार बार भवन ने लक्ष्य किया था, बाग मे आने से पहले वे जमुना के किनारे-किनारे थोडा भटके थे और थोडी देर घाट की सीढी पर पानी के निकट बैठे थे तब भी—तब बल्कि हाथ पानी मे डुला कर रेखा ने कनपटियाँ भिगो ली थी वह मुद्रा बडी आकर्षक थी, रेखा की उँगलियाँ वैसी तो नही थी जिन्हें सुन्दरता का आदर्श माना जाता है—उन के जोड उभरे हुए थे और रूप-तत्त्व की अपेक्षा मनस्तत्त्व की ओर ही इगित करते थे—पर वे थी पतली और व्यजना-पटु—सवेदनशील उँगलियाँ । अभी बैठे-बैठे उस का हाथ फिर उठा तो भुवन ने पूछा, "आप थक तो नही गयी ? हम लोग काफी भटके—"

"नही—मुझे तो पता ही नही लगा—"

"और रेत मे भी चले—उस से बडी थकान होती है ।"

"नही, मै अभी और चल सकती हूँ । पर यहाँ बैठना भी बहुत मधुर है ।"

भुवन हँस दिया । फिर एक लम्बा मौन रहा । दोनो आकाश को देखते रहे । मई का दिल्ली का आकाश—उस की नीलिमा सभ्यता की भाप से मुरझा कर फीकी पड जाती है, और आकाश सभ्यता की तरह अपने ही रग का ओप अपने पर नही चढाता ! पर प्रकृति के विभिन्न भावो की झाई उसे नाना रग दे जाती है इस समय उस के आगे ताँबे के रग का एक झीना-सा जाल था, जो धीरे-धीरे धुँधला पड रहा था ।

रेखा ने कहा, "शहरो का आकाश भी क्या चरित्रहीन आकाश होता है—फिर गर्मियो में ! यो मै साँझ को घनी होते देखते घटो बैठी रह सकती हूँ—पर गर्मियो मे शहर में लगता है सब से अच्छी दोपहर है—साँय-साँय सन्नाटा, धूप ऐसी कि चौंधिया दे, पर उस की चिलक ही जैसे दृश्य को माँज जाती है, सभ्यता के भीतर से मानव हृदय की स्तब्ध धडकन तब सुनी जा सकती है "

भवन कुछ नही बोला। रेखा का स्वर उसे अच्छा लग रहा था, उस की गति मानो लययुक्त थी, एक भावाक्रान्त उतार-चढाव मानो अलग से कहता था, "बात के अर्थ से अलग और भी अर्थ है मुझ मे, अकथित, अकथ्य अभिप्राय, ज़रा कान दे कर सुनो "

रेखा ने ही फिर कहा, "यो तो पहाड पर या सागर के किनारे ही आकाश देखना चाहिए, पर देहातो मे और खास कर आखिरी बरसात मे—तब आकाश बोलता है, गाता है—कैसे-कैसे अर्थ-भरे गाने . शहर का आकाश—शहर का सूर्यास्त—जैसे ड्राइग-रूम की बातचीत, सब कोई बोल रहे है लेकिन सब कोई जैसे छिपे हुए, जैसे अनुपस्थित, केवल स्वरो के रेकार्ड,, केवल यन्त्र-लिखित उत्साह और आवेश।"

भुवन ने धीरे-से कहा, "रेखा जी, आप का इस वक्त का आविष्ट स्वर मुझे तो अनुपस्थित नही लग रहा है—"

"मै!" रेखा कुछ रुक गयी। फिर मुस्करा कर बोली, "भुवन जी, आप चाहे तो मै भी ड्राइग-रूम वाली बातो का कल खोल दे सकती हूँ—आप नही जानते कि मेरे पास कितनी बडी टकी उस बँधे पानी की जमा है! लेकिन आप का समय मैने माँगा था, तो उस के लिए नही।" वह फिर गम्भीर हो गयी। "असल मे मेरे भी दो पहलू है—एक चरित्रवान्, प्रकृत, मुक्त , एक सभ्य और चरित्रहीन—"

"रेखा जी, यो पहलू तो हर किसी के चरित्र मे होते है, पर चरित्र को इस तरह डिब्बो मे बाँटना तो बडा खतरनाक है—व्यक्ति को एक और सम्पूर्ण होना चाहिए—यह विभाजन तो ह्रास की भूमिका है।"

"है। मै जानती हूँ। और सभ्यता जो ह्रासोन्मुख हो जाती है वह किस लिए ? कि समर्थ प्रकृत चरित्र सभ्यता के पोसे हुए पालतू चरित्र के नीचे दब जाता है—व्यक्ति चरित्रहीन हो जाता है। तब वह सृजन नही करता, अलकरण करता है। नये बीज की दुर्निवार शक्ति से जमीन फोड कर नये अकुर नही फेंकता, पल्लवित नही होता; झरे फूल चुनता है, मालाएँ गूँथता है, मालाओ से मूर्तियाँ सजाता है। जब मूर्ति पर मालाएँ सूख जाती है तब हमे ध्यान होता है कि सभ्यता तो मर चली—पर वास्तव मे मरना तो वहाँ आरम्भ हुआ है जहाँ हम ने झरे फूल का सौन्दर्य देखना शुरू किया—डाल से टूटे फूल का!"

रूपक को अपने सामने मूर्त्त करते हुए भुवन ने कहा, "उस समय भी हम वृक्ष की ओर वापस जा सकते है—अकुर की ओर—"

"हाँ, अगर वह हमारी उपेक्षा से सूख न गया हो। पर आज के हम सभ्य लोग अभी इतने अभागे नही है अभी हम में झरे फूल भी है, जो आदृत है और गहरी जडें भी है जो नये अकुर फेंकेंगी लेकिन जिन की कद्र नही है। यही मै कह रही थी—दो पहलुओ की बात—"

वह चुप हो गयी। फिर एक मौन छा गया। अब तक थोडी-थोडी हवा चल रही थी, वह भी बन्द हो गयी।

भुवन ने कहा, "उमस हो रही है। थोडा टहला जाय?"

"चलिए।"

दोनो बाग मे इधर-उधर टहलने लगे। खँडहर और लता के कुज के दूसरी ओर हरियाली मे जहाँ-तहाँ बच्चो के दल खेल रहे थे, अब तक सब आयाओ द्वारा किलकते-फुदकते अज-शावको की तरह घेरे जा कर अपने-अपने बाडो की ओर ले जाये जा चुके थे. एक दम तोडता हुआ-सा अँधेरा छा गया था।

रेखा ने सहसा कहा, "भुवनजी, मैं आप को अपने प्रकृत, स्वस्थ, मुक्त पहलू से ही जानना चाहती हूँ—उसी के सम्पर्क मे आप को रखना चाहती हूँ। पर उस के लिए ईमानदारी का तकाजा है कि दूसरा पहलू आप से छिपाऊँ नही।"

बात भुवन की सवेदना को छू गयी, पर उसे समझ नही आया कि क्या कहे। उस का हाथ तनिक-सा रेखा की ओर बढा और रह गया। वह कहने को हुआ, 'थैंक यू, रेखा जी,' पर बात कुछ ओछी लगी। फिर उस ने कहा, "रेखा जी, मैंने अपने बारे मे इतनी गहराई से कभी नही सोचा, पर अगर मुझ में भी ऐसा विघटन है—होगा ही—तो मैं भी यत्न करूँगा कि—"

"नही, आप मे वैसा नही है। आप को—शायद विज्ञान ने बचा लिया। या—" रेखा हँस पडी, "कहूँ कि आप अभी उतने सभ्य नही हुए!"

भुवन भी हँस दिया।

"लेकिन—मैं आप को देर तो नही कर दे रही हूँ? आप के मेज़बान—"

"शाम के भोजन का बन्धन मैं नही पालता, वह प्रतीक्षा नही करेंगे। पर आप को भी तो लौटना होगा—आप की तो शायद हाज़री लगेगी—"

"आज देर से आने की छूट है—सप्ताह मे दो दिन होती है।"

"लेकिन कुछ खायेंगी तो?"

"मैं तो केवल काफी पीती हूँ—मैंने कहा न, बहुत सभ्य हूँ! पर आप—"

"मैं भी काफी ही पियूँगा—"

"नही, आप को कुछ खाना होगा। चलिए—"

तय हुआ कि टहलते हुए परले फाटक से निकल कर कश्मीरी दरवाज़े के अन्दर जा कर कुछ खाया-पिया जाय, और दोनो धीरे-धीरे उधर बढने लगे।

कार्लटन मे सन्नाटा था। शाम को उधर खाने कौन आता है? पीने आते है कुछ लोग, पर उन का समय निकल गया—नौ बजे तक कौन ठहरता है . पर खाने को मामूली कुछ मिल जायगा—सैंडविच, कटलेट, वगैरह

"सभ्य जीवन बडा भारी वेटिंग-रूम है मानो," रेखा बोली, "और होटल वगैरह भी

सब वक्त काटने के—बीच का एक रिक्त भरने के साधन है। लेकिन वेटिंग किस के लिए—रिक्त किस के और किस के बीच ? कोई नही जानता। इधर-उधर फिर रिक्त है।"

"दो रिक्तो के बीच का रिक्त भरने के लिए रिक्त—तो फिर रेखा जी, ये पार्टिशन क्यो करती है, सारा ही तो एक रिक्त हुआ! सभ्यता की आप की परिभाषा बडी डरावनी है। और उसे भरने के लिए भी रिक्त—विज्ञान तो सिर पीट लेगा जो मानता है कि प्रकृति भरणधर्मा है—रिक्त नही सहती।"

"प्रकृति न ? लेकिन सभ्यता नही। आप देखते नही कि सभ्यता किस दर्प से कहती है कि प्रकृति असभ्य है ? क्योकि सभ्यता अप्राकृतिक है।"

दोनो फिर कुदसिया बाग लौट गये। अब एक और भी गहरा मौन वहाँ पर था, और उस ने जैसे दोनो को बाँध दिया। कई फेरे दोनो ने चुपचाप लगा लिये, सहसा दूर कही दस का गजर हुआ।

"रेखा जी, ऐसी बात कहना है तो शील के विरुद्ध शायद, लेकिन मै कई बार सोचता हूँ आप को गृहस्थी मे सुखी होना चाहिए था—या यह कहूँ कि आप के साथी को; ऐसा क्या हुआ कि—"

रेखा रुक गयी। अँधेरे मे एक-दूसरे का चेहरा साफ नही दीखता था, पर रेखा के साँवले चेहरे मे उस की आँखो के कोये स्पष्ट झलक गये, उस ने स्थिर दृष्टि से भुवन को देखते हुए कहा, "पर वह सब तो आप को चन्द्रमाधव ने—आप को मालूम ही होगा—"

"यह तो नही कह सकता कि नही बताया—या कि स्वय मैने ही नही पूछा," भुवन ने चन्द्रमाधव पर दोष न मढने की नीयत से कहा, "पर यो तो कोई कारण होता ही है—लेकिन उस मे आन्तरिक कारणत्व न हो तो प्रश्न उठता ही है कि क्या कोई एडजस्टमेट नही हो सकता था ? क्योकि बाहरी सब कारणो पर व्यक्ति विजय पा सकता है—क्योकि वह मशीन से अधिक एडैप्टेबल है, लचकीला है।"

"आप ठीक कहते है। हर घटना की एक आन्तरिक सगति होती है—हर दुर्घटना की भी। लेकिन क्या आप सचमुच वह सब सुनना चाहते है ?"

"अगर आप को कहने मे क्लेश या सकोच न हो तो—हाँ।" भुवन ने हिचकते कोमल स्वर मे कहा।

पास की बेंच पर रेखा बैठ गयी।

"सकोच होता भी है, नही भी होता। कहते है न कि अच्छा स्वप्न कह देने से उस की सम्भावना कम हो जाती है, उसी तरह बुरा सपना कहने से उस का भी बोझ हल्का हो जाता है। मै जब भी अपनी बात कहती हूँ या कहने का सकल्प करती हूँ तो उस की छाया की एक परत कम हो जाती है, सोचती हूँ कि कह-कह कर ही उसे कह डाला जा सकता है—उस से मुक्त हुआ जा सकता है—पर कहने का निश्चय करना ही बडा कठिन होता है क्योकि—" रेखा ने वाक्य अधूरा छोड दिया।

"मैं समझता हूँ", भुवन ने कहा, "आग्रह नही करूँगा। आप—"

"नही, आपसे शायद कह सकूँगी—कहना चाहूँगी।"

थोडी दूर पर पद-चाप सुनाई दी—धीमी, फिर सहसा स्पष्ट—घास पर से सडक पर। ठेठ खडी बोली के स्वर ने कहा, "बाबूजी, यहाँ नही बैठ सकते।"

"क्यो ?"

"बाबू जी, दस बजे के बाद इद्र बैट्ठणे का हुकुम नही है—अब तो साड्ढे दस हो लिये—"

"अच्छा, अच्छा जाते हैं।"

चौकीदार बगल से लाठी टेक कर कुछ दूर पर खडा हो गया।

रेखा उठ खडी हुई। "चलिए।"

कुदसिया बाग के दो खड है, बीच में अलीपुर रोड पडती है। दोनो निकल कर दूसरे खड में चले गये। सागू के पेडो के चिकने सफ़ेद तने मानो किसी बडे मडप के स्तम्भ थे, जिसमें रातरानी की दिग्विमूढ गन्ध भटक रही थी। मुख्य वीथी से हट कर दोनो घास की छहेल पटरी पर टहलने लगे। लेकिन मूड कुछ बदल गया था।

रेखा ने पूछा, "बैठेगे ?"

"बेंचे उधर है—बुत के पास।" भुवन ने कहा, इस में इनकार भी नही था, कोई अनुकूलता भी नही थी।

खडी बोली की व्यापकता प्रमाणित करता हुआ एक स्वर यहाँ भी नेपथ्य मे से बोला, "कौन है ?"

"हम है—टहलने आये है," भुवन ने चिकने स्वर में उत्तर दिया।

खडा स्वर कुछ कम खड़ा हुआ "बाबू जी, अब बडी देर हो गयी, दस बजे बाग बन्द हो जाता है।"

रेखा ने कहा, "द हाउड्स आफ हेवन आर एवरी हेयर।"[१]

स्त्री-स्वर सुनकर नेपथ्य की वाणी कुछ और भी नरम पड कर बोली, "बाबू जी, इतनी रात को इधर नही घूमते, जमाना ठीक नही है। बडे चोर बदमास फिरे है—"

दूर पर चौकीदार की छायाकृति दीख गयी। भुवन ने कहा, "अच्छा भइया, जाते है। आजकल तो यही वक्त होता है घूमने का—इतनी गर्मी होती है—"

चौकीदार ने कहा, "सो तो ठीक है बाबू जी, मगर—"उस के स्वर मे कुछ नरमाई भी थी, कुछ दूरी भी, मानो कह रहा हो, "हाँ, आप सदाशय है, माना, पर बच्चे है, घर जाइये—"

फाटक के बाहर लैम्प के खम्भे के नीचे आ कर दोनो ठिठक गये। सहसा एक-दूसरे

---

[१]स्वर्ग के शिकारी कुत्ते सर्वत्र है।

की ओर देखा और मुस्करा दिये। रेखा ने कहा, "प्लोमर की एक कविता है जिसमे पार्क मे घूमने वाले दो जन खदेडे जाते है—आप ने पढी है ?"

"नही—मैंने प्लोमर का सिर्फ नाम पढा है—"

"मुझे याद नही है, लेकिन उस मे सिपाही कहता है 'आउटलाज़ हू आउटरेज वाई-लॉज़ आर द डेविल[1]!' और कविता का अन्त है 'एड दस वी कीप आवर सिटीज़ क्लीन[2]!'"

"हूँ।"

दोनो कश्मीरी दरवाज़े की ओर बढ रहे थे। दरवाज़ा वास्तव में दो दरवाजे है, एक आने का मार्ग है, एक जाने का, दोनो सडको के बीच मे घास की एक लम्बी पटरी है, रास्ते के मोड के साथ मुडती चली गयी है।

भुवन ने हँस कर कहा, "यही बैठना चाहिये। यहाँ से तो कोई नही उठायेगा।"

रेखा ने कहा, "अजब बात है कि शहर में अगर कोई प्राइवेट स्थान है तो पब्लिक सडक के बीचोबीच।"

भुवन ने साभिप्राय कहा, "प्राइवेट फेसेज़ इन पब्लिक प्लेसेज़,*—" रेखा बैठ गयी। भुवन ने कहा, "सचमुच ?"

"और नही तो खदेडे जाने की कडवाहट मिटाने के लिए।"

भुवन ने बैठते हुए कहा, "इसे ठीक ही कहते है 'सडक का द्वीप'—दोनो ओर बहते जन-प्रवाह में निश्चलता का एक द्वीप—"

"है न ? मेरे साथ कुछ ही दिन में आप सर्वत्र द्वीप देखने लगेंगे—हमी द्वीप है, मानवता के सागर में व्यक्तित्व के छोटे-छोटे द्वीप, और प्रत्येक क्षण एक द्वीप है—खास कर व्यक्ति और व्यक्ति के सम्पर्क का, कांटैक्ट का प्रत्येक क्षण—अपरिचय के महासागर मे एक छोटा किन्तु कितना मूल्यवान् द्वीप!" रेखा ने आँखे भुवन की ओर उठायी, भुवन से उसकी आँखें मिली तो उन में कुछ प्रबल, कुछ तेजस्वी और संकल्प-भरा था जिस ने भुवन की दृष्टि को कई क्षण तक बाँध रखा। फिर उस ने आँखें झुका ली, और उस का हाथ उसी परिचित मुद्रा में उस की कनपटी की ओर उठ गया।

न जाने क्यो भुवन के मन में विचार उठा, 'हाँ, मैं तुम्हे पहचानता हूँ, रेखा, लेकिन—तुम मुझ से क्या चाहती हो ?' पर तत्क्षण ही विलीन हो गया, इतनी जल्दी कि वह उसे ठीक से पकड भी न पाया।

---

[1] जो अवैध लोग उपनियमों की मर्यादा तोड़ते है बड़े दुष्ट है।

[2] और इस प्रकार हम अपने शहरों को स्वच्छ रखते है।

*टी० एस० एलियट की एक पंक्ति का अंश : सार्वजनिक स्थलो में निजी चेहरे (निजी स्थलों में सार्वजनिक चेहरों से कहीं अधिक अच्छे होते है)।

"चले ?" रेखा ने कहा, और साथ ही उठ खडी हुई। उस के बाद कोई कुछ नही बोला, रेखा जब वाई० डब्ल्यू० के फाटक पर पहुँची और अन्दर प्रविष्ट हो गयी तभी उस ने कहा, "नमस्कार, भुवन जी।" और उस ने जल्दी से कहा, "नमस्कार!"

*　　　*　　　*

पब्लिक स्थलो पर प्राइवेट चेहरा रखा जा सकता है जरूर, और प्रीतिकर भी होता है, पर उसे देखने के लिए पब्लिक स्थलो से खदेडा जाना कोई पसन्द नही करता।

जन्तर-मन्तर में इधर-उधर भटकते, इमारतो के बीच में से कई प्रकार की आकृतियाँ बनाते और सीढियाँ चढते-उतरते रेखा और भुवन बीच में आ कर रुक गये थे, सूर्य डूब गया था और मैले लाल आकाश का रग नीचे पानी मे और भी मैला होकर प्रतिबिम्बित हो रहा था।

"ऊपर चलेगी ?"

"हाँ।"

दोनो सीढियाँ चढ गये। ऊपर हवा थी। पास-पास खडे हो कर दोनो पश्चिमी क्षितिज को देखते रहे।

सहसा रेखा ने कहा, "चलिए अब।"

भुवन ने कुछ विस्मय से उस की ओर देखा—इतनी जल्दी क्यो ?

"यहाँ भी तो बन्द होने का समय होता होगा—यहाँ भी—"

भुवन समझ गया। उस ने कहा, "नही, यहाँ सूचना की घटी बजती है—"

लेकिन उस से क्या ? जाने का निर्देश जाने का निर्देश है, घटी का हो, खडी बोली का हो! उससे पहले ही

रेखा ने क्षीणतर आग्रह से कहा, "चलिए।"

"अच्छा तनिक और रुक जाइये, सान्ध्य तारा देखकर चलेंगे—"

रेखा ने सहसा बडे तीखे काँपते स्वर में कहा, "चलिए—चलिए!" भुवन ने चौक कर देखा, उस का स्वर ही नही, वह स्वय भी काँप रही है। लडखडाती-सी उस ने भुवन का हाथ पकडा और किसी तरह जल्दी-जल्दी, कुछ उस पर झुकती हुई, कुछ उसे खीचती हुई नीचे उतर गयी।

नीचे पहुँच कर भी वह काँप रही थी। भुवन ने चिन्तित, आग्रहयुक्त स्वर मे पूछा, "क्या बात है, रेखा जी—तबियत तो ठीक है न—या कि सीढियाँ चढने मे—"

सहसा अपने मे सिमट कर रेखा ने कहा, "नही, नही, कुछ नही, आप मुझे थोडी देर छोड जाइये—"

भुवन ने अनिच्छा से कहा, "लेकिन—"

"मै ठीक हूँ।"

भुवन खडा रहा।

"चले जाइये !" कह कर रेखा नीचे चौतरे पर बैठ गयी। दोनो हाथ उठा कर उस ने माथा पकड लिया, आँखे बन्द कर ली।

भुवन कुछ परे हट कर अनिश्चित-सा खडा रहा।

थोडी देर मे रेखा ने सिर उठाया, उसकी आँखे सूनी थी। भुवन को वहाँ देख कर पहले बहुत ही छोटे निमिप के लिए सूनी ही रही, फिर सहसा उस पर केन्द्रित हो आयी। उस ने जल्दी-जल्दी कहा, "अच्छा लीजिए, सुनिए, सुन लीजिए—हेमेन्द्र—हेमेन्द्र का नाम आप जानते है न, मेरा पति—अपने एक युवा बन्धु को ले कर यहाँ आया था—यहाँ तारे को देख कर दोनो ने वफा की कसमे खायी थी—हेमेन्द्र ने मुझे बताया था—"

भुवन स्तब्ध रह गया। उस की समझ मे कुछ न आया। फिर रोशनी एक बडी पैनी कटार-सी उसे भेद गयी वह सब समझ गया, उस ने चाहा कि रेखा को कन्धे से लगा कर धीरे-धीरे थपथपा दे पर वह अपने स्थान से हिल भी नही सका, वही खडे-खडे उस ने पूछा, "तो—तो आप ने विवाह क्यो किया था—" पूछना वह यह चाहता था कि 'हेमेन्द्र ने आप से विवाह क्यो किया था ?' पर प्रश्न को इस रूप मे वह न रख सका।

"क्यो कि—मेरा चेहरा उस मित्र से मिलता था !" रेखा का स्वर एक अजीब पतली अवश चीख-सा हो गया था।

भुवन जहाँ था, वही बैठ गया। थोडी देर स्तब्ध बैठा रहा, निर्मिमेष आँखो से, मरे हुए पानी मे, बुझे हुए आकाश का प्रतिविम्व देखता। फिर वह धीरे-धीरे उठा, रेखा के पास जा कर उस ने बिना कुछ कहे रेखा की बाँह पकडी, मृदु किन्तु दृढ हाथ से उसे उठा कर खडा किया, और बाँह पर सहारा देता हुआ फाटक की ओर ले चला। दो-तीन कदम चलते-चलते रेखा का शरीर सहसा कडा पड गया—उस ने बाँह छुडा ली और कहा, "मै ठीक हूँ, भुवन जी !" उस का स्वर भी अपने सहज स्तर पर आ गया था, यद्यपि अब भी आविष्ट था।

फाटक के पास उसने रुक कर कहा, "भुवन जी, मै क्षमा चाहती हूँ।"

भुवन ने कहा, "नही, रेखा जी, दोष मेरा है, मै दुराग्रह—"

रेखा ने धीरे-से उस के हाथ पर हाथ रख कर उसे चुप करा दिया, मानो कह रही हो, "रहने दीजिए, मै जानती हूँ कि दोप किस का था।"

फिर उस ने कहा "मै बिलकुल ठीक हूँ। आप अब कुछ पूछना चाहें तो पूछ लीजिए। मै अभी बता सकती हूँ। फिर शायद—न सकूँ। या सकूँ तो भी ये बातें बार-बार याद करने की नही हं, आप मानेंगे—"

"नही रेखा जी, मुझे कुछ पूछना नही है।" भुवन ने गम्भीर हो कर कहा। "एक बार भी याद दिलाने का कारण बना, इसी की मुझे बहुत ग्लानि है। आप और कुछ न बताइये, न याद कीजिए।"

कोई बीस मिनट बाद, दोनो कनाट प्लेस में बैठे धीरे-धीरे काफी पी रहे थे। रेखा

की दृष्टि अब भी खोयी हुई थी। भुवन पर एक अजीब जगुप्सा-मिश्रित सकोच छाया हुआ था। रेखा को देखते हुए एक प्रश्न बार-बार उस के मन मे उभर आता था जिस से वह लज्जित हो जाता था, जिसे दवा देने की चेष्टाओ की असफलता, गहरी आत्म-ग्लानि उस मे भर रही थी हेमेन्द्र ने कब, कैसी स्थिति में उसे वह बात बतायी होगी ?

वह साहस कर के पूछ ही डालता, तो रेखा उस समय शायद बता भी देती। क्यो कि उस की खोयी हुई दृष्टि उसी स्थिति को देख रही थी, उसी ग्लानि को मन-ही-मन दुहरा रही थी

देर रात को हेमेन्द्र कही बाहर से आया था। रेखा का शरीर अलसा गया था, आँखें थकी थी, पर वह पलग के पास की छोटी लैम्प जलाये पढ रही थी। लैम्प पर हरे काँच की छतरी थी, उस से छन कर आये हुए प्रकाश में रेखा का साँवला चेहरा अतिरिक्त पीला दीख रहा था, बाकी कमरे मे बहुत धुँधला प्रकाश था।

हेमेन्द्र के लौटने पर उस से किसी प्रकार का दुलार या स्नेह-सम्बोधन पाने की आशा उस ने न जाने कब से छोड दी थी, वैसा कुछ उन के बीच में नही था—उन के निजी जीवन में नही, यो समाज में जो रूप था—पब्लिक चेहरा!—वह दूसरा था। इस लिए वह उस के लिए तैयार नही थी जो हुआ हेमेन्द्र ने पीछे से आ कर बड़े उतावलेपन से और बडी कडी पकड से उस के दोनो कन्धे पकडे, उसे उठाते और उस के कन्धे के ऊपर से अपना मुंह उस के मुँह की ओर बढाते हुए कहा, "मेरी जान—मेरी जान–"

किताब रेखा के हाथ से छूट गयी, सारा कमरा एक बार थोडा डोल गया। सहसा घूम कर, कुछ विमूढ किन्तु सायास कोमल रखे गये स्वर में उस ने कहा, "हेमेन्द्र—"

हेमेन्द्र को जैसे बिच्छू ने डक मार दिया हो, वह सहसा रेखा के कन्धे छोड कर पीछे हट गया, फिर उस ने कमरे की मुख्य बत्ती जला दी। थोडी देर अजनबी दृष्टि से रेखा को देखता रहा, रेखा की परिचित् किंचित विद्रूप-भरी मुस्कराहट उस के चेहरे पर आ गयी। बोला, "हलो, रेखा, सॉरी आइ'म सो लेट—" और पलग के पास खूंटी की ओर बढ गया।

ऐसा तो रोज होता था। पर आज रेखा यह स्वीकार न कर सकी थी। अभी क्षण भर पहले की घटना मानो असख्य तपे हुए सुओ से उसे छेद रही थी—उसे समझना होगा, समझना होगा

रेखा ने हाथ का काफी का प्याला रख दिया कि हाथो का काँपना न दीखे; फिर जोर से सिर हिलाया कि यह विचार, यह दृश्य उस की आँखो के आगे से हट जाय—पर नही

उस ने भी जा कर हेमेन्द्र के कन्धे पकड लिये थे और पूछा था, "हेमेन्द्र, तुम्हें बताना होगा, इस का अर्थ क्या है ?"

"और न बताऊँ तो ?" वह विद्रूप की रेखा और स्पष्ट हो आयी थी। फिर सहसा

उस ने वहुत रूखे पड कर, रेखा को धक्का दे कर पलग पर विठाते हुए कहा था, "लेकिन नही, वता ही दूँ—रोज-रोज़ की झिक-झिक से पिंड छूटे—पाप कटे! तो सुनो, मै तुम से प्रेम नही करता, न करता था। न करूँगा!"

"यह तो वताने की शायद जरूरत नही है। पर तब मुझ से विवाह क्यो किया था—"

"यह भी जानना चाहती हो! अच्छा। यह भी जानेगी। अब सब जानोगी तुम!"

रेखा जैसे खडी होने को हो गयी—फिर बैठ गयी।

भुवन ने कहा, "रेखा जी, स्वस्थ होइये। चलिए, मै आप को टैक्सी मे पहुँचा आऊँ—"

रेखा पत्थर हो गयी। "नही। मै ठीक हूँ। पर इस समय आप को यहाँ विठाना शायद अन्याय है। आप मुझे यही छोड जाइये, मै पीछे चली आऊँगी।"

"यह तो नही हो सकता रेखा जी, चाहे आप की अवज्ञा ही करनी पडे। पर आप को एकान्त की जरूरत है, यह तो समझ रहा हूँ। तो चलिए, मै आप को टैक्सी मे विठा देता हूँ, साथ नही जाऊँगा।"

रेखा कुछ नही बोली।

भुवन ने विल चुकाया और दोनो वाहर आये। रेखा टैक्सी मे वैठ गयी, तो भुवन ने मौन नमस्कार किया। तब रेखा ने वडे आयास से एक फीकी मुस्कान चेहरे पर लाकर कहा, "लेकिन भुवन जी, दिस इज़ नाट द एड, आइ होप! कल मै फिर तीसरे पहर तैयार मिलूँगी।"

भुवन ने फिर चिन्तित स्वर में पूछा था, "आर यू शोर यू आर आल राइट? या मै चलूँ—"

"नही, भुवन जी! ड्राइवर, चलो, कश्मीरी गेट।"

गाडी जव सरकी तो रेखा ने फिर भुवन की ओर उन्मुख हो कर कहा, "गाड ब्लेस यू।"

भुवन तनिक विस्मित हुआ, पर तुरन्त सँभल कर वोला, "एड यू।"

टैक्सी चल दी। तव रेखा पीछे ऐसी गिरी मानो अव नही उठेगी, नही उठेगी, चारो ओर से अतल दूरी से असख्य काले और उजले तारे उसकी ओर वढे चले आ रहे है, शून्य का अतल गर्त सिमट कर छोटा हुआ आ रहा है और उसे ऐसे जकड लेगा जैसे लोहे का सन्दूक—और उसी के अन्दर वह घुट जायगी, नही रहेगी, न कुछ हो जायगी.. स्मरण के टापू . आह, विस्मृति का महामरुस्थल, आह

* * *

"क्यो आप ढूंढ रहे है न कि कल वाली रेखा कहाँ गयी?"

भुवन अवाक् रेखा का मुँह ताक रहा था। उस पर कही कोई व्यथा की, चिन्ता की रेखा नही थी, जागर की छाया नही थी। रेखा ने फिर वही सादी रेशमी साडी पहन रखी थी, लेकिन आज बिना किनारे की नही, प्योंडी के-से मटीले पीले रग के चौडे पाड वाली, जिस का पीलापन उस के साँवले रग को एक सुनहली दमक दे रहा था। हाँ, माथे और कनपटियो पर आज उस ने कोलोन-जल लगा रखा था, नीवू के फूलो की-सी हल्की महक उस से आ रही थी।

भुवन जैसे पकडा जा कर मुस्करा दिया।

"लेकिन अचम्भे की कोई बात नही है। मै क्षण-से-क्षण तक जीती हूँ न, इस लिए कुछ भी अपनी छाप मुझ पर नही छोड जाता। मैं जैसे हर क्षण अपने को पुन. जिला लेती हूँ।

"तुमने एक ही बार वेदना में मुझे जना था, माँ,
पर मै बार-बार अपने को जनता हूँ
और मरता हूँ
पुन जनता हूँ और पुन मरता हूँ
और फिर जनता हूँ,
क्योकि वेदना में मै अपनी ही माँ हूँ।"*

भुवन ने कहा, "आप अपने को ऐसे पुन जिला लेती है, यही शायद मुझे आप की सब से पहली स्मृति है।"

रेखा ने सचेत हो कर पूछा, "कैसे ?"

भुवन ने लखनऊ की पार्टी वाली बात बता दी, जब उस ने रेखा को सहसा विश्राम करते हुए देखा था। फिर कहा, "लेकिन तब उस का पूरा अभिप्राय नही समझ सका था, अब समझता हूँ।"

रेखा ने विषय बदलते हुए कहा, "आप के जाने का कुछ निश्चय हुआ ?"

"नही, अभी दो-चार दिन तो और है ही, फिर कश्मीर जाऊँगा। फिर वहाँ भी शायद दो-चार दिन रुकना पडे।"

"मै सोचती हूँ, मै कल नैनीताल चली जाऊँ ?"

"क्यो ?"

"यहाँ अधिक रहूँगी, तो कदाचित् आप के काम में बाधक हूँगी—अब भी नही हूँ, यह मानना मुश्किल है। आप पता ही नही लगने देते—"

"यह बात बिलकुल नही है रेखा जी, मैं बिलकुल खाली हूँ। मित्र भी विशेष नही है। प्रोफसर-समाज मे तो ठहरा ही हूँ, एक परिचित और है, उनसे कभी मिल लेता हूँ—"

---

*अर्न्स्ट टॉलर

"कौन ?"

"मेरी एक छात्रा थी—गौरा, उस के पिता।"

"छात्रा थी—आप को अभी पढाते कितने वर्ष हुए हैं ?"

"मैंने उसे सात-आठ वरस पढाया था—मैट्रिक मे। अब तो वह बी० ए० भी दो वरस हुए कर चुकी—अब मद्रास मे है।"

"ओह।"

थोडी देर मौन रहा। फिर रेखा ने कहा, "कल रात वाली गाडी से चली जाऊँगी।" फिर कुछ नटखट भाव से · "लेकिन वहाँ मन न लगा तो कश्मीर आ जाऊँगी, कहे देती हूँ। आप भी खदेड देंगे यह कह कर कि हुकुम नही है ?"

भुवन ने हँस कर कहा, "मैं क्या करूँगा, यह बताने का भी हुकुम नही है। लेकिन—" वह कुछ रुका, "आप की गाड़ी कितने वजे जाती है ?"

"नौ वजे शायद।"

"ओह।" भुवन कुछ सोच रहा है, देख कर रेखा ने पूछा, "क्यो, क्या बात है ?"

"कुछ नही, कल मैं उधर भोजन करने वाला था। पर कोई बात नही—मैं छुट्टी ले लूँगा—"

"नही, वैसा न कीजिए। मैं स्वय स्टेशन पहुँच जाऊँगी—"

अन्त मे यह निश्चय हुआ कि भुवन पहले आ कर सात ही वजे रेखा को ले कर स्टेशन के वेटिंग-रूम मे बिठा देगा, फिर जा कर गाड़ी के समय आ जायगा और रेखा को गाडी पर सवार करा देगा। रेखा ने मान लिया। वोली, "स्टेशन तो मैं खुद भी आ सकती हूँ। पर विदा करने आप आवेंगे तो मुझे अच्छा लगेगा।"

थोडी देर वाद भुवन ने पूछा, "यह तो कल का तय हुआ। और अब ?"

'अब आप जो कहें। कुछ स्पेशल। सिनेमा जाना चाहेंगे ?"

"न-नही। हाँ, कुछ स्पेशल हो और आप की इच्छा हो तो चलिए।"

"नही। तव नही। चलिए, नदी पर चलें—"

"पानी तो कुछ है नही—"

"पार वालू पर—टापू मे या परले किनारे पर—काश कि दिल्ली मे समुद्र होता।"

"सच, तब यहाँ इतनी क्षुद्रता का राज न होता शायद—कुछ तो सागर की महत्ता का प्रभाव पडता—"

"धन्य है आप का आशावाद ! आप का खयाल है वम्बई मे कम क्षुद्रता है ! कुछ कम होगी तो इस लिए कि शासन का केन्द्र दिल्ली है। शासन वहाँ ले जाइये तो—"

"आप ठीक कहती हैं शायद। पर इस समय मैंने वैज्ञानिक बुद्धि को छुट्टी दे रखी है। अच्छी कल्पना में क्या हर्ज है ?"

"तो और चलिए. देखिए, मैं इसी को सागर का किनारा मान लेती हूँ; और रेत का

टापू कोई सागर-द्वीप' हो जायगा जिस पर हम तूफान मे वह कर आ लगे हैं—दो अजनवी जिन्हे साथ रहना है—कम-से-कम कुछ देर।"

"एक मिस राबिनसन क्रूसो, और उन का अनुगत मैन फ्राइडे!"

"हाँ। और वहाँ पर किसी राक्षस के पदचिन्ह मिले तो?"

"परवाह नही, मैन फ्राइडे जादू जानता है।"

नाव मे उन्होने नदी की इधर की शाखा पार की। नाव वाले ने पूछा, "यही ठहरूँ?"

"चाहे ठहरो चाहे डेढ-दो घटे मे आ जाना।" भुवन ने लापरवाही से कहा।

"अच्छा, नही तो आप रुक्का दे देना।"

"अच्छा।"

सूखी स्वच्छ रेत पर आ कर भुवन ने एक बार चारो ओर देखा, फिर ऊपर। फिर वह कहने को हुआ, "तारे कितने हैं—" पर "ता–" कह कर रुक गया, तारो की ओर रेखा का ध्यान न खीचना होगा।

रेखा ने कहा, "रुक क्यो गये?"

"कुछ नही, यो ही—"

"कहिए न?"

"नही।"

रेखा ने कहा, "आप तारो के बारे मे कुछ कहने जा रहे थे—"

भुवन ने सकपका कर स्वीकार कर लिया।

"तो रुक क्यो गये?"

भुवन चुपचाप उसकी ओर देखने लगा।

"ओ—मै समझ गयी। तारो से मै नही डरती, भुवन जी, कभी नही डरी। और मैने कहा था न, जो दु स्वप्न कह लूँगी, उस से मुक्त हो जाऊँगी? अभी तक कह नही पायी थी, यही उस की ताकत थी। अव—अव नही! आप कहिए तो तारे गिन डालूँ आकाश के?"

"न! गिनने से कम हो जाते हैं! और तारा एक भी कम करना कोई क्यो चाहेगा? न जाने कौन तारा किस का है?"

"और जो टूटते हैं सो?"

"फिर विज्ञान? टूट कर एक के दो वनते हैं। या वीस। तारे कभी कम हुए हैं आकाश मे?"

रेखा इस नये भुवन को देखने लगी। फिर उसने कहा, "अच्छा, मैन फ्राइडे, तुम्हारा तारा कौन-सा है?"

भुवन का वह मूड वहुत छोटे क्षण के लिए लडखडा गया न जाने क्यो उसे गौरा

का वह पत्र याद आया जिस में गौरा ने उसे बुलाया था—'मैं अँधेरे मे डूबना नही चाहती, नही चाहती !' इटर के समय गौरा को उसने ब्राउनिंग की कुछ कविताएँ पढायी थी, पाठ्य कविताओ से आगे वे दोनो कुछ कविताएँ और भी पढ गये थे जिन मे एक का शीर्षक था "मेरा तारा".. लेकिन एक वहुत छोटे क्षण के लिए ही, फिर उस ने कहा, "लो, क्या गलती हुई मुझ से—मैं तो उस पर लेवल लगाना ही भूल गया। अब क्या होगा, मिस राबिनसन ? इतने वडे आकाश मे कैसे उसे ढूँढूँगा ?" उसने ऐसा दयनीय चेहरा वनाया कि रेखा को हँसी आ गयी।

उस ने दिलासे के स्वर मे कहा, "कोई बात नही फ्राइडे, तारा खुद तुम्हे ढूँढ लेगा।"

भुवन वालू मे वैठ गया। बोला, "अच्छा, तारो की चिन्ता छोडे। इस टापू मे ही रहना है, तो घर-वर वनाना चाहिए। रेखा जी, आप को बालू के घर बनाने आते है ?"

रेखा ने सहसा कहा, "भुवन जी, और मैंने जिन्दगी-भर किया क्या है ?"

भुवन ने तर्जनी से उसे धमकाते हुए कहा, "विग्यान को माना है। बागाली हिन्दी आप समझता हाय ?"

"खूब समझती हूँ। पर सूखी रेत के घर तो मैं भी नही बना सकती। पानी लाऊँ ?"

"कैसे ? चलनी कहाँ है ?"

"आँचल भिगो कर—"

"कोई जरूरत नही है। मैन फ्राइडे कुआँ खोद कर पानी पीता है। देखिए, मैं यही से गीली रेत निकालता हूँ।"

भुवन ने दोनो हाथो से रेत हटाना शुरू किया। रेखा भी वालू मे वैठ गयी, ऐसी जगह जहाँ से वह भुवन को और उसकी हरकतो को भी देख सके, और पुल तथा किनारे की वत्तियो को भी। जब-तब आती-जाती मोटरो की मुडती हुई आलोक-शिरा एक उछटते हुए प्रकाश में दोनो को चमका जाती, फिर अँधेरा हो जाता।

भुवन ने कहा, "यह देखो गीली रेत। और खोदूँ—कुआँ वन जायगा, और ज्यादा खोदूँगा तो अतलान्त सागर निकल आयेगा—और ज्यादा तो धरती के उस पार निकल आयेंगे। उस पार के आकाश मे क्या तारे है, देखोगी ? पर पैरो के नीचे तारे निकालने अच्छा नही, रौंदे जायेंगे। ज़रूरत भी नही है—गीली रेत ही तो चाहिए।"

वह पैर पर वालू थोप कर घर वनाने लगा। पैर निकाल कर गुफा का मुँह काट कर सीधा किया, फिर ऊपर न जाने क्या वनाया, फिर सामने जगह समान की, चारो ओर मेंड वनायी, सीढियाँ, फिर एक ओर को दूसरा घर, फिर. फाटक साथ-साथ धीरे-धीरे वोलता जाता : "यह घर वन गया—यह आँगन—यहाँ वगीचा लगेगा—ढूँढ कर आर्किड ला कर लगाने होंगे—यह चार-दीवारी है—यहाँ फ़्राइडे रहेगा—यहाँ "

रेखा मुग्ध दृष्टि से उसे देख रही थी। सचमुच इस भुवन को उसने देखा नही था, जाना नही था, अनुमान से भी नही। वैज्ञानिक डाक्टर भुवन के अन्दर एक गम्भीर सवे-

दनाशील और खरा मानव छिपा है, यह तो उस ने जाना था, लेकिन उस निश्छल ऋजुता के नीचे इतना भोला, इतना कौतुक-प्रिय शिशु-हृदय भी है, यह उस की सजग दृष्टि भी न देख पायी थी उसे अपना बचपन याद आया—कलकत्ते के उस घिरे हुए हरे-भरे उद्यान मे खेलते हुए उस ने माता-पिता का स्नेह पाया था, अगाध-स्नेह और उस निधि के लिए वह चिर-कृतज्ञ है, लेकिन जिस तरह उस स्नेह का स्थान कुछ और नही ले सकता, उसी तरह वह अपार स्नेह भी एक समवयस बालक के कौतुक-भरे सख्य का स्थान नही ले सकता बडो के स्नेह से घिरी हुई वह अकेली ही रह गयी थी—और उस अकेलेपन ने उसे पका कर स्वय भी 'बडा' बना दिया था , एक ओर वह पाती थी कि उस के कौतुक-जगत् के बीच मे एक दीवार है, दूसरी ओर वह देखती थी कि स्वय उस के स्नेह-सम्पृक्त परिपक्व रूप, और उस के कौतुक-वेष्टित शिशु-रूप के बीच मे भी एक दीवार खडी थी न सही अधिक कुछ, न सही प्यार, यह यन्त्रणा और ग्लानि और अपमान ही सही जो उसने पाया, पर बचपन मे अगर उसे दो-एक वर्ष ही ऐसा कोई बाल-साथी मिल गया होता—तो कम-से-कम आज उसके पीछे ऐसा कुछ होता जिसमे वह सम्पूर्णता देख सकती, अपने जीवन की निष्पत्ति देख सकती एक भाई आया था, पर तब वह आठ वर्ष की हो चुकी थी, भाई छ वर्ष का हुआ तब तक तो वह यो भी वह कौतुक-युग पार कर चुकी थी और उस के बाद के स्वप्न दूसरे थे–कितने भिन्न ! और फिर तीन वर्ष बाद भाई मर गया था—माता-पिता के दिल टूट गये थे, और उसके स्वप्नो की दूसरी खेप भी नष्ट हो गयी थी

और भुवन—वह डाक्टरेट कर चुका है, वैज्ञानिक रिसर्च मे नाम पा रहा है, वय मे उस से बडा है, और यहाँ बैठकर बालू के घर बना रहा है और मुग्ध हो सकता है ईर्ष्या का कोई सवाल नही है—ईर्ष्या क्या होगी—पर क्यो उसे उस सुरक्षा और स्नेह में भी वह सम्पूर्णता, वह मुक्ति नही मिली—क्यो, क्यो, क्यो

भुवन ने अपने काम मे लगे-लगे ही पूछा, "मिस राबिनसन—रेखा जी, कलकत्ते में आप बचपन मे जहाँ रही, वहाँ बालू थी ? लेकिन वहाँ तो नदी के किनारे कीचड होता है—"

क्यो उस के विचार रेखा के विचारो के समान्तर चल रहे है जब वह खेल में डूबा है, क्यो वह छूता है उस दुखते स्थल को जिसे रेखा छिपा लेना चाहती है—सब की दृष्टि से, सब से अधिक इस भुवन की दृष्टि से जो इतना भोला है, जो केवल खुली हँसी है, जाडो की धूप की तरह खिली हुई हँसी—नही, वह अपनी परछाई नही पडने देगी यहाँ पर, वह चली जायगी—

उस ने मुँह ऊपर कर लिया कि आँखो में उमडते आँसू बाहर न बह आये।

भुवन कहता गया, "नही, कलकत्ता अच्छा नही है। इस बालू के टापू के मुकाबले में कोई जगह अच्छी नही है। लीजिए आप का घर तैयार हो गया !"

अब की बार भी उत्तर न पा कर भुवन ने विस्मय से उधर देखा। रेखा आकाश की ओर मुँह उठाये निर्निमेष बैठी थी, खेल से बहुत दूर। अचकचा कर भुवन खड़ा हुआ, मोटर की मुड़ती रोशनी के पलातक आलोक मे उस ने सहसा चौंक कर और लजा कर देखा, रेखा की आँखो में आँसू है। उस के हाथ अनैच्छिक गति से रेखा के आँसू पोछने को हुए, पर फिर उसे ध्यान हुआ कि बालू से सने है, और वे अनिश्चित से अध-बीच रुक गये। सहसा किंकर्तव्यविमूढ करुणा से भरा हुआ वह झुका और रेखा की गीली पलके उसने चूम ली।

तभी वह कुछ बोल सका। "रोती हो ? बालू के घरो वाले रोया नही करते—"

"नही भुवन, ये दुःख के आँसू नही है—" कहती-कहती भी रेखा आँसू झटक कर खडी हो गयी। बोली, "आप ही से छिपाना चाहती हूँ, आप ही को—" फिर जल्दी से विषय बदलने के लिए उस ने कहा, "नही, कलकत्ते में बालू नही थी। वहाँ मै मिस राविन-सन नही थी, राजकुमारी थी, जादू के उद्यान मे रहती थी, बडा हरा-भरा—बालू तो क्या, मिट्टी भी कही नही दीखती थी।"

भुवन ने भी हल्का स्तर स्वीकार करते हुए कहा, "ओ, तब तो आप इस गरीब बालू के घर का सौन्दर्य क्या देखेगी!"

"उलटे अधिक समझती हूँ, भुवन जी!" रेखा हँसी, पर हँसी के नीचे गम्भीरता थी।

"तो अब चला जाय ?"

"चलिए।"

भुवन चलने को हुआ तो रेखा ने पूछा, "इस बालू के घर को गिरायेंगे नही ?"

"क्यो ?"

"क्योकि वास्तव मे गिर नही सकता। उसकी छाप अतलान्त तक जो है। ऊपर से मिटा देना चाहिए, नही तो उसका जादू दूसरे जान जायेगे।"

भुवन ने उसे परचाते हुए कहा, "हाँ, यह तो है।" और पैर की गति से घर-बगीचा सब मटियामेट कर दिया। फिर कुछ आगे बढ कर उसने नाव वाले को आवाज़ दी "नाव वाले!"

किनारे पर लग कर उस ने कहा, "और इस प्रकार क्रूसो सभ्यता को लौट आया।"

रेखा ने कहा, "अगर क्रूसो कभी लौटते है तो।"

* * *

लेकिन भुवन ने कुछ अधिक बारीक हिसाब लगाया था। रेखा को स्टेशन तो उस ने सात मे पहले पहुँचा दिया, पर नयी दिल्ली जा कर लौटने मे उसे अधिक देर लगी यद्यपि खाना भी उस ने लगभग नही खाया, छू कर छोड दिया। स्टेशन पहुँचा तो नौ मे दो मिनट

थे। उस ने सोचा कि रेखा शायद प्लेटफार्म पर चली गयी हो; पहले सीधा उधर गया, फिर हडवडा कर वेटिंग-रूम आया—रेखा उद्विग्न-सी बाहर खडी राह देख रही थी। उस ने कहा—"मै पहले उधर गया था—देर हो गयी—चलिए—आप प्लेटफार्म पर क्यो न—"

"मै बाकायदा विदा किये विना नही जाऊँगी, क्या आप नही जानते थे ? गाडी मे वैठ जाती और आप न आते तो—"

उस की बात मे उलहना नही था, केवल सच की सीधी उक्ति थी।

गाडी की सीटी सुनाई दी। भुवन ने कहा, "गाडी तो अव—"

"जाने दीजिए। नही मिलेगी। मै घवडायी हुई नही दौडूंगी।" सहसा वह हँस दी, जिस से तनाव एकाएक शिथिल हो गया।

भुवन ने कहा, "अव ?"

"वापस वाई० डब्ल्यू तो मै नही जाऊँगी। अगली गाडी कव जाती है ?"

"पता करें। मेरे ख़याल में तो रात में और नही जाती, तडके शायद—"

"वही सही, रात वेटिंग रूम मे काट दूंगी। आप जाइये, पर सवेरे कैसे आयेंगे—या मत आइयेगा, अभी थोडी देर में चले जाइयेगा, बस।"

भुवन ने कहा, "इस परम्परा का निर्वाह तो तब होगा जव रात-भर यही बाते की जाये, और तडके गाडी पकडी जाय। एक प्रमाद जब हो जाय, तव यही उस का उपाय होता है।"

"सच ?" रेखा का चेहरा खिल आया। "मै राज़ी हूँ। पर चलिए, पहले आप को कुछ खिला दूं। मै खिलाऊँगी—स्टेशनो पर मेरा राज है।"

"लेकिन मै तो खा आया।"

"गलत बात है। खा कर आते, तो या तो पहुँचते नही, या पहले आते। ठीक वक्त पर आये तो मतलव है कि खाना सामने छोड आये है।"

"यह तर्क मेरी समझ मे नही आया—"

"न आये। यह स्त्री-तर्क है। इस के आगे विज्ञान नही चलता। चलिए। रास्ते मे गाडी का पता भी करते चलेंगे। और टिकट वापस कर के नया लेना होगा।"

गाडी सुवह साढे चार वजे जाती थी। टिकट भुवन ने वापस कर दिया, नया टिकट रात वारह के बाद मिलेगा—नयी तारीख हो जाने पर, क्योकि रेखा इटर का सफ़र करती थी, सेकेंड होता तो तभी मिल जाता।

कुछ खा कर और काफी पी कर दोनो रिफ्रेशमेंट रूम से निकले तो रेखा ने कहा, "मुझे जनाने वेटिग रूम मे जाने को मत कहिएगा। और जहाँ कहे—प्लेटफार्म पर घूमने को, वेंच पर वैठने को, आगे वजरी पर वैठने को, पुल पर चढ कर रेलिंग से झाकने को—जो कहेंगे सव करूँगी।"

भुवन ने कहा, "टहलेंगे।"

पुल से पार एक अपेक्षाकृत सूने प्लेटफार्म पर दोनो टहलने लगे। अभी डेढ घटे बाद टिकट मिलेगा, गाडी तीन बजे प्लेटफार्म पर आ लगेगी, तब उस मे बैठा जा सकता है।

प्लेटफार्मो पर भटकते, कभी बेंच पर बैठते, कभी छती हुई पटरी से आगे बढ कर बजरी पर चल कर तारे और कभी पुल पर खडे-खडे सिगनलो की लाल बत्तियाँ देखते, इजिनो का स्वर सुनते और उन के धुएँ की गुंजलको को आँखो से सुलझाते हुए दोनो ने चार घटे तक क्या बाते की, इस का सिलसिलेवार ब्यौरा देना कठिन है। सिलसिला उस में अधिक था भी नही, भले ही उस समय उन दोनो को यही दीखा हो कि प्रत्येक बात एक से एक अनिवार्यत निकलती और सुसगत गति से चलती गयी है। साढे बारह के लगभग भुवन जा कर नया टिकट ले आया और अपने लिए नया प्लेटफार्म। तीन बजे जब गाडी आ लगी, तब वह कुली ढूँढ कर लाया, रेखा से बोला, "अब तो वेटिंग-रूम मे जायेगी या अब भी मैं ही सामान उठवा कर लाऊँगा ?" फिर दोनो गाडी पर चले गये।

जनाने डिब्बे मे पहिले ही से कई सवारियाँ थी—बच्चे-कच्चे लिये औरते। सामान उस मे एक तरफ रखवा रेखा बाहर निकल आयी; बोली, "चलिए कही और बैठें—फिर यहाँ आ जाऊँगी।"

साधारण इटरो मे एक खाली था। दोनो उस मे जा बैठे, बाते फिर होने लगी। भुवन ने कश्मीर के अपने प्लान बताये—कब जायगा, कहाँ रहेगा, क्या करेगा—तुलियन झील पर कैसे दिन काटेगा, वगैरह। रेखा ने पूछा, "वहाँ बालू होगी ?"

"बालू ? क्यो ?"

रेखा हँस दी। "घरौंदे बनाने के लिए—"

भुवन भी हँस दिया। फिर उस ने पूछा, "नैनीताल मे क्या करेगी आप दिन-भर ?"

"झील की ओर ताका करूंगी। कागज़ की नावें चलाया करूँगी— नही, कागज़ की भी नही, सपनो की। काल्पनिक यात्राएँ करूँगी। आप को क्या मालूम है, मध्य-वर्ग की बेकार औरत कितनी लम्बी लडी गूँथ सकती है सपनो की !"

चार बजे उस डिब्बे में भी दो-चार व्यक्ति आ गये। रेखा ने कहा, "फिर थोडा टहला जाय ?"

"चलिए—"

दोनो फिर प्लेटफार्म पर टहलने लगे। लेकिन भीड होने लगी थी। भुवन ने कहा, "आप को एक बार अपने सामान की फिक्र करनी चाहिए।"

जनाने डिब्बे मे भीड भर गयी थी। रेखा ने अपना सामान देख-देख कर, अपना अधिकार स्थापित कर देने के लिए सीट पर थोडी जगह करायी और वहाँ पर बैठ गयी। भुवन बाहर खिडकी पर खडा हो गया।

भीतर बडी किटकिट थी। बात करना असम्भव था। रेखा ने अपना पर्स खोल कर उस मे से छोटी-सी कापी निकाली और पेंसिल से उस में कुछ लिखने लगी।

भुवन ने पूछा, "क्या लिख रही हैं ?"

रेखा ने हँस कर सिर हिला दिया।

थोडी देर बाद उस ने कापी भुवन की ओर बढायी। उस में लिखा था, "उस डिब्बे मे बैठ कर थोडी देर के लिए मैं अपने को यह मना सकी थी कि हम साथ ही इस गाडी मे यात्रा कर रहे हैं। पर अब—अब लगता है कि आप मुझे विदा कर चुके और उपचार बाकी है।"

भुवन ने कुछ न कह कर कापी लौटा दी।

रेखा ने फिर लिखा "अगले स्टेशन पर आप प्रतापगढ से आगे बात चलाने आवेंगे ?"

अब की बार भुवन ने कहा, "ज़रा पेंसिल दीजिए।" और लिखा. "आप ही ने तो कहा था, 'अब अगले स्टेशन पर न आना।' "

सहसा रेखा ने कहा, "सुनिए, आप मुझे छोडने क्या दो-चार स्टेशन भी न चलेंगे ? हापुड से लौट आइयेगा—"

भुवन सिर्फ हँस दिया, कुछ बोला नही।

रेखा के चेहरे पर एक हलकी-सी उदासी खेल गयी। कापी मे उस ने लिखा, "नही, मेरी ज़्यादती है।"

भुवन ने फिर कापी ले ली। जेब से कलम निकाल कर सुस्पष्ट अक्षरो मे लिखा, 'अकेले हैं न, तभी लीक पकड कर चलते हैं।' फिर तनिक रुक कर उस पर दुहरे उद्धरण-चिन्ह लगा दिये "—"

रेखा ने कापी देखी तो अचकचा कर बोल उठी, "यह—यह आप से किस ने कहा ?"

भुवन हँसने लगा। फिर उस ने लिखा, "मैंने कहा था न, मैन फ्राइडे जादू जानता है ?"

रेखा ने कापी ले ली, और अपलक दृष्टि से भुवन को देखने लगी। फिर उस की आँखें कुछ विकेन्द्रित हो गयी, जैसे उस के विचार कही दूर चले गये हो।

भुवन ने कहा, "मैं अभी आया—" और ओझल हो गया।

प्लेटफार्म पर चहल-पहल सहसा बढ गयी, जैसा गाडी चलने का समय हो जाने पर होता है। रेखा कापी में लिखने लगी—"ठीक गाडी के जाने के समय आप कहाँ चले गये ? मै गाडी चलने से पहले ही मानो खो गयी हूँ। इन स्त्रियो की बातें सुनती हूँ, और अनुभव करती हूँ कि मैं गृहस्थिन तो पहले ही नही थी, अब शायद स्त्री भी नही रही—कितनी दूर, कितनी दूर हूँ मुझ से ये बातें। एक तीन बच्चो की माँ है, एक पाँच की। एक के 'वह' लाम पर गये हैं। वहाँ से चाँदी के लच्छे न जाने कैसे भिजवाये थे—चाँदी के मगर फिरोज़े जडे। दूसरी के 'वह' "

गार्ड ने सीटी दी। रेखा ने हडबडा कर इधर-उधर देखा, फिर घसीट कर कापी मे लिखा, "कहाँ चले गये तुम, भुवन—गाडी चलने वाली है—क्या अन्त में बिना विदा के

ही मुझे जाना होगा ?" कापी उस ने बन्द की और खडी हो कर दरवाजे की ओर बढी, वाहर झुकी—

सामने भुवन खडा मुस्करा रहा था।

"वडे नालायक है आप !" रेखा सहसा कह गयी। "मुझे यों डराना अच्छा लगता है ?"

भुवन ने कहा, "अभी तो वहुत टाइम है। डरा मं नही गार्ड रहा है। आप वेशक वाहर चली आइये—"

रेखा उतर आयी और गाडी से कुछ हट कर भुवन के वगल खडी हो गयी। भुवन मुस्कराता ही जा रहा था। रेखा उस की ओर देखने लगी. हाँ, यही अच्छा है, इसी प्रकार मुस्कराते हुए ही हट जाना चाहिए, वह भी मुस्करायेगी—एक मिनट की तो वात होती है, ज़रा से धीरज की, ज़रा मजवूत नर्व्ज़ की—वाद मे चाहे जो हो

भुवन ने सहसा जेव मे से कुछ निकाला, अगूठे और उँगली से मसल कर उस की गोली वनायी और ठोकर मार कर फुटबाल की तरह उछाल दी। रेखा ने कहा, "क्या था ?"

गार्ड ने और गाडी ने एक साथ सीटी दी।

भुवन ने कहा, "मेरा प्लेटफ़ार्म टिकट।"

रेखा भौंचक उसे देखने लगी। भुवन वोला, "क्यो, यह गाडी भी छोडनी है क्या ? मं चल रहा हूँ साथ—हापुड नही, मुरादावाद।"

उस के साथ ही लपक कर रेखा अगले इटर की ओर बढी—कितना अच्छा था उस के साथ कदम मिला कर लपकना ! उसे सवार करा कर भुवन भी उछल कर चलती गाडी मे सवार हो गया।

रेखा वैठ गयी, जगह कम थी, भुवन खडा रहा। रेखा ने एक वार वेवस उस की ओर देखा, फिर कापी निकाल कर लिखा, "भीड है, नही तो मै इस वक्त गाना गा कर सुना देती।"

भुवन उस की ओर मुस्करा दिया। फिर कापी ले कर लिख दिया, "भीड की सजा मुझे मिलेगी ?"

रेखा फिर असहाय-सी उस की ओर देखने लगी। फिर उस ने घूम कर खिडकी से मुँह वाहर निकाला और धीरे-धीरे गाने लगी। भुवन दरवाज़े पर था ही, दरवाजा खोल कर खड़ा हो गया। सरसराती हवा के साथ गाने के स्वर उस के कानो को छूने लगे

महाराज, ए कि साजे एले मम हृदय-पुर माझे।
चरण तले कोटि शशि-सूर्य मरे लाजे।
महाराज, ए कि साजे—

गर्व सब टूटिया
मूर्छि पडे लूटिया
सकल मम देह-मन वीणा सम बाजे।
महाराज ए कि साजे--*

जमुना के पुल की गडगडाहट में आगे गान खो गया। पुल जब पार हुआ, तब रेखा चुप हो गयी थी, क्षितिज में कुछ हलकापन दीखने लगा था।

* * *

तल्ली-ताल में मोटर से उतर कर भुवन ने एक नज़र नैनीताल की झील को देखा--तीसरे पहर की धूप एक तरफ की पहाडी पर ऊँचे पर थी, झील घनी छाह मे थी और आकाश ऐसा दूर था मानो किसी गहरी तलहटी में से ऊपर देख रहे हो--तो उसने जाना कि यहाँ तक आने का निश्चय तभी हो गया था जब उसने मुरादाबाद का टिकट लिया था। मुरादाबाद में जब रेखा ने पूछा था, "सुनिए, आप सचमुच यहाँ से लौट जायेंगे ?--अब मुझे पहुँचा ही आइये न ?" तब जैसे यह प्रश्न उस के मन में पहले पूछा जा चुका हो, ऐसे ही बिना अचम्भे के उस ने कहा था, "हो तो सकता है--"

और रेखा ने चिढाया था, "तो मैन फ्राइडे अभी से सकने की बातें सोचने लगा जादू भूल कर ?"

"भई, अभी दिन-दुपहर है, जादू का वक्त अभी कहाँ हुआ है ?"

मुरादाबाद से वे बरेली हो कर नही गये थे . रामपुर गये थे और वहाँ से मोटर मे काठगोदाम होते हुए नैनीताल--तीसरे पहर ही यहाँ पहुँच गये थे। रास्ते में रेखा धीरे-धीरे न जाने क्या गुनगुनाती आयी थी, बोली बहुत कम थी, एक अलौकिक दीप्ति उस के अलस शान्त चेहरे पर थी बीच-बीच में वह आँखें बन्द कर लेती और भुवन समझता कि सो गयी है, पर सहसा उस की पलकें उस अनायास भाव से खुल जाती जिस से स्वस्थ शिशु की आँखें खुलती हैं और वह फिर कुछ गुनगुना उठती . भुवन ने कहा था, "थोडा ऊघ लीजिए, रात भर जागी हैं--" तो सहसा सजग हो कर बोली थी, "अभी ? ऊँघने के लिए तो सारा जीवन पडा है, थोडा-सा जाग ही ली तो क्या हुआ !" और एक कोमल मुस्कान से खिल कर उसे निहारने लगी थी। फिर भुवन ऊँघ गया था.

होटल साफ-सुथरा था, पर लोग काफी थे। मैनेजर से भुवन ने पूछा कि ठहरने की जगह मिल सकेगी ? तो उस ने तपाक से उत्तर दिया "जी हाँ, डबल-रूम--कितने दिन

---

*महाराज, यह किस सज्जा में मेरे हृदय-पुर में आये ? कोटि शशि-सूर्य लज्जित होकर पैरो में लोट रहे है। मेरा गर्व टूट कर मूर्छित पड़ा है, मेरा देह-मन वीणा की तरह बज रहा है। --रवीन्द्रनाथ ठाकुर

के लिए ?" और रजिस्टर की ओर हाथ बढ़ाते हुए, "किस नाम से—"

क्षण-भर के लिए वह झिझक गया। मैनेजर के प्रश्न के साथ ही सभ्यता की जो समस्याएँ सहसा उस की नज़र के आगे कौंध गयी, उन पर उस ने आते हुए विचार नही किया था। सँभल कर बोला, "अभी हमने निश्चय नही किया है कि यही ठहरेंगे या और आगे जायेंगे. ज़रा चाय-वाय पी लें तब तक सोचते है—"

"जी हाँ, अभी लीजिए", कह कर मैनेजर ने आवाज़ दी, "वाय!"

'वाय' आया तो उस से कहा, "साहब का आर्डर ले लो—चाय केक-पेस्ट्री वगैरह जो चाहें—"

रेखा कुछ पीछे थी। भुवन ने कहा "आप ज़रा यही बैठिए, मै अभी आया—सामान—"

पर रेखा साथ बाहर की ओर चली। बोली, "क्या बात है, भुवन ?"

"कुछ नही।" भुवन क्षण भर रुक गया। फिर बोला, "मै यहाँ नही ठहरूँगा—नैनीताल में ही नही।"

रेखा उसे देखती रही। उस का चेहरा उतर गया। "अभी वापस जाओगे ?"

"यहाँ तो नही रहूँगा। या तो आगे चले—"

"चलो—"

"अच्छा, मै आता हूँ—"

"लेकिन जा कहाँ रहे हो ? बताओ तो—"

"भई, कुछ सामान-वामान तो मुझे चाहिए, आ तो गया—"

"मेरे पास सभी कुछ फालतू है, बिस्तरा, कम्बल—"

भुवन ने एक मुदित-सी खीझ के साथ कहा, "अच्छा, एक टूथ-ब्रश तो ले आऊँ!"

रेखा हँस पड़ी। फिर बोली, "मै भी साथ चलूँ ?"

"नही, मैने चाय का आर्डर दिया है, मै अभी लौट कर आया।"

रेखा मान गयी। भुवन चलने लगा तो बोली, "पर हम यहाँ ठहर नही रहे है, यह उदास जगह है। आगे कही भी चलो—मुझे छोड़ आना होगा।"

भुवन चला गया। रेखा भीतर बैठ कर कापी में कुछ लिखने लगी। उसे नही मालूम हुआ कि भुवन कब लौटा, सहसा उस का स्वर सुन कर चौंकी। भुवन मैनेजर से कह रहा था. "हम लोग आगे जा रहे है सात-ताल, अभी चले जायेंगे चाय के बाद—आप का शुक्रिया।"

"दैट्स आल राइट, सर! चाय आ गयी है।"

दोनों ने एक साथ ही प्रश्न किये.

"ले आये टूथ-ब्रश ?"

"क्या लिख रही है—कविता ?"

रेखा ने पहले उत्तर दिया "हाँ समझ लो ।"

भुवन ने नकल लगाते हुए कहा, "और मै भी, हाँ, समझ लो ।" फिर कहा, "अच्छा, जल्दी से चाय पी लीजिए—आगे जाना है तुरन्त ।"

"कहाँ ?"

"आगे । इटु द ब्लू । क्रूसोलैंड । चाय का मजा क्यो बिगाडती है—पी लीजिए और चलिए ।"

रेखा मुस्करा दी । चाय से उठ कर वे बाहर आये तो भुवन ने कहा, "आप के बक्स-बक्स में कही जगह हो तो यह पैकेट उस में रख दीजिए—"

रेखा ने दुष्टता से कहा, "इतना बडा टूथ ब्रश । जरा मै देखूं—" और भुवन के रोकते न रोकते उस ने पैकेट खोल कर झाका ही तो ।

दो कमीजे, एक फ्लैनल की पैंट, एक पाजामा, एक-आध और छोटी चीजे, और, हाँ, एक टूथ-ब्रश भी ।

रेखा ने कहा, "हाँ, है तो सही टूथ-ब्रश । पर यह सब रेडी-मेड क्या ले आये आप—"

"तो आप का क्या खयाल था, आप का फालतू कम्बल लपेटे घूमूंगा ?" भुवन हँस पडा, और अपने पतले कुरते की ओर देखने लगा ।

रेखा ने गम्भीर हो कर माफी माँगी । सहसा उसे ध्यान हुआ, भुवन को यो खीच लाने मे भावुकता का कितना बडा प्रमाद उसने किया है ।

भुवन ने उस की बात काट कर कहा, "जल्दी कीजिए रेखा जी, सामान उठवाना है ।"

रेखा सामान रख रही थी तो उस ने पूछा, "दस-बारह-पन्द्रह मील चल सकती है ? वैसे मोटर भी जाती है, पर आगे भी कुछ चलना पडेगा—"

"ज़रूर चल सकती हूँ । पैदल ही चलूंगी । लेकिन कहाँ जायँगे ? सात-ताल ?"

"नही ।" भुवन फिर मुस्करा दिया । "क्रूसोलैंड—मैंने कहा न ? बताने से जादू चला जाता है ।"

भुवन कुली साथ ले आया था । सामान उठवाया और बोला, "चलो, हम लोग आते है । डाकबँगले पर जा कर बैठना ।"

कुली चल पडे ।

"कहाँ के डाकबँगले—यह बता दिया है ?"

"वह सब मै ठीक कर आया हूँ—आप किसी उपाय से पहले नही जानने पायेगी ।"

रास्ता उतार का था । दोनो बडी तेज़ी से उतरने लगे ।

भुवन ने कहा, "अगर तेज चलने की बात न होती, तो मै आप से गाने का अनुरोध करता ।"

रेखा ने रुकते-रुकते शब्दो में कहा, "नही—इस वक्त—हवा को ही गाने दीजिए ।"

लेकिन दो-तीन मील जा कर जब वे एक खुली जगह सामने का दृश्य देखने के लिए रुके, तब रेखा सहसा खुले गले से किसी भटियाली पद के बीच मे से ही गा उठी .

ओ ये केड़े आमाय निये जाय रे,
जाय रे कोन चूलाय रे !
आमार मन भूलाय रे !
ग्राम छाड़ा ओई राङामाटीर पथ--*

बस, यही अढाई पक्ति, और फिर मुक्त भाव से आगे को दौड पडी। पीछे-पीछे भुवन भी दौडने लगा।

भुवाली से एक-डेढ मील आगे रेखा ने सहसा भुवन का हाथ पकड कर कहा, "वह देखो सामने--क्या वही हम जा रहे हैं !"

दिन ढलने लगा था। आकाश के विस्तार मे एक हल्की-सी धुन्ध छाने लगी थी, अभी थोडी देर मे इसी धुन्ध मे साँझ का ताम्र-लोहित रग बस जायगा आस-पास की पहाडियाँ नैनीताल की तरह तग नही थी, एक के बाद एक तीन-चार खुले स्तर थे मानो पुरानी सूखी झीलो के थाल हो, और आस-पास पहाडियाँ क्रमश नीचे होती गयी थी। और धुन्ध के बीच में, जैसे किसी जौहरी ने सँभाल कर रूई के गाले पर कोई मूल्यवान् रत्न रखा हो, एक झील चमक रही थी

"मुझे क्या मालूम है ? हो सकता है। पर वह शायद भीमताल है। तब सात-ताल दाहिने को होगा।"

"वहाँ क्या सचमुच सात-ताल हैं ?"

"ज़रूर हैं, लेकिन जादू के बगैर नही दीखते। यो शायद तीन हैं--बल्कि अढाई--"

रेखा ने फिर पूछना चाहा, "क्या हम वहाँ जा रहे हैं ?" पर रुक गयी।

दिन छिपते-छिपते दोनो भीमताल पहुँच गये। कुली भुवाली में ही पीछे रह गये थे। झील के पास ही डाकबँगला था; भुवन ने वहाँ जा कर चौकीदार से कहा कि कुली आवें तो उन्हें कह दे कि वह आगे चला गया है और कुली जल्दी आवे, फिर कुछ और पूछताछ भी कर ली और रेखा के पास लौट आया।

"क्या यही रुक रहे हैं हम ?"

"नही, बस तीन मील और जाना है। थक तो नही गयी ?"

"इर्रेलेवेंट बातें मत कीजिए," रेखा ने उत्तर दिया और भुवन ने देखा, उस के चेहरे पर यद्यपि श्रम के लक्षण स्पष्ट हैं, पर उस की एडी की गति में सहसा नयी लचक आ गयी है

गत हो गयी थी। सप्तमी-अष्टमी का चाँद था। पथ बराबर हल्की उतराई का ही

*रांगामाटी का गांव से हटा हुआ पथ मुझे खींच कर ले जाता है न जाने किधर।

था। एक छोटे-से गाँव के पास से वे गुज़रे। भुवन ने कहा, "अब मील-भर और होना चाहिए—"

"अब भी नाम नही बताओगे जगह का ?"

"नाम ? नाम मे क्या है ? हमारा ही क्या नाम है ? वहाँ एक तिलिस्मी झील है, और उस के नौ अलग-अलग कक्ष है, सब कभी एक साथ नही दीखते। रोज़ एक देखना होता है—"

"ओ, पूरा नाइन डेज़ वडर।" रेखा ने चिढाया।

"हाँ, वही सही। लेकिन चार दिन की चाँदनी कहते है, तो मेरे वडर में दो पूरी चाँदनियाँ समा गयी और फिर भी कुछ बाकी रह गया—समझी ?"

"तुम और तुम्हारा अरिथमेटिक !"

पहाडी के मोड पर सहसा घने पेडो के झुरमुट की ओट मे पानी की चमक। भुवन ने कहा, "थके राही, वह देखो मजिल। इस झील का नाम है नौकुछिया-ताल।"

"थके तुम—और तुम्हारे दुश्मन। लेकिन सचमुच यही नाम है ?"

"हाँ।"

बडा साफ-सुथरा कमरा। बडी टेबल लैम्प। बिजली के लैम्प मे और रहस्य में वैर है, लेकिन तेल के लैम्प—आओ, रहस्य के सौन्दर्य, सौन्दर्य के रहस्य, इस छोटे से आलोक-वृत्त को घेर लो !

सामान न जाने कब आयेगा। गर्म पानी से दोनो ने मुँह-हाथ-पैर धोये, एक लम्बी आराम-कुरसी भुवन ने खिडकी के पास खीच ली, जहाँ से झील और चाँद भी दीखता था, पैरो के लिए एक तिपाई रखी, फिर रेखा से कहा, "यहाँ बैठ जाओ।"

रेखा ने एक बार उस के चेहरे की ओर देखा, फिर उस आज्ञापने के स्वर का प्रतिवाद करने की उस की इच्छा दब गयी। वह आराम से लेट गयी। भुवन खिडकी के चौखटे पर आधा बैठ गया।

"और एक कुरसी खीच लो न ?"

"खीच लूँगा पीछे।"

रेखा ने कुछ अलसाये स्वर से कहा, "फ्राइडे, तुम नही गा सकते ? वह एक जादू बाकी है अभी—फिर मै मान लूँगी कि कामिल जादूगर हो।"

भुवन ने कहा, "अच्छा गाता हूँ।" उठ कर बरामदे मे गया, धीरे-धीरे टहलने लगा।

उस की गुनगुनाहट भीतर पहुँची तो रेखा का और भी असलाया स्वर आया: "बाहर क्या-प्रैक्टिस करने गये हो ?"

भुवन ने उत्तर नही दिया। थोडी देर बाद भीतर गया तो देखा, रेखा वही कुरसी पर सो गयी है। वह दबे पाँव बाहर लौट आया। बरामदे के खम्भे के साथ पीठ टेक कर नीचे बैठ गया और चाँद देखने लगा। सहसा न जाने क्यो उदास विचार उस के मन में

उमडने लगे—क्या थकान के कारण ? वह फिर धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा।

मेरे मायालोक की विभूति बिखर जायगी !
किरण मर जायगी !
लाल हो के झलकेगा भोर का आलोक—
उर का रहस्य ओठ सकेंगे न रोक।
प्यार की नीहार बूंद मूक झर जायगी !
इसी बीच किरण मर जायगी !
ओप देगा व्योम श्लथ कुहासे का जाल,
कडी-कड़ी छिन्न होगी तारको की माल।
मेरे मायालोक की विभूति बिखर जायगी—
इसी बीच किरण मर जायगी !

चारो ओर पैरो की चाप और लालटेन की रोशनी से वह चौंक कर जागा। हाथ की घड़ी देखी—ग्यारह बजे थे। कुली आ गये थे। उस ने कहा, "शोर मत मचाओ !" सामान उतरवा कर पैसे दे कर उन्हें विदा किया। फिर भीतर जा कर देखा, रेखा गहरी नीद मे सो रही थी। भुवन ने सामान बाहर ही रहने दिया, बिस्तर खोला, एक कम्बल निकाल कर, अन्दर चादर जोड कर, दबे पाँव भीतर गया और धीरे से रेखा को उढ़ा दिया। वह नही जागी। तब वह बाहर आया, और जमीन पर बिछे बिस्तर पर ही स्वय लेट गया, एक कम्बल खीच कर अपने पैरो पर उस ने ढक लिया।

झील इस समय सुन्दर है—आसपास घने पेडो के झुरमुट है यद्यपि झील नैनीताल की तरह दो पहाडो के बीच में भिची हुई नही है, खुली है—दिन मे भी क्या वह उतनी ही सुन्दर होगी—जितनी उस ने सुना है, जितनी अब है ? दिन 'मेरे मायालोक की विभूति ।' दिन अपनी चिन्ता स्वय करेगा। एक बार उसने चाहा, उठ कर फिर रेखा को देख आये, पर शरीर ने कोई प्रोत्साहन न दिया। ठीक है, दिन की बात दिन में—अभी तारे हैं—कितने तारे—क्या सचमुच हर किसी का एक-एक अपना तारा होता है ? केवल कल्पना। पर सुन्दर कल्पना। क्यो ? क्या यह कल्पना और भी सुन्दर नही है कि सब तारे सब के होते है ? हाँ, सदैव तो नही। पर एक क्षण होता है—एक द्वीप का क्षण—नही, क्षण का द्वीप—नही, उस क्षण में तारो का एक द्वीप—न..

* * *

सुन्दर रग—बिना आलोक के रग—लेकिन बिना आलोक के रग हो कैसे सकते है ?—नही, बिना रग का आलोक, तीक्ष्ण आलोक ·

भुवन उठ कर बैठ गया। सूर्य निकल आया था। लपक कर वह भीतर गया—कुरसी

पर रेखा नही थी। तो वह पहले उठ गयी—उस ने भी भुवन को न उठाया होगा—उसे पहले जागना चाहिए था।

वह बाहर आया। देखा, सूटकेस खुला है। उस की कमीज़, पैंट, तौलिया और अन्य आवश्यक सामान बाहर एक ओर को रखा है। और वह सोता ही रहा।

भीतर जा कर मुँह-हाथ धोने की उस की इच्छा न हुई। उस ने तौलिये में सब सामान डाला, और नीचे झील की ओर चला।

सामने जहाँ धूप पड रही थी, वहाँ पेडो पर जहाँ-तहाँ बडे-बडे लाल गुच्छे चमक रहे थे। भुवन ने पहचाना—बुरूस के फूल। मुँह-हाथ धो कर वह तोड कर लायेगा..

बिना शीशे के हजामत बनाना ऐसा कठिन नही था। आँख बन्द कर लेने से अपना चेहरा देखने में मदद मिलती है। प्रक्षालन कर के उस ने कपडे बदले, उतरे कपडे तौलिये मे लपेट कर वही रख दिये और लम्बे कदम फेंकता हुआ बुरूस के गुच्छे की ओर चला।

दो बडे-बडे गुच्छे उस ने तोडे। फिर दोनो को देख कर एक वापस पेड मे अटका कर रख दिया, एक ले लिया।

जहाँ तौलिया छोड गया था, उधर वह लौट रहा था कि दूर, कुछ ऊपर से उसे रेखा का स्वर सुनाई पडा। रेखा गा रही थी। भुवन ठिठक कर सुनने लगा, कभी स्वर उस तक पहुँचते, कभी हवा उन्हें उडा ले जाती .

"ऊषा एशे. कल-कण्ठ-स्वरा !
.मिलन हवे बले आलोय आकाश भरा !
चलछे भेसे मिलन-आशा-तरी अनादि स्रोत बये,
कत कालेर कुसुम उठे भरि छेये
तोमाय आमाय—"*

हवा उठी, गान खो गया, फिर स्वर आये मगर अस्पष्ट . भुवन जल्दी से उधर को बढने लगा जिधर से गान आ रहा था।

कुछ ऊचे पर, सूर्य को सामने किये, मुँह कुछ ऊँचा उठाये रेखा एक पत्थर पर बैठी थी। भुवन एक ओर से आ रहा था, उस ने देखा कि रेखा की आँखें बन्द है, मानो प्रभात के सूर्य को अपना चेहरा वह सौंप रही हो। पक्के पीले रग की साडी उस ने पहन रखी थी, जिसे सूर्य ने और सुनहला चमका दिया था वह कुछ हट कर पीछे हो गया और दबे-पाँव बढने लगा। रेखा अब भी गा रही थी, लेकिन शब्दो के बिना, केवल स्वर, कभी गुनगुना देती और कभी ज़ोर से। बिल्कुल पास जा कर उस ने धीरे से हाथ बढा कर रेखा

*उषा आ कर कलकण्ठ-स्वर से कहती है, तुम्हारा-मेरा मिलन होगा, इसी लिए आकाश आलोक से भरा है। मिलन-आशा की तरी अनादि स्रोत में बही चली जा रही है, न जाने कब के कुसुम खिल कर छा गये है। —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

की कवरी छुई, वह तनिक-सा चौकी पर फिर पूर्ववत् हो गयी, घूमी नही, गाना बन्द कर दिया। भुवन ने हाथ का वुरूस का गुच्छा उस की कबरी मे खोस दिया—वह इतना बडा था कि आधी कवरी को और कान तक वालो को ढक रहा था उसे ठीक से अटकाने के लिए भुवन कुछ आगे झुका कि एक-आध काँटा खीच कर कबरी कुछ ढीली करे : सहसा रेखा ने दोनो वाहे उठा कर उस का सिर घेर लिया, कन्धे के ऊपर से उसे निकट खीच कर उस का मुँह चूम लिया—बड़े हलके स्पर्श से लेकिन ओठो पर भर-पूर।

भुवन भी कुछ चौक गया, वह भी चौंक कर छिटक कर खडी हो गयी, दोनो ने स्थिर और जैसे असम्पृक्त दृष्टि से एक दूसरे को देखा, फिर एक साथ ही दोनो ने हाथ बढा कर एक दूसरे को खीच लिया, प्रगाढ आलिगन मे ले लिया और चूम लिया—एक सुलगता हुआ, सम्मोहन, अस्तित्व-निरपेक्ष, तदाकार चुम्बन।

* * *

"तुम फिर कुछ लिखती रही हो ?"

"हाँ—"

"क्या ?"

"कुछ नही। मेरी डायरी है।"

भुवन ने आगे नही पूछा। वोला, "अच्छा, अब तो गाना गाओगी ?"

"न। तुम्हारी वारी है गाने की।"

"मै। श्रेष्ठ गायक हूँ। मेरा गाना स्वरातीत है। दिन भर तो गाता रहा, तुम ने सुना नही ?"

"थोडा और श्रेष्ठ हो जाओ, तो मेरा सुनना भी सुन सको।'

तीसरे पहर रेखा ने कपड़े बदल लिये थे। वह फिर सफेद पहनने लगी थी, लेकिन भुवन के आग्रह से उस ने एक नीली साड़ी और नीला ही ब्लाउज़ पहन लिया था। अब कमरे की व्यवस्था ठीक-ठीक हो गयी थी, सामान लगा कर रख दिया गया था, खिडकी के पास रेखा का पलग विछा था और वरामदे मे भुवन का—भुवन ने आग्रह कर के वहाँ लगाया था।

दिन भर वे प्राय: भटकते ही रहे थे—सुवह लौट कर नाश्ता किया था और फिर निकल गये थे, झील का एक चक्कर लगाया था; फिर लौट कर झील पर गये थे, नौ कक्षो मे मे जो एक सब से खुला और शैवाल-रहित जान पडता था उस में नहाये थे और फिर भोजन के लिए लौट आये थे। झील पर भुवन ने पूछा था, "तैरना जानती हो ?"

"वस डूवने भर को।"

"तव तो वहुत जानती हो। इतना तो मैंने भी नही सीखा। कलकत्ते मे क्यो नही सीखा ?"

तब रेखा हँस कर बोली, "जानती हूँ साहब, तैर लेती हूँ। पर इन कपडो मे नही—"

"ओह।" भुवन झेप गया। "तो लायी क्यो नही ?"

"मुझे क्या मालूम था—"

"कास्ट्यूम तो नैनीताल मे भी मिल जाता—"

"मुझे बताया था ? नही तो मै भी टूथ-ब्रुश खरीदने चल देती।"

किनारे पर ही वे नहाये थे। भुवन तैर कर भीतर गया था, रेखा ने भी साडी पहने-पहने दो-चार हाथ तैरने का यत्न किया था पर लौट आयी थी।

अपरान्ह मे वे बुरूसो की छाया मे काही-बिछी ठडी जगह मे बैठे-लेटे रहे थे। फिर लौट कर चाय पी थी, तब रेखा ने कपडे बदल लिये थे।

"अच्छा, चलो घूमने चले।"

"चलो। किधर ?"

"फिर पहले प्रश्न ? सामने—सर्वदा सामने।"

"नही, मेरा मतलब था, सात-ताल के जादुई ताल खोजने है कि—"

"न। जादुई ताल यह है। नौ तहो का जादू है इस पर!"

वह पहाड पर ऊँचे चढने लगे, फिर पहाड की उपत्यका के साथ-साथ सममार्ग पर।

दिन ढल आया था। थोडी देर मे सूर्य पहाडी की ओट हो कर छिप जायगा। सहसा भुवन ने कहा, "चलो, सूर्यास्त को पकडे।"

दोनो हाथ पकडे-पकडे दौडने लगे। पहाडी के सिरे के पीछे सूर्य छिप रहा होगा—बादल नही थे, एक तेजोदीप्त नगा लाल रवि-बिम्ब ही क्षितिज की ओट हो रहा होगा। अगर वे पहाडी के सिरे तक पहले पहुँच जायँ तो देख सकेगे।

दौडते-दौडते भुवन ने कहा, "दौडो, रेखा, हमारी सूरज से होड है।"

रेखा और तेज दौडने लगी। भुवन के हाथ पर उस की पकड कुछ कडी और खीचती-सी हो गयी; भुवन ने लक्ष्य किया कि वह हाँप रही है और सहसा धीरे हो गया, पर ऐसे नही कि रेखा को साफ मालूम हो।

पर पहाडी के मोड तक पहुँचते न पहुँचते सूर्य छिप गया। एक द्रुत हाथ मानो किसी धूसर लेप से सारा आकाश पोत गया, प्रकाश अब भी था, पर मानो किसी स्रोत से उद्-भूत नही, दिग्भ्रान्त, आकाश मे खोया-सा।

भुवन ने सहसा रुक कर कहा "हम हार गये।" जहाँ सूर्य डूबा था, वहाँ एक छोटी-सी लाल लीक थी, जैसे किसी ने 'इति शम्' लिख कर उस पर जोर देने को पुष्पिका बना दी हो।

उस की ओर देखते हुए रेखा ने कहा, "डूबते सूर्य को कौन पकड सकता है ?"

क्षण भर बाद भुवन के हाथ पर उस की पकड फिर दृढ हो आयी। "मगर यह हार नही है। रात का अपना सौन्दर्य है। वह समान सौन्दर्य पहचानो, भुवन।"

भुवन घूमा। रेखा का दूसरा हाथ भी उसने पकड लिया और सझा के प्रकाश मे थोडी देर उस का मुँह निहारता रहा। "पहचानता हूँ। तुम्ही वह सौन्दर्य हो, नीलाम्बरा रात का सौन्दर्य, और तुम्हारे केशो मे असंख्य तारे है।"

"और तुम—शुक्र तारा।" रेखा ने बहुत धीमे कहा। कोमल आग्रह से उस के हाथो ने भुवन को निकट खीच लिया।

जरा परे हट कर भुवन ने मान से कहा, "क्यो, चाँद नही ?"

"वेन मैन! नही, चाँद घटता-बढता है। उस का बहुरूपियापन मुझे नही चाहिए। शुक्र, केवल शुक्र!" फिर हल्की-सी उसाँस ले कर, "चाहे कितनी जल्दी अस्त हो जाय!"

भुवन ने आँखो से उस की आँखो को पकडते हुए धीरे-धीरे सिर हिलाया 'हुँक्, उदास नही होना है! फिर रेखा के माथे की ओर देखते हुए, कविता की पक्ति उद्धृत की, "एड द स्टार्स इन हर हेयर वेयर सेवन।"

वह लौटने के लिए मुडा। बोला, "यहाँ जुगनू होते तो मै थोडे से पकड कर तुम्हारे बालो मे फँसा देता।"

* * *

किस चीज ने उसकी नीद तोड दी—चाँद की रोशनी ने, या कि उस पर बादल की छाया ने—

भुवन ने आँखे खोली। नही, बादल की छाया नही, रेखा की छाया थी।

रेखा उस के सिरहाने बैठी थी, उस पर झुकी हुई उस का चेहरा देख रही थी।

उस ने आँखे खोली है, यह देख कर रेखा ने अपने दोनो हाथ उस के माथे पर रख दिये।

हाथ बिलकुल ठडे थे।

"तुम ठिठुर रही हो, रेखा!" कह कर भुवन उठने को हुआ, पर रेखा ने उस का माथा दबा कर उसे रोक दिया। भुवन ने कुहनी से अपना कम्बल उठा कर सरका कर रेखा के घुटनो पर उढा दिया, फिर उस के दोनो हाथ अपने हाथो मे पकड कर कम्बल के अन्दर खीच लिये। पूछा "क्या बात है, रेखा ?"

रेखा नही बोली।

भुवन ने फिर पूछा, "रेखा क्या बात है ?"

"तुम—हो, तुम सचमुच हो! यू आर रीयल!" रेखा का स्वर इतना धीमा था कि ठीक सुन भी नही पडता था।

भुवन ने कहा, "आइ'म वेरी रीयल, रेखा। पर ठहरो, पहले तुम्हे कम्बल उढा लूँ—"

एक हाथ मे रेखा के दोनो हाथ पकडे वह उठा, दूसरे हाथ से उस ने कम्बल खीच कर रेखा की पीठ भी ढक दी। स्वय पैर समेट कर बैठा हो गया, कुछ रेखा की ओर को उन्मुख।

रेखा सहसा हाथ छुडा कर उस से लिपट गयी। आँखे उस ने बन्द कर ली, भुवन के माथे पर अपना माथा टेक दिया। उस के ओठ न जाने क्या कह रहे थे, आवाज उन से नही निकल रही थी।

भुवन कहता गया, "क्या बात है, रेखा, रेखा, क्या बात है—" उस का स्वर क्रमश धीमा और आविष्ट होता जा रहा था।

रेखा के ओठ उस के कान के कुछ और निकट सरक आये। पर स्वर उन मे से अब भी नही निकला।

पर सहसा भुवन जान गया कि वे शब्दहीन-स्वरहीन ओठ क्या कह रहे है।

"मै तुम्हारी हूँ, भुवन, मुझे लो।"

भुवन वैसा ही स्तब्ध बैठा रहा। न उठा, न हिला, न उस ने रेखा को निकट खीचा, न हटाया। रेखा के ओठ भी निश्चल हो गये, मानो उन्होने जान लिया कि वे जो कह नही सके है, वह सुन लिया गया है।

न जाने कितनी देर तक ऐसा रहा। फिर भुवन ने कहा, "रेखा, पैर उठा कर इधर पसार लो—ठिठुर जायेगे।" लेकिन रेखा के अग-प्रत्यग जैसे शिथिल हो गये थे। भुवन ने हाथो मे बलात् उस के पैर उठा कर कम्बल के अन्दर कर लिये। रेखा कुछ सीधी हो कर बैठ गयी। भुवन ने दोनो बाँहो से उसे कमर से घेर लिया, सिर उठा कर धीरे से रेखा की जाँघ पर रख दिया

फिर और न जाने कितनी देर तक ऐसा रहा।

सहसा रेखा चौकी। भुवन का शरीर काँप रहा था। जल्दी मे झुक कर रेखा ने उस का मुँह देखना चाहा, पर उस ने और भी जोर से उसे रेखा की जाँघ मे गडा कर अपनी एक बाँह से ढँक लिया।

रेखा बैठी रही, बिलकुल निश्चल। उस की सब सवेदनाए जैसे अत्यन्त सजग हो आयी, पर साथ ही भीतर कही कुछ जड होने लगा।

भुवन सिसक रहा था, अब उस की सिसकी स्पष्ट सुनी जा सकती थी।

रेखा ने फिर उसे सीधा करना चाहा, पर न कर सकी। फिर वह वैसी ही निश्चेष्ट बैठ गयी।

थोडी देर बाद भुवन ही सिर उठा कर जरा ऊपर को सरका, सिर उसने फिर रेखा की देह पर टेक लिया लेकिन मुँह के आगे से हटा लिया। पर रेखा ने अब उसका चेहरा देखने की चेष्टा नही की।

भुवन कुछ असम्बद्ध-सा बडबडाने लगा। पहले ओठो की बिलकुल ही स्वरहीन गति। फिर एक धीमी फुसफुसाहट, कभी कही टूटा हुआ स्वर। रेखा एकाग्र हो कर सुन भी रही

थी और मानो अर्थ तक पहुँचने का यत्न भी नही कर रही थी.

लेकिन अर्थ स्वय धीरे-धीरे अवगत होने लगा ।

"यह इनकार नही है, रेखा, प्रत्याख्यान नही है . यह सब बहुत सुन्दर है, बहुत सुन्दर....वह—वह सौन्दर्य की चरम अनुभूति होती है—होनी चाहिए मैं मानता हूँ इसी लिए डर लगता है, अगर वह—अगर वैसा न हुआ—जो सुन्दर है उसे मिटाना नही चाहिए तुमने जो दिया है, उस के सौदर्न्य को मै मिटाना नही चाहता, रेखा, जोखम मे नही डालना चाहता । वह बहुत सुन्दर है, वहुत सुन्दर "

और फिर बडी-बडी सिसकियो ने उस का स्वर तोड दिया, अब की बार उस ने मुँह नही छिपाया, और रेखा वैसे ही बैठी रही, एक हाथ भुवन के कन्धे पर रखे, दूसरा अपनी जाँघ पर उस के चेहरे के नीचे; भुवन का पहला गर्म आँसू इस हाथ पर गिरा तो वह तनिक-सा सिहर गयी, फिर हाथ को उस ने अजुली-सा बना लिया और आँसू उस मे गिरते गये।

जब भुवन का आवेश कुछ कम हुआ तो रेखा ने अपना आँसुओ से भीगा हुआ हाथ खीचा, और भुवन के आँसू अपने केशो मे और फिर अपनी छाती पर पोछ लिये । फिर आँचल खीच कर धीरे से भुवन की आँखें पोछ दी । जो हाथ कन्धे पर पडा था, वह अत्यन्त धीरे-धीरे उसे थपकने लगा ।

भुवन धीरे-धीरे शान्त हो गया । एक ऐसी गहरी शिथिलता उस के सारे शरीर पर छा गयी मानो हफ्तो का रोगी हो । रेखा ने उसे धीरे-धीरे और ऊपर की ओर खीचा, उस का सिर अपनी छाती पर टेका, अपने आँचल से ढँक दिया ।

एक स्निग्ध, करुण, वात्सल्य भरी गरमी से घिरा हुआ भुवन सो गया । न जाने कब एक वार उस की नीद की घनता कुछ कम हुई, तो उस के कन्धे पर उस थपकी की वैसी ही सम, कोमल, अभयदा, त्राणमयी छाप पड रही थी । वह फिर खो गया ।

* * *

लेकिन सुवह वह अकेला था । जब उस की नीद खुली, तो पलको पर एक भारीपन था, मन पर कुछ ऐसा भाव कि वह नीद मे उठ कर चला है, और कही अपरिचित जगह पर जा कर जाग कर भटक गया, है फिर सहसा रात की घटना का चित्र स्पष्ट हो गया, उस ने जाना कि रेखा जहाँ थी वहाँ नही है और वह वहुत गहरी नीद सोया होगा । पर उठ कर भीतर जा कर रेखा को देखने का भी साहस उसे न हुआ । वह वही से बाहर जा कर सीधे वुरूस के झुरमुट में चला गया ।

अनमने-से भाव से उस ने वुरूस का वडा-सा गुच्छा तोडा । फिर सहसा सचेत हो कर उसे देखा । नही, जीवन मे कोई चीज़ दोवारा नही होती है । कम-से-कम कोई सुन्दर चीज़ नही । जो दोवारा होती है वह सुन्दर नही होती । फूल का गुच्छा उस ने फेंक दिया । झुरमुट में और गहरा घुसने लगा ।

क्या वह लौट कर जायेगा—रेखा के पास जायेगा ? उस के सामने होगा ?

पुराणो मे बहुत कहानियाँ हैं। स्त्री कभी नही माँगती, और जब माँगती है—प्रत्याख्याता स्त्री ने कभी पुरुष को क्षमा नही किया, सदैव शाप दिया है, और पुराणो में कही यह ध्वनि नही है कि वह शाप अनुचित है। कही बल्कि यह स्पष्ट कहा है कि स्त्री माँगे तो 'न' कहने का अधिकार पुरुष को नही है, शीलविरुद्ध है—माँग के औचित्य-अनौचित्य से परे. सब पुराणो का रोमांटिसिज्म है ? लेकिन पुराण बिलकुल रोमांटिक नही थे—उन की स्वच्छन्दता प्रकृति की स्वच्छ, स्वस्थ आत्म-निर्भरता की स्वच्छन्दता थी, जिस में स्त्री भी उतनी ही स्वायत्त है जितना पुरुष, बल्कि अधिक, क्योकि उस पर प्रकृति का दायित्व है। कही भी प्रकृति के शासन मे अस्वीकार का अधिकार नर का नही है, सर्वत्र मादा निर्णायिका है—क्योकि वह माँ है

लेकिन प्रत्याख्यान की बात वह क्यो सोचता है ? उस ने तो कहा भी है, प्रत्याख्यान वह नही है। केवल सुन्दर, सुन्दर से सुन्दरतर वह चाहता है, और लोभ से सुन्दर को जोखम में नही डालना चाहता। इस लिए और भी नही, कि रेखा उस जोखम को समझती नही—या हेय मानती है। सहसा रेखा के प्रति एक गहरे कृतज्ञ भाव ने उसे द्रवित कर दिया कैसे यह स्त्री सब-कुछ इस तरह उत्सर्ग कर दे सकती है, बिना कुछ प्रतिदान माँगे, बिना कोई सुरक्षा चाहे—बल्कि सुरक्षाओ की सब सम्भावनाओ को लात मार कर ! क्यो ? क्योकि वह भुवन को प्यार करती है, उसे कुछ देना चाहती है ? कुछ नही, सब कुछ, अपना आप। कैसी विडम्बना है यह स्त्री की शक्ति की, कि उस का श्रेष्ठ दान है स्वत अपना लय—अपना विनाश ! लेकिन लय के बिना और श्रेष्ठ दान कौन-सा हो सकता है ? अह की पुष्टि के लिए समर्पण नही, अह का ही समर्पण समर्पण है

झुरमुट मे बुरूस का स्थान अब बाँज ने ले लिया था, अधिक घने, ठंडे और पुष्पविहीन। वह और अन्दर पैठता चला जा रहा था।

और वह ?

क्यो वह रेखा की ओर से ही सोच रहा है, क्यो नही अपनी ओर से सोचता ? वह—वह क्या चाहता है, क्या देना चाहता है, क्या वह रेखा को चाहता है ? प्यार करता है ? नकारात्मक उत्तर उस के भीतर से नही उठता, लेकिन क्यो नही सहज स्वीकारी उत्तर आता, क्यो यह स्तब्धता है

सुन्दर से सुन्दरतर .चरम अनुभूति

लेकिन तुम मे अगर सौन्दर्य की चरम अनुभूति है, भुवन, तो डर कैसा ? डर केवल सुन्दर मे अविश्वास है।

पर उसकी तसल्ली नही हुई। स्वय उसके भीतर, और गहरे किसी एक स्तर पर एक संघर्ष है, इस का जैसे उसे थोडा-थोडा भान है, पर किस स्तर पर, यह वह नही जान पाता, और उसे कुरेद कर ऊपर भी नही ला पाता। मानो प्रयत्न छोड कर उस का मन

रेखा के कहे हुए वाक्यो पर उछटता-सा घूमने लगा · काल का प्रवाह नही, क्षण और क्षण और क्षण .. क्षण सनातन है .. छोट-छोटे ओएसिस सम्पृक्त क्षण नदी के द्वीप. जो काल-परम्परा नही मानता, वह वास्तव में कार्य-कारण-परम्परा नही मानता, तभी वह परिणामो के प्रति इतनी उपेक्षा रख सकता है---एक तरह से अनुत्तरदायी है पर इस से क्या ? उत्तर माँगने वाला कोई दूसरा है ही कौन ? मैं ही तो मुझ से उत्तर माँग सकता हूँ ? और अगर मै अपने सामने अनुत्तरदायी हूँ, तो उस का फल मैं भोगूँगा---यानी अपने अनुत्तरदायित्व का उत्तरदायी मैं हूँ

क्या यह---परसो और कल और आज---वैसा ही एक द्वीप है---सम्पृक्त क्षणो का द्वीप---काल-प्रवाहिनी मे अटका हुआ एक अलग परम्परामुक्त खण्ड---जैसे रेखा कहती है ? परसो, कल, आज, फिर महाशून्य---नही, आज, फिर दूसरा आज, फिर आज, तब महाशून्य !

सामने एक पेड पर सोनगाभा के पौधे लग रहे थे । और पेडो पर भी पत्ते लटकते भुवन ने देखे थे, पर इस मे फूल थे । रग उनमें अधिक नही था---चम्पई, भीतर कत्थई और फूल की बावडी के बिलकुल बीचोबीच मे गहरा पीला---फिर भी, सोनगाभा

उसे जमुना के टापू का बालू का घरौदा याद आ गया, जहाँ आर्किड लगाने की बात उस ने कही थी । वह जैसे-जैसे पेड पर चढा, कुछ नीचे से ही पौधे समेत फूल उस ने नोच लिये और उतर आया । झाड कर फूल अलग करता हुआ लौट चला ।

रेखा बरामदे की सीढियो पर बैठी थी । कुछ लिख रही थी । दूर से भुवन को देख कर कापी उस ने बैग मे डाल ली, और एकटक उस की प्रतीक्षा करने लगी ।

भुवन गम्भीर चेहरा लिये हुए आया । रेखा से आँखे उस ने नही मिलायी, यह देख लिया कि उस का चहेरा भी गम्भीर नही तो एक बन्द चेहरा तो है ही; भीतर की कोई छाप उस पर नही दीख रही ।

भुवन ने चुपचाप फूल उसकी गोद मे रख दिये । एक लच्छा ले कर उस के बालो मे अटका दिया ।

"ओ, आर्किड ! तब यह विदा है ।"

ऐसा कोई सम्बन्ध भुवन ने नही देखा था । पर बोला, "रेखा, आज तो मुझे जाना होगा न ।"

"सो---मैं जनाती थी ।"

भुवन उसके पास सीढ़ी पर बैठ गया ।

"रेखा, तुम ने मुझे क्षमा कर दिया ?"

रेखा का हाथ टटोलता हुआ बढा, भुवन के हाथ पर आ कर शिथिल रुक गया ।

"किस बात के लिए, भुवन ?"

"सब कुछ । तुम जानती तो हो ।"

"तुम्हारे क्षमा माँगने की तो कोई बात मुझे नही दीखती, भुवन ! मैं ही—"

भुवन ने असल बात से कुछ हटते हुए कहा, "और मैं बहुत लज्जित हूँ, रेखा ! पुरुष की आँखो में आँसू तो नामर्दी हैं—मैं—तुम क्या सोचती होगी न जाने—"

रेखा के हाथ के दबाव ने उसे चुप करा दिया, पर वह स्वय कुछ देर तक कुछ नही बोली। फिर उस ने कहा, "भुवन, मर्द के आँसू मैंने पहले भी देखे है। बडी व्यथा के आँसू—इस लिए कि उस पुरुष ने मुझे खो दिया है। बडी ग्लानि के आँसू—इस लिए कि वह पुरुष मुझे पा लेना चाहता है और पा नही सकता। पर तुम्हारे आँसू—किसी पर छाँह करते हुए उस के लिए रोना नामर्दी नही है, भुवन ."

धीरे-धीरे उस ने अपना हाथ खीच लिया। दोनो चुप, स्तब्ध बैठे रहे।

* * *

कुछ खाने की इच्छा नही थी, पर भुवन ने खोये-से, रेखा को उसे नाश्ता करा लेने दिया। थोडी देर खोये-से ही दोनो बरामदे में आ कर खडे रहे, झील को देखते रहे। फिर वह क्षण आ ही गया।

रेखा ने अन्दर से एक पुलिन्दा ला कर देते हुए कहा, "यह लो अपना टूथ-ब्रश।"

भुवन ने कहा, "अच्छा रेखा, अब चलता हूँ।" वह कुछ रुका। "कहना चाहता हूँ मैं—तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ, पर शब्द ओछे है, नही कहूँगा। इतना ही कि—गाड ब्लेस यू।"

"रुको—" कह कर रेखा भीतर गयी। थोडी देर में एक छोटा-सा पैकेट और ले आयी। "यह भी लो—"

"क्या है ?"

"जाते हुए रास्ते मे देख लेना।"

भुवन ने एक लम्बे क्षण तक रेखा को देखा, आँखो ही आँखो में विदा माँगी और दी, और चलने को मुडा।

"भुवन, यह भी लेते जाओ।"

रेखा ने बालो में से आर्किड निकाल कर उस की ओर बढा दिया। बाकी फूल उस ने रख लिये थे।

"यह—यह क्यो—"

"मेरी ओर से—इस लिए कि तुम—शायद—फिर न आओ।" रेखा ने जल्दी से मुँह फेर लिया।

भुवन ने सहसा उस की ओर बढ कर बायें हाथ के अँगूठे-उँगली के नाखूनो की चुटकी से उस के ब्लाउज का गला तनिक-सा उठाया और दाहिना हाथ बढा कर आर्किड के फूलो का लच्छा उस के भीतर डाल दिया। बडे स्निग्ध स्वर से कहा, "पगली कही की !"

फिर बड़ी त्वरा से उस ने अपनी पोटली उठायी और बिना लौट कर देखे चला गया।

दो मोड़ पार कर के, जैसे कुछ याद कर के वह रुका। छोटा पैकेट उस ने खोला।

उस में रेखा की वह छोटी कापी थी, और वह नीली साड़ी जिसे पहन कर उस ने भुवन के साथ सूर्यास्त का पीछा किया था।

भुवन

दृश्यो का द्रुत परिवर्तन स्फूर्तिप्रद होता है शायद, लेकिन जहाँ उस परिवर्तन के साथ रागावस्थाओ का भी उतना ही द्रुत परिवर्तन हो वहाँ स्फूर्ति ही आवश्यक नही है, व्यक्ति चकित-विमूढ हो कर भी रह जाता है काम के दबाव में उस का मन नौकुछिया अधिक नही भागा था—यो भी उस की प्रवृत्ति पीछे देखने की नही थी, हठात् कभी अतीत की किरण मानस को आलोकित कर जाये वह दूसरी बात है—पर श्रीनगर की झील और नौकुछिया का अन्तर स्वय मन पर चोट करता था। निस्सन्देह श्रीनगर में सब कुछ बडे पैमाने पर था, बडी चौडी उपत्यका, बडे पर्वत-शृग, बडी झील—बडे लोग!—पर नौकुछिया एक सुन्दर हरे निर्जन मे जडा हुआ छोटा-सा नगीना था, और यह—जनाकीर्ण मग में आभूषणो से लदी बैठी पुश्चली स्त्री क्या हुआ अत्यन्त सुन्दरी है तो? 'पब्लिक फ़ेसेज इन पब्लिक प्लेसेज!' उसे खुशी ही थी कि श्रीनगर मे अधिक समय नही बिताना पडेगा, दिल्ली मे ही रुके रह जाना बहुत अच्छा हुआ, नही तो यहाँ वह घबडा जाता—और नौकुछिया के बाद तो—!

डेढ ही दिन उसे वहाँ लगा, इतने में उस की तैयारी हो गयी। यहाँ से घोडो पर सामान लद कर जायगा, पहलगाँव और वहाँ से तुलियन—चौथे दिन पहुँच जायगा। वह पहलगाँव मे प्रतीक्षा करेगा, तम्बू पहलगाँव से ही तुलियन ले जाने होगे—उसके लिए उस ने नये खानसामा को आगे भेज दिया था।

लेकिन अपना आवश्यक सामान ले कर जब वह पहलगाँव की मोटर पर पहुचा तब अचकचा कर रह गया। मोटर के बानेट के सहारे रेखा खडी थी।

मुस्करा कर बोली, "नमस्कार!"

"नमस्कार। तुम—"

"मैं आप से एक दिन पहले यहाँ पहुँच गयी—आप दिल्ली ही रह गये, मैं सीधी इधर चली आयी।"

"लेकिन—"

"आप भूलते है, मैं बँगला बोलने वाली कश्मीरिन हूँ—यहाँ किसी को पहचानती नही पर मेरे रिश्तेदार और बुजुर्ग चारो ओर बिखरे पडे है।"

"पर मेरे जाने का कैसे पता लगा?"

"मैं कल पूछने गयी थी। यो तो न भी जाती तो भी लग जाता—आप वैज्ञानिक यन्त्रादि ले जाने का परमिट लेने गये थे—वह अधिकारी मेरे कुछ लगते है मामा-वामा।"

भुवन हँसने लगा, क्योकि इन सज्जन से बडी मनोरजक भेंट हुई थी उस की। वह

मानते ही नही थे कि युद्ध-काल मे यन्त्रादि ले कर कोई उत्तर के पहाड़ो मे जा रहा है तो रूस से सम्बन्ध जोडने के सिवा उस का कोई उद्देश्य हो सकता है। फिर जब उस ने कहा कि उस का काम कई विश्वविद्यालयो के काम से सम्बद्ध है जिन मे केम्ब्रिज और अमेरिका के कुछ विश्वविद्यालय भी हैं तो उन्होने मान लिया कि वह ब्रिटेन का चर है। परमिट तो दे दिया, लेकिन बडी भेद-भरी दृष्टि से उसे देखते रहे।

फिर उस ने कहा, "मुझे तो किसी ने नही कहा—"

"मैंने कहा था कि मै स्वयं मिल लूंगी—"

"तो तुम जा कहाँ रही हो—पहलगाँव ?"

"जी—मैं काम्प्लिमेंट्स रिटर्न करने आयी हूँ—पहलगाँव तक पहुँचाने आयी हूँ—तुलियन तक जाने को तैयार हो कर अगर आप कहेगे। यह मेरा प्रदेश है, आप मेहमान हैं।" फिर सहसा गम्भीर हो कर कहा, "आप का हर्ज तो नही होगा ? मै अभी लौट सकती हूँ—रास्ते मे ही कही उतर सकती हूँ—"

"इसका जवाब तो मै दे चुका।"

"क्या ?"

"पिछली भेंट का मेरा आखिरी वाक्य—"

विषाद की एक हल्की-सी छाया रेखा के चेहरे पर दौड गयी। फिर वह मुस्करा दी। "हाँ, सो तो हूँ।"

अगली सीट भुवन की थी। उस ने कहा कि रेखा वहाँ बैठ जाय, पर रेखा ने आग्रह किया कि वहाँ कोई बैठेगा तो भुवन, नही तो दोनो साथ बैठेंगे पहली सीट पर, वही वे बैठें।

पामपुर-अवन्तिपुर के खुले प्रदेश के पास से मोटर बढती चली। भुवन ने कहा, "यही सब केशर का प्रदेश है न ?"

"हाँ। इसी से इसे काश्मीर कहते है—भारत मे तो और कही होता नही। और पामपुर असल में पद्मपुर है।"

भुवन ने कहा, "बंगालिन, अभी कश्मीर से तुम्हारा नाता छूटा नही ?"

रेखा हँस दी। "जो असम्पृक्त है, उन का सब देशो से नाता है!"

"तो, तुम्हारे लिए सब जगहे बराबर है ?"

"उस दृष्टि से—हाँ। मेरे लिए महत्त्व है व्यक्तियो का—विशेष व्यक्तियो का।" और एक अर्थ-भरी दृष्टि से उस ने भुवन की ओर देख लिया। थोडी देर दोनो चप रहे। फिर रेखा ने पूछा, "पहलगाँव रुकोगे ?"

"सोचा तो था। पर अब नही—मुझे तुलियन पहुँचाने चलोगी न ?"

"आप कहें तो! और पहलगाँव में टूथ-ब्रश न मिलेगा, इस लिए मै सब साथ लायी हूँ।"

"सामान आने में दो-तीन दिन लगेंगे ही। चल सकते हैं। पर पहलगाँव से तुलियन सामान के साथ मैं स्वयं जाना चाहता हूँ—"

"बाधा नही बनूँगी, भुवन! जिस दिन सामान आवेगा उसी दिन चली जाऊँगी। बल्कि—"

"यह मेरा मतलब नही था—"

"जानती हूँ—" कह कर रेखा ने उसे चुप करा दिया।

ज्यो-ज्यो बस आगे जाती थी, त्यो-त्यो भुवन का मन अधिकाधिक तीखे झटको के साथ पीछे जाता था—एक लघु क्षण के लिए, बस, लेकिन प्रत्येक बार एक टीस के साथ, और प्रत्येक बार न जाने कहाँ से उखडे-उखडें वाक्यांश लाता हुआ 'स्वाधीनता का जोखम' 'आन्तरिक आलोक का जोखम' 'एड द स्टार्स इन हर हेयर वेयर सेवन' 'जुगनू तो सीली-सडी जगह मे होते हैं' 'आत्मा के नक्शे' 'क्षण सीमान्त है' 'वहाँ बालू होगी ?' 'मै शैरन का गुलाब हूँ, और उपत्यका की तितली ' 'डर सुन्दर का डर, विराट् का डर' 'दुख जाना है, पर डर नही' दो-एक बार अशान्त भाव से वह अपनी सीट में इधर-उधर मुडा। 'मेरी प्रिया बोली, उसने कहा, उठो प्रिय, और मेरे साथ आओ, क्योकि शीत ऋतु बीत गयी है, वर्षा चुक गयी है, धरती में फूल जागते है, पक्षियो के गाने का समय आ गया है, और कुमरी का कूजन सुन पडने लगा है। अजीर के वृक्ष में नया फल आता है, और अंगूरी के कचिया अगूर मधुर गन्ध दे रहे है। उठो, प्रिय, और चले आओ।' सहसा स्पष्ट हो गया कि सालोमन के गीत के ये अंश उसे रेखा की कापी मे से याद आ रहे है—क्यो ? वह सीधा हो कर बैठ गया। कापी के वाक्य और स्पष्ट हो कर उस के आगे दौडने लगे—एक के बाद एक पक्ति, जैसे सिनेमा की पक्तियाँ मानो बेलन पर चढी हुई घूमती जाती है और एक-एक पक्ति आलोकित होती जाती है

'तुम चले जाओगे—मैं जानती हूँ कि तुम चले जाओगे। मैं आदी हूँ कि जीवन में कुछ आये और चला जाय—मैंने हाथ बढा कर उसे पकडना चाहना भी छोड दिया है—कौन पकड कर रख सकता है ? बचपन में माँ एक कहानी सुनाया करती थी, कोकिल का स्वर सुन कर राजा उसे पकडवा मँगाते थे पर वह चुप हो जाता था। माँ कहती थी, कोकिल को पकड लिया जा सकता है, पर गान बन्दी नही होता। तब मैं सोच लेती थी, बन्दी करना मैं क्यो चाहने लगी ? मैं स्वयं गाऊँगी! पर अब माँ की बात याद आ जाती है नही, गान को बन्दी करना नही चाहूँगी। और हाँ, गाऊँगी भी, चाहे टूटे स्वर से—मेरा गान तुम सुनोगे ?'

'हम हार गये। तुम ने कहा था, हम हार गये, सूर्यास्त को नही पकड सके। फिर तुम ने कहा था—कहा नही, उद्धृत किया था, "उस के केशो में सात तारे थे।" पर अब अपनी ओर देखती हूँ तो सोचती हूँ, मुझ में ? नही, मुझ में केवल अन्धकार की एक

वहुत बडी लहर—हट जाओ भुवन, मैं तुम्हे प्यार करती हूँ पर मेरा सस्पर्श विषाक्त है . !

'तुमने डर की बात कही थी। वह एक चीज है जो मैंने पहले कभी नही जानी। दु.ख —हाँ, वह खूब जाना है, अपमान, ग्लानि, ईर्ष्या—ये भी सहे है, पर डर मगर डर को छूत होती है शायद, और तुम्हारा वह नामहीन डर मुझे भी छूता है, एक सिहरन-सा वह मेरी रीढ पर से उठता हुआ मेरे मन पर छा गया है—था—किस का डर? तुम से डर? तुम से !! तुम्हारे लिए डर ?—? तुम्हें खो दूँगी, यह ? लेकिन तुम्हें पाया है, यही तो कभी नही सोचा। जागने का डर ? न जाने कब से मेरा मन, मेरी आत्मा, मेरी देह, सब सोयी है, जड है, और जड से इतर कोई स्थिति मैं सोचती ही नही। आग सुलगती है, धधकती है, ईंधन चुका कर धीमी पड जाती है, वैसी आग फिर भड़क सकती है। लेकिन मुक्त आग को बुझा दो—तब राख, कोयले, अध-जली लकडी—वह मैं हूँ। उठी हुई लहर जो वही जम गयी है। पीछे नही जा सकी, पीछे गर्त है—हर तरग के पीछे गर्त होता है। आगे नही जा सकती—गति जड हो गयी है। जम गयी हूँ, पिघलूँगी तो पछाड खा कर गिरूँगी—क्या वही डर है जो मुझ मे जाग गया है—पिघलने का डर ? लेकिन मैं तुम्हे अपने से बचाऊँगी भुवन. '

'मैं स्वप्न देख कर उठी हूँ, तुम सो रहे हो, सोओ, मैं जगाऊँगी नही। पहले मन हुआ था, स्वप्न तुम से कह दूँ, पर नही। तुम्हें देख कर न जाने क्यो एक पक्ति मन मे आयी—तुमने पूछा था एक वार, "कविता लिखती हो ?" हाँ, एक कविता मैंने भी लिखी है, पर मेरी कविता उस के शब्द में नही है, उस की भावना मे है—तुम पहुँचोगे ?

शुभाशंसा चूमती है भाल तेरा—
स्नेह-शिशु, उठ जाग।

'तुम सोओ। अपने स्वप्न के लिए तुम्हें नही जगाऊँगी। स्वप्न मे मैंने तुम्हारे प्रिय किसी को देखा था। न मालूँम कौन होगी वह, लेकिन मैंने उसे देखा था, पहचाना था और वह तुम्हें वहुत प्रिय थी। उसे देख कर मेरे मन में स्नेह उमड आया—ईर्ष्या होनी चाहिए थी पर नही हुई। भुवन, मैं तुम्हारे जीवन में आऊँगी और चली जाऊँगी—मैं जानती हूँ अपने भाग्य की मर्यादाएँ !—पर तुम्हें जो प्रिय है उन्हे प्यार कर सकूँगी—सहज भाव से, विना आयास के। और सोचती हूँ, तुम्हारी करुणा सदैव मुझे शान्ति दे सकेगी।'

'तुम ने मेरे जूडे मे लाल फूल खोस कर मेरा सिर ढक दिया है, तुम ने मेरी पलकें, मेरा मुँह . एक धधकते हुए प्रभा-मडल से मेरा शीश घिर गया है . क्या इस की दीप्ति दुर्भाग्य के उस मडल को छार न कर डालेगी जो मेरे साथ रहा है ?'

'मैंने तुम्हें गाना सुनाया था : शारद प्राते आमार रात पोहालो। मेरी वशी, तुम्हे किस के हाथ सौंप जाऊँगी ? अब सोचती हूँ, क्या उस में भवितव्य की सूचना थी—क्या

मैं तब जान गयी थीं, देख सकी थी मूक मेरी वंशी; अभी सहसा तुम्हारी बहकी हुई साँस से मुखर हो उठी है, और अभी मूक हो जायगी। होने दो, चुकने दो रात—! मैं ने गाया था, महाराज, यह किस साज में आप मेरे हृदय मे पधारे है ? उस मे कौतुक भी है, अचरज का चकित भाव भी है, और अपनापे की द्योतक ठिठोली भी है—कोटि शशि-सूर्य लजा कर पैरो में लोट रहे है, महाराज, यह किस ठाठ से आप मेरे हृदय में पधारे है—मेरा देह-मन वीणा-सा बज उठा है '

"शीत में बहुत ठिठुर जायें, तो नाक के ठिठुरने के साथ घ्राण-शक्ति मर जाती है। फिर बाहर, भीतर, फूलो में, मन्दिर के धूमायित वातावरण में—कही कोई गन्ध नही मिलती . लेकिन फिर बिजली की कौंध की तरह सहसा और तीखी वह लौटती है, नासा-पुट गन्ध से भर जाते है, सौरभ की तरग में मानो डूबने लगता है व्यक्ति, साँस बन्द हो जाता है वैसी ही स्थिति में मै थी—बरसो की घ्राण-शक्ति-हत, और अब सहसा तुम्हारे धाम मे तुम्हारे सौरभ ने छा लिया है मै लडखडा गयी हूँ, मूक हूँ, क्या कहूँ नही जानती, कैसे कहूँ, नही सोच सकती और तुम अभी चले जाओगे—कभी भी फिर मिले—अगर मिले !—तो शायद कुछ कह पाऊँ—मेरी स्तब्ध आत्मा कुछ '

'मैं जागती हूँ कि सोती हूँ ? तुम हो, कि स्वप्न हो ? मुझे लगता है कि मै जागती हूँ, और आश्वस्त हो कर सो जाती हूँ। लेकिन शायद सोती हूँ, सोते में देख कर जाग उठती हूँ....'

रेखा बीच-बीच में उस की ओर देख लेती थी। जानती थी कि वह कुछ सोच रहा है। पर उसने पूछा नही। सहसा भुवन के विषय मे एक नये सकोच ने, एक व्रीडा ने उसे जकड़ लिया था। क्षण-भर के लिए उसका मन नौकुछिया की उस घटना की ओर गया जब भुवन उस की गोद मे रोया था—कैसे वह कह सकी थी जो-भी उसने कहा था ? वह पछताती नही है, उस ने जो कहा था उन्मुक्त उत्सृष्ट भाव से कहा था, पर लाज से सिहर कर वह सिमट गयी, पल्ला खीच कर उस ने मानो अपने को और लपेट लिया।

भुवन ने पूछा, "ठड लगती है ?"

"नही, नही।" उस की वाणी के अतिरिक्त आवेश को लक्ष्य कर भुवन ने उस की ओर देखा; दोनो की आँखे मिली भुवन की आँखो में स्नेहपूर्ण कौतुक था, रेखा की आँखो में एक अन्तर्मुख लज्जा, पर सहसा उस का मन हुआ, वही बाँह फैला कर भुवन को खीच ले, इस पुरुषको, इस शिशु को, इस—'शुभाशंसा चूमती है भाल तेरा '

* * *

मानो पहाड की छत पर एक हवा-धुली, धूप-मँजी झील, ओट को अधिक कुछ नही था, एक ओर खुला घास का पहाड, जिस के नीचे एक झुरमुट, कुछ दूर पर झील से निकल कर बहता हुआ मुखर पहाडी नाला। तेज सनसनाती ठडी हवा, आकाश में अत्यन्त शुभ्र

उडते छोटे मेघ-खड, मानो पवन अप्सराओ के नये धुले कचुक-उत्तरीय उडाये लिये जा रहा हो । तुलियन ।

घास मे से उभरी हुई एक चट्टान पर धूप मे दोनो बैठ गये सामान और तम्बू आने में थोडी देर लगेगी—कुलियो को पहले रवाना किया गया था पर राह मे वे उन्हें पीछे छोड आये थे ।

"रेखा, उन के आने से पहले एक गाना गा दो ।"

"कैसा ?"

"गाने को कैसा भी होता है ? जो चाहो—तुलियन के सम्मान मे—झील, धूप, हवा, वादल, सव के—"

रेखा खडी हो गयी । सामने आ कर उस ने उँगलियो से ठोडी पकड कर भुवन का मुँह उठाया कि उस पर पूरी धूप पडे, क्षण-भर उसे निहार कर झुक कर चूम लिया । हँस कर कहा, "यानी भुवन के सम्मान में—सारे भुवन के ।"

थोडी देर वाद फिर वहॅ बैठ गयी .

यदि दो घड़ियों का जीवन
कोमल वृन्तों में बीते
कुछ हानि तुम्हारी है क्या ?
चुपचाप चू पड़ें जीते ।
निश्वास मलय में मिल कर
ग्रह-पथ में टकरायेगा,
अन्तिम किरणें बिखरा कर
हिमकर भी छिप जायेगा ।*

आरम्भ उत्साह से हुआ था, पर फिर मानो स्वर अनमने हो गये । फिर भी वह गाती रही, फिर गान रुक गया । रेखा ने कहा, "भुवन, क्षमा करो, वह उदासी मेरी अपनी है, गान की नही । पर और एक सुनाऊँगी थोडी देर वाद—"

भुवन उठा । "चलो, धूप में टहले ।"

रेखा भी खडी हो गयी । "लेकिन सूर्यास्त के पीछे नही दौडूंगी । वैसे इस ऊँचाई पर दौड़ भी नही सकती—"

भुवन ने कहा, "तुम्हे तकलीफ तो न होगी रेखा ? इतनी ऊँचाई पर काफी कष्ट भी हो मकता है—"

"नही, नही-नही !" रेखा ने दृढता से प्रतिवाद किया, मानो दृढता से हृद्‌गति का भी नियन्त्रण हो जाता हो ।

---

*जयशंकर 'प्रसाद'

दोनो झील से कुछ ऊँचाई-पर, सम-तल आगे-पीछे टहलने लगे।

दूर कुलियो का स्वर सुनायी दिया।

रेखा ने कहा, "अच्छा भुवन, फिर सही—रात को—आज तो पूर्णिमा होगी न ?"

"सच ? हाँ, आज-कल में ही होनी चाहिए। अच्छा आओ तम्बू की जगह ठीक करे पहले—"

तम्बू भी लग गये घास वाली पहाडी पर, झुरमुट से आगे बडा तम्बू रहने के लिए, झुरमुट से इधर जहाँ से नाला फूटता था उस के निकट एक छोलदारी सामान और खानसामा के लिए, दूसरी रसोईघर की। दिन छिपते खानसामा ने चाय भी तैयार कर दी। भुवन ने कहा, "इसी समय कुछ डिब्बे-विब्बे खोल कर खा लिया जाय, रात को और वनाने की जरूरत है क्या ?"

रेखा ने सहमति प्रकट की। खानसामा को कह दिया गया। वह प्रवन्ध में लग गया। भोजन समाप्त होते न होते उस ने कहा, "हुजूर हुकुम करे तो चाय फिर दे सकता हूँ—"

भुवन ने कहा, "अच्छा शुक्रिया—ठीक नौ वजे चाय दे देना।"

रेखा ने एक शाल कन्धे पर डाल ली और कहा, "मै उस समय तक तम्बू के भीतर नही आऊँगी।"

"तो मै ही कौन बैठ रहा हूँ।"

दोनो फिर वाहर टहलने लगे।

दिन छिप रहा था, लेकिन छिपा ठीक नही, क्योकि द्वाभा में एक आलोक के क्षीण होते न होते दूसरा उज्ज्वल हो गया वडे-से चाँद की चन्द्रिका सारे वातावरण में फैल गयी।

दोनो किनारे-किनारे वढते हुए काफी आगे निकल गये। यहाँ पानी के विलकुल पास एक चट्टान पर वैठ कर रेखा झुक कर हाथ से पानी उछालने लगी। भुवन भी वैठ गया, पानी में हाथ उस ने भी डाल दिये। पानी वहुत ठडा था। लेकिन उस की छलछलाहट वडी मधुर थी, ठड, ऊँचाई और चाँदनी से स्फटिक से निखरे हुए वातावरण में उस मे छोटे घुँघरुओ की-सी रुनझुनाहट थी।

"अँग्रेज़ी हो तो माइड करोगे ?"

भुवन ने प्रश्न समझते हुए कहा, "विलकुल नही।"

रेखा गाने लगी

लव मेड ए जिप्सी आउट आफ़ मी ! *

भुवन ने आगे झुक कर पानी में खेलता हुआ उस का ठिठुरा हुआ हाथ वाहर निकाल लिया, फिर छोडा नही।

लव मेड ए जिप्सी आउट आफ मी !

---

*प्यार ने मुझे खानाबदोश बना दिया।

बाहर चाँदनी थी;-सुन्दर शीतल, ठड से जडित वातावरण ऐसा लगता था, मानो सारा दृश्य एक विशाल हिम-शिला के अन्दर बँधा हो, और बाहर का प्रकाश उस शिला को जगमगा दे... परन्तु फ़िर भी तम्बू के भीतर की पीली रोशनी सुन्दर और आकर्षक थी। साढे नौ बजे थे, तम्बू के निकट आते हुए दोनो ने देखा, भीतर सब सामान ठीक-ठाक सज गया है; मेज पर लैम्प के प्रभा-मडल के छोर पर दो प्याले रखे है, और हरे रंग के तौलिये मे लिपटी हुई चायदानी—'चा-पोची' तो थी नही, और चाय गर्म रखने के लिए यह व्यवस्था की गयी होगी

आगे एक ओर सफरी पलग पर रेखा का विस्तर बिछा था, चारखाने नीले पलगपोश से ढँका हुआ, दूसरी ओर नीचे लकड़ी के बडे पटरो पर भुवन का। ये पटरे उस ने इस लिए मँगा लिये थे कि वर्षा मे कदाचित् यन्त्रादि को फर्श से ऊँचा रखना पडे।

रेखा ने कहा, "यह क्या बात है—किफायत, या कि मेरा अतिरिक्त सम्मान—"

"रेखा, खानसामा को तो एक ही खाट का पता था न? और ये पटरे कम नही है—फिर मेरा हवाई गद्दा है—" कह कर भुवन ने बिछौने का कोना उठा कर दिखा दिया। "बल्कि, मेरा किसी तरह कम सम्मान नही किया गया है, इस का प्रमाण यह है कि चाहो तो मै बदल लेता हूँ।"

दोनो चाय पीने लगे। कुछ बिस्कुट भी ढँके रखे थे।

थोडी देर बाद भुवन बिना कुछ कहे उठ कर बाहर चला गया। जाते हुए तम्बू का पल्ला गिरा गया। रेखा ने इसका अभिप्राय समझ लिया, उस ने कपडे बदल लिये, भीतर जा कर मुँह-हाथ धोया, फिर शाल लपेट ली और पल्ला उठा कर बाहर चली आयी। भुवन कुछ दूर पर टहल रहा था, वही चली गयी।

थोडी देर साथ टहलता रह कर भुवन तम्बू की ओर लौट गया।

रेखा कुछ और आगे बढ गयी। एक चट्टान पर बैठ गयी। थोडी देर बाद उस ने एक-एक काँटा निकाल कर जूडा खोला, बाल खोल डाले, फिर सिर को एक बार झटक कर उन्हे कन्धो पर फैला लिया। फिर उस ने चाँद की ओर मुँह उठा कर आँखे बन्द कर ली, उस का सारा शरीर शिथिल हो आया।

ऐसा ही भुवन ने उसे लगभग घण्टे-भर बाद पाया। वह कपडे बदल कर फिर लौटा नही था, यह सोच कर कि रेखा उसी के कारण बाहर रुकी है तो थोडी देर मे स्वय आ जायगी, पर जब वह बहुत देर तक न आयी तब वह देखने निकला। पहले एक बार यो ही चारो ओर नज़र दौडायी, पर कही गति का कोई लक्षण नही देखा, सर्वत्र निश्चलता, तब वह आगे बढा।

जब उस की आँखो ने सहसा रेखा का आकार पहचाना, तो वह वही ठिठक गया। रेखा ठीक वैसे बैठी थी जैसे लखनऊ में उसने देखा था, शिथिल, शान्त, दूर।

और वह वैसा ही ठिठका रहता, अगर यह न देखता कि रेखा की शाल उस के कन्धो

से गिर गयी है, और उसे होश नहीं है। कन्धों पर का सफेद रेशम चाँदनी मे ऐसा चमक रहा है, जैसे छोटे-छोटे पख।

उस ने शाल उठाते हुए कहा, "पगली, चाँदनी है, सब पी न सकोगी। चलो, जमी जा रही हो ठड से—ऐसे तो तुम्ही चाँदनी हो जाओगी।"

*　　　*　　　*

"हाँ, बत्ती बुझा दो, पर पल्ला आधा खोल दो कि चाँदनी दीखती रहे।"

भुवन ने एक ओर का पल्ला ऊँचा कर के ऐसे बाँध दिया कि ऊपर से खुला रहे, उस से चाँदनी का एक वृत्त रेखा के पास फर्श पर पडने लगा।

"अभी थोडी देर मे यह बढ कर तुम्हारे ऊपर आ जायेगा, न ?" रेखा ने कहा।

"अँ—हाँ।"

भुवन लेट गया और उस खुली जगह मे से बाहर आकाश देखने लगा। बहुत देर तक वह मुग्ध भाव से देखता रहा, कुछ बोला नही। न रेखा कुछ बोली।

सहसा उसे ध्यान आया कि चाँदनी का वह वृत्त उस के ऊपर आ गया है। तब यह देखने को कि रेखा जग रही है या नही, उसने उधर देखा।

रेखा ज्यो-की-त्यो बैठी थी, चाँदनी के प्रतिबिम्बित प्रकाश मे उसे देखती हुई।

भुवन ने हडबडा कर कहा, "रेखा, ठिठुर जाओगी—"

रेखा ने जैसे सुना नही।

भुवन ने उठ कर उस के कन्धे पकडे—ठडे, जैसे बर्फ। बलात् उसे लिटा दिया, कम्बल उढा दिये। धीरे-धीरे उस के चेहरे पर हाथ फेरने लगा, चेहरा भी बिल्कुल ठडा था। उस ने खाट के पास घुटने टेक कर नीचे बैठते हुए रेखा के माथे पर अपना गर्म गाल रखा, उस का हाथ धीरे-धीरे रेखा के कन्धे सहलाने लगा। भुवन ने कम्बल खीच कर कन्धे ढँक दिये। कम्बल के भीतर उस का हाथ रेखा का वक्ष सहलाने लगा—

सहसा वह चौका। झीने रेशम के भीतर रेखा के कुचाग्र ऐसे थे, जैसे छोटे-छोटे हिम-पिड और अब तक जड रेखा के सहसा दाँत बजने लगे थे।

"पगली—पगली !"

भुवन ने एकदम खडे हो कर एक हाथ रेखा के कन्धे के नीचे डाला, एक घुटनो के, उसे कम्बल समेत खाट से उठाया और अपने बिछौने पर जा लिटाया। अपने कम्बल भी उसे उढाये, और उस के पास लेट कर उसे जकड लिया।

सहसा रेखा ने बाँहें बढा कर उसे खीच कर छाती से लगा लिया, उसके दाँतो का बजना बन्द हो गया। क्योकि दाँत उस ने भीच लिये थे, भुवन को उस ने इतनी जोर से भीच लिया कि उन छोटे-छोटे हिम-पिडो की शीतलता भुवन की छाती मे चुभने लगी.

फिर स्निग्ध गरमाई आयी। भुवन ने धीरे-धीरे उस की बाहु-लता की जकड ढीली

कर के उसे ठीक से तकिये पर लिटा दिया, और हाथ से उस की छाती सहलाने लगा। चाँदनी कुछ और ऊपर उठ आयी थी, रेखा की बन्द पलकें नये ताँबे-सी चमक रही थी।

दिस दाइ स्टेचर इज लाइक अंटु ए पाम ट्री, एंड दाइ ब्रेस्ट्स टू क्लस्टर्स आफ ग्रेप्स।

आइ सेड, आइ विल गो अप टु द पाम ट्री, आइ विल टेक होल्ड आफ द वाउज देयराफ : नाउ आल्सो दाइ ब्रेस्ट्स शैल बी एज क्लस्टर्स आफ द वाइन, एंड द स्मेल आफ दाइ नोज लाइक एप्ल्स।[1]

सहसा भुवन ने कम्बल हटाया, मृदु किन्तु निष्कम्प हाथो से रेखा के गले से बटन खोले, और चाँदनी मे उभर आये उस के कुचो के बीच की छाया-भरी जगह को चूम लिया। फिर अवश भाव से उस की ग्रीवा को, कन्धो को, कर्णमूल को, पलको को, ओठों को, कुचो को और फिर उसे अपने निकट खीच कर ढँक लिया —

सालोमन का गीत उस घिरे वातातरण में गूँजता रहा।

आई स्लीप, बट माइ हार्ट वेकेथ;- इट इज द वॉयस आफ माइ बिलवेड दैट नाकेथ, सेइंग : ओपन टु मी, माइ सिस्टर, माइ लव, माइ डव, माइ अनडिफ़ाइल्ड, फार माइ हेड इज फिल्ड विथ ड्यू, एंड लाक्स विथ द ड्राप्स आफ द नाइट...

भुवन ने अपना माथा रेखा के उरोजो के बीच में छिपा लिया उन की गरमाई उस के कानो में चुनचुनाने लगी · फिर उस के ओठ बढ कर रेखा के ओठो तक पहुँचे, उन्हे चूम कर प्रतिचुम्बित हुए।

माइ बिलवेड इज माइन, एड आइ एम हिज, ही फीडेथ एमंग द लिलीज...[3]

क्यो भुवन के ओठ शब्दहीन हो गये हैं, स्वरहीन हो गये हैं, क्या वह गीत के ही बोल स्वरहीन हिलते ओठो से कह रहा है या कुछ और कह रहा है ?

"रेखा, आओ. ."

आइ रोज अप टु ओपन टु माइ बिलवेड, एंड माइ हैंड्स ड्राप्ड विथ मर्ह, एंड माइ फिंगर्स—...[4]

"चाँदनी बहुत है, सब पीं न सकोगी ऐसे मे तुम्ही चाँदनी हो जाओगी।"

---

[1] यह तुम्हारा कलेवर खजूर के तरु की भांति है, और तुम्हारे उरोज दो अंगूर-गुच्छों से। मैंने कहा, मैं खजूर के तरु के समीप जाऊँगा और उस की शाखाएँ गहूँगा, तेरे उरोज अंगूर-गुच्छो से होंगे और तेरे नासापुटो की गन्ध सेवों-सी।

[2] मैं सोती हूँ, पर मेरा हृदय जागता है; मेरे प्रियतम का स्वर दस्तक देकर कहता है : खोलो, मेरी सगी, मेरी प्रिया, मेरी पंडुकी, मेरी अक्षता; मेरे बाल रात के ओस-बिन्दुओ से भींग गये हैं...

[3] प्रियतम मेरा है, मैं उसकी हूँ, पद्मवन में वह विहार करता है।

[4] मैं प्रिय की ओर उमंग कर खिल गयी, मेरे हाथो से अगुरु झरने लगा...

"और तुम, भुवन, तुम ? तुम भी, लेकिन जम कर नही, द्रवित हो कर !"

* * *

कभी रेखा जागी। तब चाँदनी शायद दोनो के सटे हुए चेहरो को लाँघ कर ऊपर उठती हुई फिर खो गयी थी, रात का एक ठडा स्पर्श उस खुली जगह से अन्दर आता हुआ दोनो के तपे माथे और गालो को सहला रहा था, रेखा ने एक लम्बी साँस खीच कर उसे पी लिया, उस के जिस हाथ पर भुवन सोया था उसकी उँगलियाँ उस के माथे के उलझे बालो से बडे कोमल स्पर्श से खेलने लगी, कि वह जागे नही, फिर वह दुबारा सो गयी।

कभी भुवन जागा। उस की चेतना पहले केन्द्रित हुई उस हाथ में जो रेखा के वक्ष पर पडा उस की साँस के साथ उठता-गिरता—उफ़, कितने कोमल आलोडन से, जिस से भुवन को लगता था कि उस की समूची देह ही मानो धीरे-धीरे आलोडित हो रही है, मानो बहती नाव में वह सोया हो अवश हाथ, जिन्हें वह हिला भी नही सकता, अवश देह, लेकिन एक स्निग्ध गरमाई की गोद में अवश—चाँदनी वह अधिक पी गया है—'चाँदनी, मदमाती, उन्मादिनी'! और उस मीठी अवशता को समर्पित वह भी फिर सो गया

* * *

फिर भुवन जागा, इस वार सहसा सजग, कुहनी पर जरा उठ कर उस ने देखा, रेखा सीधी सोयी है। उस ने झुक कर धीरे से उस के ओठ चूम लिये, रेखा जागी नही पर उस के ओठ ऐसे हिले मानो स्वप्न में कुछ कह रही है। फिर सालोमन का गीत गूँज गया

> एंड द रूफ आफ दाइ माउथ लाइक द बेस्ट वाइन फार द विलवेड, दैट गोएथ डाउन स्वीटली, काजिग द लिप्स आफ दोज दैट आर एस्लीप टु स्पीक.[1]

और उस ने बडे जोर से रेखा के ओठ चूम लिये, वह जागी और उस की ओर उमड आयी

> लेट असु गेट अप अर्ली टु द विनयाड्र्स, लेट अस सी इफ द वाइन फ्लरिश, ह्वेदर द टेंडर ग्रेप्स एपीयर, एंड द पोमेग्रेनेट्स बड फोर्थ : देयर विल आइ गिव दी आफ माइ लव्ज।[2]

---

[1] और तेरा मुख प्रियतम के लिए उत्तम मदिरा की भाँति है जिसका स्वाद मधुर है और जिस से सोये हुओ के ओठ भी मुखर हो उठते हैं।

[2] भोर होते ही अंगूरो के कुंज की ओर चलें; देखें कि लता कैसी है, कि नये अंगूर आये या नहीं, अनार की कलियां फूटी या नहीं; और वहीं मैं तुम पर अपना प्रेम निछावर करूँगी।

और वह उमडना फिर एक आप्लवनकारी लहर हो गया ।

आइ एम ए वाल, एंड माई ब्रेस्ट्स लाइक टावर्स; देन वाज आइ इन हिज आइज एज वन दैट फाउंड फेवर.'...*

ऐसा ही भोर के चोर-पैर आलोक ने उन्हे पाया। पर जगाया नही, चुपके से एक ओर हो गया। फिर धूप की एक किरण तम्बू के पल्ले से झाँकती हुई आयी—पर आगे नही बढी ।

रेखा उठी। पल्ले को खोल कर उस ने गिरा दिया, एक क्षण-भर भुवन की ओर निहारा, फिर वाहर चली गयी ।

अनन्तर भुवन उठा। अचचल हाथो से उस ने रेखा के कम्वल उठा कर उस के विस्तर पर डाले, अपने विस्तर की सलवटो को ठीक-ठाक किया, पल्ले की ओर बढा पर लौट गया, भीतर जा कर मुँह धोया और पोछता हुआ बाहर निकला, एक बार चारो ओर नज़र दौडायी, रेखा के तकिये मे जो गड्ढा था जहाँ उस का सिर रहा होगा सहमा झुक कर उसे चूमा, फिर तम्वू के दोनो पल्ले उलट दिये और वाहर निकल दोनो बाँहे फैला कर सूर्य की धूप को गले से लगाते हुए मानो नये दिन का अभिनन्दन किया ।

* * *

धूप चढ आयी। नाश्ते के बाद भुवन ने पूछा, "तैरने चलोगी ?"

"हाँ । मैं कास्ट्यूम लायी हूँ ।"

"पानी वहुत ठडा है—जम जाओगी ।"

यह वाक्य प्रतिध्वनि-सा लगा। सहसा स्मृति की बाढ आयी। "तुम तो—चाँदनी मे ही जम गई थी !" भुवन की आँखे मिली, उन मे कौतुक था। रेखा ने आँखे नीचे करते और मुँह दूसरी ओर फेरते हुए कहा, "और तुम—तुम पिघल गये थे—?"

फिर सहसा लज्जित हो कर सिमटती-सी दूसरी ओर चल दी ।

भुवन ने पास जा कर कहा, "लजाती हो—मुझ से—अव ?"

"हटो—तुम से नही तो और किस से लजाऊँगी ? और कौन—" और रेखा तम्वू के अन्दर भाग गयी ।

भुवन ने नीचे जा कर खानसामा से कहा कि दोपहर का कुछ हलका भोजन तैयार कर के रख दे, और फिर पहलगाँव जा कर और जो-कुछ ताज़ा सामान लाना हो ले आवे—दो दिन के लायक, क्योकि परसो फिर नीचे जाना होगा वाकी सामान के लिए। अभी वे लोग तैरने जायेंगे, लौट कर स्वय कुछ खा लेगे। खानसामा ने केवल कहा, "हुज़ूर, पानी वहुत ठडा है," और अपने काम मे लग गया।

---

*मैं एक प्राचीर हूँ, और मेरे उरोज मानो दुर्ग; मुझे तुम ने अपनी अनुकम्पा का पात्र पाया है ।

भुवन तम्बू में गया। रेखा मेज़ के पास खाट के सिरे पर बैठी कुछ सोच रही थी।

"फिर कुछ लिखना चाहती हो ? तुम पहले जीती हो और फिर लिखती हो, कि पहले लिखती हो फिर जीती ?"

"यही भेद नही पहचान पा रही हूँ—यह मेरा सौभाग्य है। और तुम्हारा वरदान।" कुछ रुक कर वह बोली, "मैं कहानी लिखने जा रही थी—तुम्हारे पढने के लिए। पर तुम्हें सुना ही देती हूँ।"

भुवन ने घुटने टेक कर कुहनियाँ मेज़ पर रखी, ठोडी हथेली पर जमायी, बिलकुल बच्चों की-सी मुद्रा बनाता हुआ बोला—"सुनाओ।"

"हँसना मत ! तुम ने पडितराज कोक का नाम सुना है ?"

"हाँ, पर यह भी सुना है कि सभ्य लडकियाँ उस का नाम नही लेती।"

"नही लेती होगी। उन को हक ही नही होगा। पर बीच में मत बोलो, नही तो नही कह पाऊँगी। कोक कश्मीर-राज के मन्त्री थे, पर कैसे हुए इसी की कहानी है। राजा की एक कन्या थी। राज-भर में नगी फिरा करती थी। टोकने पर कहती थी, 'मुझे काहे की शरम ? राज्य में मैं किसी को पुरुष मान कर देखूँ तब तो लजाऊँ ? मैं किसी को देखती ही नही।'

"एक दिन कोक वहाँ आये, उन्होंने राजकुमारी को देखा। उस से आँखे चार होते ही सहसा वह लजा गयी, उसे लगा वह नगी है, भाग गयी और जा कर कपडे पहन लिये।"

वह बहुत देर तक रुकी रही। फिर भुवन ने कहा, "'फिर' पूछने की इजाजत है ?"

"बस। इतनी ही कहानी मैं सुनाना चाहता थी। वैसे बाद में कोक से उस का विवाह हुआ, और उसी को अपने सब रहस्य सिखाने के लिए कोक ने अपना ग्रन्थ लिखा। पर वह अलग कहानी है।"

"ओ !" कह कर भुवन चुप हो गया।

रेखा ने सहसा फिर कहा, "यह कहानी मुझे जानते हो किस ने सुनायी थी ? देखो, मेरा शाप छूट गया है, मैं नाम ले सकती हूँ—हेमेन्द्र ने। क्यो, कब, यह नही बताना होगा। पर—उसे भी पुरुष कर के मैंने जाना नही था।"

भुवन उसे चुपचाप देखता रहा। फिर एक लम्बी साँस उस ने ली। उठ कर आया, धीरे-धीरे रेखा के केश सहलाता रहा।

थोडी देर बाद बोला, "अच्छा चलो तैरने—"

"चलो, मैं आती हूँ।"

* * *

तीसरे पहर दोनो पहाड की चोटी पर थे, खुली धूप मे। हाथ पकडे-पकडे एक बार

उन्होंने चारों ओर देखा। निर्जन—कहीं कोई नहीं दीख रहा था। एक ओर झील का विशाल मुकुर, और सब ओर आकाश, नीला, मुक्त-अतल

रेखा ने कहा, "देखो, हम दुनिया की छत पर हैं।"

तैरने के बाद बदन सुखा कर वह धूप में लेटे रहे थे। फिर लौट कर खाना खाया था, और थोड़ी देर के लिए फिर धूप में आये थे, उस से शरीर अलसा गया तो जा कर थोड़ी देर सो गये थे। फिर रेखा ने उठ कर उसे उठाया था, दोनों बिस्तर ठीक कर दिये थे, "घूमने नहीं चलोगे—फिर धूप चली जायगी ?" और उसी तरह भटकते हुए नंगे पैर ही दोनों यहाँ तक चढ़ आये थे

भुवन एक चपटी चट्टान पर पाँव फैला कर बैठ गया।

रेखा ने खड़े-खड़े पूछा, "भुवन, मेरी मोहलत कब तक की है ?"

भुवन अचकचा गया। कुछ उत्तर न दे सका।

"बोलो ?"

भुवन ने धीरे-धीरे कहा, "परसों पहलगाँव जाना होगा, सामान लिवाने—"

रेखा ने शान्त स्वर से कहा, "अच्छा।" उस में कोई आक्रोश, प्रतिवाद, आवेश, कुछ नहीं था, केवल एक स्थिर स्वीकार। उस ने दोनों हाथ उठा कर एक बड़ा वृत्त बनाते हुए फैलाये और फिर नीचे गिरा लिये—न मालूम अँगड़ाई लेते हुए, या उस विस्तीर्ण आकाश को बाँहों में समेटते हुए।

सहसा भुवन ने भर्राये कंठ से कहा, "आओ !" रेखा ने मुड़ कर देखा, उस का हाथ रेखा की ओर बढ़ा है एक आह्वान में, उस पुकार को उस ने समझा, भुवन के पास घुटने टेकते और झुकते हुए उस ने फुसफुसाते स्वर में उत्तर दिया, "आयी, लो—"

साक्षी हो सूर्य, और आकाश, और पवन, और तले बिछी घास और चट्टानें, साक्षी हों अन्तरिक्ष के अगणित देवता और अकिंचन वनस्पतियाँ—

लेकिन यह एक सत्य है जो कोई साक्षी नहीं माँगता, सिवाय अपने ही भीतर की निविड समर्पण की पीड़ा के, अपने ही में निहित, स्पन्दित और क्रियाशील असंख्य सम्भावनाओं के

* * *

साँझ, रात, दूर टुनटुनाती गोधूली की घंटियाँ, शुक्र तारा, तारे, चाँद, लहरियों पर चाँदनी की बिछलन, छोटे-छोटे अभ्र-खंड, ठंडी हवा, सिहरन, ऊँचाई, ऊँचाई के ऊपर आकाश में चुभता-सा पहाड़ का सींग, आकाश. सब का अर्थ है, सब-कुछ का अर्थ है, अभिप्राय है, ठिठुरे हाथ, अवश गरमाई, रोमांच, सिकुड़ते कुचाग्र, कनपटियों का स्पन्दन, उलझी हुई देहों का घाम, कानों में चुनचुनाते रक्त-प्रवाह का संगीत—इन सब का भी अर्थ है, अभिप्राय है, प्रेष्य सन्देश है; नहीं है तो इन सब के योगफल और समन्वय प्रकृति

का ही अर्थ नही है, अभिप्राय नही है, केवल उद्देश्य .

* * *

क्यो सब-कुछ का अर्थ है—दूसरा, गहरा अर्थ ? ऐसा ही रहा, तो और एक-आध दिन में हर स्थान का, हर दृश्य का, हर बात का एक गहनतर, गोपनतम अर्थ हो जायगा, एक रागात्मक ऐश्वर्य—तब रेखा किसी ओर मुड नही सकेगी बिना उस अर्थ से अभिसिंचित हुए भुवन पूछता है, "पहाड पर चलोगी ?" तो वह सिहर उठती है, "ठड तो नही लगती ?" तो लजा जाती है, "आओ, बैठे" तो मानो उस के घुटने मोम हो जाते है लेकिन ऐसा रहेगा नही, और एक दिन भी नही, यह दोपहर ढलेगी तो जो रात होगी, उस के बाद जो सवेरा होगा

तीसरे पहर फिर घूमने पहाड पर जाने की बात थी, शायद उस पार तक, पर दोपहर की सक्षिप्त नीद से उठ कर उन्होने देखा, बादल का एक बडा-सा सफेद साँप झील के एक किनारे से उमड कर आ रहा है, और उस की बेडौल गुँजलक धीरे-धीरे सारी झील पर फैली जा रही है, थोडी देर में वह सारी झील पर छा कर बैठ जायगा, और फिर शायद उस का फन ऊपर पहाड की ओर बढेगा—

भुवन ने कहा, "शायद बारिश हो, नही जायेंगे।"

तम्बू के सामने के चँदोवे में, नीचे पटरे डाल कर उन पर कुछ बिछा कर दोनो बैठ रहे, देखते रहे बादल को धीरे-धीरे झील पर छाते हुए। जब वह घाटी से उमड कर आया, तब उस का बडा स्पष्ट आकार था, पर झील पर आ कर वह बिखरने लगा था, बादल की अपेक्षा एक धुन्ध की तरह ही, झील की सतह को दुलराता हुआ

"देखते हो, बादल कैसे झील को दुलराता है—"

ओफ, ये गहनतर अर्थ रेखा की छाती में गुदगुदी होने लगती है, वह चाहती है कि भुवन का सिर खीच कर वहाँ छिपा ले, भुवन के ओठो को भीच ले कुचो के बीच जहाँ उस ने दो दिन पहले पहली बार चूमा था लेकिन वह निश्चल बैठी है, बिल्कुल निश्चल, भुवन का ही हाथ उस का हाथ खोजता आता है और उस पर टिक जाता है, बहुत धीरे-धीरे उसे दुलराता हुआ

उस में भी अर्थ है, गहनतर अर्थ, उस धीरे-धीरे दुलराते हाथ मे .

झील बिल्कुल छिप गयी। केवल एक सफेद धुन्ध की दीवार कही कोई दिशा नही, क्षितिज नही, दोनो धुन्ध में खो गये, केवल वे दोनो, तम्बू का चँदोवा, और धुन्ध, धुन्ध, व्यापक धुन्ध

भुवन ने सहसा उदास हो कर कहा, "कल—"

रेखा ने सहसा उसे रोक दिया। कल कल, आज क्यो ? वह नही कहने देगी भुवन को कुछ भी—पर भुवन ने जब फिर कहना चाहा, "कल इस समय—" तो रेखा ने बढ कर

अपने ओठ उस के ओठों पर रख दिये और उसे चुप करा दिया।

बस इतना ही, चँदोवा भी नही, धुन्ध मे केवल चेहरे, केवल मिली हुई आँखें, ओठ—

* * *

लेकिन रात को जब भुवन ने बडे आदर से उसे अपने पास लिटा कर अच्छी तरह उढा दिया, और एक कुहनी पर टिके-टिके धीरे-धीरे उसे थपकने लगा, तब एक बडी गहरी उदासी ने उसे पकड लिया। भुवन की किसी बात का कोई उत्तर उस ने न दिया, उस के पास लेटी, एक शिथिल हाथ उस की कमर पर डाले, अपलक, शून्य, न देखती हुई दृष्टि से उस की छाती की ओर देखती रही। भुवन जब बहुत आग्रहपूर्वक पूछता, तो कभी अँग्रेजी मे, कभी बँगला में, कभी हिन्दी में कुछ गुनगुना देती—कभी पद्य, कभी गद्य—अपनी ओर से कुछ न कहती। एक बार भुवन ने कुछ शिकायत के-से स्वर मे कहा, "तुम सिर्फ कोटेशन बोल रही हो—अपना कुछ नही कहोगी ?"

तब उस ने खोये-से स्वर में कहा, "अपना ? अपना क्या ? मै सिर्फ कोटेशन बोलती हूँ, भुवन, क्योकि मै स्मृति मे जी रही हूँ।"

भुवन चुप हो गया। धीरे-धीरे रेखा की आविष्ट उदासी उस पर छा गयी, उस ने धीरे-धीरे अपना सिर रेखा के माथे पर टेक दिया और निश्चल हो गया। बीच-बीच में वह अनमने हाथ से उसे दो-एक बार थपक देता, या अनमने ओठों से उस की पलकें छू लेता, बस।

बहुत हल्की-सी बारिश होने लगी। तम्बू पर बूंदो की थाप पहले तीखी पडी, पर वह जैसे-जैसे भीगता गया वह थाप भारी होती गयी; थोडी देर मे एक मन्द्र एकस्वर उन के उदास राग में तानपूरे की सगत करने लगा...

न जाने कब धीरे-धीरे दोनो सो गये। प्रकृति को कोई अर्थ नही है, अभिप्राय नही है, केवल उद्देश्य; प्राणिमात्र उन के अनुगत हैं।

* * *

वापसी का रास्ता सदैव बहुत छोटा होता है; विशेषकर जब दुनिया की छत पर से नीचे उतरें· वह उतराई वैसी नही होती कि पैर पसार कर, पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से मानो मुक्त, हवा पर तिर जायें और जा कर उतरें न जाने कहाँ दूर, दूर वायुमण्डल के पार एक श्वासरुद्ध, निरे आलोक की दूसरी दुनिया में, यह उतराई होती है नीचे—मिट्टी की, लोगों के पैरो से रौंदी हुई, धरती पर. .

पहलगांव दीखने लगा, तो रेखा ने धीरे-धीरे, बिना आग्रह के, मानो उस की बात न भी मानी जाय तो कोई बात नही ऐसे कहा, "अभी तो नही पहुँचे होगे—उधर से ऊपर से चलें—"

भुवन तुरत मुड गया।

चलने से पहले भुवन ने कहा था, "रेखा, अभी क्या जल्दी है, और दो दिन रह जाओ—मैं कल जा कर सामान लिवा लाऊँ—"

रेखा ने उसकी आँखो में देखा था। नहीं, औपचारिक बात नही थी, भुवन सचमुच उसे ठहरने को कह रहा था।

यही ठीक है, यही ठीक है। यहाँ वह विदा लेने नही आयी, विदा देने आयी है। भुवन उसे रहने को कहता रहे, सुनते-सुनते ही वह चली जाय। यही ठीक है उस ने सहसा कडे पड कर कहा था, "नही भुवन, जाऊँगी। मैंने वचन दिया था।"

चलते हुए वे सीधे रास्ते से नीचे नही उतरे थे, पहले ऊपर चढे थे—पहाड की छत पर—रेखा आगे-आगे। ऊपर पहुँच कर रेखा ने एक वार चारो ओर देखा था, रुक-रुक कर, मानो एक-एक स्थल को दृष्टि मे वसाते हुए, स्मृति की गाँठ बाँधते हुए, फिर कहा था, "भुवन, जाने से पहले मैं एक बात कहना चाहती हूँ। आइ एम फुलफिल्ड। अब अगर मैं मर जाऊँ तो परमात्मा के—प्रकृति के—प्रति यह आक्रोश ले कर नही जाऊँगी कि मैंने कोई भी फुलफिलमेंट नही जाना—कृतज्ञ भाव ही ले कर जाऊँगी—परमात्मा के प्रति और—भुवन, तुम्हारे प्रति।" और हठात् वह भुवन के पैरो की ओर झुक गयी थी और भुवन के चौंकते-चौंकते उस ने भुवन के पैरो की धूल ले ली थी।

चुपचाप वे उतरते गये थे। रुद्ध-कठ, स्तब्ध-प्राण, आविष्ट।

फिर सहसा पहलगाँव दीख गया था। रेखा रुक गयी थी, पहलगाँव की ओर ताकते-ताकते ही उस ने भुवन का हाथ पकडा था और दबा कर छोड दिया था।

जिस रास्ते से वे चले, उस से नदी या कि वडा पहाडी नाला पडता था। पुल था, वे पार हो गये। पर पहलगाँव इसी पार था, इस नदी और शेषनाग नदी के सगम पर। फिर भी दोनो उसी पार से धीरे-धीरे नाले के साथ उतरने लगे।

आधा मील आगे जाकर भुवन ने देखा, एक पेड का तना नदी के आर-पार पडा है। स्पष्ट ही वह पुल का काम देने के लिए डाला गया है, पैदल इस पर आ-जा सकते हैं। भुवन ने पूछा, "इस से पार चले—सकोगी?"

"अब सब-कुछ सकूँगी, भुवन!" रेखा वोली। भुवन ठीक समझ नही सका कि इस का अभिप्राय क्या है आगे वढ कर तेज पैरो से तने पर चल चली। मँझधार जा कर रुकी, नीचे पानी की ओर देखा, और फिर वही वैठ गयी। भुवन भी कुछ दूर आगे वढ कर वैठ गया।

रेखा गाने लगी। उस का गला भर्रा रहा था, स्वर मानो अव टूटा, अब टूटा, पर वह चेहरे पर एक मुस्कान लिये गाये जा रही थी, किसी वात का उसे होश नही था, यहाँ तक कि भुवन को लगा, उस की उपस्थिति की खबर भी रेखा को नहीं है

"तोमा सुरेर धारा झरे जेथाय तारि पारे

देबे कि गो वासा आमाय देबे कि एकटि धारे :
तोमार सुरेर धारा झरे जेथाय तारि पारे।
आमि शुनबो ध्वनि काने आमि भरबो ध्वनि प्राणे
आमि शुनबो ध्वनि
सेइ ध्वनि ते चित्त वीणाय तार बाँधिबो बारे-बारे।
देबे कि गो वासा आमाय देबे कि....
तोमार सुरेर धारा झरे जेथाय तारि पारे।
देबे कि गो वासा आमाय देबे कि....*

मानो दूर, अलग हटाया हुआ, भुवन सोचने लगा। एक अद्‌भुत भाव उस के मन में उठा। अभी पीछे देखने, सोचने, परखने का सामर्थ्य उस में नही था, इतना ही उस के मन मे उठा कि यह उस के जीवन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सन्धि-स्थल है . क्या वह भी रेखा की तरह कह सकता है कि कि अब वह फुलफिल्ड है, कि अब वह मर सकता है ? पर फुलफिल होना क्या है ? एक तन्मयता उस ने जानी है, एक अभूतपूर्व तन्मयता, लेकिन स्वय वह जो जान पाया है उस मे कुछ अधिक और कुछ अधिक गहरा रेखा उस के निमित्त से जान सकी है—अधिक गहरा क्योकि वह स्त्री है, और स्त्री होते हुए भी उस ने वह साहस किया है जो शायद भुवन में भी नही है, अधिक गहरा इस लिए कि उसे जानने के लिए पहले जाना कितना कुछ भुलाना भी पडा है. तो क्या यही फुलफिलमेंट नही है कि कोई किसी को वह चरम अनुभूति दे सके—देने का निमित्त बन सके—जो जीवन की निरर्थकता को सहसा सार्थक बना देती है ? सचमुच, ऐसे सन्धि-स्थल पर ही मरना चाहिए, यह कहते हुए कि मैं कुछ दे सका जो मुझ से बडा है, मुझ से अच्छा है अगर वह यही से नीचे कूद पडे—रेखा गाना समाप्त कर के मुड कर देखे कि वह नही है, गुम हो गया है , तो—

लेकिन रेखा ने सहसा गाना बन्द कर दिया। पुकारा "भुवन ! भुवन !"

"हाँ।"

"यहाँ आओ।"

भुवन पास सरक आया।

"मेरा हाथ पकडो।"

भुवन ने पकड लिया।

"भुवन, तुम वैज्ञानिक हो। लेकिन तुम्हारी आकाक्षा क्या थी—वैज्ञानिक होने की ही, या और कुछ ?"

---

*तुम्हारे स्वर की धारा झरती है जहाँ, वहीं एक किनारे क्या मुझे स्थान दोगे ? मैं कान से ध्वनि सुनूंगी, प्राणो में ध्वनि भर लूंगी; उसी ध्वनि से चित्त-वीणा के तार बार-बार बाँधूंगी। —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

"क्यो ?" कह कर भुवन तनिक रुका, फिर जैसे सच बता देने को बाध्य हो, ऐसे बोला, "मेरा स्वप्न था डाक्टर होने का—बहुत बडा सर्जन—"

"और मेरा था बीनकार होने का—बहुत बडी बीनकार।"

दोनो थोडी देर चुप रहे। फिर रेखा ने धीरे-धीरे कहा . "उसे मैं वीणा भी सिखाऊँगी—और वह बडा सर्जन भी होगा।"

एक सन्नाटा—नदी के स्वर से स्पन्दित।

थोडी देर बाद वह खडी हो गयी। भुवन का हाथ पकडे-पकडे उसे उठाया, और हाथ पकडे ही पार हो गयी।

बस्ती के पास भुवन ने पूछा, "पहलगाँव ठहरोगी ? मैं चौथे-पाँचवे आऊँगा डाक-वाक देखने—"

"शायद, अभी कुछ सोचा नही—"

लेकिन भुवन के कुली जब आ गये, और वह उन्हे आगे चला कर थोडी देर होटल के बरामदे मे रेखा के पास खडा रहा, और फिर सहसा कुछ भी कहना असम्भव पा कर रेखा के हाथ को जोर से भीच कर, एक कन्धे से उस का आधा आलिंगन कर के जल्दी से उस से टूट कर, अलग हो कर बिना लौट कर देखे चला गया—रेखा भी बोली नही, केवल बेबस हाथ बढाये खडी रह गयी—उस के घटा-भर बाद जब कुली ऊपर से रेखा का सामान ले कर आ पहुँचा, तो वह रुकी नही, तत्काल बस मे जा बैठी और श्रीनगर के लिए रवाना हो गयी।

* * *

चौथे-पाँचवे दिन भुवन पहलगाँव आया। सीधा होटल गया। मालूम हुआ कि रेखा वहाँ ठहरी नही, उसी दिन चली गयी। फिर वह डाकघर डाक पूछने गया। हाँ, तीन-चार चिट्ठियाँ थी। उस ने ले ली। हाँ, एक बडे लिफाफे पर रेखा के अक्षर थे। उस ने लिफाफा खोला। ठीक पत्र नही था, अलग-अलग कागज़ के कई टुकडे थे। भुवन ने जहाँ-तहाँ पढा—एक-आध जगह कविता की पंक्तियाँ थी—

आई सेड टु माइ सोल : बी स्टिल, एंड वेट विदाउट होप
फार होप वुड बी होप आफ़ द रांग थिंग, वेट विदाउट लव
फार लव वुड बी लव आफ़ द रांग थिंग; देयर इज़ येट फेथ;
बट द फेथ एंड द लव एंड द होप आर आल इन द वेटिंग।...*

---

*मैंने अपनी आत्मा से कहा : स्थिर हो और बिना आशा के प्रतीक्षा कर क्योंकि आशा असत् की आशा होगी; बिना प्रेम के प्रतीक्षा कर, क्योंकि प्रेम असत् का प्रेम होगा। श्रद्धा फिर भी रह जाती है, किन्तु श्रद्धा और प्रेम और आशा सब प्रतीक्षा में ही हैं।

—टी० एस० एलियट

फिर भुवन ने सब कागज़ जेब मे डाल लिये कि तुलियन जा कर एकान्त मे पढेगा ....

"मै सोचना चाहती हूँ, पर सोच नही सकती। ठीक सोचना ही चाहती हूँ, इस मे भी सन्देह हो आता है।

"कुछ महान्, कुछ विराट् घटित हुआ है, ऐसा थोडा-सा आभास होता है। लेकिन कहाँ ? मुझ मे ? मै उस विराट् का वाहन हूँ, माध्यम हूँ—मै अकिचन, नगण्य, मै जो अगर कभी थी भी अव नही हूँ ! मुझ को ? मेरे साथ ?

"कुछ स्तब्ध, कही निश्चलता, कही, न जाने, कैसी एक शान्ति". .

"मै एक खडा हुआ पानी थी एक झील, एक पोखर, एक छोटा ताल, शैवालो से ढँका हुआ। तुम ने आँधी के तरह आ कर मुझ को आलोडित कर दिया, मुझ मे अनन्त आकाश को प्रतिबिम्बित कर दिया। मुझे कहने दो, भुवन, मेरी यह देह जैसे तुम्हारी ओर उमडी थी, वैसे कभी नही उमडी, शिरा-शिरा ने तुम्हारा स्पर्श माँगा, तुम्हारे हाथो का स्पर्श, तुम्हारी बाँहो की जकड, तुम्हारी देह की उत्तेजित गरमाई . लेकिन—तुम मे डर था—डर नही, एक दूर का कोई अनुशासन, कोई एक मर्यादा, जिस के स्रोत तक मेरी पहुँच नही थी। और जिस से छुआ जा कर मेरा तूफान सहसा शान्त हो गया, मै फिर उसी तल पर पहुँच गयी जिस तल पर ताल सदा से था—ढँका हुआ निश्चल, खडे पानी का एक उद्देश्यहीन जमाव—

"लेकिन नही। यह ढँका नही, आकाश का प्रतिबिम्ब उस मे रहा, फिर तुम ने फिर मुझे जगा दिया—क्षण-भर के लिए, लेकिन पहचान के क्षण के लिए, अनन्य-सम्पृक्त एक क्षण के लिए—भुवन, मै तुम्हारी हूँ, तुम्हारी हूँ, तुम्हारी हूँ .."

"न, मै कुछ माँगूँगी नही। तुम्हारे जीवन की बाधा नही बनूंगी, भुवन, उलझन भी नही बनूंगी। सुन्दर से डरो मत—कभी मत डरना—न डर कर ही सुन्दर से सुन्दरतर की ओर बढते हैं।

"लेकिन भुवन, मुझे अगर तुम ने प्यार किया है, तो प्यार करते रहना—मेरी यह कुंठित, बुझी हुई आत्मा स्नेह की गरमाई चाहती है कि फिर अपना आकार पा सके, सुन्दर मुक्त, ऊर्ध्वाकाक्षी "

"सोचती हूँ, जीवन के हर मोड पर मुझे स्नेह मिला है, करुणा मिली है, साहाय्य मिला है। इतनी करुणा, इतनी अनुकम्पा, इतनी भलाई—कभी मै अपने ऊपर खीझ उठती हूँ कि मुझ में क्यो नही एक प्रतिस्फूर्ति जागती—क्यो मै ऐसी अचल अचेतन हूँ ? कृतज्ञता —हाँ, कृतज्ञता वहुत है, पर कृतज्ञता जीवन को सच नही बनाती, प्यार सच बनाता है; क्योकि कृतज्ञता मे व्यथा नही है, और बिना व्यथा के सत्य नही है, कितनी सच बात कही थी तुम ने हमारे पहले विवादो मे—आज व्यथा में मै उस सच को जानती हूँ, भुवन ! पर क्यो सब कुछ अयथार्थ है, क्यो कुछ भी मुझे नहीं छूता ? तुम भी, भुवन,—तुम से मैंने पूछा था कि तुम यथार्थ हो ? क्योकि मै जागी थी और एक बड़ी विमूढता मुझ पर थी—

एक समर्पण मेरे भीतर रो रहा था पर अयथार्थ को मैं समर्पण करना नही चाहती थी. वह डर, अयथार्थ को समर्पण करने का डर क्या होता है भुवन, तुम जानते हो ? न, तुम कभी न जानो वह डर .

"लेकिन उस शाप से मैं मुक्ति पा सकी, भुवन, थोडी देर के लिए ही, चाहे बीच-बीच मे कुछ क्षणो के लिए ही, मैंने पहचाना कि तुम हो, सचमुच हो, कि तुम्ही को मैंने समर्पण किया है ।"

"मेरी यह सोयी अवस्था फिर से लौट आयी है, पर वैसी जड नही—मैं मानो स्वप्नाविष्ट हूँ। स्वप्न मे चलती हूँ, खाती-पीती हूँ, काम करती हूँ, और करूँगी।"

"भविष्य मैं अब भी नही मानती । तुम्हारे मन, हृदय, आत्मा की बात मैं नही जानती, नही जानती कि मेरे तुम्हारे जीवन मे आने का क्या अर्थ या महत्त्व है । यह भी नही जानती कि तुम्हारे जीवन मे आयी हूँ कि नही । लेकिन पूछूँगी भी नही । साल-भर पहले—अभी कुछ महीने पहले तक भी—हम राह पर इस तरह मिलते—मिलने की सम्भावना भी होती—तो मैं उस मिलने का भविष्य जानना चाहती । जानना चाहना ही स्वाभाविक होता । पर-अब मैं अपने को अकुश देती हूँ कि पूछूं, पर प्रश्न मेरी जीभ पर नही आता—मेरे मन मे ही ठीक आकार नही लेता, कि स्वय अपने से भी पूछ सकूं । फुलफिल्ड शान्त स्तब्ध, निर्वाक, मैं बस हूँ, कोई प्रश्न मेरे भीतर नही उठते और भविष्य से मैं कुछ पूछना नही चाहती ।

"मैंने बार-बार कहा है कि भविष्य नही है, केवल वर्तमान का प्रस्फुटन है, उसी की अनिवार्य अन्त सम्भावनाओं का स्फुरण अब मैं यह अनुभव करती हूँ । पहले मानती थी, अब उस की तीखी अनुभूति टीस-सी मेरे अन्तर मे स्पन्दित हो रही है । वह सच है, और मैं उस के आगे झुकती हूँ

"जब तक जो है, उसे सुन्दर होने दो भुवन, जब वह न हो, तो उस का न होना भी सुन्दर है "

"एक कविता तुम्हारे लिए रख रही हूँ, नाम है, 'छतरी' :
वर्स दैन दोज़ ड्रीम्स इन ह्विच द अर्थ गिव्ज़ वे
आइ एम अवेक एंड वाक आन सालिड स्टोन,
विदाउट यू डिसेम्बाडीड, एवरी डे
अगेंस्ट द ईस्ट विड गोइंग होम एलोन ।
इन ड्रीम्स आफ़ फालिंग देयर इज़ ओनली डेड;
फ़ाल्स एंड, ड्रीम्स फ़ेल, नाइट फ़ाल्स, नाइटमेयर रिमेन्स;
ए गोस्ट आफ फ्लेश एंड ब्लड, आइ मस्ट बी फ़ेड
मस्ट ओपेन एन अम्ब्रेला ह्वेर इट रेन्स ।
ह्वेर विल इट आल एंड ? विल इट एंड एट आल ?

हाइ द विंड राइजेज, कोल्ड द रेन विल फ़ाल,
बट इफ द सन शोन इट वुड ओनली शाइन
आन अनरीएल सीन्स एंड ग्रीफ ऐज रीएल ऐज़ माइन :
अगेंस्ट द नाइट विंड गोज ए लिविंग गोस्ट,
रीअल, फार इट लव्ज, एंड लैक्स ह्वट इट लव्ज मोस्ट ।*

"तुम ने मुझे एक वार भी नही वताया कि मेरे लिए तुम्हारे हृदय मे क्या भाव है। प्रेम, स्नेह, दया, समवेदना, करुणा, क्या ? या कि केवल मेरे दु ख ने एक प्रतिध्वनि तुम मे जगा दी, वस ? क्यो तुम ने मुझे अपने इतने निकट लिया ?

"या कि मै केवल एक धृष्णु साहसिका हूँ, जो अनधिकार तुम्हारे जीवन मे घुस आयी ? या .

"यही एक ही प्रश्न मै तुम से पूछना चाहती थी, भुवन, आगे-पीछे कुछ नही, केवल यही एक वात और इस के लिए साहस नही वटोर पायी। तुम्हारे सामने न जाने क्यो एक सकोच जकड लेता है "

"मै उदास हो गयी थी,तुम भी उदास हो गये थे। तुम्हे उदास करना मै नही चाहती थी। तुम्हे उदास देखना कभी नही चाहती. स्वभाव मे मै वैसी नही हूँ ; तुम ने मुझे उदास, दु खी, प्रतिमुखी, अवरुद्ध ही जाना है—सहा है, मेरे भुवन, वडी करुणा और स्नेह के साथ सहा है—पर मै वैसी नही हूँ। मै हँसती थी। पथ-तट के एक उपेक्षित फूल को देख मै विभोर हो सकती थी, लहरो के साथ दौड सकती थी, और नदी की हवा के साथ मेरा मन उड जाता था हँसते सुनहले पख फैला कर, अन्तरिक्ष को मेरी हँसी से गुंजाता हुआ

---

*उन स्वप्नो से भी भयानक जिनमें पैरो के नीचे धरती खिसक जाती है, मै जागती हूँ, ठोस पत्थर पर चलती हूँ, तुम्हारे बिना विदेह, प्रतिदिन ठडी पूर्वी हवा के सम्मुख अकेली घर की ओर जाती हुई।

गिरने के स्वप्नो में केवल डर होता है,गिरना समाप्त हो जाता है, स्वप्न चुक जाते हैं, रात आती है और रात का डर उभर आता है। मै रक्त-मांस युक्त प्रेत हूँ जिसे भोजन भी करना होता है और वर्षा में छाता भी खोलना होता है।

इसका अन्त कहाँ है ? अन्त है भी ? हवा तीखी होती जाती है, वर्षा और ठंडी हो जायेगी, किन्तु सूर्य निकलता भी तो उसकी धूप पड़ती केवल अयथार्थ दृश्यो पर और मेरे यथार्थ दु ख पर।

रात की सनसनाती हवा के सम्मुख जा रहा है एक जीवित प्रेत—यथार्थ, क्योकि वह प्रेम करता है, और जिसे प्रेम करता है उसे पा नहीं सकता !

"लेकिन भुवन, धीरे-धीरे वह हँसी मरती गयी। मैं कहते लज्जित हूँ; पर वर्षों से वह मरती रही है, धीरे-धीरे।

ड्राप बाइ ड्राप स्लोली, ड्राप बाइ ड्राप आफ फायर :

एलास माइ रोज़ आफ लाइफ गान आल टु प्रिक्ल्स...*

"तुम ने मुझे फिर वह हँसी दी। थोड़ी देर के लिए : लेकिन वही, सच्ची, मुक्त।"

"अब लगता है, क्या हुआ उस का ? अकारण, निराधार हँसी, निष्परिणाम हँसी

"लेकिन सच्ची हँसी तो स्वत प्रमाण है, स्वयम्भू, निष्परिणाम "

---

*बूंद-बूंद धीरे-धीरे, बूंद-बूंद आग-सा—मेरे जीवन का गुलाब कांटा-ही-कांटा रह गया।
—क्रिस्टिना रोज़ेटी

चन्द्रमाधव

चन्द्रमाधव को पहचानते ही रेखा के चेहरे पर विस्मय की दौडती लहर के साथ-साथ घने दुराव की छाया भी स्पष्ट हो गयी है, इसे देख कर यदि चन्द्रमाधव को क्लेश हुआ तो उसने उसे दीखने नही दिया। कुछ तो वह प्रत्याशित ही था क्योकि उसी ने तो रेखा को कहा था कि उससे कोई सम्पर्क न रखे,राह मे मिल जाने पर उसे पहचाने नही, बुलाये-बोले नही—उस के जीवन से निकल जाय। पर उस से भी अधिक कारण यह था कि दो, दिन पहले गौरा से भेंट होने पर गौरा के चेहरे पर भी कुछ वैसा ही भाव उसे दीखा था और उस से वह तिलमिला गया था क्योकि गौरा से उस ने कभी कुछ नही कहा था, बल्कि गौरा का शुभेच्छु बन कर उस ने भुवन से अपनी मैत्री को भी जोखम मे डाला था कल की यह छोकरी, उस से–चन्द्रमाधव से–मिले और ऐसी चिकनी साफ दीवार बन कर कि कही उसे छुआ न जा सके,भेदने की तो बात अलग, और तिस पर ऊपर से इतनी चिकनी, विनीत, मानो अपनी सकल्प-शक्ति क्या होती है यह उस ने कभी जाना ही नही ! और उस की तिलमिलाहट उस के चेहरे पर झलक गयी थी, गौरा ने उसे देख लिया था—यह जलालत भी उसे सहनी पडी थी। बातो के सिलसिले मे गौरा ने कहा था "आप भुवन दा के मित्र हैं, अब तक यही जानती थी, अब जानूँगी कि आप उन के शुभचिन्तक हैं। और मेरे शुभचिन्तक तो आप हैं ही, यह तो सदा से जानती हूँ।" वह ताकता रह गया था,गौरा कह क्या रही है—क्या यह सीधी-सीधी बात है, या कि मख-मल मे लिपटी हुई जूती, या फिर वह सँभल गया था, मगर एक बार तो गौरा ने देख ही ली थी उस की झेंप और तिलमिलाहट ..

रेखा को वह नही देखने देगा। इतना ही नही, रेखा से वैसी बात ही वह नही होने देगा। रेखा बच्ची नही है। औरत है, अनुभवी औरत है। और अब—कश्मीर से भुवन के पास से लौट कर अब—क्या अब भी उस की वही हेकडी रहेगी जो पहले थी ? वह तो नामुमकिन बात है ? और शायद उस की मदद से गौरा की भी अक्ल ठिकाने लायी जा सके।

रेखा ने कहा, "यह अप्रत्याशित कृपा है, चन्द्रमाधव जी—"

चन्द्र ने भी बडे विनीत स्वर में कहा, "कृपा आप की है रेखा जी, मैं तो सर्वदा उस का प्रत्याशी हूँ," फिर कुछ रुक कर, "पिछली बाते, आशा है, आप ने भुला दी हैं—"

रेखा ने सम स्वर से कहा, "भुलाने की बात तो तब हो जब याद करने को कुछ रहा हो हाँ, आप का न बोलने का जो आदेश था उसी की बात अगर कह रहे हैं तो वह तो आप ही का—"

यह औरत जात ! लेकिन यह भी पी जाना होगा—झगड़े का न अवसर है, न यह

स्थान है, न झगडा कर के फ़ायदा है। रेखा को झुकना पडे, वह समय आयेगा अपने-आप आयेगा, ज़रूर आयेगा।

"नही रेखा जी, मै केवल अपने दोषों की बात कह रहा था—उन्हे भूल कर फिर आप मुझे फ़्रेंड का गौरव दे सके तो—"

"फ़्रेंडशिप बाहर की स्थिति नही है, चन्द्र जी, वह अपनी प्रवृत्ति का नाम है। मै तो फ़्रेंड के सिवा कुछ हो ही नही सकती अब—"

चन्द्र ने आँखे सकोच कर उस की ओर देखा। मन-ही-मन कहा, "तो ऐसी बात है—फ़्रेंड के सिवा कुछ हो नही सकती आप हम सब के लिए—सारी दुनिया के लिए—केवल एक ही व्यक्ति है जो—" और वह उस के चेहरे मे खोजने लगा उस एकमात्र व्यक्ति के प्रभाव की कोई छाप—क्या यह जो दीवार की-सी दूरी है, वह आवरण, यह केवल गहरी अनुभूति का परदा नही है जो भोक्ता को बाकी जगत् से अलग कर देता है? जो भी किसी ऐसी अनुभूति से गुजरता है, उस की छाप को एक कवच की तरह पहन लेता है, और वह उसे औरो से अलग कर देती है, वैसे लोगो की एक अलग बिरादरी हो जाती है—रेखा कहेगी 'जीवन की नदी मे अनुभूति के द्वीप'.. . अगर वह थोड़ा-सा कोच कर, कुरेद कर, नीचे उस सतह तक पहुँच सके जहाँ जीव को दर्द होता है, वह तिलमिलाता है.. .

प्रत्यक्ष उस ने कहा, "थैंक यू, रेखा जी; मै भी शायद अब फ़्रेंड के सिवा कुछ नही हो सकता।" वाक्य का दोहरा अर्थ है, यह उसने लक्ष्य किया पर उस मे दोष क्या है, कलाकार तो हमेशा दोहरे अर्थों से खेलता ही रहता है। "पर क्या हम लोग बाहर कही नही चल सकते—वाई० डब्ल्यू० लाउज तो बात करने के लिए नही है।"

"चलिए।"

ज़ीने से नीचे उतर कर चन्द्र ने कहा, "कश्मीरी गेट मे हजरतगज वाली बात नही है—यहाँ टहला नही जा सकता। टहलना चाहे तो आगे कुदसिया बाग की तरफ़—"

रेखा ने निश्चयात्मक स्वर से कहा, "नही।" फिर कहा, "चलिए नयी दिल्ली की तरफ़ चले—"

चन्द्र ने ताँगा ठहराया, दोनों सवार हो गये। काफी देर तक चुपचाप चलते रहे। फिर चन्द्र ने पूछा, "भुवन जी की कोई खबर है? मुझे तो बहुत दिनो से पत्र नही आया—"

"पत्र तो मुझे भी नही आया। पर कश्मीर मे ही है, रिसर्च कर रहे है।"

चन्द्र ने प्रतीक्षा की कि रेखा कुछ और कहे। फिर बोला, "आप से तो भेट हुई होगी?"

"हाँ।" इस बार और भी संक्षिप्त उत्तर था।

चन्द्र थोड़ी देर सोचता रहा, दाँव तोलता रहा। फिर उस ने कहा "गौरा जी—गौरा को आप जानती है न? भुवन की शिष्या और अन्तरंग मित्र—कह रही थी कि आप भी

भुवन जी के साथ गयी है; मुझ से आप के बारे मे पूछ रही थी।" तनिक रुक कर, "अपने मास्टर साहब के लिए बहुत चिन्तित थी।"

चन्द्र के प्रश्न पर रेखा का मन कुछ भटक गया था। पर अन्तिम बात से फिर एकाग्र हो आया। "क्यो ?"

चन्द्रमाधव एक उडती-सी हँसी हँसा। मानो कहता हो, 'उस का चिन्तित होना स्वाभाविक ही है, और ऐसी मामूली बात मे मेरी कोई दिलचस्पी भी नही है।' फिर साभिप्राय बोला, "गौरा भुवन की सब से प्रिय शिष्या है–और अब शिष्या नही, मित्र है।"

"मै जानती हूँ।" भुवन के प्रति भक्ति की अभिव्यक्ति आवश्यक है, कुछ ऐसी भावना से रेखा ने कहा, "भुवन जी ने स्वय मुझे बताया था।"

"अच्छा!" चन्द्र ने किंचित् आश्चर्य दिखाते हुए कहा, "तब तो आप को उन से जरूर मिलना भी चाहिए।"

"पर वह तो मद्रास मे है न ?"

"थी। आजकल यही है। उन की शादी की बात चली थी दो बरस पहले, तब भुवन की सलाह से मद्रास चली गयी थी सगीत सीखने। वहाँ से लौट आयी है।"

"ओ।"

फिर थोडी देर मौन रहा। नयी दिल्ली मे डेविको के नीचे ताँगा रुका, चन्द्र ने कहा, "यहाँ चाय पियेगे, काफी तो दिल्ली की अच्छी नही होती—"

"जो आप चाहे।"

बैठ कर चन्द्र को सहसा याद आया, गौरा की बात से असली बातचीत बीच ही मे रह गयी थी। यो गौरा की बात रेखा को बताना भी कम ज़रूरी नही था, पर सब से ज़रूरी था यह जानना कि रेखा और भुवन के बीच स्थिति क्या है—दोनो कितने गहरे मे है..

"मैने तो सुना था आप नैनीताल गयी है और भुवन कश्मीर, पर गौरा कह रही थी कि आप भी कश्मीर गयी थी—मुझे तो अचम्भा हुआ—"

"हाँ, मै कश्मीर भी गयी थी। नैनीताल पहले गयी थी, लौट कर फिर कश्मीर।" रेखा ने स्थिर भाव से कहा। फिर सहसा एक ऊब की लहर-सी उस के भीतर उमडी: जानना चाहता है तो जान ले न, यह भी अधूरी बात है, एक बार कह ही दी जाय पूरी बात तो यह पैतरेबाजी खत्म हो। उस ने अनमने से ढग से जोड दिया, "डाक्टर भुवन भी नैनीताल गये थे, वह पहले लौट कर कश्मीर गये, मै सीधी चली गयी थी।"

उस के अनमनेपन की ओर लक्ष्य कर के चन्द्र सोचने लगा, यह बात क्या है ? क्या सारी बात ऐसी है कि इस अनमने ढग से कह डाली जाय—या कि बात इतनी बडी है कि अब छिपाव को भी छोड दिया गया है ? ऐसा है तो—अगर भुवन न होता, वह होता, तो वह भी छिपौवल छोड देता—बल्कि इतना भी नही, वह ऐलानिया कहता, वह काम

छोड कर रेखा को ले कर कही चला जाता बर्मा-वर्मा; वह प्रेम क्या जिस के लिए सब-कुछ वारा-न्यारा न कर दिया जाय ? आशिक वह जो सर पै कफन बाँधे फिरे, यह क्या कि आशिकी भी हो रही है, रिसर्च भी, और नौकरी भी चल रही है . .

"कैसा है पहाडो का मौसम ? सुना है वडी भीड है इस साल, ठहरने को भी कही जगह नही मिलती—"

हाँ, तो यह भी आप पूछना चाहते है थके भाव से रेखा ने कहा, "नैनीताल मे तो जगह थी होटलो मे, पर हम लोग नीचे चले गये थे; होटल मे नही ठहरे। और कश्मीर तो मेरा घर ही है।"

"हाँ, ऑफ कोर्स।" कह कर चन्द्र ने कुछ ऐसे भाव से रेखा की ओर देखा, मानो कह रहा हो, देखिए, इस से आगे मै कुछ नही पूछ रहा हूं, टैक्ट का तकाज़ा है; यो जानना चाहना स्वाभाविक होगा आप मानेगी ..

रेखा की विरक्ति सहसा एक शारीरिक थकान बन कर उस की देह पर छा गयी। एक धूमिल उछटती नज़र से उसने डेविको के चायघर के फैलाव को, विशाल गलीचे और भारी परदो को देखा; उफ़ कैसी है यह घुटन—कहाँ है इसमे कोई रन्ध्र जिस मे से धुन्ध का अजगर आ कर सारी झील को छा ले और क्षितिजो को मिला दे ! उसने क्षण भर आँखे बन्द कर ली, उस का हाथ कनपटी तक उठा और उस काल्पनिक लट को सँवारता हुआ कान के पीछे से ग्रीवा के मोड के साथ लौट आया। सहसा उस ने पूछा, "चन्द्र जी, आप का परिवार कहाँ है ?"

चन्द्र के ओठ पतले हो आये, लेकिन निमिष-भर के लिए ही; फिर उस ने तपाक से कहा, "ओ, हाँ, रेखा जी, आप को खबर देना तो भूल ही गया। वे लोग लखनऊ आ रहे है। मेरे पास ही रहेगे।"

"सच ?" रेखा ने सहसा गम्भीर हो कर कहा, "यह बहुत अच्छी बात है चन्द्र जी। आइ होप यू आर हैपी।"

"ह्वट इज़ हैपिनेस, रेखा जी; कुछ और बात करिए, हैपिनेस तो एक कल्पना है—या उस अवस्था का नाम है जिस मे हम अपनी ज़रूरत को अभी जानते नही है। इनसान के लिए हैपिनेस नही है—क्योकि वह लाइलाज जिज्ञासु है। वह जान के रहेगा—और जानेगा तो भोगेगा !"

खडन मे रेखा की रुचि नही थी। फिर भी इतना कहे विना वह न रह सकी : "जिज्ञासु ही हैपिनेस जान सकता है; नही तो जिस ने उसे जाना नही वह भोगेगा क्या ? कोई चीज़ स्थायी नही है, इसी से वह कल्पना-मात्र तो नही हो जाती ?"

"पर स्थायी नही है तो हैपिनेस कैसे है ? जिस के साथ छिन जाने का डर बराबर लगा है, वह प्राप्ति कैसी है ?"

रेखा के भीतर कुछ पुकार उठा, 'वही प्राप्ति है, वही प्राप्ति है।' उस ने धीरे-से

कहा, "जो छिन जा सकता है पर जब है तब सर्वोपरि है, वही आनन्द है।" फिर विषय बदलने के लिए, बिना उत्तर का मौका दिये कहा, "लेकिन गृहस्थ-जीवन मे दूसरे स्तर की बात सोचनी चाहिए न--उस का आधार है स्थायित्व, उडान नही, गृहस्थी की आधार-भूमि पर पैर टेक कर आप घूम भी सकते है--"

"रेखा जी, इस बात को गुस्ताखी न समझा जाय तो कहूँ कि गृहस्थी के मामले मे आप को ऑथारिटी मानने मे सकोच भी हो सकता है।"

"सो तो है।" रेखा ने कहा, फिर मानो उसे तभी ध्यान आया हो कि बात हँसी की है, वह हँस दी।

चन्द्र ने चाय के प्याले की तलछट राखदान मे उडेल कर चायदानी की ओर हाथ बढाते हुए कहा, "आप गौरा जी से मिलने चलेगी ?"

रेखा ने चायदानी सँभालते हुए कहा, "लाइये, मै बना दूँ।" फिर प्रश्न का उत्तर देते हुए, "हाँ, अगर उन्हे बुरा न लगे--"

"वाह,उन्हे क्यो बुरा लगने लगा ? भुवन जिस पर--जिस की इतनी प्रशसा करते रहे है उसे उन की प्रिय शिष्या न देखना चाहे, यह हो ही नही सकता। वैसे बडी अच्छी लडकी है--और बडी सुन्दर। सगीत मे भी रुचि रखती है यह तो आप को मालूम ही है। इटेलिजेट भी है, पर जरा मुँहजोर--"

रेखा ने अनमने-से कहा, "हाँ ?"

गौरा कहा, "आइये, बैठिए, पिता जी अभी आते है--"

यह स्वागत इतना असाधारण था कि चन्द्र सहसा यह भी पूछना भूल गया कि वह मसूरी से कब लौटे। वह बैठा ही था कि गौरा ने भीतर के किवाड तक जा कर पुकारा, "पिता जी, चन्द्रमाधव जी आये है।"

फिर वह आ कर कर्तव्यनिष्ठ लडकी की तरह बैठ गयी और अतिथि का मनोरजन करने लगी।

"आप पहाड नही गये ? दिल्ली मे तो ऐसी गर्मी पड रही है कि बस--"

चन्द्र ने सहसा कहा, "गौरा, मै तुम से मौसम की बात करने नही आया।"

गौरा ने अज्ञान बन कर कहा, "जी ?"

चन्द्र एक बार साहस कर के 'तुम' कह गया था, पर इस 'जी ?' के आगे उस का साहस जवाब दे गया। फिर भी, जैसे कोई ठडे पानी मे गोता लगा ही तो डाले, उस ने कहा, "रेखा जी यहाँ है, आप से मिलने को इच्छुक है।"

गौरा को थोडी देर अचकचाते देख कर उसे बडा सन्तोष हुआ।

गौरा ने खडी होते हुए कहा, "आप के लिए चाय लाऊँ--चाय तो पियेगे न ?" फिर

तनिक रुक कर, "वह जब चाहे आवे—मैं तो यही रहती हूँ—"

अब जा कर चन्द्र ने पूछा, "पिता जी कब आये ? बडी जल्दी लौट आये—"

"नही, फिर जायेंगे, मेरी वजह सें आ गये ।"

"आप भी जायेगी ?"

"शायद—"

"कब ?"

"इसी हफ्ते जाने की सोच रहे है—" भीतर से उत्तर आया, और साथ-साथ गौरा के पिता ने दरवाज़े पर प्रकट होते हुए कहा, "कहो भई, कब आना हुआ ?"

गौरा ने फुर्ती से कहा, "मै चाय लाती हूँ," और भीतर चली गयी ।

* * *

तीन दिन बाद जब रेखा को ले कर चन्द्रमाधव फिर वहाँ गया तब भी गौरा का बर्ताव कुछ ऐसा ही था—चिकना, विनीत, शिकायत से परे, मगर दूर. परस्पर नमस्कार और परिचय के बाद जब तीनो बैठ गये तो एक क्षण का मौन उन पर छा गया। चन्द्र चाहता था कि इन दोनो को मिला देने की अपनी सफलता पर प्रसन्न हो,पर एक अजब सकोच का भाव उस के भीतर भर रहा था—एक अनिश्चय, एक आशका-सी वह चुप-चाप चोर आँखो से कभी रेखा को, कभी गौरा को देख रहा था, ये दोनो बात करने लगे तो कुछ ठीक हो

पर वे दोनो भी चुप थी । रेखा को गौरा ने चन्द्र के पास ही सोफे पर बिठाया था, स्वय दूसरी ओर तख्त के कोने पर सीधी बैठी थी—एक हाथ हल्का-सा तख्त पर टिका हुआ, आँखे नीचे झुकी हुई । उस ने बिल्कुल सफेद धोती पहन रखी थी—बहुत छोटी छोटी सफेद बूटी वाली चिकन की—गहने वह यो भी नही पहनती थी और आज चन्द्र ने लक्ष्य किया कि उस के हाथो पर साधारण एक-एक चूडी और एक अँगूठी भी नही,स्फटिक से घिरी हुई निष्कम्प लौ की तरह वह अपने मे सिमटी बैठी थी । रेखा ने भी सफ़ेद रेशमी साडी पहन रखी थी, जिस अनुपात में रेशम की सफेदी चिकन की अपेक्षा कोमल थी, उसी अनुपात में उस का साँवला वर्ण भी मानो गौरा का धूमिल प्रतिबिम्ब था । गौरा सिमटी हुई और दूर थी, रेखा की आँखो में वह अस्पृश्य खुली दूरी नही थी पर मानो एक मेघ-घिरे आकाश का-सा भाव था....

रेखा ने कहा, "गौरा जी, चन्द्र जी बता रहे थे कि आप दक्षिण से सगीत की विशेष शिक्षा पूरी कर के आयी है ?"

गौरा ने सायास कहा, "जी, दक्षिण से तो अभी आयी हूँ । गयी थी संगीत सीखने ही, पर दो वर्ष में क्या आता है !"

रेखा ने पूछा, "दक्षिण का सगीत तो बिल्कुल अलग है न—मैं कुछ जानती तो नही पर सुना है—"

"हाँ—पर मैंने तो सुना है आप बहुत अच्छा गाती हैं—"

"नही गौरा जी, वह तो—"

चन्द्र ने बात काटते हुए कहा, "हाँ गौरा जी, हम ने बहुत दिन से सुन रखा था, पर उस दिन भुवन के आग्रह से सुनने को न मिल गया होता तो रेखा जी कबूलती थोडे ही कि—"

रेखा सहसा उठ कर गौरा के पास चली आयी। "यहाँ बैठ जाऊँ—यह बीच मे शून्य का एक चौखट रख के आर-पार बात करने का अँग्रेजी तरीका मुझे पसन्द नही है।"

"बैठिए।"

चन्द्र बोला, "इस समय भुवन को भी यहाँ होना चाहिए था—कितना अच्छा होता।" फिर दोनो की ओर देख कर, "गौरा जी, भुवन का कोई पत्र-वत्र आया है इधर ? मुझे तो बहुत दिनो से कोई खबर नही है।"

"नही तो।" गौरा ने बिना किसी की ओर देखे उत्तर दिया। फिर सहसा बोली, "वह लगन वाले आदमी हैं—खोज में लगे है तो और किसी बात की खबर उन्हे थोडे होगी! उन्हें खाने-पीने का भी होश नही रहता जब काम कर रहे हो—"

रेखा ने कहा, "आप तो उन्हें बचपन से जानती है न ?"

"जी, उन्होने मुझे पढाया है—"

चन्द्र ने हँसते हुए कहा, "गुरु वैज्ञानिक, शिष्य सगीतज्ञ—यह अच्छा विरोधाभास है न, रेखा जी ?"

रेखा ने सीधा उत्तर दे कर कहा, "अच्छा गुरु उदार होता है, चन्द्र जी, और उदार बनाता है।"

गौरा खडी हुई। "आप लोगो के लिए चाय लाऊँ—"

रेखा ने कहा, "नही गौरा जी, आप बैठिए—"

"सब तैयार है—"

"तो चलिए, मैं मदद करूँ," कह कर रेखा भी उठ खडी हुई, "मैं आप की रसोई मे आऊँ तो कोई—"

"आप कैसी बात करती हैं, रेखा देवी ?" कह कर गौरा आगे चल पडी, रेखा पीछे-पीछे।

गौरा ने चलते-चलते कहा, "काम वास्तव मे कुछ नही है रेखा देवी, सिर्फ पानी डाल कर ले आना है, मेज लगी है।"

दोनो उस समय चाय का कमरा पार कर रही थी। रेखा ने कहा, "सो तो देख रही हूँ।"

"या—आप पसन्द करे तो बैठक मे ही ले चलूं—"

"नही, यही ठीक है, गौरा जी—"

"आप चाय पसन्द करेगी या काफी ?"

रेखा ने हँस कर कहा, "आप ने ज़रूर यह भी सुना होगा कि मै काफी की पियक्कड हूँ, पर चाय पियूंगी।"

गौरा ने तनिक-सा खिच कर कहा, "भुवन दा ने ही लिखा था कि वह लखनऊ मे बराबर काफी हाउस जाते रहे"—मानो कहना चाहती हो, मैने आप के बारे मे कुछ पूछ-ताछ की हो ऐसा न समझे।

रेखा ने वह खिचाव भाँप लिया। सहसा गौरा के कन्धे पर हाथ रख कर बोली, "बुरा नही मानिएगा, गौरा जी; चन्द्र जी तो जर्नलिस्ट है न, हर बात का प्रचार करना उन का काम है—मेरे काफ़ी पीने का भी—"

गौरा ने कोई उत्तर नही दिया।

चाय रख कर गौरा ने कहा, "आप बैठिए, मै चन्द्रमाधव जी को बुला लाऊँ—"

रेखा ने कहा, "ऐसी क्या जल्दी है, दो मिनट अकेले बैठे रहेगे तो कोई हर्ज नही होगा —बल्कि अकेले रहना तनिक भी सीख सकें तो फायदा ही हो।"

गौरा ने कुछ विस्मय से उस की ओर देखा, फिर बैठ गयी। रेखा कुछ कहना चाहती है शायद, और चन्द्रमाधव की उपस्थिति मे बात कर सकना किसी को कठिन मालूम हो, यह जरा भी अस्वाभाविक नही है।

पर रेखा चुप रही। बल्कि उस ने आँखे बन्द कर के क्षण-भर हथेलियो से चेहरा ढंक लिया। गौरा स्थिर दृष्टि से उसे देखती रही, और इस समय सुविधा पा कर सिर से पैर तक देख गयी। फिर उसकी आँखे रेखा के हाथो पर टिक गयी।

रेखा के हाथ सुन्दर नही कहे जा सकते, पर उसकी उँगलियो मे एक सवेदन-क्षमता थी; और उँगलियो के जोड स्पष्ट ही एक चिन्तनशील स्वभाव के सूचक थे। छिगुनियो की सिरे वाली पोर थोडी-सी भीतर की ओर मुडी हुई थी। एक हाथ की अनामिका पर अँगूठी थी—सफेद धातु, चाँदी या प्लेटिनम ?—जिस मे एक बडा-सा कटहला जडा हुआ था, रेखा के साँवले रग पर वह फबता था। अँगूठी उँगली मे ढीली थी, नगीना एक ओर को खिसक गया था। चिन्तनशील उँगलियो की यही मुश्किल होती है—जोड बडे होते है, अँगूठी चढाने मे दिक्कत होती है और इसलिए ढीली अँगूठी पहननी पडती है. .

सहसा रेखा ने हाथ हटा लिये, आँखे खोली, और पूछा, "गौरा जी, हमारे जर्नलिस्ट साहब हम दोनो को मिलाने को बहुत उत्सुक थे। और अब निस्सन्देह आप सोच रही होगी कि हम लोग जो मिली, सो आखिर क्यो ?"

गौरा ने अपने को सँभालते हुए कहा, "नही, मिलना तो मै भी चाहती थी—"

"और मै भी चाहती थी। और मिलना हुआ, यह बडी खुशी की बात है। पर स्त्रियाँ

जो चाहती हूँ उस के होने के लिए प्रतीक्षा करती हूँ । और--" रेखा रुक गयी, मानो अपने शब्द तौल रही हो, और तय कर रही हो कि बात कही जाय या नही, "और यह भी है कि आप मुझ से--आप का मेरे बारे मे कौतूहल भुवन जी की मारफत ही रहा होगा--हम दोनो के बीच भी कडी वही है, चन्द्र तो नही।"

गौरा चुप रह गयी।

रेखा ने फिर कहा, "डा० भुवन, ही'ज ए वेरी फाइन मैन।"

गौरा ने कहा, "चाय ठंडी हो जायगी, चन्द्र जी को बुला लूँ--"

रेखा ने मुस्करा कर कहा, "आइ'ल टेक द हिंट। लेकिन एक बात कह ही डालूँ--क्योंकि फिर शायद न कह सकूँ--या मौका न मिले। चन्द्र ने आप से क्या मेरे बारे में कुछ कहा है, यह नही पूछूँगी--कहा ही होगा। क्या, वह भी नही पूछूँगी। अपनी ही ओर से कहूँ--मेरे कारण डा० भुवन का अहित, जहाँ तक हो सकेगा, मैं नहीं होने दूँगी। चाहती हूँ कि विश्वास के साथ कह सकूँ कि बिल्कुल नही होने दूँगी, पर भीतर वह निश्चय नही पाती, और झूठा आश्वासन नही देना चाहती--खास कर आप को--"

गौरा ने तनिक उदासीनता चेहरे पर लाते हुए कहा, "यह सब आप मुझे क्यो कहती है, रेखा जी ?"

"क्यो, यह तो नही जानती। पर कह देना चाहती हूँ--भविष्य मे शायद--कभी आप को यह याद करने की ज़रूरत पडे। किसी के निजी जीवन मे--भावना-जगत् में हस्तक्षेप करना मैं कभी नही चाहती, गौरा, मैंने जो-कुछ कहा है, कुछ जानने के लिए नही, केवल अपनी बात कहने के लिए। फिर भी अगर कोई ऐसा स्थल छू गयी हूँ जिस से मुझे दूर रहना चाहिए था, तो--क्षमा चाहती हूँ।"

सहसा खडी हो कर रेखा गौरा के पास चली आयी, दोनो हाथ उस के कन्धे पर रख कर उस ने धीरे से पुकारा, "गौरा!" गौरा ने आँख उठायी, दोनो की आँखे मिली और देर तक मिली रही। फिर रेखा ने धीमे स्वर मे कहा, "कभी हम किसी से मिलते है और तय कर लेते है कि हम अजनबी नही है, पर उस से ज़रूरी नही है कि बात करना सहल ही हो जाय--" वह कुछ रुकी, कुछ अनिश्चित स्वर में उस ने कहा, "है न ?" फिर उस के हाथ धीरे-धीरे खिसकते हुए हट चले, गौरा ने दाहिना हाथ उठा कर उस का हाथ पकड लिया और उसे थामे उठ खडी हुई। आमने-सामने खडे दोनो की आँखे एक बार फिर मिली। फिर रेखा सहसा मुड कर बाहर के कमरे की ओर चली गयी। क्षण-भर बाद एक नज़र मेज़ पर लगी हुई चीज़ो पर दौडाते हुए और उस के द्वारा मानो साधारण के स्तर पर उतरते हुए गौरा ने दो-तीन कदम आगे बढ कर आवाज़ दी, "आइये, चाय तैयार है।"

चाय पीते-पीते चन्द्र को लगा कि वातावरण में कही कुछ परिवर्तन है। लेकिन क्या, यह वह नही जान सका। उसे केवल यह अनुभव हुआ कि कही किसी तरह वह असफल

हुआ है, लेकिन इस असफलता की कुढन ऐसी थी कि वह यह भी नही सोच पा रहा था कि किस बात मे वह असफल हुआ है .

गौरा ने कहा, "रेखा जी, चाय के बाद एक गाना सुनायेंगी ?"

चन्द्र ने कहा, "गौरा जी, पहली ही भेंट मे फर्माइश ! मुझे तो हिम्मत न होती; और फिर रेखा जी—रेखा जी इज़ ए डिफिकल्ट वुमन टु नो ! लेकिन—" और वह रुक कर स्थिर दृष्टि से रेखा की ओर देखता रहा, "लेकिन डिफिकल्ट है इसी लिए शायद पहली बार ही कह देना चाहिए, क्योकि दूसरी बार ही कौन अधिक परिचित हो जायेंगी !"

गौरा ने कहा, "रेखा जी, मेरे कहने का बुरा तो नही मानेंगी ?"

"गौरा, तुम चन्द्र को अभी नही जानती—वह जब नाराज़ होता है तभी कुछ क्लेवर बात कह कर दुनिया से बदला ले लेता है !"

"यानी ? यानी आप यह कहना चाहती है कि असल मे मुझे जानना ही डिफिकल्ट हैं ? गौरा जी से मेरा—गौरा जी, आप इन की बात न मानिएगा—मै तो जो कुछ हूँ एकदम सतह पर हूँ—"

रेखा ने साभिप्राय कहा, "ओ हो, आज तो आप बहुत बडा कनफ़ेशन किये दे रहे है, चन्द्र जी—"

चन्द्र ज़रा-सा अप्रतिभ हुआ, पर तुरन्त पैतरा बदल कर बोला, "हाँ, जो सतह पर है वही सच है, सतह के नीचे कुछ नही है, सिर्फ़ धोखा। जो कहते है कि यथार्थ कुछ नही है, जो गोचर है सब माया है, वे ही तो साबित करते है कि माया ही यथार्थ है, सतह ही वास्तविकता है—क्योकि वह कम-से-कम गोचर तो है, उस के पीछे तो कुछ है ही नही !"

"ओफ, चन्द्र जी, जिन के तर्क को आप इस रूप मे पेश कर रहे हैं वे सुन ले तो—"

"तो आत्म-हत्या कर लें, यही न ? लेकिन उस मे क्या बुराई है ? आख़िर एक भ्रम ही तो नष्ट होगा—माया का एक पुंज ? और आत्मा तो अनश्वर है—तब आत्म-हत्या के माने क्या ? लेकिन रेखा जी, आप गाना सुनायें ही, तो वही सुनाये जो लखनऊ में—"

"कौन-सा ?"

"वही शरद की रात के बारे में कुछ, उस समय पूरा सुन नही पाये थे—"

रेखा ने गौरा की ओर उन्मुख हो कर पूछा, "तुम बँगला समझ लेती हो ?"

गौरा ने कहा, "थोडी बहुत। पढ कर तो समझ लेती हूँ, सुन कर थोड़ी अडचन होती है ।"

"तुम नही गाती ?"

"मै ! मेरी आवाज़ तो—"

"बहुत मीठी है। अच्छा, संगत करोगी तो गा दूंगी—"

"वाह वा !" चन्द्र ने समर्थन किया, "बहुत अच्छा आइडिया है। आप का सगीत भी

कभी नही सुना गौरा जी !" कह चुकने के बाद सहसा उसे ध्यान आया, गौरा को रेखा तुम कह कर सम्बोधन कर रही है, और गौरा इस पर चौंकी नही, मानो यह स्वाभाविक है, उस ने सहसा चौकन्ने हो कर दोनो की ओर देखा—यह कब, कैसे हो गया ? क्या दोनो ने सहज मान लिया कि रेखा बडी और गौरा छोटी है और इस लिए—या कि दोनो ने वैसा परिचय बना लिया—लेकिन कब ? कब ? मिस्टरी, दाई नेम इज वूमन मध्य युग के सन्त ठीक मानते थे—हर औरत चुडैल होती है, झाडू पर सवार जादूगरनी, जो आदमी के किये-कराये पर झाडू फेर देती है उस ने फिर कहा, "हाँ, आप दोनो गाइये-बजाइये, मै अकेला सुनूंगा, एक दोहरे मिरेकल का एकमात्र साक्षी—"

गौरा ने कहा, "नही रेखा जी, सगत नही करूँगी, आप का गान एकाग्र हो कर सुनना चाहूँगी, सगत करने बैठूंगी तो ध्यान बँट जायगा। आप का आग्रह हो तो पीछे सुना दूंगी। पर मुझे कुछ आता नही ।"

रेखा ने कहा, "ऐसे ही सही ।" फिर चन्द्र से, "लेकिन तुम साक्षी क्यो होगे—तुम्हें भी तो मिरेकल में भाग लेना चाहिए ?"

"मै ? लेकिन मुझे न गाना आता है, न वजाना—"

"तो तुम नाचना—"

"क्यो, वह आना जरूरी नही है शायद ?" कुछ रुक फिर चन्द्र स्वय ही बोला, "ठीक है, पुरुष हमेशा से नाचता आया है, स्त्रियाँ नचाती आयी है ।"

"और बिना सीखे नाचता आया है, है न ?" रेखा ने और चिढाया।

गौरा ने भी उसी स्पिरिट में कहा, "हमेशा से नाचता आया है, तब यह हाल है, रेखा जी, बन्दर भी शायद तीन महीने में सीख जाता है—"

चन्द्र ने तीखी दृष्टि से गौरा की ओर देखा, मानो कह रहा हो 'अच्छा, तुम्हे भी पख लगे ?' फिर बोला, "जी हाँ, पर फर्क जानवर-जानवर का नही, मदारी-मदारी का है। बन्दर का मदारी और उस का बन्दर जो खेल खेलते है, उस के नियम सीधे होते है, दोनो पक्षो का एक ही नियम होता है और दोनो उसे जानते है। पर हम भला सोचिए, हम ब्रिज के डमी बन कर अपने सब पत्ते बिछा दे और आप तिपत्ती खेलने लगे तो—"

अब की रेखा ने टोका, "लेकिन है आप की कल्पना में पुरुष भी जुआरी, स्त्री भी; क्यो, नही ?

"और नही तो क्या। जीवन जुआ तो है ही, वडा भारी जुआ, एडलेस गैम्बलिग मैच ?"

गौरा के मुंह पर कोई तीखा जवाब मचल रहा है यह दीख रहा था। रेखा ने कहा, "तुम्हारी बात मे कुछ तत्त्व हो सकता है, चन्द्र, लेकिन क्या, इस से शायद तुम्ही को अचम्भा हो ।"

"क्या ?"

"यह कि दाँव दोनो खेलते हैं, लेकिन हम अपना जीवन लगाती हैं और आप—हमारा।"

गौरा कुछ शान्त दीखी, वह जो कहना चाहती थी वह भी मानो इस उत्तर मे कह दिया गया।

* * *

चाय से उठ कर तीनो फिर बैठक मे आ गये। कमरे मे कुछ-कुछ अँधेरा था, क्योंकि बाहर बदली घिरने लगी थी, बडी हुई उमस मे आशा हो रही थी कि शायद वर्षा हो—उस मौसम की पहली वर्षा कभी-कभी बादल गरज जाते थे।

चन्द्र ने कहा, "अच्छा रेखा जी, अब गाना हो जाय।"

गौरा ने उठ कर छोटी मेज पर एक चाँदी का डिब्बा रेखा की ओर बढाते हुए कहा, "लीजिए—"

गौरा के बढे हुए हाथो मे एक में डिब्बा, दूसरे मे उसका ढक्कन था, लौंग-इलायची उठाते हुए रेखा की दृष्टि उन हाथो पर टिकी थी। सहसा उस ने कहा, "बहुत सुन्दर हैं तुम्हारे हाथ—तुम चूडी-ऊडी नही पहनती?"

गौरा ने कुछ झिझकते हुए हाथ थोडे-से पीछे खीच लिये, कुछ बोली नही।

"अच्छा मैं चूडियाँ लाऊँगी—गौरा, मे आइ?"

गौरा और भी सकुचित हो गयी, थोडा रुक कर बोली, "थैंक यू, मगर काँच की हो, और नही—"

रेखा ने तनिक मुस्करा कर कहा, "तुम वर्किंग वुमन की सीमाओ की बात सोच रही हो! खैर, तुम्हारी शर्त मान लेती हूँ, पर इन हाथो पर—सचमुच बहुत सुन्दर हाथ है, गौरा, ये दूसरे आभूषण माँगते हैं।"

गौरा ने सकुचाते हुए डिब्बा चन्द्रमाधव के आगे रख दिया, हाथ पीछे खीच लिये मानो छिपा लेगी।

बादल की गडगडाहट जोर से हुई। चन्द्रमाधव ने कहा, "सुनाइये, बादल का ही कोई गीत सुनाइये। आप की बँगला मे तो सुना है वर्षा के गीत लाखो हैं।'

पहले रेखा ने यही सोचा था। पर गौरा के हाथो की बात से उस का मन मानो किसी दूसरी तरफ चला गया था। वह अनमनी-सी उन्ही की ओर देखती जा रही थी।

गौरा ने कहा, "रेखा जी, जो आप की इच्छा हो गाइये—"

रेखा ने जैसे कुछ चौंक कर कहा, "ऊ-हाँ," और गुनगुनाने लगी। गुनगुनाना अनिश्चित-सा था, पर सहसा मानो निश्चय कर के उस ने स्पष्ट स्वर मे गाया.

नोमाय

साजाबो यतने कुसुमे रतने

केयूरे कंकणे कुंकुमे चन्दने
साजावो
किंशके रंगणे ।
तोमाय .

गान दोनो श्रोताओ के लिए कुछ अप्रत्याशित था, चन्द्र ने भवे हल्की-सी उठायी, गौरा सीधी हो कर बैठ गयी। रेखा गाती रही

कुन्तले वेष्टिवो स्वर्ण-जालिका
कण्ठे दुलाइवो मुक्ता-मालिका
सीमान्ते सिन्दूर अरुण बिन्दुर
चरण रंजिबो अलक्त-अकणे
किंशुके रंगणे तोमाये ।
साजावो *

गान समाप्त होने पर थोडी देर मौन रहा। फिर गौरा ने पूछा, "बहुत अच्छा गाती है आप। यह रवीन्द्र-सगीत है न ?"

"हाँ ।"

फिर एक विकल्प के बाद चन्द्र ने कहा, "गौरा जी, आप—?"

गौरा ने रेखा की ओर उन्मुख हो कर पूछा, "मै सिर्फ तबला सुनाऊँ आप को—अच्छा लगेगा ?" फिर चन्द्र की ओर मुड कर, "और कोशिश करूँगी बादल से सुर मिलाने की—"

"हाँ, हाँ, जरूर।" चन्द्र ने उत्साह से कहा।

गौरा भीतर जा कर जोडी उठा लायी, फर्श पर बैठ गयी। तबलो को ठोकने-खीचने लगी तो चन्द्र ने रेखा से पूछा, "आप ने वर्षा का गीत क्यो न सुनाया ?"

रेखा ने उत्तर न दिया। कमरे मे प्रकाश और भी धुँधला हो गया था, चन्द्र उस के चेहरे के भाव को ठीक-ठीक देख भी न सकता था ।

गौरा ने कहा, "मै धम्मार मे एक परण सुनाती हूँ।"

ताल वाद्य सब से प्राचीन वाद्य है, नृतत्त्वविद् इस का कारण यह बतायेगे कि मानव बुद्धि ने पहले धमाके की ही सगीतात्मक सम्भावनाओ को पहचाना—या कि ताली से आगे बढने पर किसी न किसी चीज को पीटना ही ताल देने का सरल माध्यम है। ऐतिहासिक

*तुम्हें यन्तपूर्व सजाऊगा कुसुमो-रत्नो से, केयूर-कंकण से, कुंकुम-चन्दन से, किंशुक और रंगन के फूलो से। कुन्तलो में स्वर्ण-जालिका पहनाऊंगा, कण्ठ में मुक्ता-मालिका झुलाऊगा; सीमन्त में अरुण सिन्दुर-बिन्दु, चरणो में अलक्तक—तुम्हें सजाऊँगा . .
—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

दृष्टि से वह ठीक ही होगा। पर सगीतात्मक दृष्टि से ऐसे वाद्यो का महत्त्व यह है कि मौलिक प्राकृतिक शक्तियो की, प्रकृति के क्रीडा-कल्लोल की, सम-स्वरता वे ही सब से अच्छी तरह कर सकते हैं—हवा, वादल, आँधी, पानी, बिजली, लहर, दावानल, जल-प्रपात ढोल-मादल-मृदग-तबले की थाप मानव को जिस सहज भाव से इन के निकट ले जा सकती है, इन के साथ एकतानता स्थापित कर सकती है, दूसरे वाद्य नही कर सकते .

बादल की गडगडाहट मे वर्षा का सरसराता स्वर भी मिल गया था। पर किसी को उस का ध्यान नही था। तबले का स्वर कभी धीमा और तरल, कभी चौडा और परुष, कभी हलका और दौडता हुआ, धुँधलके मे भर गया था। रेखा एकटक गौरा के हाथो को देख रही थी, पर हाथो की आकृति अव स्पष्ट नही दीखती थी, तवले के पड्डे और स्याही के वृत्तो पर उन की छाया-सी ही पहचानी जाती थी। रेखा दबे-पाँव उठी, मैंटल पर से लैम्प उठा कर उस ने गौरा के पास जमीन पर रखा, फिर उस का छादन तिरछा कर के बटन दबा कर उसे जला दिया—ऐसे कि प्रकाश तबलो पर और कलाई तक गौरा के हाथो पर पडे। आलोक के लम्बोतरे घेरे मे गलीचे का नीला-भूरा पैटर्न दीखने लगा।

रेखा फिर मुग्ध-सी गौरा की थिरकती उँगलियो को देखती रही, चन्द्र छत के पखे की ओर टकटकी लगाये सुन रहा था।

सहसा एक थाप के साथ सन्नाटा हो गया जिस मे तवले का स्वर ही थोडी देर गूंजता रहा, फिर वह बारिश के स्वर मे लय हो गया। गौरा ने एक लम्बी साँस ली।

रेखा बढ कर नीचे गौरा के पास बैठ गयी, अपने दोनो हाथ उस ने तबलो पर टिके हुए गौरा के हाथो पर रख दिये। कुछ बोली नही। फिर सहसा उस ने हाथ उठा कर अपनी अनामिका से अँगूठी उतारी और नरम हाथ से गौरा का हाथ अपनी ओर खीचते हुए उस की उँगली में पहना दी।

गौरा ने अचकचा कर कहा, "रेखा जी—यह क्या—नही रेखा जी, यह नही—" और घबडाये-से हाथो से अँगूठी उतारने लगी।

"रहने दो, गौरा, कटहला शायद तुम्हारे हाथ के लायक नही है, पर यह मेरी माँ की अँगूठी है—"

"तब तो और भी नही रेखा जी, मैं आप की दी हुई चीज वापस नही कर रही—अवज्ञा न समझें—पर आप की माँ की अँगूठी मैं कैसे ले सकती हूँ?" अँगूठी उतार कर वह रेखा का हाथ खोजने लगी।

रेखा ने कहा, "गौरा, मैं—"

"नही, नही, नही!" गौरा अँगूठी फिर रेखा को पहनाने का यत्न करती हुई बोली, "आप मुझे चूड़ियाँ दे दीजिएगा, मैं पहनूंगी, पर यह—"

"चूड़ियों की बात तो अलग है। वह तो मेरी बंगालिन आँखो का खटका था कि तुम्हारी कलाइयाँ सूनी हैं, पर यह तो मेरा ट्रिब्यूट—"

"मुझे शर्मिन्दा मत कीजिए रेखा जी ! अच्छा, आप मेरी ओर से ही रख छोडिए—फिर कभी दे दीजिएगा—या मैं माँग लूँगी—"

"फिर कब ? यह टालने की बात है—"

"नही सच, कभी जब—आप की माँ ने आप को यह कब दी थी ?"

रेखा का हाथ सहसा शिथिल पड गया। अँगूठी उस की माँ ने उसे सगाई पर दी थी। वह कुछ बोल न सकी, गौरा ने अँगूठी उसे पहना दी, और क्षण भर उस का हाथ अपने हाथ मे लिये रही। फिर सहसा उस की शिथिलता और उस के चेहरे का अनुपस्थित भाव देख कर बोली, "आप नाराज तो नही हो गयी रेखा जी ? यू आर वेरी काइड—लेकिन यह तो—"

रेखा ने सँभल कर कहा, "ठीक कहती हो, गौरा।" धीरे-धीरे हाथ खीच कर वह फिर अपनी जगह जा बैठी। गौरा भी उठी, पहले दीवार की ओर बढी कि स्विच दबा कर कमरे की बत्तियाँ जला दे, पर अध-बीच मे रुक कर उस ने हाथ खीच लिया, झुक कर तबले उठाये और अन्दर चली गयी।

रेखा ने उस की प्रत्येक भगिमा को लक्ष्य किया था। उसी का लिहाज कर के गौरा बत्तियाँ नही जला गयी। उस ने ज़ोर से अपने को हिलाया, चन्द्र की ओर देखा, सायास मुस्करायी और बोली, "अब मेघ-सगीत सुनाऊँ ?"

चन्द्र उस की ओर तकता रहा। सारी घटना उस की कुछ समझ मे नही आयी थी, वह बैठा-बैठा सोच रहा था कि औरत नाम का जन्तु भी न जाने किस ढब का है, सहसा उत्तर भी न दे सका। रेखा ने आगे बढ कर स्वय बत्तियाँ जला दी, फर्श पर रखा लैम्प बुझा दिया, और गा उठी

मन मोर मेघेर संगीते,
उडे चल दिग्दिगन्तेर पाने श्रावण वर्षण संगीते
उड़े चल, उडे चल, उड़े चल !*

गौरा लौट कर आयी, तो रेखा को कमरे के मध्य मे खडी गाती देख कर किवाड के सहारे ही ठिठकी खडी रही।

*　　　　*　　　　*

रेखा को उस के ठिकाने पर पहुँचा कर चन्द्रमाधव जब वापस मुडा, तब उस के चहरे पर जो परिवर्तन हुआ वह इतना द्रुत था कि उस की रेखाओ को मानो चलते देखा जा

*** मेरे मन, मेघ के संगीत के साथ उड़ चल दिग्दिगन्त की खोज में, श्रावण की वर्षा के संगीत के साथ उड़ चल, उड़ चल !**

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सकता था—सलवटो का चल कर नयी जगह बैठना, नयी झुर्रियो का उभडना, आँखो पर एक झिल्ली-सी का छा जाना रेखा ने कहा कि पहुचाने की जरूरत नही है, वह चली जायेगी, पर उस ने कहा था कि उसे भी कश्मीरी गेट ही जाना है—और बिलकुल झूठ भी नही कहा था, क्योकि जिस काम से उसे जाना था वह कश्मीरी गेट मे भी हो सकता था .. सीढियो के नीचे ही रेखा ने कहा, "चन्द्र, तुम्हारा बहुत-बहुत धन्यवाद—गौरा से मिल कर मुझे वडी खुशी हुई—" फ़िर वह तनिक रुकी, मानो और कुछ भी कहने वाली हो, पर फिर सहसा, "अच्छा नमस्कार !" कह कर मुडी और सीढियाँ चढ गयी। चन्द्र बाहर की ओर को मुड गया। हल्की-सी बारिश अब भी हो रही थी, पर चन्द्र ने उस की परवाह न की।

सडक के पार, कालेज की वगल मे एक होटल का बोर्ड था 'होटल एड बार'। क्या वही ? चन्द्र थकी चाल से उधर बढा, पर अध-बीच में तिकोने पार्क के सिरे पर रुक गया, फिर दाहिने मुड कर कुछ आगे बढा और फिर निकलसन रोड की ओर मुड गया। कोई दो फलाँग जा कर एक और जगह थी। यहाँ वह बहुत दिनो से नही आया था, पर पहले अक्सर आया करता था

पहले अन्दर कुरसी पर बैठते हुए उसे याद आया, पीते लोग उन दिनो भी थे ही, पर उस का पीने आना मानो उस के लिए बडी असाधारण घटना थी, उस के लिए ही नही, यो भी और जब एक वार वह हेमेन्द्र के साथ आया था—हेमेन्द्र और उस के मित्र के साथ, और मित्र अनभ्यस्त मात्रा मे पी जाने के कारण धुत्त हो गया था और दोनो उसे उठा कर ले गये थे हेमेन्द्र था सो था, पर था जिन्दादिल आदमी, वैसे हमप्याला कहाँ मिलते हैं उस ने पुकारा, "वेयरा ?"

वेयरा ने आ कर सलाम किया। फिर जरा ध्यान से देख कर सहसा दुबारा सलाम किया, किंचित् मुस्कराहट के साथ। तो यह उसे पहचानता है चन्द्र को अच्छा लगा। उस ने पूछा, "बियर है ? कौन-सी ?" पर वेयरा उत्तर दे इस से पहले ही फिर कहा, "अच्छा नही, ह्विस्की ले आओ।"

"कौन सी, सा'ब—"

"अच्छा सोलन ले आओ। वडा पेग—डवल।"

वेयरा चला गया। चन्द्रमाधव ने सिगरेट जलायी और कुरसी मे आराम से पीठ टेक कर धुआँ उडाने लगा।

हेमेन्द्र कहाँ होगा हेमेन्द्र अव ? चन्द्र ने कोशिश की, रेखा और हेमेन्द्र की साथ कल्पना करे, पर उस मे किसी तरह सफलता नहीं मिली, हेमेन्द्र की शवीह वह किसी तरह सामने लाता तो रेखा की वजाय गौरा आ जाती, फिर वह सकल्प-पूर्वक उसे हटा कर रेखा को सामने लाता तो हेमेन्द्र की वजाय भुवन सामने आ जाता . हार कर उस ने सिगरेट मुँह मे निकाल कर उठ कर एक ओर को थूका, फिर बैठ गया। वेयरा

ह्विस्की ले आया, ट्रे में सोडा भी था पर चन्द्र ने ग्लास उठा कर इशारे से सोडा-पानी सब मना किया और उठा कर दो-तीन घूँट ह्विस्की के ही पी डाले। फिर उसने ज़ोर लगाना छोड दिया . न सही हेमेन्द्र, वह जो आवेगा उसी को देखेगा—गौरा सही, रेखा सही, उस की अपनी पत्नी सही

और यह मानव मन की प्रतिकूलता ही है कि उस के मानस-पटल पर रह-रह कर दो आकृतियाँ खिचने लगी—कभी उस की पत्नी की, कभी हेमेन्द्र की

उस ने एकदम से उठा कर गिलास खाली कर दिया। आकृतियाँ कुछ फीकी हो गयी, मिट गयी। हाँ, यह ठीक है। आकृतियो की कोई जरूरत नही है। वह सोच रहा है, उतना ही काफी है। देखना तो वह नही चाहता किसी को पर क्या सोच रहा है ? हाँ, वह कुछ जरूरी बात सोच रहा था, कुछ काम उसे करना है

उस ने फिर पुकारा, "बेयरा।"

दूसरे डवल के साथ उस ने सोडा भी लिया। फिर बेयरा से लिखने का कागज सामने रख कर वह उस की चिकनी सफेद सतह को देखता हुआ घूँट-घूँट ह्विस्की पीता रहा, थोडी देर वाद उस ने जेव से कलम निकाल कर पत्र लिखना शुरू किया—हेमेन्द्र को।

लेकिन सम्वोधन लिख कर ही वह रुक गया। क्या लिखे, कैसे लिखे ? इतने वर्षो मे कभी तो उस ने हेमेन्द्र को कुछ लिखा नही उस ने सिगरेट सुलगा कर लम्बा कश लिया, धुएँ के छल्ले वनाने के लिए ठोडी ऊँची उठा कर मुँह गोल करना चाहा पर ओठ जैसे अवश हो रहे थे, मुँह के आसपास की पेशियाँ उस का आदेश नही मान रही थी और ऊपर के ओठ के सिरे पर एक अजीव फडकन होने लगी थी जिसे वह किमी तरह नही रोक पा रहा था।

हेमेन्द्र को क्या उस की याद होगी ? उस मलय स्त्री के आलिंगनो मे वह सव भूल गया होगा पर स्त्रियाँ तो हेमेन्द्र को अच्छी नही लगती थी—वह स्त्री क्या उसे छोड न गयी होगी ? वह तो एग्लो-मलय थी न—उस के और भी प्रेमी जरूर रहे होगे

न, हेमेन्द्र को उस की याद विलकुल न होगी। क्या चन्द्रमाधव और क्या—कोई भी

पर चन्द्रमाधव ही क्यो ? नाम से लिखना क्या जरूरी है ? वल्कि वगैर नाम के पत्र लिखने से शायद उसका महत्त्व वढ जाय—क्योकि किसी नाम के साथ हेमेन्द्र के जो पूर्व-ग्रह होगे उन से बचाव हो जायगा

वह जल्दी-जल्दी लिखने लगा। समाप्त कर के उस ने मानो अपने को ही सम्बोधन कर के कहा, "वाह, मेरे दोस्त, जर्नलिस्ट चन्द्र, यू'र ए ग्रेट मैन।"

सहसा उस ने जाना, बारिश वडे जोर से होने लगी है। उस ने पैड में से चिट्ठी के पन्ने अलग कर के सफाई से तह किये और भीतर की जेव में रख लिये, फिर वेयरे को बुला कर खाने का आर्डर दे दिया।

डैम ऑल विमेन नही, सब को नही, केवल उन्हे जिन्हें तबीयत माँगती है, तबीयत यानी वाछा की एक गरम लपलपाती जीभ . रॉटन मिडल क्लास विमेन—दबी वासनाओ की पुतली, मक्कार, बीमार, मर्दखोर औरते——मर्द के खिलाफ सब एक, जैसे फन्दे फैलाये ठगो का गिरोह ठीक कहते है कम्युनिस्ट, इस भद्रवर्ग को मटियामेट किये विना स्वस्थ सामाजिक सम्बन्ध हो ही नही सकते .

* * *

अपने जीवन मे पहली बार गौरा ने एक पत्र लिख कर फाडा; लगभग वही दुबारा लिखा और दुबारा फाड दिया। तीसरी बार उस ने केवल तीन पक्तियो का पत्र लिखा, उसे सामने रख कर वहुत देर तक देखती रही। फिर उस ने धीरे-धीरे उसे भी चार टुकडे कर के नीचे गिरा दिया। मेज पर से लिखाई का सामान इधर-उधर ठेल कर उस पर वाँहे रख उन पर सिर टेक कर बैठ गयी।

काफी देर वाद उस ने सिर उठा कर नीचे पड़े कागज के टुकडो की ओर देखा, पंखे की हवा मे दो-एक टुकडे फडफडा रहे थे, एक पर लिखे हुए दो शब्द कभी दीख जाते, कभी छिप जाते "मेरे भुवन दा" गौरा शिथिल भाव से उठी, टुकडो को समेट कर छोटी-छोटी चिन्दियाँ कर उस ने टोकरी मे डाल दी, फिर कमरे में टहलने लगी।

कुछ देर वाद किसी ने दरवाजे पर हलके हाथ से दस्तक दी। गौरा ने किवाड खोले, एक चपरासी ने एक पैकेट उसे दिया और कहा, "मेम सा'ब ने भेजा है वाई० डब्लू०से—"

गौरा ने ले लिया, कहा, "अच्छा। हमारा सलाम कह देना।" दरवाजा फिर वन्द कर के उसने पैकेट खोला . हलके रगो की काँच की दो दर्जन चूडियाँ थी।

गौरा स्थिर दृष्टि से उन्हे देखती रही। सुन्दर चूडियाँ थी। थोडी देर बाद गौरा ने उन्हे मेज पर रख दिया और फिर टहलने लगी। टहलते-टहलते वह रुकी, दो चूडियाँ उठा कर उस ने वाये हाथ मे पहन ली, वाकी फिर पैकेट मे लपेट दी।

थोडी देर मे पिता वाहर से आये तो गौरा ने कहा, "पापा, मसूरी वापस कव चलेगे ?"

"अव तो एक वारिश हो गयी—अव—"

"नही, चलिए—आज ही चलिए—"

"अच्छा, तुम्हारी माँ तो खुश ही होगी—सामान ठीक कर लो—मेरा तो ठीक ही है, तुम्हारे ही सामान की वात है।"

* * *

रेखा ने भी भुवन को एक पत्र लिखा पर उसे फाड़ फेकने की वजाय अधूरा छोड दिया, और निश्चय किया कि वह उसे भेजेगी नही। उसे सहसा लगा कि पत्र में लिखने को

कुछ नही है क्यो कि वहुत अधिक कुछ है, अगर वह सब वह कहने वैठ ही जायगी, तो फिर रुक नही सकेगी, और उधर भुवन का काम असम्भव हो जायगा पत्र मे जान-बूझ कर उस ने अपनी बाते न कह कर इधर-उधर की कहना आरम्भ किया था, गौरा से भेट की बात लिखने लगी थी पर उसी के अध-बीच मे रुक गयी थी। नही, गौरा की वात वह भुवन को नही लिखेगी। भुवन का मन वह नही जानती, लेकिन गौरा का भुवन गौरा का मन जानता है कि नही, यह भी वह नही जानती पर जहाँ भी गहरा कुछ, मूल्यवान् कुछ, आलोकमय कुछ हो, वहाँ दबे-पाँव ही जाना चाहिए, वह कही हस्तक्षेप नही करना चाहती, कुछ विगाडना नही चाहती नदी मे द्वीप तिरते है टिमटिमाते हुए, उन्हे बहने दो अपनी नियति की ओर, अपनी निष्पत्ति की ओर, नदी के पानी को वह आलाडित नही करेगी। वह केवल अपना मन जानती है, अपना समर्पित विह्वल, एकोन्मुख, आहत मन उसे वह भुवन तक प्रेपित भी कर सकती है, पर नही—भुवन से उस ने कहा था, वह अपने स्वस्थ और स्वाधीन पहलू से ही उसे प्यार करेगी, और गौरा से उस ने कहा है पर यह कैसे सम्भव है कि एक साथ ही समूचे व्यक्तित्व से भी प्यार किया जाय और उस के केवल एक अग से भी ? वह सब की सब समर्पित है, स्वस्थ भी और आहत भी—बल्कि समर्पण मे ही तो वह स्वस्थ है, अविकल, है, बन्धन-मुक्त है भुवन, भुवन, मेरे भुवन, मेरे मालिक

वह घूमन जायेगी। जमना की रेती मे—जहाँ बैठ कर भुवन न उस का बालू का घर वनाया था, वारिश मे रेत जम गयी होगी, वहाँ वैठ कर वह साँझ घिरती देखेगी दिल्ली की साँझ तुलियन की नही है, पर तारे वही होगे, उन्हे देखते वह अपने को मिटा दे सकेगी, उन की टिमटिमाहट मे वह सिहरन पा सकेगी जो भुवन का आत्म-विस्मृत स्पर्श रेखा सहसा सिहर गयी, कुरसी पर उसने सिर पीछे टेक दिया, आँखे बन्द कर ली, शरीर को छोड दिया। ऐसे ही भुवन ने उसे पहले देखा था लखनऊ मे, क्यो नही वह आगे वढ कर उस की पलको और उठे हुए ओठो को छू सकता—क्यो वह दिल्ली में है, छिप कर 'मेन ओनली' पढने वाली स्त्रियो के इस बोर्डिंग में, भीड-भडक्के की इस दिल्ली मे, चन्द्रमाधव की दिल्ली में और—और हेमेन्द्र की दिल्ली मे

रेखा उठ गयी—उठ कर लाउज मे जा वैठी, दैनिक अखवार उठाये और 'वाटेड' के कालम देखने लगी।

* * *

चन्द्रमाधव अगर देख सकता कि मलय मे उस समय क्या स्थिति है, और हेमेन्द्र क्या सोच रहा है या कर रहा है, तो कदाचित् पत्र लिखने की वात उस के मन मे न उठती। या क्या जाने फिर भी उठती बल्कि उस में लिखने के लिए और भी बाते उसे सूझती, क्योकि रेखा के प्रति एक सर्वथा निर्बुद्धि आक्रोश उस के भीतर उमडता आ रहा था।

यो इसे वह स्वय देख रहा हो या स्वीकार कर रहा हो, ऐसा नही था, उस के सामने वह स्त्री जाति के प्रति एक घृणा या प्रतिहिंसा के रूप मे ही आया था, पर भीतर-ही भीतर था वह केन्द्रित और एकोन्मुख या अधिक-से-अधिक यह कहा जा सकता है कि उसके विखरे हुए झाग भुवन पर भी आ पडते थे—पर भुवन पर उस के द्वेप का उसे बोध था, इस लिए उसे इसी का प्रक्षेपण नही माना जा सकता .

मलय मे तनाव क्रमश वढ रहा था, और हेमेन्द्र की अग्रेज कम्पनी ने उधर अपना काम समेटना आरम्भ कर दिया था, हेमेन्द्र वदली पर उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका मे कही जा रहा था, जहाँ कम्पनी का कारवार फैला था, मलय की वात और थी, पर वहाँ के सर्वथा गोरे समाज मे रह सकने के लिए स्थिति मे परिवर्तन आवश्यक था—जिस समय चन्द्र ने हेमेन्द्र को पत्र लिखा उस समय हेमेन्द्र दिल्ली मे किसी वकील को लिखे हुए अपने पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था, जिस मे तलाक की व्यवस्था के सम्वन्ध मे पूछा गया था, ताकि वह अफ्रीका जाय तो अपनी विवाहिता पत्नी को साथ ले जा सके। हेमेन्द्र ने यह भी लिखा था कि आवश्यक होने पर वह भारत भी आ सकता है—यदि उस से जल्दी निपटारे की कोई सूरत न निकल आये ।

जिस दिन उस ने रेखा और गौरा की भेट करायी थी, उस के दूसरे दिन सवेरे चद्र फीका मुँह और झल्लायी हुई तवीयत ले कर उठा, बडी अनिच्छापूर्वक मुँह-हाथ धो कर चाय पीने वैठा तो उवकाई आने लगी, थोडा लिवर साल्ट खा कर वह फिर सो गया। तीसरे पहर उठ कर उस ने हजामत वनायी, नहाया, उस से तवीयत कुछ सुधरी पर 'मूड' वैसा ही चिडचिडा और हिन्त्र वना रहा। शाम को सिनेमा देखने से भी कोई फर्क नही हुआ, दूसरे दिन वही हालत रही। तीसरे दिन शाम को उस ने तय किया कि गौरा से मिलने जायेगा, शायद उसे घूमने ले जायेगा या उस से सगीत सुनेगा—तवला नही, सितार या वेला या कुछ और। पर वहाँ पहुँच कर देखा ताला वन्द है, नौकर ने वताया कि गौरा पिता के साथ मसूरी चली गयी है। चन्द्र का वह जिघांसु मूड फिर लौट आया, कुछ वियर पीने का सकल्प कर के वह कनाट प्लेस की ओर चल पडा साँझ को वह आवे मन मे रेखा को देखने पहुँचा, वहाँ भी जव मालूम हुआ कि रेखा नही है तव उसे तसल्ली ही हुई। रात को फिर वह कनाट प्लेस पहुँच गया, भटकते हुए उसे दो-तीन पत्रकार वन्धु मिल गये और उन के साथ वह फिर पीने वैठ गया। तीन दिन वाद रेखा से मिले विना ही वह लखनऊ लौट गया। स्टेशन पर उसे छोडने पत्रकार विरादरी के चार-छ आदमी गये थे, एक ने फोटो भी ले लिया, उसे यह सव अच्छा लगा, गाडी में वैठा तो दिल्ली के अनुभवों का कसैला स्वाद उस के मुँह मे नही था, और यह भी वह भूल गया था कि लखनऊ मे, जहाँ वह जा रहा है, वहाँ उस की पत्नी और वच्चे या तो आ गये होंगे या आने वाले होंगे ।

अवध की शामे मशहूर हं, लेकिन हज़रतगज मे शाम मानो होती नहीं, दिन ढलता है तो रात होती है। या शाम अगर होती है तो अवध की नही होती—कहीं की भी नही होती, क्योकि उस मे देश का, प्रकृति का, कोई स्थान नही होता, वह इनसान की बनायी हुई होती है ' रगीन बत्तियाँ, चमकीले झीने कपडे,प्लास्टिक के थैली-बटुए, किरमिची ओठ, कमान-सी मूछो पर तिरछे टिके हुए और ऊपर से रिकाबी की तरह चपटे फेल्ट हैट और राह चलते आदमी जिन के सामने बौने लगने लगें, ऐसे बडे-बडे सिनेमाई पोस्टरो वाले चेहरे—कितना छोटा यथार्थ मानव, कितने बडे-बडे सिनेमाई हीरो—अगर लोग सिनेमा के छाया-रूपो के सुख-दुख के सामने अपना सुख-दु ख भूल जाते हं तो क्या अचम्भा, उन छाया-रूपो के स्रष्टा एक्टर-एक्ट्रेसो के सच्चे या कल्पित रूमानी प्रेम-वृत्तान्तो में अपनी यथार्थ परिधि के स्नेह-वात्सल्य की अनदेखी कर जाते हैं तो क्या दोप यथार्थ है ही छोटा और फीका, और छाया कितनी बडी है, कितनी रगीन, कितनी रसीली .

काफी हाउस की काफी न मालूम गोमती के कीचड से बनने लगी है—उस मे कोई जायका नही हं। है तो कुछ मिट्टी का, पर नही, जली हुई मिट्टी का है । अधिक तपे हुए आँवे मे जो ई टे जल कर काली हो जाती हैं, उन्हे पीस कर कहवा बनाये तो शायद चन्द्र का जी होता, काफी फर्श पर थूक दे, पर जैसे-तैसे वह उसे गील लेता, फिर उस घूंट का उत्तर-स्वाद धोने के लिए दूसरा घूंट भरता और उसे भी गील लेता

अब वह काफी हाउस दो बार नही आता था, एक ही बार शाम को आता था, पर अब बैठता था बहुत देर तक, खाने के वक्त ही घर पहुँचता था—कभी और भी देर से—और सीधा सोने चला जाता था। स्त्री साहस कर के खाने को पूछती थी तो वह अनमना-सा इनकार कर देता था, उस के स्वर मे जो प्राणहीन विनय होता था उसे लक्ष्य कर के पत्नी मानो बुझ जाती थी और आग्रह नही करती थी। हाँ, जब वह खाट पर लेट जाता, तब कभी-कभी वह जा कर उस के जूते-मोजे खोल देती, कभी हिमम्त कर के गले से टाई भी उतार लेती, पाजामा उस के पास लाकर रख देती और धीरे से कहती, "कपडे तो बदल लेते—"

पहले दो-एक बार उस ने बेटी को भेजा था कि बाबू जी के जूते खोल दे। पर फिर उस की समझ मे आ गया था कि बच्चो को देख कर उसे और भी झल्लाहट होती है, तब से वह शाम को जहाँ तक हो सके बच्चो को उस की नजर से दूर रखती थी, स्वय आती थी। चन्द्र उस की उन सेवाओ को बिलकुल उदासीन भाव से स्वीकार कर लेता था । कभी जब वह टाई खोल कर उसे कालर से निकालने के लिए उस के ऊपर झुकती तो उस की कमीज़ के गले के भीतर से उस के उरोजो का जो थोडा-सा हिस्सा उसे दीख जाता उसे वह स्थिर दृष्टि से देखता रहता, कभी-कभी उस दृष्टि को लक्ष्य कर के वह लजा जाती, कौतूहल से चन्द्र सोचता कि अगर वह नौकरानी होती, या कोई और स्त्री होती, तो चन्द्र उस से छेड-छाड करना चाहता और शायद कमीज़ का गला पकड कर अपनी ओर खींच

लेता, पर वह तो उस की स्त्री थी जो उस के खींचने पर झुक जायगी, हाथ बढाने पर सह लेगी, चौंकेगी नही, विरोध नही करेगी, निषिद्ध के रोमाचकारी रस से उमडे-सिमटेगी नही वह वैसा ही स्थिर देखता रह जाता, पर उस की आँखो का केन्द्रित भाव बिखर जाता, फिर वह एक करवट हो जाता, पत्नी चली जाती तो उठ कर कपडे बदल लेता

बरसात जम कर शुरू हो गयी थी। पार्को की स्वैरिणी हरियाली बढ कर सडक की पटरियो पर भी अधिकार जमाने लगी थी, सकर स्थापत्य की नवाबी इमारतो की छोटी-छोटी अलकृतियाँ उस मे ऐसे खो गयी थी जैसे किसी बगिया मे छोटी-छोटी फुलवाडियाँ। चन्द्र काफी हाउस मे बैठ कर बारिश का शब्द सुना करता, पक्की सडक पर बडी-बडी बूंदो की कोडे जैसी मार का स्वर न जाने क्यो उस की पहले से तनी हुई शिराओ मे एक नयी उत्तेजना भर देता. वह लगातार एक के बाद एक कई सिगरेट फूंक डालता, फिर कभी-कभी अपनी मेज़ से उठ कर दूसरी मेज़ पर चला जाता जहाँ दो-चार लेखक-पत्रकार मिश्र जाति के लोग प्राय सिगार पीते और बहस करते बैठे रहते थे एक अग्रेजी के लेक्चरर जिन्होने कभी कुछ लिखा नही था पर अपनी सर्वसहारी मौखिक आलोचनाओ के कारण प्रगतिशील लेखक समुदाय के अगुआ माने जाते थे, एक उर्दू के शायर, जो प्राय नौ-साढे नौ बजे तक वही जमे रहते थे क्यो कि उस समय कुछ गोरी लडकियाँ डिनर के या सिनमा के बाद काफी पीने वहाँ आया करती थीं, उन के जाते ही शायर साहब भी माँगा हुआ सिगार चुक जाने के कारण जेब से बीडी निकाल कर सुलगाते और उठ कर चल देते, स्थानीय हिन्दी दैनिक के एक सहायक सम्पादक, जो बराबर इस मत का प्रचार करते थे कि युद्ध मे इगलैंड हार जायेगा और उस के बाद लडाई मे कमजोर हुए जर्मनी को भी हरा कर रूस भारत को आजाद करेगा; दो-एक और ऐसे व्यक्ति, जिन के बारे मे चन्द्र यही जानता था कि वे 'प्रमुख लिटरेरी आदमी' है, पर किस लिटरेरी क्षेत्र में प्रमुख है यह नहीं, न किसी की किसी प्रकाशित रचना का जिक्र कभी हुआ था. . यो शीघ्र ही एक विराट् विश्व-लेखक-सम्मेलन करने की बात प्राय हुआ करती थी जिसमें भारत के लेखक तो खैर होगे ही, रूस से भी डेलीगेशन बुलाया जायगा इस दल मे बैठ कर चन्द्र कई एक नये शब्द और पद सीख गया था, और कई परिचित शब्दो का अर्थ-विपर्यय भी उस ने अपनी बोलचाल में लक्ष्य किया था। और यह भी वह देख रहा था कि वह अब व्यक्तियो की बात सोचता है तो विशिष्ट इकाइयो के रूप में कदाचित् ही, सदैव कोई जातिवाचक विशेषण उस के साथ आता ही है—यहाँ तक कि उसे लगता, स्वय अपने को वह 'मै, चन्द्र' न कह कर कही 'वह बुर्जुआ पत्रकार चन्द्रमाधव' न कहने लग जाय! कभी वह उसे अच्छा भी लगता—इस प्रकार वह वैयक्तिकता से परे जा सकता है जो सिद्धि है, निर्वैयक्तिक हो सकना, निर्वैयक्तिक रूप से घृणा कर सकना, बिना दर्द के सब कुछ का तिरस्कार कर सकना—कितना अच्छा होगा वह! तटस्थता—सन्यास—केवल अलग, उदासीन हो जाना—उहुँक, वह गलत है, सन्यास और निवृत्ति-मार्ग

केवल सामन्तवादी परम्परा की एक विकृति है, कर्मच्युति का एक वहाना, एक प्रकार का नशा, इनसान एक्टिविस्ट हो, पर निर्वैयक्तिक, घृणा करे, तिरस्कार करे, एक निर्वैयक्तिक रेवोल्यूशनरी घृणा के साथ—वर्ग-मुक्त हो, पीडा-मुक्त हो, इस डिकेंडेंट, रुग्ण, ह्रासशील समाज से और स्वय अपने-आप से बाहर हो कर इस के सब मानो-प्रमाणो को तोड़ गिराये, इस की मान्यताओ को अमान्य कर दे हो, किन्तु व्यक्ति न हो, मनुष्य न हो, एक शक्ति हो, एक नीति मुक्त, स्वैर-तन्त्र, सहस्र-शीश, कोटि-बाहु, अजस्र-वीर्य जैविक प्रक्रिया का एक स्फुरण

कभी वह उठ कर बाहर निकल आता, क्षण-भर बारिश को देखता जिस की बूंदे आलोक के वृत्तो में आ कर थोडी देर के लिए चमक जाती और फिर अँधेरे मे खो जाती, मानो वह बारिश उसी वृत्त के एक सिरे पर न-कुछ से पैदा होती हो और दूसरे सिरे पर न-कुछ मे विलीन हो जाती हो—न ऊपर बादल से उस का कोई सम्बन्ध हो, न नीचे पृथ्वी से . फिर वह फेल्ट उतार कर कोट में छिपा लेता, मुँह को बूंदो की सूक्ष्म बरछियो के प्रति समर्पित कर देता, और बारिश में ही घर की ओर चल पडता।

रात के दस बजे थे। दिन-भर वह घर नही गया था। भीगता हुआ वह घर पहुँचा, बच्चे तो सो चुके थे, सोने के कमरे में प्रकाश था और वहाँ उस की पत्नी सिलाई लिये बैठी थी। उसे आता देख कर वह उठी, धीरे से बोली, "हाय, सारे कपडे भीग गये", और लपक कर तौलिया, एक धोती, कमीज़, पाजामा ले आयी। दबे स्वर मे, यथासम्भव उलाहने का भाव उस में न आने देने का यत्न करते हुए, उस ने कहा, "रोज भीग आते हैं। कही सर्दी-वर्दी लग गयी तो ?"

चन्द्र कपडो-वपडो से परे हट कर तिपाई पर हाथ और कमर टेकता हुआ बोला, "तो क्या, घर रहूँगा तो तुम्हें सेवा का मौका मिलेगा।"

पत्नी ने अनिश्चय से उस के चेहरे की ओर देखा, क्या यह व्यग्य है या हँसी ? पर चन्द्र का चेहरा सूना था, दोनो में से कोई भाव उस पर नही था। वह साहस कर के थोडा मुस्करायी और बोली, "न, सेवा ऐसे भी जितनी चाहिए कराइये।" फिर रुक कर बोली, "अच्छा कपडे तो बदल लीजिए, फिर मैं खाना लाऊँ।"

"नही कौशल्या, भूख नही है। और मैं थक भी गया हूँ।" कहते-कहते उस ने हलकी-सी जँभाई ली।

कौशल्या बढ कर उस के जूते खोलने लगी। मोजे गीले थे, आसानी से न उतरे, उस ने कहा, "ठीक से बैठ जाइये तो उतार लूँ।" चन्द्र ने बैठ कर पैर उठाये तो उस ने उकड़ूँ बैठ कर पैर गोदी में लिया और मोज़ा उतार कर पजे हाथो मे मल दिये। जूते-मोज़े एक ओर रख कर वह तौलिया ले कर आयी, चन्द्र को निश्चल देख कर उस ने तौलिया अपने

कन्धे पर डाला और चन्द्र की टाई खोल डाली। क्षण-भर अनिश्चित खडी रह कर मानो साहस बटोर कर उस ने पेंट की पेटी का बकसुआ खोल दिया, फिर कमीज खीच कर बाहर निकाल दी। फिर बोली, "अच्छा लीजिए, अब जल्दी बदल डालिए।" और जाने को मुडी।

चन्द्र उसे स्थिर दृष्टि से देख रहा था। कौशल्या थोडी-सी सिमट गयी। चन्द्र ने कहा, "तुम जा कहाँ रही हो ?" वह कहने को हुई, "आप कपडे—" पर बीच मे ही रुक गयी, बोली, "आप की डाक ले आऊँ।"

चन्द्र तनिक-सा मुस्कराया, फिर कपडे बदलने लगा। धोती की तहमद लपेट ली, बदन रगड कर सूखी कमीज पहन ली, फिर खाट पर बैठ गया। कौशल्या ने आ कर कहा, "यह लीजिए।"

दो चिट्ठियाँ थी। एक पर टाइप किया पता था—उसे सबेरे भी देखा जा सकता है। दूसरी—पर यह क्या ? उस पर चन्द्र की ही लिखावट थी। सात-आठ दिन पहले उस ने दिल्ली रेखा को पत्र लिखा था वही लौट कर आया था। 'एड्रेसी लेफ्ट' तो रेखा वहाँ नही है, और डाक आगे भेजने के लिए पता भी नही छोड गयी है, न उसे सूचना दे गयी है . क्षण-भर वह सूना-सा ताकता रहा।

कौशल्या ने पूछा, "किस की चिट्ठी है ?"

चन्द्र अनजाने ही कहने को था, "मेरी" पर रुक गया; स्वर में लापरवाही लाता हुआ बोला, "ऊँह, यो ही।" दोनो पत्रो को उस ने तकिये के नीचे ठेल दिया, आँखे कौशल्या पर जमायी और पूछा, "तुम नही खाओगी ?"

कौशल्या क्षण-भर अनिश्चित रही, उत्तर देने को थी कि चन्द्र ने हाथ बढा, उस की कमीज का गला पकड कर अपनी ओर खीच लिया। खीचने से दो-तीन टीप-बटन खुल गये, पर चन्द्र की पकड नही छूटी, कौशल्या खिच आयी, चन्द्र ने सहसा खडे होते-होते दूसरी बाँह उस के सिर के पीछे ले जाते हुए उसे और निकट खीच लिया, पास आते चेहरे पर उस ने देखा, कुछ विस्मय, कुछ अचकचाहट, कुछ प्रतीक्षा; ओठो के अधखुलेपन मे इन सब के मिश्रण से ऊपर भी एक अकथ्य भाव; इस से आगे वह नही देख सका क्यो कि ओठो के छूते-न-छूते कौशल्या ने हाथ बढा कर बत्ती बुझा दी थी, चन्द्र ने उस की काँपती-सी देह को खीच कर चारपाई पर गिरा लिया और एक क्रूर चुम्बन से उस के ओठ कुचल दिये—अँधेरे मे कौशल्या की देह का कम्पन सहसा स्थिर हो आया—उन ओठो में वासना थी, सूखे गर्म ओठ, पुरुष के ओठ पर प्रेमी के नही; प्यार नही, बीते हुए स्मरणाश्रित चुम्बनो की गरम-गरम राख.

उस की शिथिल देह पर भार दिये-दिये ही चन्द्र जब सो गया, तब भी वह निश्चल पडी रही, थोडी देर बाद जब वह करवट ले कर उस से अलग हो गया तब वह धीरे-से उठी, अपने कपडे उस ने ठीक किये, फिर दबे पाँव निकल कर दूसरे कमरे में चली गयी। साधारणतया

वह उसी कमरे में दूसरी चारपाई पर सोती थी, पर सुबह जब चन्द्र उठेगा तब उस के द्वारा देखा जाना वह नहीं चाहती, वह जानती है कि उस समय उसे वहाँ पा कर चन्द्र सहसा अजनबी आँखों से उसे देखेगा और फिर उन में घृणा घनी हो आयगी: . यह—यह अपने-आप में कुछ भी है या नहीं वह नहीं जानती, प्यार होता तो अवश्य होता, पर जब नहीं है तो यही बहुत है, उस घृणा के साथ तो यह भी ज़हर हो जायगा ऐसे ही सही, सबेरे चन्द्र उठे तो उसे न देखे, न घृणा करे। राख ही सही, पर घृणा की साँस उसे भी उड़ा न दे. . .

रेखा

पत्र को बन्द कर देने से पहले बहुत देर तक रेखा देखती रही, यद्यपि था वह मुश्किल से आधे पृष्ठ का। लेकिन उस की आँखे पत्र के शब्दो पर नही टिकी थी, वरन् उस के आशय पर, और पत्र का आशय उस के शब्दो के आशय से भिन्न कुछ, गहरा कुछ था, जिस के कारण उस की दृष्टि दूर कही खो गयी थी। जहाँ वह बैठी थी, वहाँ उस के आगे कुछ बादाम के पेड थे, उस से आगे मौसमी विलायती फूलो की क्यारी, उस के बाद फिर पेड, दूर पर पहाडो की कतार जो घनी बदली के कारण डरावनी हो आयी थी। पत्र पर टिकी हुई आँखे मानो इस सारे दृश्य को भी अपने में समा ले रही थी और कुछ नही देख रही थी। यह कश्मीर था—उस के पूर्वजो का कश्मीर, इस लिए उस का कश्मीर, जिस का सब-कुछ उस का गैर था। जलवायु, वनस्पति, आकाश, लोग, यहाँ तक कि सर्वत्र बिखरे हुए उस के नाते-रिश्तेदार भी, जिन के नाम भी वह नही जानती थी, चेहरे तो दूर, और जिन में से अधिकाश को उस के अस्तित्व का भी पता नही था कितना अजनबी, अकेला और गैर हो सकता है व्यक्ति, जब यह अपने घर में अजनबी होता है . लेकिन यही अच्छा है . क्योकि इस अजनबीपन मे कोई भी वास्तव में गैर नही है, वह एक द्वीप है जिस के चारो ओर नदी का प्रवाह है, उस मे और द्वीप है, कही कोई साझा सीमान्त नही है, किसी से कोई सीधा सम्पर्क नही, केवल नदी के माध्यम से, नदी जो माँ है, धारयित्री है, तारयित्री है, जो अन्त मे एक दिन आप्लवन में सब को समा लेगी .

नीचे कही वह रास्ता है, जिस से दो-ढाई महीने पहले वह पहलगाँव गयी थी, तुलियन गयी थी। क्या सचमुच गयी थी? लेकिन नही, यह सन्देह फिर कभी उस के मन में नही उठा है। अयथार्थ को आत्म-समर्पण करने का जो डर कभी उस ने जाना था, जो कभी उस ने जीत लिया था, वह फिर कभी नही जागा है, वह समर्पित है और जिस के प्रति समर्पित है वह उस की धमनियो मे स्पन्दित . "मै फुलफिल्ड हूँ", इस अनुभूति की दीप्ति अब भी उस के अन्त.करण को आलोकित किये है, और कभी बात करते-करते या बैठे-बैठे इस की कान्ति सहसा उस के चेहरे पर फैल जाती है तो बूढी मिसेज़ ग्रीव्ज चकित हो कर देखने लगती है, और खुश होती है कि उस की सगिनी, सहायिका और प्रबन्धकर्त्री में ऐसी आध्यात्मिक कान्ति है ।

एजेला ग्रीव्ज एक पादरी की विधवा है, पर पादरी कहने से जैसे स्वल्प-साधन, बहु-धन्धी, सेवा-रत व्यक्ति का चित्र सामने आता है, वैसे मिस्टर ग्रीव्ज़ भी नही थे, और उन की विधवा तो नही ही है। ग्रीव्ज ने सेवा बहुत की, पर साधन भी काफी जुटाये और जायदाद तो बहुत जुटा ली। फल उपजाने वाले कुल से आ कर यहाँ बागवानी के लिए उत्तम जमीन देख कर जितना ध्यान उस ने 'आत्माओ की खेती' मे लगाया उतना ही फलो

की खेती मे भी, और अब श्रीनगर मे बँगले के अलावा आस-पास कई बगीचो और बगलो की देख-भाल निस्सन्तान विधवा एजेला के जिम्मे है। उसी के विज्ञापन के जवाब मे रेखा यहाँ आयी है और यद्यपि उस का पद है 'कम्पैनियन' अर्थात् सगिनी का, तथापि काम उस के नाना प्रकार के है और सग उस का कम ही होता है, क्योकि एजेला जब बाहर के बगीचो मे जा रहती है तब उसे श्रीनगर छोड जाती है, और जब श्रीनगर जाती है तब उसे यहाँ पहुँचा कर एक-आध दिन काम समझा कर फिर छोड जाती है। एजेला की उम्र साठ से ऊपर है पर उस का शरीर सीधा और फुर्तीला है, और बुद्धि बडी सजग, काम उस के लिए बहुत है पर वह हारती नही और कभी मानती नही कि वह थक गयी है—यद्यपि सगिनी की खोज मूलत थकान का ही एक पर्याय है ।

सेब कच्चे ही तोड कर पेटियो मे भर लिये गये है। पेडो पर बहुत थोडा फल है। कुछ जो पकने पर तोडा जायेगा और श्रीनगर मे ही बिकेगा क्योकि बाहर भेजने लायक वह नही होता, कुछ जो अनन्तर उतारा जायेगा और जाडो तक बिकता रहेगा। रेखा को काम विशेप नही है, एजेला श्रीनगर मे काम देखती है और वह यहाँ सबेरे बगीचे का एक चक्कर लगा लेती है, पैकिंग वगैरह के काम पर नज़र दौडा लेती है ..और बाकी घर की ही देख-भाल करती है। काम विशेष नही है, उपस्थिति ही प्रयोजनीय है. ।

वर्षा लगभग हो ली, पर बादल कभी-कभी घिर आते है और ठड हो जाती है और यहाँ की वर्षा का कोई भरोसा भी नही, अगस्त के उत्तरार्द्ध मे प्राय बडे जोरो का एक दौर आता है और कभी सितम्बर तक चला जाता है काले बादलो के नीचे सारा दृश्य घुँट कर वन्द हो जाता है, पेड छोटे हो आते है, बँगला खिलौना-सा बन जाता है। मानो पूरा दृश्य अजायबघर के काँच के शो-केस मे रखा हुआ एक माडेल हो . केवल पहाड उभर कर बडे भारी और तीखे हो आते है, जैसे आकाश के तेवर चढ गये हो, घनी काली भौहे उभर-सिकुड कर और भी काली हो गयी हो . फिर धूप कभी निकल आती है और सारा दृश्य खिल आता है, मधु-मक्खियाँ गुजार करने लगती है, धूप के उजलेपन मे अन्तर्हित एक ललाई उस तेज को मीठा कर देती है, उस की चुनचुनाहट त्वचा को सुहानी लगती है और नाडियो मे अलस तन्द्रा भर जाती है. यह अलसाना भाव ही पहाड के शरदारम्भ का पहला और सब से प्रीतिकर चिह्न होता है—सब से प्रीतिकर भी, लेकिन साथ ही एक विशेप प्रकार की व्याकुलता लिये हुए उस व्याकुलता को रेखा नाम देना नही चाहती, नाम देना आवश्यक भी नही है, क्योकि धमनियो मे उस की अकुलाहट के साथ ही मन मे जो विचार या वाछा-चित्र उठते है वे अपने-आप में सम्पूर्ण होते है। इस अर्थ मे सम्पूर्ण कि समूचे अस्तित्व की माँगे उन मे अभिव्यक्ति पा लेती है .. पहाड की पहली शरद का यह मदालस भाव अकेले अनुभव करने का नही है, क्योकि वह मूलत एक प्रतिकपित भाव नहीं है जैसी जाडो की ठिठुरन-सिकुडन, न वैसा मुक्त विस्फूर्जित भाव है जैसा बरसात का उल्लास , वह मूलत एक उन्मुख भाव है, अन्यापेक्षी भाव, जो

दूसरे की उपस्थिति से ही रसावस्था तक पहुँचता है .

रेखा ने एक लम्बी साँस ली। दूसरे की उपस्थिति ,.तुलियन की चाँदनी झील के वक्ष को दुलराती हुई धुन्ध की बाँह, उस की छाती को बहुत हलके गुदगुदाते सोनगाभा के फूल और वह स्निग्ध गरमाई जिसे वह नाम नही देगी, जिस का चित्र वह अपने आगे मूर्त्त नही करेगी एक सिहरन-सी उस की देह मे दौड गयी, वह उठ कर खडी हो गयी और पत्र को पढती हुई चलने लगी, पर उठते ही उसे चक्कर-सा आने लगा, मतली होने लगी, आँखो के आगे अँधेरा-सा छा गया, चिट्ठी का सफेद कागज़ नीला हो गया और स्याह अक्षर हरे-सुनहले हो कर मानो एक दूसरे से उलझते-लड़खडाते कभी पास कभी दूर होने लगे वह उलटे पाँव चल कर हाथ से कुरसी टटोल कर फिर बैठ गयी, कडे सकल्प से अपने को सँभाल कर उस ने एक बार पत्र पूरा पढ डाला और फिर सफाई से तीन तह कर के लिफाफे मे डाल कर बन्द कर दिया जिस पर पता पहले से लिखा था। फिर उस ने पीठ और सिर पीछे टेक कर आँखे बन्द कर ली, लिफाफा उस के हाथ से गोदी में झूल गया।

मेरे भुवन,

तुम्हें जब-तब पत्र लिखती रही हूँ—जान-बूझ कर देर-देर से, पर एक महत्त्व की बात फिर भी नही लिखी, क्यो कि ठीक जानती नही थी ,अब लिखती हूँ—अब जानती हूँ, पर लिखने से पहले बहुत सोचा है कि लिखूँ या नही।

वह वीनकार-सर्जन वाली बात सच है, भुवन। मै भगवान् का आशीर्वाद तुम्हारे लिए माँगती हूँ, और तुम्हारे चरण गोद मे ले कर माथे से लगाती हूँ—उन्ही के स्पर्श से वह आशीर्वाद मुझे भी घेर ले।

मुझे कुछ चाहिए नही भुवन, तुम्हें बताया इस लिए कि—वह भविष्य मे मेरी आस्था है भुवन, और उसे तुम ने मुझे दिया है! अगर अब हम न मिले, तो भी वह भूलना मत।

रे०

थोडी देर बाद वह फिर उठी, धीरे-धीरे खडी हुई, दो-चार कदम चली, और फिर बगीचे के पार चल पडी। चिट्ठी किसी और को भी दी जा सकती थी, पर वह स्वय ही जायगी, स्वय ही उसे बक्स में छोडेगी और इस निमित्त से थोडा टहलना भी हो जायगा—बगीचे से निकल कर टेढी-मेढी सडक से नीचे बडी सडक तक, कुछ आगे गाँव के सिरे तक जहाँ लेटर-बक्स लगा है, फिर दूसरी ओर सडक के मोड तक जहां से उपत्यका की चितकबरी ओढनी पर लगा हुआ नदी का बल खाता हुआ गोटा चमक जाता है—यद्यपि इस बदली मे वह चमकेगा नही, सीसे-सा झलकेगा—जैसे बहुत-बहुत पुरानी सफेद जरी हो . . पुरानी तो है ही—न मालूम कितना पुराना गोटा है, और न मालूम उस से भी कितनी पुरानी यह धूसर ओढनी रेखा को एक पजाबी टप्पा याद आ गया, जो उस ने घूमते हुए एक दिन किमी राह चलते बूढे सिख को गाते सुना था .

मेरा चोला लीराँ दा

इक वारी पा फेरा तक्क हाल फकीराँ दा !*

चलते-चलते वह स्वयं भी धीरे-धीरे गुनगुनाने लगी, कुछ तो उस के सुर की, और कुछ अर्थ की करुणा ने सहसा उसे छा लिया कि वह मानो उस की अपनी करुणा हो गयी, मानो अभी लम्बी तान के साथ उस के आँसू उमड आयेंगे .. लेकिन उमडे नही, रेखा बीच-बीच में रुक-रुक कर गुनगुनाती रही "तक्क हाल फकीराँ दा.. तक्क हाल फकीराँ दा. ." और बढती रही गन्तव्य की ओर।

*　　　*　　　*

वकील से भेंट मे ज्यादा समय नही लगा था, पर हेमेन्द्र के चेहरे पर जो कुटिल सन्तोष का भाव था, उस में से एक झल्लाहट भी प्रकट हो रही थी। उसे क्या कहना था, वह अच्छी तरह जानता था, आने से पहले मलय में भी उस ने कानूनी सलाह ले ली थी और दिल्ली के इस वकील से भी पत्र-व्यवहार कर लिया था, दूसरी ओर वकील भी तलाक के कानून का पारगत था और उसे जो कहना था वह न केवल अच्छी तरह जानता था बल्कि साफ, सुलझे, सान पर चढे हुए चाकू की तरह बेलाग फिकरो मे कह भी सकता था। ऐसी भेंट का अपना एक रस होना चाहिए था, पर हेमेन्द्र की झल्लाहट की वजह दूसरी थी। वकील ने कहा था कि जहाँ तक तलाक की दरख्वास्त के कारणो की बात है, उचित कारण सब दूसरी तरफ है न्यायत. रेखा ही दरख्वास्त दे सकती है क्यो कि उत्पीडित पक्ष वही है, और अगर वह नही देती तो उस की मर्ज़ी है। पर हेमेन्द्र किसी तरह छुटकारा चाहता है, तो यही तरकीब हो सकती है कि वह धर्म-परिवर्तन कर ले और फिर रेखा से भी कहे, उस के इनकार करने पर तलाक की दरखास्त दे. यह बता कर उस ने कहा था, "मैं मान कर चल रहा हूँ कि आप दोनो छुटकारा चाहते है, नही तो अगर वह न चाहती हो और धर्म-परिवर्तन करने को तैयार हो तो आप कुछ नही कर सकते—यानी ऐसे स्मूथली नही हो सकता—फिर तो आप को ऐसे आरोप उन पर लगाने पडेगे जो सच होने पर भी कोई स्त्री आसानी से न मानेगी—और झूठ हो तब तो और यह तो सवाल ही दूसरा है कि वह कितनी क्रूरता होगी—"

हाँ, वकील ने कोई मुरव्वत नही की थी—एकदम बेलाग बात की थी ..वह ठीक ही था, पर यह पराधीनता उसे अखर रही थी। वह मनमानी का आदी है; इतनी छोटी-सी बात के लिए उसे रेखा का मुंह जोहना पडेगा—वह चाहेगी तो तलाक होगा, न चाहेगी तो नही—यह स्थिति उस से सही नही जा रही थी ..रेखा बाधा नही देगी, वह जानता

---

*मेरा चोला चिथड़ों का है : एक बार इधर फेरा लगा कर इन फ़कीरों का हाल देख जाओ !

है; फिर उस सूरत मे जब मुक्ति देने में उसे स्वय भी तो मुक्ति मिलेगी—यद्यपि यह भी वह जानता है, रेखा को कानूनी मुक्ति की परवाह नही है, वह किसी भीतरी बन्धन से बद्ध या मुक्ति से मुक्त होगी, और वह अब भी अपने को इतना मुक्त समझती होगी कि कानून की बन्दिशो का बोझ उस पर न हो। यह सब ठीक है, पर क्यो वह रेखा पर निर्भर करने को लाचार है? इस से तो अच्छा होता कि वह यही कह कर तलाक माँगता कि रेखा दुराचारिणी है—वह उस हालत में भी सफाई देने न आती अहकारिणी, पर उस मे उस की मुँहजोही तो न होती!

वह तो सचमुच वही करता। कुछ जब तोडना ही है, तो सीधे स्मैश करना चाहिए। यह क्या कि तोडना भी चाहो, और ढेला मारते भी डरो, गिराओ भी तो धीरे-धीरे कि चोट न आये? तोडना है, दो हथौडा—स्मैश! वकील ने कहा है कि रेखा को पत्र वही लिखेगा, और हेमेन्द्र से वायदा लिया है कि वह स्वय कोई पत्र-व्यवहार नही करेगा, पर क्यो न वह रेखा को एक पत्र लिखे, साफ-साफ पता लगाते क्या देर लगेगी—लिख दे कि वकील ने ऐसा कहा है पर वह सोचता है कि सीधी साफ बात—पूछ ले कि क्या तुम सफाई देने आओगी? वकील ने कहा था, क्रूरता होगी। सभी पुरुष-स्त्री क्रूर होते है—और सब से क्रूर वे जो एक-दूसरे से शादी कर लेते है।

क्या जाने, रेखा भी शादी करना चाहे, पर यह विचार आते ही हेमेन्द्र ठिठक-सा गया—रेखा और शादी! एक विकृत मुस्कान उस के चेहरे पर फैल गयी। एक शादी का ही अनुभव उस के लिए काफी होगा . प्यार? लेकिन रेखा के लिए पुरुष-मात्र ऐसा जहरीला जीव हो गया होगा—औरतो की बनावट ही ऐसी होती है, कि पुरुष से चोट खा कर वे सारी पुरुष जाति को बुरा समझ लेती है—उदार दृष्टि से तो सोच ही नही सकती, कि मर्द-मर्द मे भेद भी हो सकता है, कि—

यहाँ आ कर उस की विचार-परम्परा टूट गयी। क्यो नही वह रेखा पर तरस खा सकता, करुणा कर सकता, क्यो नही उसे अपनी दया दे सकता? रेखा—उस के प्रेम-शरीर का एक मरा हुआ अवयव जिसे उस ने काट दिया है—काट देने के बाद अवयव पर आक्रोश कैसा?

खैर, वह रेखा को एक चिट्ठी तो लिखेगा ही, देखा जायगा—करुणा करने के लिए सारा भविष्य पडा है!

* * *

तुलियन से लौट कर भुवन फिर प्रयोगशाला मे डूब गया था। यद्यपि यह डूबना पहले से कुछ भिन्न था, क्यो कि तुलियन के प्रयोगो को लें कर वह जब भी गणना करने बैठता, तो उन प्रयोगो से मिलने वाली बौद्धिक प्रेरणा ही नही, उन की ओट मे तुलियन का वह भावोन्माद भी झलक आता जिसे ओट से खीच कर सामने लाने का प्रयत्न उस ने नही

किया था, वह अनुभूतियो का एक संघट्ट, सवेदनाओ का एक घना सम्पुंजन था जिसे विश्लिष्ट कर के देखना चाहना ही मानो बर्बरता थी--जिस तरह किसी हलकी गैस से भरे हुए गुब्बारे से लटक जाने पर गुरुत्वाकर्षण को काट कर मानव मानो भार-मुक्त हो जाता है--पृथ्वी पर पैर रख कर चलता भी है तो भार दे कर नही चलता, वैसी ही उस को अवस्था थी, वह अपनी सब चर्या पूरी करता था, पर मानो धरती पर पैरो की छाप डाले बिना : जैसे मानवी काया-पिंजर मे बँधा कोई आकाशचारी देव-गन्धर्व रेखा के दो-एक पत्र उसे आये थे, छोटे-छोटे, सूचनात्मक, जिन मे कभी एक-आध वाक्य अन्तरग सम्बोधन का आ जाता तो आ जाता उन से वह भावोन्माद फिर भीतर ही भीतर पुष्ट हो जाता था, उभर कर सतह पर नही आता था। भुवन ने अधिक पत्र नही माँगे, बल्कि अपनी ओर से भी विशेष कुछ नही लिखा, वैसे ही सूचनात्मक पत्र . हाँ, रेखा की तरह उस ने भी जब-तब कागज पर अपने विचार लिख कर रख छोडना आरम्भ कर दिया था ---वह भी वैसा इरादा कर के नही, रेखा के उदाहरण का ध्यान कर के भी नही, लगभग अनजाने ही, उस की वैज्ञानिक दीक्षा के कारण अन्तर इतना था कि अलग-अलग परचो की बजाय उस ने एक कापी रख ली थी। यह जिज्ञासा भी उस के मन मे कभी नही हुई कि क्या रेखा भी अभी वैसे कुछ लिख कर रखती होगी, या कि क्या वे विचार और भावनाएँ कभी वह देख-पढ सकेगा लेकिन ऐसा वह क्यो, कैसे हो गया वह स्वयं नही समझ पाता था--जीवन के प्रति ऐसा स्वीकार भाव उस मे कहाँ से आया ? चन्द्रमाधव की भाँति वह जीवन को नोचने-झँझोडने का आदी तो नही था, बछडे की देखा-देखी नृशस ग्वाले जैसे गाय के थनो मे हुचका मार कर दूध की अन्तिम बूंद निकाल लेना चाहते हैं, जीवन की कामधेनु को वैसे दुह लेने की प्रवृति उस की नही थी; पर ऐसा प्रश्न-विहीन भाव भी तो उस का नही रहा था : यह क्या रेखा की छाप थी कि वह भी मानो धीर-प्रवाहिनी जीवन को नदी का एक द्वीप-सा हो गया है ? रेखा उस को आकृति का, विशेष घटनाओ या स्थितियो का चित्र भुवन के सामने कदाचित् ही आता, स्मृत सस्पर्शो या दुलारो का राग कदाचित् ही उसे द्रवित करता, पर रेखा के अस्तित्व का एक बोध मानो हर समय उस की चेतना के किसी गहरे स्तर को आलोकित किये रहता और उस के प्रतिबिम्बित प्रकाश से अन्त करण को रजित कर जाता--जैसे किसी पहाडी झील पर पडा हुआ प्रकाश प्रतिबिम्बित हो कर आस-पास की घाटियो को उभार देता है केवल कभी-कभी वह साँझ को बाइबल उठा कर उस में सालोमन का गीत पढने बैठ जाता, पढते-पढते ऐसा विभोर हो जाता कि जोर-जोर से पढने लगता, फिर अपना स्वर उसे चौका देता--मानो जाग कर वह जानता कि वह रेखा के कारण उसे पढ रहा है--प्रकारान्तर से रेखा के साथ है .

केवल एक बार पिछले कुछ महीने की घटनाएँ--और विशेष कर दो-तीन मास पहले के नौकुछिया-ताल और तुलियन के थोडे से दिन--एक तीखे मर्मान्तिक दर्द की तरह

उसे साल गयी थी। थोडी देर वह तिलमिला गया था, फिर लज्जा से भर गया था—इस लिए और भी अधिक कि वह तिलमिलाना भी और सिमटना भी एक और व्यक्ति ने भी देख लिया था। फिर उस ने प्रकृतस्थ हो कर बात सँभाल ली थी—या सँभालनी चाही थी, क्योंकि कहाँ तक वह सँभल सकी है वह नही जानता था .

गौरा कुछ घटो के लिए आयी थी। दिल्ली से बनारस जा रही थी जहाँ उस ने कालेज मे सगीत-शिक्षिका की नौकरी स्वीकार कर ली थी, सीधी न जा कर उस ने भुवन से मिलते हुए जाने का निश्चय किया था। अपनी ओर से तो वह चाहती ही, पर भुवन ने भी बुलाया था उस ने केवल यह सूचना दी थी कि वह बनारस जायेगी और उत्तर में भुवन ने पूछा था कि क्या वह उधर से हो कर न जा सकेगी—उस ने निस्सन्देह बहुत प्रमाद किया है और गौरा का रोष स्वाभाविक ही होगा, पर रोष न कर के उसे देखते जाना भी कम स्वाभाविक न होगा और वह कृतज्ञ भी होगा—गौरा का वह सदैव कृतज्ञ है

वह स्टेशन लिवाने गया था। स्टेशन से वे दोनो पहले उस की प्रयोगशाला में गये थे, वहाँ से होते हुए घर आने की बात तय हुई थी। प्रयोगशाला से लगे हुए भुवन के कमरे मे वैज्ञानिक यन्त्रो से घिरे हुए बैठ कर गौरा ने बताया था कि वह बनारस नौकरी करने जा रही है, फिर भुवन से यन्त्रो के बारे मे पूछने लगी थी। यन्त्रो से कॉस्मिक रश्मियो, और उन से तुलियन की बात उठना स्वाभाविक था, गौरा ने सहसा पूछा था, "तुलियन झील सुन्दर है?" और साथ ही जोड दिया था, "वहाँ भी आप यन्त्रो से ऐसे ही घिरे बैठे रहते होगे—प्रकृति के लिए आप को फुरसत ही कहाँ होगी?"

तब, पहली बार वह दर्द उसे साल गया था। "प्रकृति के लिए फुरसत"—एक प्रकृति बाहर की जड प्रकृति है, एक उस की धमनियो मे गरम-गरम प्रवाहित होने वाली उस की प्रकृति—और क्या सचमुच उसे फुरसत नही हुई थी? झूठ वह नही बोलेगा, गौरा से बिलकुल नही, पर कहे क्या वह? जो-कुछ भी वह कहेगा, क्या वह झूठ नही होगा?

उस ने कहा था, "कितने भी यन्त्र हो, पहाड को और प्रकृति को नही छिपाते", फिर कुछ रुक कर अपने को बाध्य करते हुए, "तीन-चार दिन के लिए रेखा देवी भी वहाँ आयी थी—बल्कि यन्त्रो के आने से पहले—"

एक भारी-सा मौन उस के बीच में पड गया था। वह दर्द भुवन को फिर सालने लगा था, पर इस मौन को ठेल कर हटा देने की प्रेरणा उस में नही थी। गौरा भी कुछ कहने को हुई थी—फिर सहसा चुप लगा गयी थी, भुवन देख सका था कि वह कुछ कहती रुक गयी है, पर क्या, वह नही सोच सका था। अन्त में गौरा ने ही कहा था, "अब कहाँ है रेखा देवी?"

"कश्मीर मे—वहाँ उन्हो ने नौकरी कर ली है। पीछे दिल्ली मे थी—दिल्ली मे वहाँ चली गयी।"

गौरा ने फिर कुछ रुक कर, सकुचाते हुए कहा था, "हाँ।" फिर वह कुछ कहने को हुई थी, और फिर रुक गयी थी ।

मौन और भी भारी हो गया था। अब की बार उसे कोई नही तोड सका था। अन्त मे जब भुवन ने कहा था, "चलो, घर चलेगे—यहाँ कुछ और नही करना है", तब भी उसे यह नही लगा कि उस भारी मौन को वह तोड सका है, बात उस ने की है जरूर, पर यह दूसरे स्तर पर है, जिस स्तर पर मौन है उस पर यह पहुँची ही नही. ..

और न गौरा ही उसे तोड पायी थी जब उस ने घर पहुँच कर कहा था, "लाइये, मै आयी हूँ तो थोडी सँभाल मै कर जाऊँ—पर पहले चाय बना लाऊँ।" स्वय यह अनुभव करती हुई वह बिना भुवन के रास्ता दिखाने की प्रतीक्षा किये भीतर चली गयी थी—वह इस घर का भूगोल नही जानती, पर एक अकेले बैचलर सायटिस्ट के घर का भौगोलिक रहस्य हो ही कितना सकता है .

भुवन तिलमिलाया हुआ टहलता रहा था। दर्द उसे सालता हुआ सारी देह मे छा गया था, एक भीतरी दबाव-सा उस की आँखो के पपोटो मे स्पन्दित होने लगा था; भवो के ऊपर उस का माथा सीसे-सा भारी हो आया था . .

गौरा चाय बना कर ले आयी थी। एक बार भुवन के चेहरे को देख कर चुपचाप ढालने लगी थी। बढा हुआ प्याला ले कर भुवन बैठ गया था।

उसी प्रकार, मौन की दीवार को तोडने मे, भुवन ने पूछा था, "गौरा, तुम ने नौकरी जो कर ली—तो क्या जीवन का मार्ग अन्तिम रूप से चुन लिया ? माता-पिता की क्या राय है ?"

"हाँ, भुवन दा। नौकरी मैने नही चुनी, सगीत ही चुना है; पर आगे सीखने के लिए यह सहारा जरूरी है—माता-पिता पर बोझ बने रहना कहाँ तक ठीक होता ?"

भुवन उसे देखता रहा था। माथे का नाडी-स्पन्दन वैसा ही था, उसे मानो वह सुन सकता था। फिर उस ने पूछा था, "गौरा, विवाह क्या कभी नही करोगी ?"

तब यह मौन थरथरा कर टूट गया था। गौरा खडी हो गयी थी। उस का मुँह तमतमा आया था। मुद्रा तनिक भी नही बदली थी, इस से यह स्पष्ट नही था कि वह तमतमाहट कैसी है; उत्तर देने से पहले भी वह क्षण-भर रुकी रही थी और जब बोली थी तो बिलकुल सम स्वर से: "भुवन दा, मुझ से तो आप पूछते है, पर नौकरी तो आप भी करते है, आप ने क्या सोचा है यह सब—सोच चुके है ?"

भुवन ने कहना चाहा था, "मेरी बात दूसरी है—पुरुष के लिए विवाह और नौकरी विरोधी कैरीयर नही है और स्त्री के लिए साधारणतया तो होते ही है—साथ नही चलते—" पर कह नही पाया था, गौरा के मुँह की ओर देखते-देखते अचानक कह गया था, "गौरा, आज देखता हूँ तुम मुझ मे छोटी अब नही हो—और अब से बराबर-बराबर बात करूँगा, यो पहले भी बिल्कुल छोटी तो तो नही मानता था—"

गौरा एकदम बैठ गयी। उस का चेहरा शान्त हो आया। बोली, "माफ़ी चाहती हूँ, भुवन दा—आप सदैव बडे है।"

भुवन ने निश्चयात्मक स्वर से कहा, "नही।" फिर मानो असली विषय पर लौटते हुए, "पर मेरे लिए एक चुन लेना आवश्यक नही है। इस मामले मे पुरुष दिग्भ्रान्त भी रहे तो चल सकता है—स्त्री को बिलकुल सुलझे ढग से सोचना पडता है—निर्मम हो कर।"

गौरा ने जिद की, "अच्छा जरूरी न सही, आप ने सोचा तो होगा ?" फिर सहसा अपनी जिद पर थोडा-सा शरमा कर वह मुस्करा दी।

उस मुस्कराहट से भुवन सँभल गया। स्वय भी मुस्करा कर बोला, "ठीक सोचा तो नही—सोचना तो एक वैज्ञानिक क्रमागत क्रिया है—पर हाँ, यो ही कुछ धारणाएँ तो है—"

"क्या ?"

"यही कि उस के विरुद्ध मैने कोई प्रतिज्ञा तो नही की। राह चलते यदि कोई उपयुक्त साथी मिला, तो—"

"लेकिन इस देश में राह चलते कुछ नही होता, भुवन दा, बडी खोज करनी पडती है।" गौरा स्पष्ट ही उसे चिढा रही थी।

भुवन ने उसी ढग से कहना चाहा, "न, मिरेकल इस देश मे भी होते है—" पर यह मानो उसे अनुगूंज लगी दूर कही की घटियो की—जबान पर आयी बात रुक गयी और वह फिर चुप हो गया। थोडी देर बाद उस ने फिर हँसने का यत्न करते हुए कहा, "खोज तो दूसरे करते है—विज्ञान के विद्यार्थी का तो सारा जीवन ही खोज है।"

"ओ हो ! तब जब कुछ मिल जायगा तो भौचक-से देखते रह जायेंगे। सब-कुछ कॉस्मिक रश्मियो की तरह थोडे ही यन्त्र से नाप लिया जाता है।"

"खास कर स्त्री—यही न ? पर यह क्यो मान लेती हो कि मै ही खोजूंगा—वह भी तो खोजेगी—बल्कि वही खोज लेगी—स्त्रियो की बुद्धि तो अचूक होती है न ऐसे मामलो मे ? मै—यन्त्र—केवल इतना जान लूंगा कि खोज पूरी हो गयी।"

भुवन को थोडा-थोडा लग रहा था कि वह उस के लिए अस्वाभाविक ढग से बात कर रहा है, कुछ-कुछ बेवकूफी की भी बात कर रहा है। पर इस तरह की गैर-जिम्मेदार बातें मानो एक छद्म थी जिस की ओट में उसकी भीतरी आकुलता और असमजस छिप जाता था। वह कहता गया, "राह चलते जिस दिन बैठे-बैठे जानूंगा, मेरे पीछे कोई है और मुड कर नही देखूंगा और वह झुक कर अपने खुले बाल मेरी आँखो के आगे डाल देगी—उस दिन मे जान लूंगा कि मेरी खोज—कि मेरे लिए खोज समाप्त हो गयी, और पडाव आ गया।"

गौरा अनिश्चित-सी हँसी, "क्या बच्चो की-सी बात करते है आप। या रोमांटिको जैसी।"

"क्यों ?"

"और नही तो क्या। कौन वह सुन्दरी होगी जो ऐसे अपने केशो मे आप को बाँध लेगी—ऐसी तो रोमाटिको की वह सनातन चुडैल थी—लिलिथ—जो अपने सुनहले बालो से लोगो के दिल बाँध लिया करती थी और वे सूख जाते थे। क्यो नही आप उन नाइटो की बात सोचते जिन के माथे पर तारा चमका करता था ?"

"तारो की खोज क्या कम पालगलपन है, गौरा ? इतने बडे आकाश मे कोई एक तारा चुन लीजिए, अच्छा चुन ही लीजिए, अँग्रेजी मे कहते तो है कि 'अपना छकडा तारे के पीछे जोत लो' पर तारे तक पहुँचे तब तो—"

"या तारा ही आप तक पहुँचे—"

नही, यह भी प्रतिध्वनि है—कहाँ किस की प्रतिध्वनि ? 'कोई बात नही, मैन फ़्राइडे, तारा खुद तुम्हें ढूँढ लेगा।'—'मै अँधेरे मे डूबना नही चाहती, नही चाहती !'— 'अच्छा मैन फ्राइडे, तुम्हारा तारा कौन-सा है ?'—'और तुम—शुक्रतारा।' 'क्यो, चाँद नही ?' 'वेन मैन ! नही, शुक्र, केवल शुक्र !'—'मेरा तारा।'

भुवन खडा हो गया। प्याला उस ने रख दिया, टहलने लगा।

"क्या बात है भुवन दा ?"

भुवन ने पैंतरा करते हुए कहा, "हमारे प्रोफेसर कहते थे, विज्ञान से जिस की शादी हो जाती है, उसे फिर और कुछ नही सोचना चाहिए। वह बडी कठोर स्वामिनी है।"

गौरा ने कहा, "हूँ। यो तो सगीत—कोई भी कला—और भी कठोर स्वामिनी है; और विज्ञान का मनचलापन तो सन्दिग्ध भी हो सकता है, कला के बारे मे तो सन्देह की गुंजाइश नही।" फिर वह रुक कर क्षण-भर स्थिर दृष्टि से भुवन को देखती रही। "मगर भुवन दा, हम लोग क्या बे-बात की बात कर रहे है; आप—आप है कहाँ ?"

"गौरा—" भुवन ने पास आ कर एक हाथ गौरा के कन्धे पर रखा और चुप हो गया। धीरे-धीरे उस का हाथ हटने लगा पर गौरा ने उस पर अपना हाथ रख कर उसे रोक लिया और बडे अनुरोध से कहा, "बताइये न, भुवन दा—"

भुवन ने धीरे-धीरे हाथ खीच लिया। "कुछ नही गौरा, अपने भविष्य के बारे मे नही सोचा करता, तुम्हारे ही भविष्य की बात सोचा करता हूँ।" कुछ रुक कर, पर गौरा को बोलने का मौका दिये बिना, "यो तो भविष्य की बात ही नही सोचनी चाहिए—वर्त्तमान ही सब-कुछ है, भविष्य केवल उस का एक प्रस्फुटन—"

यह क्या हो गया है उस को ? यह भी प्रतिध्वनि है

गौरा ने उलहने के स्वर मे कहा, "यह आप कहते है, भुवन दा, आप ?"

ठीक है गौरा का उलहना, भुवन के भीतर कुछ उमड कर बोला था, तुम कैसे ऐसी बात कह सकते हो, और गौरा को. .

ठीक इस समय, बडे मौके से, भुवन का नौकर आ गया था। साधारणतया उसी को

आ कर चाय देनी चाहिए थी, पर रसोई मे आ कर उस मे उथल-पुथल के लक्षण देखे तो भीतर देखने चला आया, भीतर गौरा को चाय लिये बैठे देख कर वह मुड गया एक हलकी-सी मुस्कराहट को छिपाने के लिए—तो डाक्टर साहब के लिए अभी कही कुछ उम्मीद है

भुवन अपनी ही बात को ले कर हँस दिया। "और नही तो क्या ? सोचने को तो हम बहुत कुछ सोचते हैं, पर जब जाँच कर के देखते है तो यही मानना पडता है कि हाँ, वर्त्तमान ही सब-कुछ है ।"

गौरा थोडी देर वैसे उलझने से देखती रही। फिर उस ने कहा, "हो सकता है। यो मेरे लिए भी यही बात है—अभी जहाँ तक मुझे दीखता है, उसी के अनुसार मैंने भी सोच लिया है, आगे जब—नया वर्त्तमान खुलेगा तब उस के अनुसार और सोच लूंगी। नही तो आप ही बताइये—"

भुवन ने कुछ सोचते हुए कहा, "हाँ, यो तो ठीक है।"

अगली गाडी से गौरा चली गयी थी। जाने के समय वातावरण कुछ स्वच्छ हो गया था, भुवन ने यह भी कहा था कि अगले दशहरे की छुट्टियो मे वह शायद बनारस आयेगा—दो-एक दिन, फिर गौरा के साथ दिल्ली लौटेगा अगर उस के पिता वहाँ होगे, या अगर मसूरी होगे तो वही जायगा। गौरा ने कहा था, "जरूर चलिएगा—आप पिता जी को बहुत नेग्लेक्ट करते रहे है—रहे है न ?" फिर चारो ओर नजर डाल कर कहा था, "घर को भी आप ने नेग्लेक्ट कर रखा है। मै एक-दो दिन रह जाती तो सब सँभाल देती—पर आप रहने ही कहाँ देते है?" भुवन ने हँस कर उत्तर दिया था, "घर की सँभाल एक-दो दिन का काम थोडे ही है, गौरा ? एक बार सँभालोगी, फिर वैसा ही हो जायेगा—पर वैसे नुक्स क्या है, मुझे जबानी ही बता दो, मै सँभालूंगा—"

"ऐसे काम जबानी ही हो सकते तो . "

"तो क्या ?"

लेकिन गौरा ने अपना वाक्य पूरा नही किया था।

* * *

गौरा के जाने के बाद वापस लौट कर बहुत देर तक भुवन कमरे मे और छत पर चक्कर काटता रहा। गौरा के आने ने उस के भीतर जो उद्वेलन उत्पन्न कर दिया था, उस का कारण वह नही जानता था, न कोई स्पष्ट विचार ही उस के मन में उठ रहे थे, केवल एक आकारहीन, केन्द्रविहीन आकुलता फिर वह अपनी कापी ले कर बैठा, लेकिन उस मे भी कुछ न लिख सका कापी सामने रख कर बैठा रहा, साँझ घिर आयी, बादल छा गये और गरजने लगे उस ने कापी रख दी और टहलने निकल गया।

दूसरे दिन फिर वह पूर्ववत् अपने काम में जुट गया, उद्वेलन भीतर-ही-भीतर कही

दब गया और पहले की स्थिति फिर हो गयी—काम, काम, काम केवल चेतना के भीतरी किसी स्तर पर एक आलोकमय छाप, और उस के साथ गुँथा हुआ रेखा का ध्यान जो सतह पर नही आता ..

इस अवस्था से रेखा के पत्र ने उसे झकझोर कर जगा दिया—और ऐसा जगाया कि फिर वह कभी उस अवस्था को नही लौटा; फिर जब आयी तो एक प्रकार की जडता आयी, और उस के भीतर एक आलोक नही, एक गुथीला अन्धकार. . .

पत्र पा कर उस ने पढा, तो पहले शान्त भाव से ही पढ गया; कोई आश्चर्य की बात उस मे नही थी। रेखा से जब वह बिदा हुआ था, तब जो बात हुई थी उस से यह परिणाम निकलता ही था—रेखा ने सूचित कर दिया था और यह भी कह दिया था कि वैसा ही वह चाहती है पर क्या तब सच-मुच वह समझ सका था ? उस ने मन-ही-मन स्थिति को मूर्त किया—नदी के आर-पार पडे शहतीर पर वे दोनो, दोनो स्तब्ध, नीचे दौडता उफनता पहाडी नदी का जल, और दोनो की अपूर्ण आकांक्षाओ का आरोप उस भविष्यत् जीव पर जिसे—शायद !—उन्होने अनजाने और एक आविष्ट मोहावस्था मे रचा है क्या तब वह उस बात का पूरा अभिप्राय समझा था जो रेखा ने कही थी—क्या वह अब भी समझ रहा है ? धीरे-धीरे एक-एक स्मृति उस के मन मे उभरने लगी, और मानो तेजाब से एक-एक गहरी रेखा उस के चेतन-पट पर कोरने लगी ."आर यू रीएल—तुम हो, सचमुच हो, भुवन ? मैं तुम्हारी हूँ, भुवन, मुझे लो रेखा, आओ . .**लेट अस गेट अप अर्ली टु द विनयार्ड्स : देयर विल आइ गिव दी आऱ् माई लव्ज.** .**महाराज ए कि साजे एले मम हृदयपुर माझे** . भुवन, मेरी मोहलत कब तक की है ? शुभाशंसा चूमती है भाल तेरा. .पगली, पगली, तुम तो चाँदनी मे ही जम गयी थी। और तुम ? तुम पिघल गये थे ? . **लव मेड ए जिप्सी आउट आफ मी** . लजाती हो—मुझ से—अब ? तुम से नही तो और किस से लजाऊँगी ? . .**वेट विदाउट होप, फ़ार होप वुड बी होप आफ़् द रांग थिंग. . देबे कि गो वासा आमाय देबे कि एकटि धारे ?. . .**" एक अद्‌भुत भाव उस के मन में भर गया, जिस में वात्सल्य भी था, करुणा भी, एक आतुर उत्कठा भी और एक बहुत हलकी-सी जुगुप्सा भी। "न, मैं कुछ मागूँगी नही, तुम्हारे जीवन की बाधा नही बनूंगी, उलझन भी नही बनूंगी। सुन्दर से डरो मत . लेकिन भुवन, मुझे अगर तुम ने प्यार किया है, तो प्यार करते रहना—मेरी यह कुठित बुझी हुई आत्मा स्नेह की गरमाई चाहती है कि फिर अपना आकार पा सके, सुन्दर, मुक्त, ऊर्ध्वाकाक्षी ." क्यों नही माँगेगी रेखा कुछ भी ? यो सब कुछ दे देगी, और फिर चुपचाप चली जायेगी—अपनी सब से अधिक आवश्यकता के समय मूक ? नही, इतना बड़ा दान वह नही ले सकेगा। उदार हो कर देना कठिन है, होगा, पर उदार हो कर ले लेना और भी कठिन है .. "तुम ने मुझे एक बार भी नही बताया कि मेरे लिए तुम्हारे हृदय में क्या भाव हैं . . ." ठीक कहा था रेखा ने, उस ने सचमुच कभी कुछ नही बताया, शायद स्वय ही नहीं

सोचा--और बिना एक प्रश्न तक भी पूछे रेखा ने--नही, यह एक-पक्षीय व्यापार वह नही सह सकेगा--घुँट जायेगा इस के बोझ से .ऐसा दान वह नही लेगा जो पाने वाले का दम घोट दे, और देने वाले को--देने वाले को भी सकट मे डाल दे

लेकिन दान वह नही लेगा, यह कहने के अब क्या मानी हैं जब वह दान ले चुका है ? अब वह क्या करेगा, अब, यही उसे सोचना है, और स्पष्ट सोचना है, परिणाम तक ले जा कर सोचना है

पत्र उसे कालेज में मिला था। कालेज से लौटने से पहले उस ने रेखा को तार दे दिया कि वह आ रहा है, और छुट्टी का आवेदन भी दे दिया, बल्कि थोडी देर बाद स्वय प्रिंसिपल के पास जा कर स्वीकृति भी ले ली। शाम को रवाना हो गया।

* * *

मोटर के अड्डे पर रेखा हो भी नही सकती थी, पर भुवन ने उतर कर चारो ओर नजर दौडा कर देख लिया मानो उसे खोज रहा हो, फिर जब वह कही न दीखी तो उसे सन्तोष हुआ। बाहर निकल कर ताँगा लिया, पर पते के लिए दो-एक जगह पूछना पडा। अन्त मे जब ठीक पता पा कर ताँगा मिसेज ग्रीव्ज के बगीचे की ओर बढ चला, फाटक पर पहुँच कर रुका और भुवन ने उतर कर उस पर लगा हुआ ग्रीव्ज नाम का बोर्ड भी देख लिया, तब ताँगे को जल्दी बढने के लिए न कह कर उस ने वही रोक दिया। "हम अभी पूछ कर आते हैं ठीक होने से भीतर बुला लेंगे--" कह कर वह गेट खोल कर भीतर बढा, ताँगे वाले की पुकार उस ने अनसुनी कर दी कि "सा'ब, ताँगा भीतर ले चलूं, सा'ब!"

एक डर-सा उस के मन पर छा गया, पर उस ने उसे साफ सामने ला कर नही देखा। प्रार्थना-सी यही बात बार-बार उस के ओठो पर आने लगी कि जब वे मिले तो रेखा अकेली हो--चाहे कितनी थोडी देर के लिए, औरो के बीच मे न उसे रेखा से साक्षात् करना पडे मन में यह भी प्रश्न उठता कि क्या रेखा ठीक वैसी ही होगी, या उस का रूप कुछ बदल गया होगा--पर इस प्रश्न को भी वह दबा देता : कुछ नही सोचेगा वह रेखा को देखने तक--और देखे तो वह अकेले में ही देखे

दूर से ही उस ने उसे देख लिया। बरामदे में आराम-कुरसी पर वह बैठी थी, सारा शरीर ढलती धूप में, केवल चेहरा छाँह में था और स्पष्ट दीखता नही था। रेखा ने वही परिचित मक्खनी सफेद रेशमी साडी पहन रखी थी, पहनने का ढग कुछ अनोखा था और मानो उसे और भी दूर अलग ले जाता था। उस ने भुवन को अभी नही देखा था, भुवन कुछ और भी ओट हो कर दबे-पाँव चलने लगा; बिलकुल बरामदे के पास आ कर जब उस ने बरामदे की काठ की सीढी पर पैर रखा, तभी आहट से वह चौंकी, मुड कर उस ने देख कर पहचाना और कहा, "भुवन! अरे, भुवन, तुम--" और उठ बैठी पर उठी नही, वही से उस ने बाँहें बढायी कि भुवन लपक कर पहुँच गया, .एक बाँह से उस ने रेखा

को घेर लिया और कुरसी की बाँह पर अध-बैठा होते-होते उसे खीच कर अपने से लगा लिया, उस के माथे पर गाल टेक कर स्तब्ध रह गया, रेखा के दिल की धडकन उस की जाँघ पर बहुत हलका ताल देने लगी थोडी देर बाद उस ने बहुत धीमे भर्राये स्वर मे कहा, "रेखा, तुम—रेखा " रेखा ने चेहरा थोडा ऊँचा उठाया, उस की नाक भुवन के गाल में धँस गयी, अब-खुले ओठो से साँस का हलका स्पर्श भुवन के नासा-मूल को गुदगुदाने लगा, तब सहसा भुवन के ओठो ने उस के ओठ ढूँढ लिये . फिर उस ने खडे होते हुए कहा, "रेखा, मैं अभी आया—बाहर ताँगा है—"

रेखा ने कहा, "तुम नही जाओ, यही से पुकारो 'सलामा'—वह बुला लायेगा।"

भुवन क्षण-भर उसे ताकता रहा। "कितना अच्छा हुआ कि तुम अकेली थी जब मैं पहुँचा, रेखा—"

रेखा ने समझ कर धीरे से हाथ उस की ओर उठा दिया, कुछ कहा नही, उसकी आँखो की गहरी मुस्कराहट ही उसे दुलरा गयी।

भुवन ने बरामदे की ओर बढ कर पुकारा, "सलामा!" फिर मुड कर रेखा से पूछा, "मिसेज ग्रीन्ज कहाँ रहती हैं—तुम अकेली हो?"

"हाँ, वह श्रीनगर मे हैं—मैं निगरानी के लिए यहाँ बैठी हूँ। जब वह आयेगी तो मैं उधर चली जाऊँगी। पर अभी दो महीने शायद यही व्यवस्था रहे। फिर जब बर्फ पडने लगेगी तो यहाँ खाली हो जायगा—मैं भी श्रीनगर उन के साथ रहूँगी।"

"कैसा लगता है, रेखा?"

रेखा ने गहरी दृष्टि से स्थिर भाव से उसे देखा, कुछ बोली नही।

सलामा ताँगे वाले को बुला लाया। भुवन ने कुछ झिझकते हुए पूछा, "एम आइ—स्टइग विथ यू?—वैसे मैं—"

रेखा ने आँखो से ही उसे घुडक दिया। सलामा ने कहा, "साहब का सामान मेहमान-कमरे मे लगा दो—"

भुवन ताँगे वाले को विदा करने लगा, सलामा ने सेवा-पटु कश्मीरी लहजे मे पूछा, "चाय लाऊँ मेम साब?"

भुवन को रेखा का बोलने का ढंग अतिरिक्त मधुर लगा। यो वह सदा विनय से बात करती थी, पर भुवन ने सोचा, उस के स्वर मे न बगालियों की आदर्श-प्रियता है, न कश्मीरियों की बनावट, एक सहज शालीनता उस मे है जिसे न अकडना पडता है, न झुकना पडता है, जिस मे प्रकृतस्थ रह कर ही वह बडे-छोटे सब के बराबर हो जाती है ..व्यक्ति का आभिजात्य क्या है, उस की सर्वोपरि सत्ता, उस का अखड चक्रवर्तित्व, यह रेखा के निकट रह कर और उस का लोक-व्यवहार देख कर समझ मे आ जाता है ..

चाय के वाद दोनो बरामदे से उतर कर टहलने लगे। रेखा न कहा, "वगीचा देखोगे ? घूम आये—"

भुवन ने उस की ओर देखते हुए कहा, "तुम्हे —कष्ट तो नही होगा ?"

"न। मुझे तो अच्छा लगता है—"

"तो चलो।" फिर कुछ रुक कर, "लेकिन—तुम्हारी शाल ले आऊँ—पर तुम्हारा कमरा भी तो नही जानता ?"

"तो पहले वही देखोगे?" रेखा मधुर मुस्करायी, "नही वह फिर दिखाऊँगी। पर शाल तो अन्दर जाते दाहिने को टँगी है—मैंने दिन में रखी थी—"

भवन उठा लाया।

रेखा ने कहा, "फल तो लगभग सव उतार लिये गये है, जिधर है उधर ही चले—उधर तो कुछ धूप भी होगी—"

भुवन को याद आया। डूबते सूर्य का उन्होंने पीछा किया था, और हार गये थे। नही, आज वह डूवते सूर्य का पीछा नही करेगा, सूर्य को डूब जाने दो, पकते सेव पर उस की धूप की चमक ही इष्ट है—उसी को वह देखेगा, उस की लालिम कान्ति में सूर्य की धूप पकेगी, सुफला होगी शारदीया साँझ की धूप में फलो-लदा सेव का पेड—जीवन के आशीर्वाद का, जीवन-रूप आशीर्वाद का इस से बढ कर और कौन-सा प्रतीक है ? शरदारम्भ अभी नही हुआ, अभी वरसात का अन्त ही है, फलो पर भी अभी वह सूर्यास्त की लाल-सुनहली कान्ति नही आयी, पर उस फले हुए जीवन-तरु को वह देख सकता है—

...देयर इज येट फेथ
एंड द फेथ एंड द लव एंड द होप आर आल इन द वेटिंग...*

उस ने बढ कर रेखा का हाथ थाम लिया, और मानो राह दिखाता हुआ साथ ले चला। सामने पेड के ऊर्ध्व भाग पर धूप पड रही थी, उस में जगमग एक फलो-लदी डाली को दिखा कर भुवन ने कहा, "इस जाति का नाम वता सकती हो ?"

रेखा कहने को थी, "क्विस—" पर भुवन ने इशारे से टोकते हुए कहा, "ये है 'सनसेट ग्लोरी'।"

"सो तो जानती हूँ।" रेखा ने मुग्ध भाव से उस के कोट की आस्तीन से सिर छुआते हुए कहा, "मेरा सारा वगीचा 'सनसेट ग्लोरी' है।"

"देखो हम हारे नही रेखा, ढलते सूर्य को हम ने पकडा ही नही, उस के वीच में खडे है।"

***...फिर भी विश्वास है—**
—किन्तु विश्वास और प्रेम और आशा सब प्रतीक्षा में ही है...*

—टी० एस० एलियट

रेखा ने फिर वह गहरा अपाग उसे दिया . "क्या जाने, भुवन, पर तुम कहते हो तो—ऐसा ही हो, ओ मेरे मालिक, ऐसा ही हो "

दोनो खडे देखते रहे। सूर्य की कान्ति फीकी पडी, फिर डाली के फल स्याह हो गये, आलोक का धान्य मानो बादल के एक बहुत बडे तामलोट मे वन्द हो गया, तामलोट भी काला पड गया, हवा चलने लगी, रेखा सिहर गयी। भुवन ने अपनी बाँह पर पडी शाल रेखा को ठीक से ओढा दी। रेखा ने कहा, "चलो अब चले—"

"हाँ, चलो—बैठ कर बात करेंगे—मुझे बहुत-कुछ कहना है—"

"कहना है, भुवन—क्या कहना है ?" रेखा उस की ओर घूम गयी। दोनो की आँखें मिली। देर तक मिली रही। फिर दोनो चुप-चाप चलने लगे। भुवन ने धीरे से कहा, "नही, ठीक कहना नही है—कहना कुछ नही है। लेकिन—" वह सहसा चुप हो गया। पर मन-ही-मन वह कहता रहा, "रेखा, रेखा, रेखा "

* * *

पहले दृग्मिलन के क्षण से कभी भी दोनो मे किसी को यह नही लगा था कि उन का सम्पर्क कही टूट गया है और उसे फिर से स्थापित करना होगा, बराबर ही वे सम्पृक्त थे। पर फिर भी, यद्यपि उन की बातो मे घनिष्ट सौहार्द था, प्रणय था—मानो बात करने में दोनो यह भी अनुभव करते जा रहे थे कि वे बात नही कर रहे है, केवल पैंतरे कर रहे है ..

रात को भोजन के बाद—जिस में रेखा ने लगभग कुछ नही खाया—रेखा उठ कर अपने कमरे मे चली गयी तो भुवन भी अपने कमरे मे गया, कपडे बदल कर उस ने दो-एक चीज़ो को इधर-उधर कर के अपनी सुविधा के अनुकूल रख लिया, फिर टेबल लैम्प को बहुत नीची मेज पर रख कर कि प्रकाश कमरे मे बहुत मन्दा हो जाय, एक कुरसी उस ने खीच कर लैम्प के पास कर दी। पलग के सिरहाने की ओर खिडकी पर जा कर खडा हो गया और एकटक बाहर देखने लगा। बादल घिर आये थे, दूर की बिजली की प्रतिबिम्बित चमक से बादल की चादर रह-रह कर सफेद हो आती थी।

रेखा का स्वर आया—"मैं आ सकती हूँ ? तुम्हारे कमरे मे बैठ सकती हूँ ?"

भुवन ने घूम कर कहा, "यह मै पूछने वाला था। आओ—पर तुम तो मुझे अपना कमरा दिखाने वाली थी—"

"चलो, अब चलो।"

साफ-सुथरा और करीने से सजा तो था ही रेखा का कमरा, पर भुवन को लगा कि उस में कुछ और भी विशेषता है। क्या, यह सहसा वह नही जान सका, पर थोडी देर में वह स्पष्ट हो गयी—कमरे में कोई चीज फ़ालतू नही थी . सब-कुछ मित, मानो आवश्यक होने के कारण अनिच्छा रहते भी रखा गया था। अपने कमरे से उस ने तुलना की—

वहाँ सब-कुछ अधिक था—अधिकतम आराम के लिए वह सजाया गया था, और यहाँ —अल्पतम आवश्यक सुविधा की ही कसौटी रखी गयी थी . उस ने कहा, "रेखा, तुम तपश्चारिणी होने जा रही हो ?"

"क्यो ? ओ—यह ! नही भुवन, अधिक कुछ भी हो तो मुझे चुभता है—मै अपने साथ ही जीना चाहती हूँ—बाहर का अनावश्यक लटा-पटा मुझ से सहा नही जाता।"

"और मै मुगल बादशाह हूँ—क्यो ?"

"वह तो मेहमान कमरा है, डाक्टर साहब—आप हमारे मेहमान है।"

भुवन ने हाथ बढा कर बिस्तर टटोला—तख्तो का पलग, उस पर गद्दा नही था—दरी, नमदा, चादर, अचानक उस ने तकिया एक ओर को खीचा, उसके नीचे एक कापी थी। उस ने चूप-चाप तकिया वैसे ही रख दिया, मानो कापी न देखी हो।

"यहाँ बैठोगे, भुवन, या उधर चले ?"

"कहना तो यह चाहता हूँ कि मै इधर रहूँगा, तुम उधर जाओ, 'पर—चलो, उधर बैठेगे, क्योकि मै मेहमान हूँ !"

"हाँ !"

* * *

रेखा को उस ने टेबल पर लैम्प के पास वाली कुरसी पर बिठाया, स्वय पलँग पर बैठ गया। दोनो थोड़ी देर एक-दूसरे को देखते रहे।

"तुम——फिर आ गये, भुवन, मैंने नही सोचा था—"

"यह सोच लिया था कि अब नही आऊँगा ?"

"नही भुवन, यह नही, पर आओगे, यह कभी नही सोचती थी।"

दोनो फिर थोडी देर चुप रहे।

सहसा भुवन ने कहा, "अच्छा, रेखा, अब क्या ?"

"अब क्या, भुवन ?" रेखा ने सहज भाव से कहा, "जीवन अपनी गति से चलता है। उस से बहुत अधिक तो मै पहले भी नही माँगती थी—"

अगर रेखा बात को ऐसे टाल दे तो वह कैसे पूछे ? उस ने फिर यत्न किया, "रेखा, तुम अब भी—अब भी क्या—"

"हाँ, भुवन, मै अब भी वैसी फुलफिल्ड हूँ—और तुम्हारी कृतज्ञ—"

"वह नही रेखा—तुम—तुम क्या नौकरी ही—तुम यहाँ से मेरे साथ चलो—"

बिजली चमकी—पहले दूर से प्रतिबिम्बित, फिर कडकती हुई, कडक के धीमी पडते-न-पडते वर्षा होने लगी। उस की पटपटाहट के ऊपर स्वर उठाते हुए भुवन ने कहा, "रेखा, यह क्या सम्भव होगा कि—तुम मुझ से विवाह कर लो ?"

रेखा सिहर गयी, उठने को हुई और बैठी रही। बोली नही।

वर्षा की पटपटाहट बढ़ती गयी, हवा के साथ जोर की बौछार आयी और खिडकियाँ खटखटाने लगी, भुवन ने उठ कर खिडकी बन्द कर दी, वाहर का शब्द सहसा कम हो गया, मानो सन्नाटा छा गया हो ।

उस भ्रमात्मक सन्नाटे को तोडते हुए रेखा ने स्पष्ट स्वर मे कहा, "नही भुवन, नही ।"

फिर एक लम्बा मौन रहा । फिर भुवन वोला, "मुझे यही डर था, रेखा । वात भी वहुत जटिल हो गयी है । पर—इतना तुम्हे विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि—यह करुणा नही है, रेखा, न निरी एक नोवल जेसचर—मै सचमुच कहता हूँ ।" उस के स्वर मे व्यथा थी ।

रेखा ने उठते हुए पास आ कर कहा, "हाँ भुवन । तुम्हे क्लेश पहुँचाना नही चाहती थी—अविश्वास मैने नही किया । पर—वह असम्भव है । मैने—तुम से प्यार माँगा था, तुम्हारा भविष्य नही माँगा था, न मै वह लूँगी ।"

भुवन भी खडा हो गया । "तुम ने नही माँगा, नही माँगोगी । तुम्हारे माँगने न माँगने का सवाल भी नही है । मै माँग रहा हूँ रेखा ।"

"न भुवन । वात वही है । तुम कुछ कहो, मै नही भूल सकती कि—जो हुआ है वह न हुआ होता तो—तुम न माँगते—न कहते, इस लिए तुम्हारा कहना–परिणाम है । और यह कहना परिणाम नही, कारण होना चाहिए, तभी मान्य—तभी उस पर विचार हो सकता है ।"

"रेखा !" भुवन ने अपने दोनो हाथ उस के कन्धो पर रख दिये । धीरे-धीरे उसे फिर कुरसी पर बिठा दिया, फिर दो कदम पीछे हट कर मैंटल के सहारे खडा हो गया ।

"रेखा, और भी वाते सोचने की है—"

रेखा ने एक फीकी मुस्कान के साथ कहा, "है न ? इसी लिए यह वात सोचने की नही रही—यह तभी सोची जा सकती है जव एक और अद्वितीय हो, दूसरी किसी वात से असम्बद्ध हो ।'

भुवन ने चाहा कि झल्ला उठे । क्यो रेखा उस की वात ठीक नही समझती—क्यो उलटे अर्थ लेती है ? पर वह जो कहती है, उस मे भी तो तथ्य है तथ्य है, यही तो झल्लाहट का कारण है—यह ऐसी गुत्थी है कि वँधी उन के चाहने से, पर खुलेगी नही, जितना वे चाहेगे और उलझती जायेगी .

"रेखा, उस—उस चीनकार की वात भी तो सोचो—"

रेखा ने दर्द से आँखें बन्द कर ली, जैसे कोडा पडा हो । फिर उस ने पीठ पीछे टेक दी, वड़ी थकी हुई आँखें भुवन की ओर उठायी, और कहा, "उस की वात सोचने के लिए तुम्हें मुझे नही कहना होगा भुवन ! नही, वुरा मन मानो, मै ताना नही दे रही ।" वह थोडी देर रुक गयी । "पर भुवन, तुम समाज की दृष्टि मे देखते हो . वह दृष्टि गलत नही है,

अप्रासगिक भी नही है, निर्णायक भी वह नही है। व्यक्ति को दबा कर इस मामले का जो भी निर्णय होगा—गलत होगा—घृण्य होगा, असह्य होगा!"

फिर थोडी देर वह चुप रही। फिर आँखें गिराते हुए कहा, "हो सकता है कि मेरा सोचना शुरू से ही गलत रहा हो—पर शुरू से वह यही रहा है। मेरे कर्म का—सामाजिक व्यवहार का नियमन समाज करे, ठीक है, मेरे अन्तरग जीवन का—नही। वह मेरा है। मेरा यानी हर व्यक्ति का निजी।"

"हाँ, मगर दोनो मे क्योकि विरोध है, और अपरिहार्य विरोध है—"

"तो यह भी जीवन की एक न सुलझने वाली गुत्थी रह जायेगा। यह तो नही है कि ऐसी गुत्थी कभी हुई न हो—बीसियो पडी रहती है चारो ओर—एक और सही—"

"लेकिन—लेकिन ऐसा मान लेने से तो कोई रास्ता नही निकलता—" कह कर वह झल्लाया-सा मुस्करा दिया क्यो कि वास्तव मे यही तो रेखा कह रही थी। फिर वह चुपचाप टहलने लगा। रेखा बैठी रही। वर्षा की टपाटप ही एकमात्र शब्द रह गया।

"तुम थके हो, भुवन?—सोओगे?"

"ऊँ, नही।" भुवन ने रुक कर रेखा की ओर देखा। "पर तुम—तुम्हे शायद आराम करना चाहिए—"

"मै ठीक हूँ। अपने-आप चली जाऊँगी।"

थोडी देर फिर वर्षा की टपाटप। भुवन ने कहा, "यह वर्षा असमय नही है?"

"पता नही। हर साल ही असमय हो तो असमय कैसे कहा जाय? प्राय ही शुरू सितम्बर मे जोर का दौर आता है—और बाढ़ भी जब आती है इन्ही दिनो—"

फिर केवल वर्षा का स्वर रह गया।

"काफी पियोगे?"

भुवन ने अचकचा कर कहा, "अब?"

"हाँ, मेरे कमरे मे स्टोव है—मै कभी-कभी रात को बनाती हूँ—"

"अब नही, रेखा। पर—तुम पियो तो मै बना लाऊँ—"

रेखा ने सिर हिला दिया।

थोडी देर बाद बोली, "कैसे हम लोग मानो सात बरस से ब्याहे पति-पत्नी की तरह हो गये है—बातचीत के लिए कोई विषय नही मिलता, तकल्लुफ की बाते कर रहे है—"

भुवन ने हँस कर कहा, "तकल्लुफ बाकी है, यही क्या कम है? सात बरस बाद तो रुखाई का वक्त आ जाता है—या बिलकुल मौन उपेक्षा का!"

रेखा ने कहा, "इसी लिए क्या तुम मुझे कह रहे हो—"

भुवन ने एकाएक पास आ कर उस के दोनो कान पकड लिये, धीरे-धीरे उस का मुँह ऊपर को उठाते हुए कहा, "पगली, एक तो बात नही सुनती, फिर चिढाती है?" और ओठो के कोमल स्पर्श से उस का सीमान्त छू लिया।

रेखा ने अस्पष्ट स्वर मे कहा, "गाड ब्लेस यू "

भुवन फिर मैंटल के पास चला गया। थोडी देर बाद बोला, "रेखा, तुम्हे गाना सुनाने को आज नही कहूँगा—मैं कुछ पढ कर सुनाऊँ ?"

"सुनाओ—पर बत्ती वहाँ रख दूँ ?"

"नही, मैं वही आता हूँ", कह कर भुवन ने दूसरी दीवार से लगी मेज पर से दो-एक पुस्तको में से एक उठायी, अभ्यस्त हाथो से पन्ने उलट कर मनचाहा स्थल निकाला और रेखा के पैरो के पास फर्श पर बैठ गया, जहाँ रोशनी पुस्तक पर पड रही थी। रेखा ने झुक कर देखा—ब्राउनिग।

"साथ लाये हो ?"

उत्तर दिये विना ही भुवन पढने लगा :

हाउ वेल आई नो ह्वाट आई मीन टु डू
ह्वेन द लांग डार्क ऑटम ईवनिंग्स कम,
एंड ह्वेयर, माइ सोल, इज दाइ प्लैजेंट ह्यू ?
विद द म्यूजिक आफ ऑल दाइ वायसेज़, डम्ब
इन लाइफ़्स नवैम्बर, टू !
आइ शैल बी फाउंड बाइ द फ़ायर, सपोज़,
ओवर ए ग्रेट वाइज बुक एज वेसीमेथ एज,
ह्वाइल द शट्र्स फ्लैप ऐज़ द क्रासविड ब्लोज़,
एंड आइ टर्न द पेज़, एंड आइ टर्न द पेज़,
नॉट वर्स नाउ, ओनली प्रोज़ !. . .*

* * *

रेखा ने कहा, "सारी बात फिर से दुहराओगे, भुवन ? मैं कहती हूँ, यह व्यर्थ की वहस है, निष्परिणाम !" थोडी देर चुप हो कर उस ने एक लम्बी साँस ली, फिर वोली—"मैं कहना नही चाहती थी, तुम कहला कर छोडोगे तुम्हारे साथ—जीवन का जो-कुछ सुन्दर मैंने जाना है, तुम्हारे साथ, जो-कुछ असुन्दर जाना है विवाह मे, और तुम कहते हो—"

---

*कितनी अच्छी तरह मैं जानता हूँ कि शरद की लम्बी अँधेरी सन्ध्याओ में मैं क्या करना चाहूँगा—जीवन के नवम्बर में, मेरी आत्मा की दीप्ति फीकी पड़ रही होगी और उसके अनेक स्वरो का संगीत मूक हो रहा होगा ! मैं अपनी वय के अनुकूल कोई बड़ी ज्ञान-पोथी लिये आग के निकट बैठा करूँगा, और जाड़ों की हवा कपडो को फफडाया करेगी; और मैं पन्ने पर पन्ना उलटता जाऊँगा—अब काव्य नहीं, केवल गद्य. . .

—ब्राउनिग

उस के स्वर मे जो थरथराती तीव्रता थी, उस के धक्के से भुवन क्षण-भर स्तब्ध रह गया, फिर समझाता हुआ बोला, "लेकिन रेखा, विवाह मे जो हुआ वह विवाह के कारण ही हुआ, ऐसा तो नही है—एक व्यक्ति का दोष—"

"वह सब मैं जानती हूँ, भुवन—सारी दलीले मैं अपने को दे चुकी हूँ। अब जो कहती हूँ, वह उस सब के बाद है।" भुवन के चेहरे का विमूढ भाव देख कर वह कहती गयी, "समझ लो कि यह निचोड है मेरी सचित की हुई तर्कातीत हठ-धर्मी का।"

भुवन फिर चुपचाप टहलने लगा। दिन में रेखा से बहुत कम बात हुई थी—जो हुई थी वह वैसी ही, जैसी आतिथेय-अतिथि में परिजनो के सामने होती है, फिर दिन मे वह शहर चला गया था। रेखा ने पूछा था कि क्या कुछ काम है जो बारिश मे जायगा ? तो कहा था कि नही सैर करेगा, तब रेखा ने भी कहा था कि अच्छा मैं भी लेटी रहूँगी। लेकिन भुवन छाता-बरसाती ले कर निकला था और शहर की बहुत-सी बाते जान आया था, बाज़ार, तार, डाकघर, अस्पताल, अच्छे डाक्टरो-सर्जनो के जगह-ठिकाने निरुद्देश्य भाव से ही उस ने यह पडताल शुरू की थी, पर निरुद्देश्यता में भी व्यवस्थितता थी और जब वह लौटा तो श्रीनगर के बारे मे खासा जानकार हो कर—यद्यपि सैलानियो के जानने की एक भी बात उस ने नही जानी थी। उधर रेखा भी निगरानी का आवश्यक काम कर के, सब को आवश्यक आदेश दे कर भुवन के कमरे में गयी थी, चीज़ो की झाड-पोछ स्वय कर के उस ने फूलदानो मे नये फूल सजाये थे, उस की इनी-गिनी किताबें देख उन के साथ अपने कमरे से तीन-चार और किताबे ला रखी थी, बिस्तर ठीक से लगाया था। फिर अपने कमरे मे जा कर थोडी देर सुस्ता कर वह अपनी कापी ले कर भुवन के कमरे मे लौट आयी थी और बैठ कर रुक-रुक कर थोडा-थोडा लिखती रही थी। लगभग दो घटे बाद वह अचकचा कर उठी थी, अपने कमरे में जा कर घडी देख आयी थी और फिर वही आ बैठी थी। थोडी देर बाद उस ने भीतर से लकडियाँ ला कर अगीठी मे ऐसे सँवार कर चुन दी थी कि झट से आग जलायी जा सके—बारिश अभी हो ही रही थी और काफी सर्दी हो गयी थी। फिर अबेर होती जान वह उठी थी, थोडी देर अनिश्चित पलँग के पास खडी रही थी, तब उस ने अपनी कापी भुवन के सिरहाने तकिये के नीचे दबा कर रख दी थी, ऊपर से सलवटे ठीक कर के दरवाजा उढका कर बाहर चली गयी थी। बाहर आराम-कुरसी पर दो-तीन गद्दियाँ डाल कर, पैरो के लिए चौकी और कम्बल रख कर, वह आराम से बैठ गयी थी, आँखे उस ने बन्द कर ली थी। ऐसा ही भुवन ने थोडी देर बाद उसे पाया था। आते ही बरामदे मे बरसाती-छाता टाँगते हुए उस ने पूछा था—"आराम किया ?" और रेखा ने कहा था, "देख लो।" और फिर, "एक कुरसी और ले लो—बैठो—या कि पहले कपडे बदलोगे—भीग आये हो।" भुवन कपड़े बदलने चला गया था।

चाय पी गयी थी। शाम फिर वैसी ही मेहमान-मेजबान के ढग से बीती थी, खाना भी वैसे ही खाया गया था। भुवन ने बताया था कि वह सारा शहर घूम गया, बन्ध, लाल-

मडी, अमीरा कदल, वजीर बाग—दो-चार नाम भी उस ने अपनी जानकारी बताने के लिए ले दिये थे। रेखा ने बताया था कि वह थोडा पढती-लिखती रही, बाकी उस ने खूब आराम किया उस के बाद पूर्ववत् भुवन के कमरे मे बात हो रही थी।

"एक बात और है भुवन—और यह बुनियादी बात है विवाह हो ही कैसे सकता है—मैं तो बँधी हूँ—" सहसा कटु मुस्कान के साथ, "केवल दुराचार—"

"चुप!" भुवन ने डपट कर कहा रेखा ने वाक्य अधूरा छोड दिया। "रेखा, और जो है, अपने को यो सताने की कोई जरूरत नही है।"

"आई'म सॉरी, भुवन!" रेखा ने सच्चाई से कहा—"पर—बँधी तो हूँ—"

"तो मै प्रतीक्षा करूँगा—"

रेखा हँस पडी। "क्या बच्चो की तरह प्यारा मुँह बना कर कहते हो, प्रतीक्षा करूँगा।" रेखा ने पास जा कर अँगुलियो से उस के ओठ पकड कर भीच दिये, जैसे बच्चो के ओंठ भीच देते हैं। "कब तक आखिर—और किस लिए?" वह थोडा रुक गयी। "जिस के लिए—जिस के लिए सोचते हो वह तो " सकपका कर वह फिर बैठ गयी।

भुवन फिर निरुत्तर हो कर टहलने लगा। रेखा चुपचाप उस का मुँह निहारने लगी। उस की चाल मे निश्चय और विमूढता का अजब मिश्रण था, हाथ पीछे गुँथे हुए, सिर कुछ झुका लेकिन ठोडी सामने बढी हुई, और भँवो के बीच मे दो रेखाएँ, जिन से बीच का हिस्सा कुछ लाल-लाल जान पडता था।

रेखा ने पूछा, "आज तो काफी पियोगे · ठड है। मै लाती हूँ।" भुवन कुछ कहे, इस से पहले ही उस ने साथ जोड दिया, "मै भी पियूँगी।"

"तब अच्छा। पर मै बना कर लाता हूँ। मेरी जिद।"

"अच्छा, यही सही। स्टोव ड्रेसिग रूम मे लगा है, और सब समान उस के पास के ताक मे रखा है। हमेशा तैयार लगा ही रहता है।"

भुवन चला गया। तब रेखा भी उठी। अँगीठी मे आग सुलगायी—अनुभवी हाथो की लगायी हुई लकडियो ने तुरन्त आग पकड ली, आठ-दस मिनट बाद जब भुवन ट्रे में लगी हुई काफी ले कर आया, तब चटचटाती लाल शिखाओ का असम प्रकाश कमरे में नाचने लगा था। उस ने कहा, "अरे—जादूगरनी!"

रेखा ने कहा, "हाँ, तुम्हारा जादू मेरे हाथ मे भी चला आया है।"

आग के पास तिपाई उस ने पहले ही रख दी थी। भुवन ने दो कुरसियाँ खीच कर ठीक जगह रखी, रेखा को आदर से हाथ पकडकर उठाया और तिपाई के पास वाली कुरसी पर बिठा दिया, फिर एक प्रश्नसूचक दृष्टि से उस की ओर देख कर टेबल लैम्प बुझा दिया। आग के प्रकाश मे उन की और काफी के बर्तनो की छायाएँ दीवार पर नाचने लगी।

काफी पी कर भुवन ने तिपाई हटा दी, अपनी कुरसी खीच कर रेखा की कुरसी के निकट कर ली। फिर मेज तक जा कर किताब उठाने लगा तो बोला, "मेरी किताबें बढ गयी हैं?"

चार-पाँच किताबे लिये वह लौट आया, किताबे जमीन पर रख कर कुछ आगे झुक कर उन के नाम देखने लगा। चार्ल्स मार्गन का 'द फाउटेन',' आन्द्रे जीद का 'स्ट्रेट इज द गेट', ठाकुर की 'गीताजलि', लुई एमो का 'मारिया शादलेन', सानुवाद 'कुमार-सम्भव', दो-एक कविता-सकलन, एक-आध और पुस्तक।

"ओह, यह मेरे मेजबान की कृपा है।"

एक किताब निकाल कर उस ने खोली, नीचे झुका कर ऐसे रखी कि रेखा भी देख सके, और स्वर-हीन ढग मे पढने लगा। रेखा भी साथ-साथ पढती रही। कभी बीच मे एक-आध पक्ति वह गुनागुना देती, भुवन जानता था कि दोनो लगभग साथ-ही-साथ पढ रहे है। पन्ना पलटने से पूर्व क्षण-भर रुकता और फिर धीरे-धीरे उलट देता।

सो लेट मी बी दाइ क्वायर, एंड मेक ए मोन
अपान द मिडनाइट आवर्स;
दाइ वाएस, दाइ ल्यूट, दाइ पाइप, दाइ इन्सेन्स स्वीट
फ्राम स्विंगेड सेंसर टीमिंग,
दाइ श्राइन, दाइ ग्रोव, दाइ आरैकल, दाइ हीट
आफ पेल-माउथ्ड प्राफेट ड्रीमिंग।

* * *

जलती हुई एक लकडी एक ओर गिरी, प्रकाश कुछ मन्दा पड गया। आग ठीक करने के लिए रेखा खडी हुई तो भुवन ने कहा, "रेखा, तुम्हारे कमरे मे तो आग नही है।"

"बनी हुई रखी है। जाऊँगी तो जला लूँगी।"

"पर कमरा गरम होते तो देर लगेगी, मै अभी जला आऊँ।"

उस की कलाई पर हाथ रख कर उसे रोकते हुए रेखा ने आग्रहपूर्वक कहा, "नही, तुम बैठो।"

दोनो फिर बैठ गये। किताबे हटा दी गयी, दोनो चुप-से हो गये।

थोडी देर बाद भुवन ने कहा, "रेखा, तुम्हे क्या जरूर अभी कमरे मे चले जाना है?"

रेखा कुछ बोली नही, उस की ओर देख कर रह गयी।

भुवन ने धीरे-धीरे हाथ पकड कर उसे उठाया, और पलँग पर जा लिटाया। स्वय एक बाही पर बैठ गया, धीरे-धीरे रेखा का कन्धा थपकने लगा।

आग मन्दी पड गयी, अगारे ही लाल-लाल चमकते रह गये। छायाओ का नाच

---

*मुझे होने दो तुम्हारा गायक, जो मध्य रात्रि की घडियो को अपनी व्यथा से भरे; तुम्हारा स्वर, तुम्हारी वीणा, तुम्हारी वंशी, तुम्हारा झूलते हुए धूपदान से उठता हुआ गन्ध-धूम; तुम्हारा मन्दिर, तुम्हारा कुंज, तुम्हारी देववाणी, तुम्हारे दिवर्ण स्वप्नदर्शी सन्देशवाहक की उत्तेजना!

—जॉन कीट्स

समाप्त हो गया, एक धुँधली लाल झलक छत पर रह गयी। रेखा का चेहरा मजे ताँबे-सा दीखने लगा।

वह बोली, "तुम्हे—नौकुछिया याद है ?"

भुवन ने सिर हिलाया।

"मैंने—माँगा था—और तुम रोये थे।"

भुवन ने हाथ झुका कर उस के ओठ ढँक दिये। रेखा ने उस का हाथ हटा कर कहा, "तब तुम ने क्या कहा था—याद है ?"

भुवन ने फिर सिर हिला दिया।

"तुम ने कहा था, 'यह इनकार नही है'   तुम ने कहा था, 'जो सुन्दर है उसे मिटाना नही चाहिए—जोखम मे नही डालना चाहिए'   कहा था न ?"

भुवन ने फिर सिर हिला दिया।

रेखा थोडी देर चुप रही। फिर उस ने कहा, "तो वह सब मै तुम से कहती हूँ। यह भी प्रत्याख्यान नही है भुवन—मैं सचमुच तुम्हारे पैर चूम सकती हूँ—"

वह जैसे उठने को हुई, भुवन ने उसे रोक दिया। वैसे ही थपकता रहा।

थोडी देर बाद रेखा ने फिर कहा, "भुवन, इस विषय को समाप्त मान लिया जाये—क्या इसे फिर उठाना होगा ?"

भुवन ने कहना चाहा, "पर मैंने तो फिर जोखम उठाया था—और उस से सुन्दर पुष्ट ही हुआ, नष्ट तो नही हुआ—" पर कह नही सका, स्वयं उसे ही लगा कि दोनो बातो मे कुछ अन्तर है। फिर उस ने कहना चाहा, "जोखम तो हर सुन्दर चीज में है—बल्कि आनुपातिक होता है," पर यह बात भी उस से कहते नही बनी। वह केवल रेखा का कन्धा थपकता रहा।

थोडी देर बाद बोला, "अच्छा रेखा, तुम्हारी यही इच्छा है तो—यही सही। पर उस से पहले कुछ और कह लेने दो—और उसे याद रखना—भूलना मत कभी।"

रेखा ने उस का थपकता हाथ पकड कर निश्चल कर दिया, और प्रतीक्षा मे चुप पडी रही।

"रेखा, जो कुछ हुआ है, मुझे उस का दुःख नही है, परिताप नही है। और जो हुआ है उन मे मेरा मतलब केवल अतीत नही है, भविष्य भी है—कारण भी, परिणाम भी। और यह नकारात्मक बात लगती है—मैं कहूँ कि मैं प्रसन्न हूँ : एक आनन्द है मेरे भीतर—एक शान्ति—भविष्य के प्रति एक स्वागत-भाव   यही मैं तुम से कहना चाहता हूँ—वह जो आयेगा—आयेगा या आयेगी, यह तो मुहावरा है—वह मेरा है, मेरा वांछित है—उस से मैं कतराऊँगा नहीं, वह तुम मुझे दोगी। भूलना मत—तुम्हे और तुम्हारी देन को मैं वरदान कर के लेता हूँ।   " भुवन का स्वर भर आया, वह चुप हो गया।

रेखा ने बड़ी गहरी साँस ली। भुवन का हाथ खींच कर अपनी पलकों पर कर लिया,

वही पकडे रही। उँगलियो की अतिरिक्त स्पर्श-सवेदना ने जाना, पलको के भीतर आँखे हिल रही है। थोडी देर बाद अपनी मध्यमा भुवन को कुछ ठडी लगी—आँख की कोर पर होने से वह भीग गयी थी। उस ने दूसरा हाथ बढा कर कर्णमूल छुआ, गीला था। हथेली से उस ने उसे पोछ दिया, कुछ समीप सरक कर बैठ गया।

छत की वह लाल झलक भी बुझ गयी। वर्षा फिर होने लगी थी। भुवन ने रेखा को और अच्छी तरह ओढा दिया, कुछ झुक कर कोहनी टेक कर बहुत हलकी थपकी से रेखा को थपकने लगा।

रेखा सो गयी। थोडी देर बाद जागी और कम्बल का आधा हिस्सा खीच कर भुवन पर कर दिया, उस का हाथ पकड लिया और फिर सो गयी

भोर के फीकेपन के साथ बारिश का जोर का एक झोका आया, तो भुवन जाग गया, उस ने देखा, वह पलँग के एक सिरे पर तीन-चौथाई ओढे सोया है, रेखा न मालूम कब उठ कर चली गयी है। उस ने बदन ठीक से ढँक लिया, पर एक अजब सूनापन उस मे भरने लगा उस ने औंधे हो कर तकिया खीच कर आधा छाती के नीचे कर लिया कि उस के सिरे में मुँह छिपा लेगा—कि सहसा हडबडा कर कोहनी के सहारे उठ बैठा। तकिये के नीचे कुछ था। टटोल कर देखा—किताब-सी, आँखो के पास ला कर देखा, पहचान गया—रेखा की कापी।

आशका की एक लहर उस के मन मे दौड गयी। रेखा क्यो यह वहाँ छोड गयी है—कब ? कही

वह हडबडा कर उठा, दबे पाँव कमरे से बाहर निकला, बरामदे से गैलरी मे होता हुआ रेखा के कमरे के दरवाज़े पर पहुँच गया। झाँक कर देखा, परदे के पार कुछ दिखता नही था पर भीतर के असम प्रकाश की झलक मिलती थी—तो लकडियाँ जल रही है यानी अभी जलायी गयी है, रेखा थोडी देर पहले ही आयी होगी। पहले उस ने चाहा, किवाड खोल कर भीतर जाय या कम-से-कम झाँक कर तसल्ली कर ले, फिर न जाने क्यो उसे विश्वास हो गया कि रेखा कमरे मे है और सोयी है या कम-से-कम बिस्तर मे तो है, और वह वैसे ही दबे-पाँव लौट गया। पलँग पर लेट कर कापी को एक हाथ मे पकडे हुए वह प्रकाश की प्रतीक्षा करने लगा—बत्ती जलायी जा सकती थी पर उसने नही जलायी, उतावली उस मे नही थी, कोई उत्कठा नही, केवल एक स्थिर विश्वास-भरी प्रतीक्षा—हर बात का समय है, समय आने दो, वह होगी, कापी में जो-कुछ है वह भी वह जानेगा समय पर—ठीक समय पर

* * *

जो जानने का कारण है, उसे लोग कितना कम, और जो जानने का कोई कारण नही है उसे कितना अधिक जानते है, इस की पडताल की जाय तो कदाचित् यही मान लेना

पडेगा कि जानने का कारण न होना ही जानने के लिए पर्याप्त और वास्तविक कारण है ! वकील से विदा ले कर हेमेन्द्र ने रेखा के बारे मे इधर-उधर जो पूछ-ताछ करनी शुरू की, तो उसे बहुत-सी आश्चर्यजनक बातें मालूम हुई । 'रेखा ?' मुस्कराहट । रहस्य । 'जाने दीजिए--किसी स्त्री की बुराई नही करनी चाहिए ।' चेहरे पर दर्द का भाव । 'लेकिन आज-कल की औरते भी—कुछ पूछिए मत—हिन्दुस्तान को यूरोप बना दिया है—बल्कि यूरोप मे भी ऐसा न होता होगा ।' 'कहे कैसे, कहने की बात भी हो ? पर आप उस के हितैषी मालूम होते हैं' 'वह तो—अपने यारो को ले कर पहाडो की सैरे करती-फिरती है—कभी इस को, कभी उस को—नौकरी का तो सिर्फ़ बहाना है, कभी किसी के साथ रहती है कभी किसी के' इस के बाद एक कटु कर्तव्य को साहसपूर्वक कर चुकने का क्लान्त पर आत्म-तुष्ट भाव ।

हेमेन्द्र ने सहसा नही माना । उसे इस बात का गर्व था कि वह लोगो को पहचानता है । और रेखा ? रेखा तो बरसो तक उस की व्याहता रही है—साथ सोया नही तो क्या, उसे पहचानता तो है पर कई जगह से एक-सी बात सुन कर उस का निश्चय कच्चा पड गया, और जब यह मालूम हुआ कि रेखा अपने शिकार प्राय लखनऊ से चुनती रही है और उन में से एक का नाम भी लिया गया—चन्द्रमाधव—तब उस ने लखनऊ जा कर पता लगाने की ठानी । यो रेखा क्या करती है, उसे क्या—उसे रेखा से कुछ लेना-देना नही है, केवल तलाक !—पर जिस के साथ बरसो का सम्बन्ध रहा है (क्या खूब शब्द है सम्बन्ध—साथ बँधना !) उस के बारे में कौतूहल स्वाभाविक ही है न. .

चन्द्रमाधव उसे देख कर आश्चर्य-चकित रह गया । "मिस्टर हेमेन्द्र—आप यहाँ—ह्वट ए सर्प्राइज ! मैंने तो आप को पत्र लिखा था—मिला ?"

हेमेन्द्र ने भी आश्चर्य से कहा, "मुझे—पत्र ? मुझे तो नही मिला—कब लिखा था ?"

"अभी कुछ दिन पहले—डेढ-दो महीने—"

"तब हो सकता है पीछे आये—मैं भटकता रहा, सिंगापुर था, फिर बर्मा होता आया हूँ । कोई खास बात थी ?"

"नही, यो ही । पर चलिए—शैल वी गो एड हैव ए ड्रिंक ?"

साथ बैठ कर शराब पीने की एक कला है । हेमेन्द्र बहुत अच्छा साथी था । अवश नहीं होता, लेकिन बातो में गैर-जिम्मेदारी की वह ठीक मात्रा होती है जिस से रस आता है . गैर-जिम्मेदारी की भी, और—अश्लीलता की भी, यद्यपि जो रस देती है, जीवन को उभारती है उसे अश्लीलता नही कहना चाहिए

हेमेन्द्र को चन्द्रमाधव ने पत्र तो लिखा था, पर रेखा के बारे में बातचीत शायद इस रासायनिक सहायता के बिना न कर पाता । पर प्यालो मे वह सहज भाव से बात कर गया; हेमेन्द्र की सुनी बातें उस से खण्डित भी हुई, पुष्ट भी, निस्सन्देह अगर हेमेन्द्र उसे मुक्त कर दे तो वह शादी करना चाहेगी; क्योंकि अब शादी के सिवा और चारा क्या हो

सकता है, और शादी भी जल्दी । इस पर उस ने एक भद्दी कहानी भी सुना दी थी जो किसी मध्य-कालीन फ्रांसीसी किस्से मे उस ने पढी थी—एक औरत शादी के लिए जल्दी मचा रही थी क्यो कि सवाल यह था कि शादी पहले होती है कि बच्चा, किसी तरह शादी हो गयी थी, दूसरे दिन सवेरे बच्चा हुआ था, और लोग नये बाप को बधाई देने आये थे उस के पुरुषार्थ पर—सुहाग-रात भर मे यह जादू !

दोनो ज़ोर से हँसे थे, फिर बात रेखा के विषय से कुछ दूर हट गयी थी, चन्द्र अपनी घरवाली की बात करने लगा था, हेमेन्द्र ने उस मलय मेम की कुछ बात बतायी थी, इस पर दोनो सहमत हुए थे कि औरत दुनिया की सब मुसीबतो की जड है, लेकिन उस के बगैर रहा भी नही जाता—इसी लिए तो वह मुसीबतो की जड है । चन्द्र ने आँख मार कर कहा था, "दोस्त, सुना है तुम्हारा काम तो उस के बगैर चल जाता है—" और हेमेन्द्र ने उसी सुर मे जवाब दिया था, "चल जाता था, पर अब यह लत लग गयी !" और दोनो ठहाका मार कर हँसे थे । "तो दोस्त, रेखा को वापस ही क्यो नही बुलाते—मजा आ जाये एक बार बुला लो तो !" हेमेन्द्र क्षण-भर तक सोचता रहा था, फिर उसे बात बडी मनोरजक जान पडी थी और वह हँसने लगा था । "पति के अधिकार हाँ, इतने बरसो बाद पति के अधिकारो का दावा करूँ तो—" नही, यह बहुत ज्यादा मज़े की बात थी, इतनी कि हँसा भी न जाये, इस पर तो एक दौर और होना चाहिए "लेकिन वैसे मै मज़े मे हूँ —उस के जो जी मे आवे करे—कुतिया ! फिरने दो आवारा "

चन्द्रमाधव ने तय किया कि 'हेमेन्द्र इज आल राइट ।' हेमेन्द्र ने भी उस समय तय किया कि 'चन्द्र इज ए नाइस फेलो ।' दूसरे दिन सवेरे अवश्य इस पर उस का निश्चय कुछ दुर्बल हो आया, पर हेमेन्द्र उन लोगो में से नही था जो रात के निश्चयो पर सवेरे कोई गहरी अनुशोचना करते है । रात रात है, दिन दिन, मलय मे रह कर तो वह और भी अच्छी तरह जान पाया है कि दोनो के विचार, दोनो के दर्शन, दोनो का जीवन ही अलग-अलग है

लेकिन, वाकई, रेखा को चिट्ठी तो लिखी जाय, और कुछ नही तो शुगल रहेगा ! वह उस के साथ रह कर उस से बात कर सकता, तो और अच्छा होता, पर अब तो वह नही हो सकता—न वह उस के पास जा सकता है, न रेखा उस के पास आयेगी—अब तो चिट्ठी ही है । सहसा जीवन के खोये हुए अवसरो का तीखा बोध उसे हो आया रेखा भी एक खोया हुआ अवसर था—कितना बडा अवसर—कैसे विदग्ध विलास का अवसर .

किसी बेहया ने ठीक कहा है—अन्तिम समय मे मानव को अनुताप होता है, तो अपने किये हुए पाप पर नही, पुण्य करने के अवसरो की चूक पर नही, अनुताप होता है किये हुए नीरस पुण्यो पर, रसीले पाप कर सकने के खोये हुए अवसरो पर

*   *   *

कमरे से रेखा वहुत देर तक नही निकली, नाश्ता भुवन ने अकेले ही किया। उस के वाद ही रेखा ने उसे वुला भेजा।

वह पलग पर तकियो के सहारे लेटी हुई थी, कन्धो पर शाल ओढे और पैरो पर कम्वल, वीच मे उस ने वारीक काली धारियो वाली उन्नावी रग की साडी पहन रखी थी जिस से उस के चेहरे का पीलापन कुछ कम खटकने वाला हो गया था।

"मेरी तवीयत ठीक नही है भुवन—यही वैठो—"

"क्या वात है, रेखा ?"

"कुछ नही, चक्कर आते हैं—और मतली होती है—वही सब—" कहती हुई वह थोडा लजा कर मुस्करा दी।

भुवन ने कहा, "डाक्टर को नही वुलाना चाहिए, रेखा ?"

"वुलाऊँगी, वुलाऊँगी · अभी मुझे सोच तो लेने दो—"

"इस में सोचना क्या है, रेखा ? कामन सेस की वात है—"

"सो तो है। पर—सोचना भी तो है। आजकल में ही वुला लूँगी डाक्टर को भी एक वार—"

"मुझे आज श्रीनगर जाना है—मै वुला लाऊँ ?"

"आज फिर ?"

भुवन ने वताया कि उसे लौटना है; शीघ्र ही वह फिर छुट्टी ले कर आ जायेगा। थोडे दिन वाद ही दशहरे की छुट्टियाँ भी पडती है, उन से लगी हुई छुट्टियाँ लेगा ताकि लगातार काफी दिन तक रह सके। आठ-दस दिन मे ही वापस पहुँच जायेगा—हो सका तो और भी जल्दी।

रेखा चुप-चाप उसे देखती रही।

"क्या सोच रही हो, रेखा ?"

"कुछ नही। ठीक कहते हो तुम ."

भुवन को डाक्टर की वात फिर याद आ गयी। उस के वहुत आग्रह करने पर रेखा ने वचन दिया कि दो-तीन दिन के अन्दर ही वह स्वय डाक्टर के पास जायगी और उस के आदेशो का पालन भी कड़ाई के साथ करेगी। फिर उस ने कहा, "श्रीनगर जाओगे तो वक्त हो तो मिसेज ग्रीव्ज से भी मिल आना—तुम्हें अच्छी लगेगी वुढिया। और उसे यह भी कह आना कि तुम फिर आओगे।"

भुवन ने स्वीकार कर लिया।

दोपहर तक वह रेखा के पास ही वैठा रहा, कभी वातें करता और कभी किसी पुस्तक मे कुछ पढ कर सुनाता; वारिश थमी थी पर वादल वैसे ही थे और निश्चय था कि फिर वरसेंगे, भुवन ने फिर आग जलवा दी थी और ढेर-सी लकडियाँ भी चुनवा कर रख दी थी कि आग वरावर जलती रखी जा सके। दोपहर के भोजन के वाद, रेखा को भी स्वल्प कुछ

खिला कर वह चला गया। शाम को अपना सब प्रबन्ध कर के लौटा, दूसरे दिन तडके ही ताँगा उसे लेने आयेगा ताकि वह सबेरे की पहली बस पकड सके जो शाम को उसे जम्मू पहुँचा दे; मिसेज ग्रीव्ज से भी वह मिल आया, चाय भी उसी के साथ पी।

जब वह वापस आया तब रेखा सो रही थी। भुवन चुपचाप उस के कमरे मे जा कर बैठ गया; उस मे एक सुखद गरमाई थी, और दयार की लकडी की प्रीतिकर गन्ध कमरे की हवा को एक ताजगी दे रही थी। लकडी का कभी-कभी चटकना, गाँठो के गन्ध-रसो का फुरफुरा कर जलना, रन्ध्रो से रुद्ध गैस का सीत्कार के साथ मुक्त होना और शिखाओ की हलकी सुरसुराहट—ये सब एक बडे मधुर और धीमे सलाप की तरह थे, जो रेखा के साथ उस के मौन सलाप की मानो पीठिका था . .एक तन्द्रा-सी उस पर भी छा गयी।

रेखा ने जाग कर कहा, "तुम आ गये, भुवन ?" और उस के कुछ पूछने मे पहले ही कहा, "मै बहुत अच्छी हूँ। सो चुकी, अब चाय पी जाय—पियोगे ?"

भुवन ने उठ कर सलामा को आवाज दे दी।

रात मे फिर हलकी बारिश होने लगी। भुवन के कमरे में भी आग जलायी गयी, पर वह रेखा के पास ही आराम-कुरसी लिये बैठा रहा, रेखा लेटी रही। एक मौन-सा उन पर छा गया, रेखा ने कहा, "जाओ सोओ, भवन, तुम्हें सबेरे जाना है।"

भुवन वोला, "बहुत सबेरे जाना हो तो रात को जागने में ही सुविधा होती है। यह तो आजमाया नुस्खा है।"

रेखा मुस्करा दी। "मै तो तैयार हूँ—रात को तो ठीक रहती हूँ। काफी भी पिलाऊँगी।" फिर सहसा गम्भीर हो कर, "नही, भुवन, सोओ तुम। अच्छा, ठीक बारह बजे तुम चले जाओगे—हाँ ?"

भुवन ने आकर उस के माथे पर अपने ओठ रख दिये, बहुत देर तक उस के बाल सूँघता रहा। फिर पहले-सा बैठ गया, केवल दोनो के हाथ बराबर उलझते-सुलझते, एक दूसरे को सहलाते खेलते रहे, मानो उन की बातचीत से अलग, अपने ही किसी रह-सलाप मे व्यस्त, तल्लीन . .

ठीक बारह बजे भुवन ने उठ कर रेखा का माथा चूमा—फिर क्षण-भर उस की आँखो में देख कर उस की पलकें, गाल, कर्णमूल, फिर नासापुट, ओठ, फिर उस के कठ-मूल को चूम कर धीरे से कहा, "गॉड ब्लेस यू" और धीरे-धीरे उस के कन्धे से अँगुलियो तक उस की बाँह सहलाता हुआ चला गया।

सबेरे फिर मिलने की बात नही थी, पर जब वह तैयार हुआ तो एक ड्रेसिंग गाउन पहने और सिर पर शाल लपेटे, मधुर उनीदी आँखो वाली रेखा दरवाजे पर आ कर खडी हो गयी। भुवन ने उसे अन्दर खीच कर किवाड उढका दिये। और कहा, "तुम क्यो उठी रेखा ? तुम्हारे उठने की तो बात नही थी—"

"तुम चुपके से चोर की तरह चले जाते ?"

15

"नही, वह तो नही सोचा था—मैं आता और मिल जाता। अब तुम खड़ी रहोगी और मैं जाऊँगा तो—अधिक चुभेगा . ।"

"नही भुवन, ठीक है, टेक ए गुड लुक एट मी ह्वेन यू गो*—मैं भी देखूंगी—"

भुवन ने कुछ सहम कर कहा, "मै हफ़्ते-भर मे वापस आ रहा हूँ, रेखा।"

"जानती हूँ। विदा को थियेटर नही बना रही, भुवन! लेकिन सब विदाएँ अन्तिम होती हैं—चरम कोटि का जोखम ।"

"मैं छोटा था, तब एक डरावना स्वप्न देखा करता था। दोनों हाथो को अलग करता हूँ, फिर ताली बजाने लगता हूँ तो न जाने क्यो, हाथ टकराते ही नही, एक-दूसरे से छूते नही, न मालूम कैसे एक-दूसरे के पार निकल जाते हैं। और स्वप्न देख कर न जाने क्यो डर लगा करता था, हालाँकि है हँसी की बात, डरने की नही।"

"हाँ। जब भी सम्पर्क टूटता, है तो फिर कभी होगा कि नही, नही कहा जा सकता। आशा ही होती है।"

"पर सम्पर्क तो नही टूटता, अलग होना और बात है, सम्पर्क—"

"वह तो दूसरे स्तर की बात है भुवन; उस पर मैंने तुम्हें विदा कब किया है? उस पर 'तू ही है, मैं नही हूँ'—हमारा प्रत्येक क्षण हमारे सारे अनुभव का पुंज है उस स्तर पर ."

ताँगा आ गया था। भुवन ने रेखा के दोनो हाथ अपने हाथो मे लिये, फिर सहसा मुड़ कर बाहर चला गया। रेखा बरामदे में आ कर खडी रही; ताँगा चला तो दोनो एक दूसरे की ओर देख कर मुस्कराते रहे जब तक कि चेहरे ओझल न हो गये .

* * *

सातवे दिन ही भुवन लौट आया। उस ने सोचा था कि शाम तक वह पहुँचेगा, पर पहुँचा देर रात को। बारिश हो रही थी और नदी बहुत चढ आयी थी। दोपहर को उसने तार दे दिया था: 'शाम को पहुँच रहा हूँ' पर रात को बँगले पर पहुँच कर उसे बाहर मे ही न जाने क्यों लगा मानो अब उस के पहुँचने की बात न थी—क्या तार नही पहुँचा ?

वह ताँगे से उतरा तो सलामा आ गया। सलाम कर के बोला, "मेम सा'ब की तबीयत ठीक नही है—"

"कहाँ है—कमरे में जा सकते हैं?" कह कर भुवन उत्तर की प्रतीक्षा न कर के रेखा के कमरे की ओर बढ गया, धीरे-से दस्तक दे कर क्षण-भर बाद किवाड खोल कर भीतर चला गया।

---

*जाते हुए एक बार मुझे अच्छी तरह देख लो।

नीचे टेबल लैम्प का प्रकाश कम था, क्षण-भर वह ठिठक रहा। फिर सहसा उस के मुँह से निकला, "रेखा।"

रेखा पलँग पर सीधी लेटी थी, चेहरा बिल्कुल पीला, निश्चल, माथे पर बल लेकिन वे भी निश्चल, मानो देर से दर्द सहते-सहते जड हो गये हो . भुवन ने छादन उठा कर प्रकाश कुछ बढा दिया, रेखा ने ज़रा भी हिले बिना क्षीण स्वर में पूछा, "कौन है ?" और भुवन का स्वर सुन कर वैसे ही निश्चेष्ट भाव से कहा, "तुम आ गये भुवन क्यो आ गये तुम।"

भुवन सन्न रह गया। जल्दी से रेखा के पास घुटने टेक कर उस के माथे पर हाथ रख कर बोला, "क्या हुआ है रेखा ?"

रेखा कुछ नही बोली। उस का शरीर काँपने लगा, पहले थोडा-थोडा, फिर जोर से, ओठो की रेखा खिच कर पतली हो आयी; बन्द आँखो की कोरो से आँसू झरने लगे, टप-टप, टप-टप .

भुवन भी जड बैठा रहा, न हिल-डुल सका, न बोल सका।

कई मिनट बाद उसे ध्यान आया कि वह भीगा हुआ है, वह उठ कर अपने कमरे में कपडे बदलने चला गया। जल्दी से सामान ठीक-ठाक कर, कपडे बदल वह फिर रेखा के पास कुरसी खीच कर बैठ गया। उस की दर्द से सिकुडी भौहो को देखता, फिर मानो साहस जुटा कर धीरे-धीरे उन सलवटो को सहलाने लगा।

उस से भौंहें कुछ सीधी हो गयी, जैसे दर्द की खीच कुछ कम हुई। भुवन ने फिर पूछा, "रेखा, क्या हुआ है, क्या तकलीफ है ?"

रेखा के आँसू फिर टप-टप ढरने लगे—अब की बार शरीर को कँपाते हुए नही, यो ही, मानो अवश शरीर से स्वय झर रहे हो। भुवन-बार-बार उन्हें पोछने लगा।

थोडी देर बाद रेखा के ओठ हिले। वह कुछ कह रही थी। भुवन आगे झुक गया। रेखा ने आँखें खोल कर उसे देखा, फिर आँखें बन्द करते हुए कहा, "भुवन, मेरे भुवन, मुझे माफ कर दो—"

भुवन ने और भी व्याकुल हो कर पूछा, "बात क्या है, रेखा ?"

सहसा उस की ओर करवट फेर कर रेखा बिलख-बिलख कर रो उठी।

भुवन सुन्न बैठ रहा।

दरवाज़े पर दस्तक हुई।

भुवन उठ कर गया, सलामा था। बोला, "खाना तैयार है हजूर।" भुवन कहने को था कि नही खाऊँगा, पर रुक गया और बोला, "अच्छा, हम अभी आते हैं।"

द्वार बन्द कर के फिर वह रेखा के पास लौट आया। धीरे-धीरे रेखा शान्त होने लगी। थोडी देर बाद वह कोहनी के सहारे उठ बैठी, फिर पलँग से पैर नीचे लटका कर उस ने स्लीपर टटोले और खडी हो गयी, ड्रेसिंग रूम की ओर जाने लगी। उस की अटपटी चाल

देख कर भुवन सहारा देने लगा, पर उस ने सिर हिला दिया।

दो-तीन मिनट बाद वह मुँह-हाथ धो कर लौटी। चेहरा बिलकुल पीला, लेकिन स्निग्ध, सलवटें हट गयी थी। चाल वैसी ही निर्बल, मगर सकल्प-शक्ति के सहारे सीधी। पलँग पर बैठ कर उस ने पैर ऊपर समेट लिये, क्षण-भर आँखे बन्द की मानो इस आने-जाने के श्रम से टूट गयी हो, फिर सहसा उस के चेहरे पर ऐसी दिव्य मुस्कान खिल आयी कि भुवन विमूढ देखता ही रह गया—इतना दुर्बल् पीला चेहरा, इतनी दुर्बल, वेदना-जर्जर देह, अभी पहले की वह अवश रुलाई, और—यह मुस्कान!

उस की विमूढता देख कर रेखा ने कहा, "पगले, ऐसे स्टेयर नही करते। इस मुस्कान का सम्मान मुस्कान से होता है—समझे ?"

भुवन जैसे-तैसे मुस्करा दिया।

"मै ठीक हूँ अब। तुम जाओ, खाना खा कर जल्दी से आ जाना मेरे पास—"

"पर रेखा, तुम्हे—"

"जाओ न, खाना खा आओ, अच्छे भुवन, राजा भुवन—त्रिभुवन के महाराज—'महाराज ए कि साजे एले मम हृदयपुर माँझे'—जाओ खाना खा आओ!"

भुवन वैसा ही विमुग्ध खडा हो गया। "अच्छा, अभी आया।"

उस ने बाहर निकल कर किवाड बन्द किये कि रेखा एक हलकी-सी कराह के साथ मानो टूट कर पीछे गिरी, क्षण-भर के लिए अँधेरा हो गया, फिर उस ने ओठ काट लिये और निश्चल पडी रही, दर्द के स्पन्दनो के साथ क्षण गिनती हुई

* * *

बाधा की सब सम्भावनाओ को काट कर भुवन फिर दबे-पाँव कमरे मे आया—कपड बदल कर, गर्म चादर ओढ कर, पैरो में मोज़े पहन कर।

रेखा सो रही थी।

परली दीवार मे सटी तिपाई पर दवा की दो-एक शीशियाँ रखी थी। भुवन दबे-पाँव जा कर देखने लगा। दवाएँ पेटेट थी, डाक्टर की दी हुई भी हो सकती थी और स्वय लायी हुई भी, ऐसी कोई दवा न थी जिस से कुछ पता लगे कि रेखा को तकलीफ क्या है। फिर उस ने देखा, एक खाली डिब्बा पड़ा है जिस के अन्दर शीशी नही है। यह दर्द को दबाने और नींद लाने की दवा थी। शीशी क्या हुई ? भुवन ने लौट कर रेखा के पलँग के पास की छोटी मेज़ देखी; ऊपर तो नही, पर एक तरफ़ के खाने में शीशी खुली रखी थी, गोलियो को ढँकने वाली रुई का गाला भी बाहर रखा था, उस के पास छोटे गिलास में ज़रा-सा पानी। तो रेखा ने दवा खायी होगी. .भुवन फिर उसे देखता रहा, उसकी साँस नियमित चल रही थी—बल्कि कुछ भारी, थोडी सरसराहट के साथ जैसी दवा की नीद से उन लोगों में भी होती है जिन की नींद का निश्वास-प्रश्वास साधारणतया बिलकुल अश्रव्य होता है

भुवन ने लैम्प का छादन झुकाया और धीरे-धीरे कमरे से बाहर हो गया।

अपने कमरे मे जाकर वह टहलने लगा। रेखा सो रही है, इस ज्ञान से उसे कुछ तसल्ली थी; पर उसे हुआ क्या है? कमरे के चक्कर काटते-काटते उसे सहसा लगा, वह बन्दी है—इस कमरे का, इस बेपनाह बारिश का, और अपनी अज्ञता का ऐसे ही जेल के कैदी अपनी बेबसी मे चक्कर काटते होगे कदम नाप-नाप कर—उस की बेबसी बदतर है क्यो कि उस पर कोई बन्धन नही है, कोई उसे रोकता नही है

थोडी देर बाद वह लेट गया और बारिश की टपाटप सुनने लगा। सोचना—अनुक्रमिक चिन्तन—उस ने छोड दिया, जो विचार उठता, उठता, फिर स्वय लीन हो जाता, फिर कोई सर्वथा असगत दूसरा उठता और विलीन हो जाता—मानो बुलबुले, प्रत्येक गोलायित, सम्पूर्ण, अनन्य-सम्बद्ध, नश्वर

न मालूम कितना समय ऐसे बीत गया। फिर बारिश की टपाटप की सम्मोहनी ने उसे भी तन्द्रालस कर दिया। वह भी न मालूम कितनी देर।

सहसा वह हडबडा कर उठ बैठा। क्या हुआ? क्या उस ने कोई पुकार सुनी थी—कोई कराह? वह कान लगा कर सुनने लगा कि बारिश के शब्द के ऊपर कुछ सुन सकें। पर नही

उठ कर उसने किवाड खोला और बरामदे से होकर रेखा के कमरे की खिडकी के पास गया। हाँ, थोडी देर बाद भीतर से स्पष्ट शब्द आया—निस्सन्देह कराह का स्वर। वह लपक कर भीतर गया।

रेखा कराह रही थी। पर वह कुछ अस्पष्ट कह भी रही थी भुवन ने सुना "जीवन . .जान प्राण "

भुवन ने उसे सँभाला। उसने आँखो से ड्रेसिंग रूम की ओर इशारा किया; भुवन उस की बाँह कन्धे पर डाल कर सहारा देने से अधिक उसे उठाये हुए बाथ-रूम के दरवाज़े तक ले गया, एक हाथ से दरवाजा उस ने खोला और पूछा, "जा सकोगी?"

रेखा ने सिर हिला दिया, बाँह छुडा कर किवाड के सहारे खडी हुई और भीतर जाने लगी। जाते-जाते ड्रेसिंग की अलमारी की ओर उस ने इशारा किया: "रुई—"

भुवन ने वहाँ से डाक्टरी रुई का बंडल निकाल कर दे दिया। रेखा ने किवाड़ बन्द कर दिया, भुवन खडा रहा।

रेखा लौटी तो किवाड़ के सहारे भी नही खड़ी हो पा रही थी। भुवन ने सँभाल लिया और ले जाकर पलँग पर लिटा दिया।

थोडी देर रेखा मूर्च्छित-सी रही, फिर उसने आँखें खोली और कहा, "मेरे जीवन ..' और फिर ओठ काट लिये, दर्द से उठ बैठी। फिर उस ने पहले की भाँति इशारा किया, भुवन अब की बार उसे सीधे उठा कर ही ले गया, एक हाथ से कुरसी खीच कर बाथ-रूम के दरवाज़े के आगे रख दी, और रेखा को बिठा दिया। रेखा अन्दर गयी,

लड़खडाती लौट कर कुरसी पर बैठी, वहाँ से भुवन फिर उठा कर पलग पर ले गया। लेट कर फिर वह अस्पष्ट पुकारने लगी—"जान, प्राण—" लेकिन भुवन उसके ऊपर झुका है इस का उसे होश नही था, और उस के शब्द भी मानो शब्द नही थे, केवल कराह को छिपाने का एक तरीका।

भुवन एकाएक उठ कर ड्रेसिंग-रूम मे गया, कुरसी उठा कर बाथ-रूम में रखने चला, पर एक कदम अन्दर रख कर ठिठक गया।

कटार की कौंध-से तीखे क्षण में वह सब समझ गया। और एक उन्मत्त फुर्ती से वह काम करने लगा।

रेखा के पलँग के पास एक कुरसी उस ने रखी, उस पर एक चिलमिची, तिपाई पर से सामान उठा कर उस पर पानी का भरा जग, रुई और साबुन-तौलिया, दूसरे जग मे पानी भर कर आग के पास गर्म होने के लिए रख दिया, स्टोव पर केतली मे भी; फिर बाथ-रूम में जा कर उस ने चिलमिची खाली की, उसे धो कर पलंग के पास फर्श पर रख दिया। रेखा इतनी देर अर्द्ध-मूर्च्छित थी, अब फिर सचेत हुई और उठने का यत्न करने लगी, भुवन ने कहा, "रेखा, मैंने सामान यही रख दिया है—मै बाहर जाता हूँ—"

रेखा ने किसी तरह अपने सारे बल को समेट कर कहा, "मुझे माफ कर दो, प्राण मेरे—" और एक दुर्बल हाथ उस की ओर को बढाया। भुवन ने उसे पकडते हुए कहा, "रेखा, यह हुआ क्या—तुम डाक्टर के पास नही गयी थी—"

"गयी थी—गयी थी मै—"रेखा का उत्तर मानो एक चीख थी, "तभी तो—भुवन मुझे माफ—"

"क्या?" आश्चर्य के थप्पड़ से भुवन का स्वर खुरदरा हो आया था; उसे फिर सयत कर के किसी तरह उस ने कहा, "क्या, रेखा—तुम ने—"

रेखा ने सिर हिलाया। साथ ही कहा, "तुम—ज़रा बाहर जाओ भुवन—"

वह जल्दी से जाने लगा तो रेखा ने कहा, "मेज पर दो चिट्ठियाँ है, ले जाओ—" बाहर निकल कर उस ने देखा, एक चिट्ठी अपरिचित अक्षरो मे, दूसरी परिचित—चन्द्रमाधव की, अपरिचित हाथ की चिट्ठी उलट कर उस ने हस्ताक्षर देखे—हेमेन्द्र। चिट्ठियाँ उस ने पूरी नही पढी, यद्यपि छोटी थी, जल्दी से नजर उन पर दौडा गया, फिर भी जो-जो पद या पदांश उस ने पढा वह नोक-सा धँसता चला गया। वह जल्दी से कमरे की ओर लौटा, रेखा फिर कराह रही थी—चिट्ठयाँ जैसे-तैसे जेब में ठूँस कर वह अन्दर चला गया। चिलमिची ले जा कर धो कर उस ने फिर स्थान पर रख दी।

रेखा ने कहा, "तुम्हें कितना सता रही हूँ—मै बहुत लज्जित हूँ भुवन—"

"किस डाक्टर के पास गयी थी तुम?"

भुवन के स्वर में अविश्वास था; रेखा ने कहा, "झूठ नही बोलती, भुवन, अच्छे डाक्टर के पास गयी थी—सर्जन के—"

"अच्छा डाक्टर! यह अच्छे डाक्टर का काम है ?" भुवन की वाणी मे अवश रोष उभर आया।

रेखा ने कहा, "भुवन, तुम अभी मुझे छोड कर चले जाओगे तो मुझे शिकायत नही होगी। जाओ, मै कहती हूँ—गाड ब्लेस यू, प्राण।"

भुवन चुपका हो गया। रेखा थक कर लेट गयी, थोडी देर बाद फिर उठी और भुवन कमरे से बाहर चला गया।

फिर लौटा तो रेखा का चेहरा सफेद हो रहा था। थोडी देर बाद रेखा ने आँखे खोली तो भुवन बोला, "मै डाक्टर बुला कर लाता हूँ—ऐसे नही—"

रेखा ने सहसा चीख कर कहा, "नही भुवन, तुम मेरे पास से नही जाओगे।" फिर कुछ सयत हो कर "या—जाते हो तो—अच्छा।"

वह फिर मूर्च्छित-सी हो गयी।

थोड़ी देर बाद फिर जागी, उस की मुद्रा देख कर भुवन बाहर जाने लगा, पर किवाड पर न जाने क्यो रुक गया। मुड कर देखा तो रेखा फिर पीछे गिर गयी थी। वह लौट आया। "नही सकती, भुवन—और नही सकती—"

भुवन थोडी देर सकुचाया खडा रहा। फिर उस ने लैम्प और परे की ओर मोड दी, रुई का बडा-सा टुकडा ले कर तह जमायी, और रेखा की ओर झुक गया। रेखा ने हाथ रुई की ओर बढाया। पर वह निर्जीव-सा रह गया, रुई को ठीक से पकड भी नही सका—

हाथ धोकर भुवन फिर लौटा तो उसे लगा, रेखा अभी फिर उठना चाहेगी। उस ने घडी देखी, रात के साढे ग्यारह बजे थे। ऐसे तो रात नही कट सकती। वह.. वह सहसा निश्चित कदमो से बाहर निकल गया। क्वार्टर तक जा कर उसने सलामा को बुलाया, अपने कमरे मे ला कर उसे एक चिट्ठी लिख कर दी, और उसे कहा, "मेम-साहब की हालत नाजुक है—दौडे हुए मिशन अस्पताल जाओ और उन को बोलना कि एम्बुलेंस गाडी ले कर आये—डाक्टर भी साथ मे, फौरन—जाओ, शाबाश—"

सलामा गया। भुवन फिर रेखा के कमरे में लौटा।

रेखा ने वह इशारा करना भी छोड दिया। वह अर्द्ध-चेतन अवस्था ही स्थायी हो गयी। भुवन ही थोडी देर बाद उठता, एक पट्टी उठा कर दूसरी लगा देता, हाथ धो कर फिर आ जाता

रेखा का कराहना भी बन्द हो गया था। कभी वह हलका-सा 'हूँ-हूँ' करती, नही तो मौन . एक अजब डरावना सन्नाटा छा गया था। भुवन वर्षा का स्वर सुन रहा था। बीच-बीच में कभी अचानक कुछ गिरने का 'धप्' का स्वर सुनाई देता था—पहले वह समझ न सका कि यह क्या है, फिर सहसा जान गया पके फल . .रात के सन्नाटे में फल का यह चू पडना हैबतनाक था—मानो एक द्रुत कारणहीन मृत्यु आ कर किसी को ग्रस ले

अगर सलामा असफल रहा, अगर रात को डाक्टरो ने उस की न सुनी—वह स्वय जाता तो और बात थी—अगर अस्पताल मे एम्बुलेंस न हुई—उस ने लिख तो दिया था, डाक्टर तो आयेगा पर अगर पैदल आना हुआ तो—ओह रेखा, यह तुम ने क्या किया—

वह फिर उठा। बाथ-रूम की ओर जाते हुए उस ने अपने हाथो की ओर देखा—सहसा ऐसा सिकुड गया मानो आसन्न वार के आगे कोई सिकुड जाय सर्जन—हुँह, हत्यारा! सर्जन-सर्जन—बीनकार सर्जन हत्यारा कौन? हत्यारा वह है, वह स्वय—पर रेखा, रेखा, यह तुम ने किया क्या—क्यो

हाथ धो कर वह फिर लौट आया।

रेखा ने आँखे खोल दी। स्थिर भाव से, मानो दर्द उसे नही है। भुवन अचम्भे में देखन लगा, तो वह बोली, "अब दर्द नही है, भुवन। मैं सुन्न हो गयी हूँ। तुम चले नही गये, भुवन, थैंक यू।"

उस का स्वर बहुत धीमा और दुर्बल था, पर टूटा नही, स्पष्ट। भुवन के मन के निचले किसी स्तर में प्रश्न उठा—क्या यह अन्त तो नही है। दिये की आखिरी दीप्ति? पर इस से वह मानो और केन्द्रित हो आया रेखा की बातो पर, अस्पष्ट कही बात भी मानो किसी अपर इन्द्रिय से स्पष्ट सुनने लगा।

"तुम मेरे लिए यह भी करोगे नही सोचा था। मैं तुम्हे केवल एक्स्टेसी देना चाहती थी। यह नही . यह गलीज काम—मेरे भुवन ।"

भुवन ने घने उलाहने स्वर में कहा, "मुझ से पूछ ही लिया होता, रेखा? मै तुम्हे कह गया था कि—"

"भूली नही, भुवन! पर—तुम्हें—उसे—लज्जा नही देना चाहती थी; तुम्हारा सिर झुके, यह नही चाहती थी—किसी के आगे नही, और उस—उस राक्षस के आगे. ."

हेमेन्द्र की चिट्ठी के फ़िकरे उस की स्मृति के आगे दौड गये। क्या इसी से—? हेमेन्द्र तो स्वयं मुक्ति चाहता है—हाँ, ऐसे भी मिल सकती शायद—और बदला भी—काहे का बदला, वह नही जानता .

भुवन ने तौलिया उठा कर पट्टी फिर बदली।

"भुवन—एक बात पूछूँ—न चाहो तो उत्तर न देना, क्या तुम—मुझे—घृणा—मुझे अब भी प्यार कर सकते हो?"

"अब—ज्यादा, रेखा; जितना कभी नही किया उतना—"

रेखा ने आँखे बन्द कर ली। मुस्कराना चाहा। ओठ खुले और ज़रा-सा खिंच कर रह गये। भुवन ने देखा, ओठ भी सफेद हैं—बल्कि धूमिल; ज़रा-सा गीलापन लिये; और रेखा ने फिर आँखें खोली तो उस ने लक्ष्य किया, कोये भी पीले हैं—पीले और मैले, और पुतलियाँ कान्तिहीन यद्यपि बढी हुई. . .वह प्रार्थना करता हुआ झुका, "ईश्वर, रेखा इस स्पर्श को अनुभव कर सके—शरीर से भी, मन मे भी—ईश्वर, यह एक सन्देश उस की

चेतना तक पहुँच जावे—" और रेखा का नम माथा उस ने चूमा, फिर ओठों से ही उस की पलकें बन्द करते हुए पलके।

रेखा निश्चल हो गयी। भुवन ने घडी फिर देखी। एक। अब तक तो एम्बुलेस आ जानी चाहिए थी अगर अस्पताल मे होती—क्या होगा?

भुवन ने रेखा पर झुक कर कहा, "अब तुम मुझे माफ कर दो, रेखा, अब जो मेरी बुद्धि मे समाता है करूँगा।"

उस ने बहुत-सी रुई ले कर पट्टी लगायी, नया तौलिया ले कर कमर पर लपेट दिया, फिर कम्बल अच्छी तरह उढा कर रेखा को करवट घुमा कर नीचे भी दबा दिया। बाहर से एक बरसाती ला कर रेखा के बगल मे बिछायी, उसे उठा कर बरसाती पर लिटाया और बरसाती को लपेट दिया। कमरे और बरामदे के किवाड खोल दिये, अपने कमरे मे जा कर उन्ही कपडो पर ओवरकोट पहना। दूसरी बरसाती सिर पर ओढी और भीतर आ कर रेखा के नीचे दोनो बाँहें ऐसे डाली कि उस की ओढी हुई बरसाती रेखा के सिर और पैरो पर आ जाय। फिर उस ने रेखा को उठा लिा और बाहर चल पडा। ऐसे उठाये कितनी दूर जा सकेगा, उस ने नही सोचा। कन्धे पर उठा कर जरूर अस्पताल तक के तीन मील जा सकता, पर उस से शायद रक्त-स्राव अधिक हो इस लिए गोदी में ही उठाना ठीक था।

अगर एम्बुलेस आयी? तो हर्ज नही, रास्ते में मिलेगी ही। और अगर नही आयी? तो ऐसे भी वह तीन बजे तक अस्पताल पहुँच ही जायेगा

वह तो पहुँच जायेगा, पर रेखा भी पहुँचेगी कि नही

पौने दो. वह बडी सडक पर आ गया था, कुछ आगे भी चल सका था। एक बार एक पेड के नीचे उस ने तीन-चार मिनट रेखा को लिटा कर बाँहें सीधी की थी। बाकी चलता रहा था। हाँ, तीन नही तो सवा तीन तक वह अवश्य अस्पताल पहुँच सकेगा . .

तभी दूर पर रोशनी दीखी—मोटर की ही है—फिर मोटर की घर्र-घर्र सुनायी पडी—क्या एम्बुलेंस है? न भी हो तो क्या? भुवन ने रुक कर, सड़क के किनारे की ढाल पर एक पैर टेक कर रेखा का भार एक घुटने और बाँह पर लिया, दूसरी बाँह मुक्त कर ली कि हिला कर गाडी रोकेगा।

* * *

एम्बुलेस ही थी। उस के पास आ कर रुक गयी, सेवक कूद कर उतरा; भुवन ने चाहा कि रेखा को उठा कर स्ट्रेचर पर लिटा दे, पर बाँहें उठी नही। सेवक ने खीच कर स्ट्रेचर निकाला और हाथ दे कर रेखा को लिटा दिया, ऊपर से डाक्टर ने स्ट्रेचर को अन्दर खीचा, सेवक सवार हो कर भुवन को भी खीचने लगा तो डाक्टर ने कहा, "आप आगे—मरीज़ को देखना होगा।" आगे से सलामा उतर रहा था, भुवन ने उसे सवेरे ही

अस्पताल पहुँचने को कहा और सवार हो गया। गाडी मुडने लगी तो डाक्टर ने भीतर से आवाज दी, "ठहरो अभी—इजेक्शन लगा लें।" एजिन बन्द हो गया।

फिर वही टपाटप—अब और भी जोर से क्यो कि बूँदे एम्बुलेंस की लकडी और कैनवस की छत पर पड रही थी। भुवन के कान गाडी के भीतर से आने वाले शब्दो पर लगे थे, पर शब्द बहुत कम थे, और जो थे उन से कुछ नही जाना जा सकता था कि क्या हो रहा है।

एकाएक भुवन को लगा कि रेखा कराही है। भीतर से डाक्टर का स्वर आया, "विल यू कम ओवर, प्लीज ?"

भुवन उतर कर पीछे गया। पहले कपडे हटा कर रेखा को अस्पताल के चार कम्बल ओढा दिये गये थे, वह सचेत थी और धीरे-धीरे कुछ कह रही थी। "भुवन जान भुवन " भुवन ने पास झुक कर कहा, "मैं हूँ, रेखा, अब कोई चिन्ता नही—"

रेखा ने कहा, "कहाँ—"

"एम्बुलेंस मे—अभी अस्पताल पहुँच जायेगे—"

उस ने आँखे बन्द कर ली, पर कुछ गुनगुनाती रही। भुवन ने और पास झुक कर सुना . "क्लान्ति—आमार—क्लान्ति—"

वह समझ गया। रेखा ने उस के जाने से पहले जो कापी उसे दी थी, उस मे कही यह गीत लिखा था ·

क्लान्ति आमार क्षमा करो हे प्रभु
पथे यदि पिछिये-पिछियें पडि कभु।*

भुवन ने एक बार डाक्टर की ओर देखा, फिर उतर गया। डाक्टर ने कहा, "मैं भी सामने आता हूँ।" पीछे नर्स और सेवक रह गये। एजिन स्टार्ट हुआ, गाडी घूमी और चल पडी। डाक्टर ने कहा, "रक्त रोकने के लिए इजेक्शन दिया है—"

भुवन ने पूछा, "खतरा है ?"

"हाँ। बहुत टाइम लूज हुआ। लेकिन—आई थिक शी विल पुल थ्रू। अभी आपरेट करना होगा। शायद ब्लड ट्रासफ्यूज़न भी—"

भुवन ने कहना चाहा, "मेरा रक्त अगर ठीक हो तो दे सकता हूँ," पर न जाने कैसी झिझक ने उसे रोक दिया—ऐसी बाते उपन्यासो में होती है—पर डाक्टर ने कहा, "ब्लड प्लाज्मा है अस्पताल में—फॉर्चुनेटली।"

फिर अस्पताल में रुकने तक कोई नही बोला। उतरते ही डाक्टर ने कहा, "नर्स टॉमस, आपरेशन-रूम तैयार कराओ। डाक्टर रेवर्न को खबर करो। इम्मीजिऐट आपरेशन।"

स्ट्रेचर उतार कर अन्दर ले जाया गया। भुवन को खोया-सा खडा देख कर डाक्टर ने कहा, "आप घर जावेंगे या—" फिर सहसा याद कर के कि वह कैसे आ रहा था, "आप आ

*रवीन्द्रनाथ ठाकुर

कर वेटिंग-रूम मे बैठिए—आइ विल ट्राइ एड सेड यू सम टी। आइ एम सारी देयर्स नथिंग एल्स आइ कैन।"

भुवन ने कहा, "नो थैंक यू, डाक्टर, बट आइ'म मोस्ट ग्रेटफूल—फर्स्ट थिंग्स फर्स्ट।"

डाक्टर ने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया और फुर्ती से भीतर चला गया।

भुवन ने घडी देखी। ढाई। उस ने कुरसी पर बैठते हुए तक लम्बी साँस ली। अगर उस का बचाया हुआ यह आधा-पौन घटा विचार उस ने वही छोड दिया। सहसा कहा, "अब भी, रेखा, अब और ज्यादा—जितना कभी नही किया।"

मानो जवाब मे रेखा के अन्तिम शब्द उस के मन में गूंज गये, और उसे जान कर अचम्भा हुआ कि कापी का गीत उसे याद है, वह गुनगुनाने लगा

क्लान्ति आमार क्षमा करो, क्षमा करो प्रभु .

* * *

वह थक गया था। लेकिन थकान उस की पेशियो में नही थी, एक जडता उस के मन पर छा गयी थी। कारण बँगले से रेखा को उठा कर आने का श्रम नही था, कारण यह था कि बहुत-कुछ समझ चुकने पर भी इस विलायती गोरख-धन्धे के अलग-अलग टुकडे जुड नही रहे थे, पूरा चित्राकार नही बन रहा था।

वेटिंग-रूम ठडा था। निश्चल बैठे रहने से ठड उस के पैर के पंजो से चढती हुई सारे शरीर मे छा गयी थी, वह धीरे-धीरे ठिठुर रहा था।

रेखा की कापी से उडते हुए वाक्य सामने आते और विलीन हो जाते, फिर दूसरे आते और वे भी विलीन हो जाते, वेदना और अभिप्राय का एक अवदान उसे दे कर · लेकिन ये ही वाक्य कभी दुबारा आ जाते तो नयी वेदना ले कर, और शायद कुछ नया अर्थ भी ले कर

एक तन्द्रा उस पर छा गयी। अगर उस के पैर गीले, ठिठुरे हुए न होते तो वह ऊँघ जाता, यो वह एक तन्द्रिल अवस्था में बैठा था।

हठात् एक निश्चलता के बोध ने उसे जगाया। बारिश थम गयी थी। उस ने खडे हो कर अँगडाई ली। स्निग्ध अलसाये शरीर की अँगडाई सुखद और स्फूर्तिदायक होती है पर ठिठुरे शरीर की अँगडाई मानो और भी जड़ बना देती है। वह बाहर के मडप मे गया · बादलो की चादर अब भी समान रूप से आकाश में फैली थी, पर अब उन में एक फीका-पन था—भोर होने वाला है .भुवन ने फिर घडी देखी—छ बजने को थे। वह फिर वेटिंग-रूम की ओर मुडा।

प्रवेश कर के वह बैठने ही लगा था कि भीतर की ओर से एक नर्स निकली। उस ने कुछ अचम्भे से पूछा, "आप कैसे ?" फिर सहसा समझ कर कहा, "वह एमर्जेन्सी केस—"

भुवन ने कहा, "हाँ, हाउ इज शी ?"

"आपरेशन तो ठीक हो गया। सो गयी है। मैं और पूछ आऊँ ?"

भुवन ने निहोरे से कहा, "प्लीज—"

नर्स चली गयी। थोडी देर वाद डाक्टर भी साथ आ गया। डाक्टर बोला, "शी इज आल राइट नाउ। थैंक गाड। लेकिन—मिनटो की बात थी—शी इज ए वेरी ब्रेव वुमन " सहसा रुक कर उस ने पूछा, "लेकिन—हाउ डिड इट हैपन—कोई चोट-ओट—"

भुवन क्या कहे ? सक्षिप्त हाँ कह देने से तो नही चलेगा, और चोट के वारे मे इतनी जल्दी कहानी भी वह नही गढ सकेगा ! वोला, "आई डोंट नो—इट हैपंड सडनली—"

डाक्टर ने सिर हिलाया। ऐसा भी होता है फिर पूछा, "आप उन के—"

भुवन ने कहा, "नही—ओनली ए—रिलेशन।" फिर परिचय देना उचित समझ कर वोला, "भुवन इज माई नेम—डाक्टर भुवन।"

डाक्टर ने हाथ वढाते हुए कहा, "माइन'ज़ पिनकॉट।" हाथ मिलाते हुए पूछा, "मेडिकल ?"

भुवन ने कहा, "नो फिजिक्स। कास्मिक रेज एड थिंग्स।"

डाक्टर ने कहा, "मिल कर खुशी हुई—पर अब मुझे जाना चाहिए। मस्ट गेट सम स्लीप—"

"थैंक यू, डाक्टर—"

सहसा कुछ याद कर के डाक्टर ने कहा, "आपरेशन के वाद होश आते ही—शी आस्क्ड फार यू। लेकिन—" कन्धे सिकोड कर उस ने यह आशय व्यक्त किया कि भेंट तो, आप समझ सकते है, असम्भव थी। फिर कहा, "आप शाम को आइये—आई थिंक शी विल वी एवल टु सी यू।"

डाक्टर चला गया। भुवन चलने लगा, तो नर्स उस की ओर देख कर मुस्करा दी। मुस्कराहट औपचारिक थी, पर उस ने मुस्करा कर उसे स्वीकार किया, कहा, "गुड मार्निंग —" और वाहर निकल आया। सडक पर जगह-जगह पानी पडा था, लेकिन वह तेज़ चलने लगा। नदी की ओर—नदी वहुत चढ आयी थी और यद्यपि लोग उठे नही थे, वह मानो वही मे उन के सहमे हुए भाव देख सकता था. .उदास, मलिन, गन्दा, वदवूदार श्रीनगर, गँदली मैला ढोने वाली नदी, उदास मैला आकाश, जैसे म्रियमाण आवादी पर पहले मे छाया हुआ कफ़न—भुवन ने ऊपर वायें को देखा, शकराचार्य की पहाडी भी उतनी ही उदास, केवल उस धुँधले, तोते के पिंजरे जैसे मन्दिर के ऊपर की वत्ती टिमटिमा रही थी भोर के तारे की तरह धैर्यपूर्वक

उस की चाल और तेज हो गयी। डाक्टर का कहा हुआ वाक्य उस की स्मृति में गूंज गया—"शी इज़ ए वेरी ब्रेव वुमन।" एक स्निग्धता उस के भीतर फैल गयी, उस ने नि शब्द भाव से भीतर ही भीतर कहा, "रेखा. "

ताँगा ले कर वह वापस पहुँचा तो सलामा दौडा हुआ आया। "मेम साहेब—"

भुवन ने कहा, "ठीक है, सलामा अब कोई फिक्र नही है।

"बहुत तकलीफ हो गया—"

"हाँ, सलामा। ख़ुदा ने रहमत की—"

भीतर जा कर वह कपडे बदलने लगा। सलामा ने आ कर आग जलाने का उपक्रम किया। सहसा जेब मे कागज की खडखडाहट से भुवन को याद आया—वे चिट्ठियाँ। उन्हें निकाल कर वह रेखा के कमरे मे रखने चला। जहाँ से उठायी थी, वही रखने लगा तो देखा, वहाँ रेखा के हाथ के लिखे और भी दो-एक कागज है। थोडी देर वह झिझका, फिर उस ने मान लिया कि वे भी उसी के लिए है, और खडा-खडा पढने लगा।

"नही जानती कि क्या कहूँ—मेरी सब इन्द्रियाँ जड हो गयी है। कहना चाहती हूँ बहुत, लिखना नही, पर कह सकूँगी नही, वह मुझी में रह जायेगा—जैसे कितना कुछ अनभिव्यक्त रह जायेगा!"

"तुम जब आओगे, तब क्या मेरी आँखो मे नही पढ सकोगे कि मेरा यह आहत, चिथडे-चिथडे हो गया जीवन क्या कहना चाहता है?"

"मै मानती हूँ कि अगर प्यार यह भी परीक्षा नही सह सकता तो वह प्यार नाम का पात्र नही है। मै—मै ने तुम्हारे साथ आकाश छुआ है, उस का व्यास नापा है उस सेटिंग में यह छोटी-सी बात लगती है—फिर लगता है कि हमे जोडने वाले सूक्ष्म सजीव तन्तु ही काट दिये जा रहे है क्या हम टूट कर अलग हो जायेंगे? टूट कर नही, बह कर सही, अनजाने बहते रह कर इतनी दूर भी तो हट जा सकते है कि एक-दूसरे को छोड दे —मुक्त कर दे मै नही जानती क्या होगा—जो हो, अब हो वही है तो वही हो— जिस सौन्दर्य को लिये हम पास आये थे, उसी को लिये दूर हट जायें—अगर हम और निकट आये तो विधि को धन्यवाद दें, और अपनी आत्मा के सामर्थ्य भर ऊँचे उठें— सुन्दर के आकाश में। इतना छोटा-सा है मानव-जीवन "

"काश कि मै कह सकती—एक ही बात जो कहना चाहती हूँ वही कह सकती, पर सिर्फ आँसू ही कह सकते है। मै टूट गयी हूँ, भुवन, मेरे जीवन, जैसी पहले कभी नही टूटी थी। लेकिन इतना कह दूँ—मुझे किसी बात का पछतावा नही है, और इस से भी दस-गुनी बुरी तरह टूट जाऊँ तब भी तुम्हारे साथ के एक क्षण को, हमारी साझी अनुभूति के एक स्पन्दन को भी छोड देने को मै राजी नही हूँ मेरे महाराज, यह याद रखना, और मुझे क्षमा कर देना "

"लेकिन प्यार क्या है? तुम सचमुच प्यार करते हो, करते थे? यह दर्द क्यो है— किस लिए है? जो कुछ हुआ है, हो रहा है, क्यो—किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए?"

"जो अब तक है, सुन्दर हो और हमारे व्यक्तित्वो का प्रस्फुटन हो एक तुम्हारे और एक मेरे व्यक्तित्व का नही, तुम्हारे अनेक व्यक्तित्वो का, मेरे भी अनेक व्यक्तित्वो

का सम्मिलन और विकसन—केवल मेरे उस एक पहलू का नही, जिसे मैं तुम्हे नही छूने दूंगी—जिस से मैं तुम्हे असम्पृक्त रखूंगी भुवन, तुम्ही को नही, उस अपने को भी जिसे तुम ने प्यार किया है—अगर तुम ने किया है; जिस ने तुम्हे प्यार किया है जैसा और किसी को नही—प्राणी, वस्तु, विचार, भावना, किसी को नही . ''

"शिथिल मत होना, महाराज, आत्मा का शैथिल्य ही प्यार की पराजय है, हम दोनो को बराबर सतर्क, सजग रहना है—क्यो कि हम दोनो ऐसे आत्म-निर्भर स्वत.-सम्पूर्ण है कि सहज ही वह कर, सिमट कर अलग हो जा सकते है—अपनी-अपनी सीपियो में बन्द, अन्तरग अनुभूति के छोटे-छोटे द्वीप—और इस प्रकार बरसो जीते रह सकते हैं, मौन, शान्त, लेकिन एकाकी. . "

"मैं सोचती हूँ और अवाक् रह जाती हूँ . मेरे साथ यह कैसे घटित हुआ—मेरे, जिस मे सब वासना, सब आकाक्षा मर गयी थी—जो स्त्री होना भी नही चाहती थी, माँ होना तो दूर . .

ह्वेन आइ एम डेड, माई डीयरेस्ट
सिंग नो सैड सांग्स फार मी—*

यह तुम ने पढी है ? मुझे पूरी याद नही है, पर तुम्हें होगी—"

"मैं नही जानती कि यह भूल है या ठीक, भुवन, कर्म को जज करना मैंने छोड दिया है, क्योकि जब जज करने बैठती हूँ, तो मानना पडता है कि न्याय करने वाला विधाता ही गलतियाँ करता है ! अब—इतना ही मानती हूँ कि भीतर से जो प्रेरणा है—अगर उस के साथ ही पाप का, अपराध का बोध नही जुडा हुआ है तो—वही ठीक है, वही नैतिक है । यह नैतिकता अधूरी हो सकती है—पर इस लिए कि उसे देने वाला व्यक्तित्व अधूरा है । उस व्यक्तित्व की तो वह सर्वोच्च रचना है—उसी की कल्याण-कामी, कल्याण-प्रद सम्भावनाओ की सर्व-श्रेष्ठ अभिव्यक्ति . ."

"भुवन, बडा कष्ट है भुवन . .यहाँ सब-कुछ बदल गया है—कमरे में अँधेरा है—कैसा गाढा द्रव अँधेरा जिस में मैं हाथ-पैर मारती हूँ. . .फिर कभी हवा इतनी हलकी हो जाती है कि मै हाँपने लगती हूँ, साँस लेती हूँ, पर हवा नही मिलती—ऊपर लगता है मृत्यु मँडराती है, उस के पखो की फडफडाहट सुन पडती है—मुझे माफ़ कर दो, भुवन, मुझे. . "

"जो सुन्दर है, निरन्तर विकास करता है, रुक नही सकता . दूसरो को आनन्द देता है । तो क्या—मैं भूल करती आयी हूँ, क्या मै बहते पानी को बाँधना चाहती आयी हूँ, क्या मैं ने दूसरो के लिए दु.ख ही की सृष्टि की है ? अगर ऐसा है तो उस का भरपूर दंड मुझे मिले—विधि से, और तुम से भी, भुवन ! लेकिन मुझ में कुछ कहता है कि नही, अपने लिए मैं ने जो किया हो—और, हाँ, तुम्हारे लिए भी, मेरे दु ख के साथी और सहभोक्ता,

* प्रियतम, मेरे मरने पर मेरे लिए कोई शोकगीत मत गाना—क्रिस्टिना रोजेटी

सहस्रष्टा—दूसरो के लिए मैने दु ख नही बोया, भुवन—कह दो कि नही बोया और ये सब झूठ बोलते है—ये खुद असुन्दर को ले कर मुझे भी उस की सडाँध मे पचा देना चाहते है। पर नही, मै नही छूने दूँगी उन्हे कुछ जो मूल्यवान् है—इसी में मै मर जाऊँ तो वह मेरा 'ऐक्ट आफ फेथ'* हो—अभी जो हो भुवन, मै धारे बैठी हूँ कि यह दर्द भी आगे आनन्द देगा क्यो कि वह विश्वास के साथ अपनाया गया है, मै अपने को समर्पित कर के उसे ले रही हूँ "

"तुम अब जब मुझे देखोगे, पहचानोगे ? अपनाओगे ?"

"नही तुम चले जाना भुवन, मुझे अकेली छोड कर चले जाना। जीवन के सारे महत्त्व-पूर्ण निर्णय व्यक्ति अकेले में करता है, सारे दर्द अकेले मे भोगता है—और तो और, प्यार के चरम आत्म-समर्पण का सब से बडा दर्द भी मिलने में जो विरह का परम रस होता है—तुम जानते हो उसे ? समर्पण के धधकते क्षण में जब ज्ञान चीत्कार कर उठता है कि हम अलग ही है, देना सम्पूर्ण नही हुआ, कि मिटने मे भी मै-मै हूँ, तू-तू-है, मै तू नही हूँ और हमारी माँग बाकी है इतना अभिन्न मिलन क्या हो सकता है कि माँग बाकी न रहे ? सारी सृष्टि मे रमा हुआ ईश्वर भी तो अकेला है, अपनी सर्व-व्याप्ति में अकेला, अपनी अद्वितीयता में अयुत, विरही

"इस लिए तुम, भुवन, चले जाना। मै शिकायत नही करूँगी, मन में भी नही। मान लूँगी कि मेरा व्रत पूरा हुआ—कि मैने तुम्हे वही दिया जो देय था, स्वच्छ था और उस से बचा लिया जिस से तुम्हें रखना चाहती थी ."

"ठीकरे ने स्वप्न देखा, वह सोने का अमृत-पात्र है। स्वप्न था, अन्तत. चुक गया। जाग कर उस ने जाना कि वह केवल ठीकरा है। कहने लगा, 'मै देवता के अमृत-पात्र का ठीकरा हूँ।' पर इस लिए क्या वह कम ठीकरा है ? या कि अधिक—क्यो कि वह बृहत्तर सम्भावनाओ का ठीकरा है ?"

"अनाथ, लावारिस धूल "

"तुम्ही में मेरी आशा है, तुम्ही मे मेरे सकल द्वन्द्वो का शमन।".

"वेदो की विवाह की ऋचाएँ है—सुन्दर जानो तो सुन्दर, अश्लील मानो तो अश्लील। मुझे याद आता है—'अस्थि से अस्थियाँ, मज्जा से मज्जा, त्वचा से त्वचा को युक्त करता हूँ ' ठीक कहती है वे, हम ने आँखो से आँखो को वरा था, ओठ से ओठ को, वक्ष से वक्ष को, प्राण से प्राण को, प्यार से प्यार को, और हाँ, वासना से वासना को.

"और यह एक मैला नाखून, एक पार से दूसरे पार तक उस सयुति को फाडता हुआ चला जा रहा है .

"और मै नही जानती कि उत्तरदायी मै नही हूँ .

"मुझे कभी भी माफ करोगे, भुवन ?"

---

* धर्म-परीक्षा

"नही सहा जाता, भुवन ! इस लिए नही कि कष्ट बहुत है, इस लिए कि मै ऐसी लड़ाई लडते थक गयी हूँ जो व्यर्थ है, और जो अनिवार्यतः व्यर्थता ही मे समाप्त हो सकती है.. मान ही लो कि हम रह सकते—घर होता, सयुक्त जीवन होता, वह सर्जन-बीनकार भी आता—फिर क्या ? मान लो कि मै दस वर्ष बाद मरती हूँ—क्या उस से अच्छा नही है कि अभी मर जाऊँ ? या कि दस वर्ष बाद हम उदासीन, अलग हो जायें—उस से हजार गुना अच्छा है आज मर जाना !

"मै विमूढ हो गयी हूँ ! भुवन, मेरी कुछ समझ में नही आता कि क्या हुआ है और हो रहा है। ऐसी ही विमूढ सुन्न अवस्था में मेरे बरसो बीते है, इतना ही जानती हूँ कि तुम —इसी लिए और भी मर जाना चाहती हूँ, क्योकि समझती हूँ, मेरी आकस्मिक अचिन्तित हरकतो से तुम्हे अपार क्लेश होगा। मुझ में डक नही है, फिर भी चोट पहुँचाती हूँ —और तुम चुप-चाप सह लेते हो—क्यो इतने चुपचाप सहते हो, भुवन, तुम्हारी चुप्पी तो मुझे और सालती है, मैं चाहती हूँ कि इसी क्षण धरती मे समा जाऊँ ..

"हजारो है, जिन में प्यार मर जाता है लेकिन जो फिर भी जीते है, हँसते है लेकिन यह मै क्या लिख रही हूँ—क्या कह रही हूँ ? यही कि मै जीती हूँ भुवन, और तुम्हे प्यार करती हूँ · और सब भाव्य और सम्भाव्य अभी पडे रहे जब तक मेरी शक्ति फिर लौट आये—"

* * *

उस शाम को तो नही, अगली शाम को भुवन की रेखा से भेट हुई। दोनो ही कुछ बोल नही सके, रेखा ने एक दुर्बल मुस्कान से उस का स्वागत कर दिया और पडी रही . भुवन पास बैठ गया और स्थिर दृष्टि से उसे देखता रहा। दोनो को लग रहा था कि जिस अनुभूति में से वे गुजरे है, उस के बाद शब्दो में कुछ कहा नही जा सकता—शब्द मानो एक खतरनाक औजार हो गये है जिस की चोट से जो कुछ बचा है वह सब का सब हरहरा कर गिर पड़ेगा—पहले ही उच्चारित शब्द पर सारा भविष्य टँगा हुआ है. . .

फिर रेखा ने एक साथ ही भँवें सिकोडते और मुस्कराते हुए पूछा, "भुवन—अब भी ?"

और भुवन ने कहा, "हाँ, रेखा, ज्यादा—"

मानो हवा में तनाव कम हो गया। रेखा ने तकिया गले की ओर खीच कर जरा-सा ऊँचा कर लिया, भुवन खिडकी से बाहर का दृश्य देखता रहा।

"कैसी हो, रेखा ?"

"ठीक हूँ। और तुम ? क्या करते हो वहाँ ?"

भुवन ने उत्तर नही दिया। "तुम्हारे लिए कुछ लाऊँ—किसी चीज की ज़रूरत—"

"नहीं। अच्छा, दो-एक किताबें ले आना. और—एक छोटी कापी और पेंसिल—"

भुवन मुस्करा दिया। "क्या कहना चाहती हो, रेखा ?"

"जो कह नही पाती—"

"अब भी ?"

रेखा ने भी मुस्करा कर कहा, "अब और भी ज्यादा, भुवन !"

थोड़ी देर फिर दोनो चुप रहे। फिर रेखा ने कहा, "वहाँ मेरी कोई—चिट्ठियाँ आवें तो—तुम पढ लेना। जो ठीक समझो कर देना—चाहे उत्तर दे देना। ओर —चाहो तो—चिट्ठियाँ फाड कर फेक देना।"

"तुम्हारी चिट्ठियाँ !"

"हाँ भुवन—मै स्वय तो कह रही हूँ ! और ज्यादा दिन तो यह बोझ तुम पर नही डालूँगी—यही पाँच-सात दिन। यहाँ कोई डाक मत लाना—अगर तुम ही जरूरी न समझो।"

भुवन ने विरोध करना चाहा कि यह बडा दायित्व है · फिर चुप रह गया—शायद ऐसी कोई चिट्ठी आये ही नही कि उसे सोचना पडे

दूसरे दिन वह रेखा की माँगी हुई चीज़ें और कुछ फूल ले कर पहुँचा। फूल सजाने लगा तो रेखा मुस्कराती देखती रही। फूलदान सजा कर वह उसे घुमा-फिरा कर रेखा की दृष्टि से ठीक कोण पर रखने लगा तो वह हँस पडी। "हाँ, तुम भी इसी एगल पर खडे रहो—तुम्हे भी देखती रहूँगी !"

लेकिन भुवन के आशावाद ने काम नही दिया दो-तीन दिन बाद ही एक बडे लिफाफे मे वकील की चिट्ठी आयी। हेमेन्द्र धर्म-परिवर्तन की दलील दे कर तलाक की माँग कर रहा था, वकील ने राय दी थी कि रेखा भी दोस्ताना तौर पर मामला तय हो जाने दे, और अच्छा हो कि अपनी ओर से मामला किसी वकील को सौंप दे, दोनो वकील आपस मे बात सुलझा कर ऐसा यत्न करेगे कि सब काम स्मूथली हो जायँ। "मेरे मवक्किल का कहना है कि आप भी तलाक चाहती हैं, और किसी तरह के साहाय्य से आप को कोई दिलचस्पी नही है—ऐसी सूरत में यही सब से अच्छा होगा, यो आप को विशेष कुछ कहना हो तो मै भरसक आप की सुविधा प्राप्त करने की कोशिश करूँगा. अपने मवक्किल के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी तो निबाहूँगा ही, पर तलाक के मामले बहुत डेलिकेट होते हैं और उस मे सिर्फ पक्ष ले लेना उचित नही होता। कानून है, लेकिन जीते-जागते मानव प्राणी से बडा नही है .एक वकील के मुँह से ऐसी बात सुन कर आप को अचरज होगा, पर मेरे इस गैर-रस्मी एप्रोच को आप गुस्ताखी न समझेंगी. . "

शाम को भुवन ने और फूल, कुछ फल, बिस्कुट और रेखा के माँगे हुए दो-चार कपड़े आदि सब यथा-स्थान रखते हुए कहा, "रेखा, एक चिट्ठी है—"

रेखा बोली, "मैने तो कहा था—किस की है, हेमेन्द्र की ?"

"नही। पर—"

"अच्छा, लाओ दे दो !"

भुवन से ले कर रेखा ने चिट्ठी आद्यन्त पढ ली। थोडी देर चुप रही, आँखें बन्द कर ली। एक आँसू कोर से ढरक गया। व्यथित स्वर से उस ने कहा, "यह चिट्ठी—तो वह चिट्ठी" और वाक्य अधूरा छोड कर चुप हो गयी। थोडी देर बाद सँभल कर उस ने कहा, "मेरी ओर से पहुँच और धन्यवाद लिख दोगे—यह भी कि मैं वकील—" और सहसा रुक गयी। एक काली छाया चेहरे पर आ गयी। "नही भुवन—मुझ से गलती हुई—यह जिम्मेदारी तुम पर नही डालनी चाहिए थी। लाओ मुझे कागज दो—अच्छा रहने दो—मैं कल लिख रखूँगी, तुम शाम को पोस्ट कर देना।"

अगले दिन उस ने भुवन को तीन चिट्ठियाँ दी। एक वकील के नाम, एक दूसरे वकील के नाम, एक कलकत्ते के किसी पते पर। देते हुए बोली "यह कलकत्ते मे मेरी एक मौसी हैं—यहाँ से उन के पास जाऊँगी।"

भुवन ने चौंक कर कहा "हूँ ? क्यो ? कब—"

"हाँ, भुवन। लगता है, अब जीवन फिर सिफ़र से शुरू करना होगा। माता-पिता तो लौट नही सकते—पर घर की भावना ही सही—"

थोडी देर मौन रहा।

"और तुम भी तो लौटोगे अब—"

"अभी तो मेरी छुट्टियाँ है"

"तो पाँच-सात दिन तो अभी मै भी यहाँ हूँ—"

"तब तक तो मौसम बहुत अच्छा हो जायगा—और कलकत्ता तो इन दिनों—"

"बेगर्स काट बी चूजर्स,* भुवन ! और कलकत्ते नही, शहर से तो बाहर नदी पर रहूँगी—"

"फिर भी—"

सहसा रेखा ने पूछा, "यहाँ बाढ का क्या हाल है ?"

"उतर रही है। कीचड सूख रहा है—"

"यहाँ ऐसी धूप है कि सोच भी नही सकते बाढ़ की बात, जिस दिन आयी थी—जिस दिन तुम लाये थे उठा कर—"सहसा उस का गला भारी हो आया। "भुवन ?" और उस ने भुवन की ओर दोनो हाथ बढा दिये। भुवन, फुर्ती से आगे बढा, दोनो हाथो की उँगलियाँ उस ने अपने हाथो में ली और बारी-बारी से उठा कर ओठो से लगा ली। फिर वह उँगलियो को देखने लगा—ठडी, पीली, नाखून लगभग सफ़ेद और नीचे किंचित् नीलाभ—फिर उस ने धीरे-धीरे हाथ रेखा की बगल में रख कर ढँक दिये।

रेखा के कहने से भुवन फिर मिसेज़ ग्रीव्ज से मिल आया था, और वह आ कर रेखा

*भिखारी की पसन्द का सवाल नहीं होता।

को देख गयी थी। तव से रोज ही आती, प्राय ही खाने का कुछ सामान लाती—केक, मधु, जैम, चाकलेट . .रेखा अस्पताल छोड कर घर जायेगी, इस सूचना से वह वहुत खिन्न थी—"मैंने तो सोचा था, और मुझे कभी ढूंढना नही पडेगा।" वह प्राय' जल्दी ही आती, भुवन देर से आता, कभी उन की भेंट हो जाती, कभी उस के जाने पर ही भुवन पहुँचता ।

भुवन ने कुछ डरते-डरते पूछा, "रेखा, अव—यह तो वता दो कि तुम ने किया क्या था—यह कैसे हुआ ?"

रेखा थोडी देर चुप पडी रही। फिर उस ने कहा, "मैं डाक्टर के पास गयी थी। फिर वापस आयी तो—वह चिट्ठी—" उस ने फिर आँखें वन्द कर ली, थोडी देर वाद फिर कहने लगी, "उस से सव वदल गया। फिर एक दूसरे डाक्टर के पास गयी जो सर्जन भी था—उसे जो कहा सो तो अव छोडो, पर वहुत अनुनय पर वह मान गया। आपरेशन के लिए उसी के क्लिनिक में गयी थी।"

"तो—यह—कैसे—"

उस का प्रश्न समझ कर रेखा ने कहा, "उस ने कहा था कि दो-एक दिन वाद हेमरेज होगा। पर ऐसा, यह अनुमान तो नही था—"

"वह है कौन सर्जन, रेखा ?"

"वह अव जाने दो, भुवन! मैंने उसे वहुत पर्सुएड किया था—वल्कि धर्म-सकट में डाला था। और लापरवाही उस ने नही की। यह मत कहना कि वह प्रोफेशन का कलक है—मैं नही मानूंगी।"

भुवन चुप रह गया, केवल एक लम्वी साँस उस ने ली। थोडी देर वाद उस ने कहा, "लेकिन रेखा, वह चिट्ठी तो—"

रेखा ने एक हाथ उठा कर उसे चुप कर दिया। पीडित स्वर में वोली, "अव वह जो हो, भुवन, इट इज टू लेट—"

जिस दिन रेखा अस्पताल से छूटने को थी, उस दिन भुवन दोपहर को टैक्सी ले कर आ गया। डाक्टर-मेट्रन-नर्स को धन्यवाद दे कर वह रेखा को लेने पहुँचा तो वह धूप में आराम-कुर्सी पर वैठी थी। भुवन ने हाथ वढाते हुए पूछा, "चल सकोगी ?"

"हाँ सकूंगी—पर फिर भी सहारा लूंगी—मे आइ ?" भुवन की वाँह में उस ने वाँह डाल ली और उस पर झुकती हुई चलने लगी।

भुवन ने उसे कार मे विठाया, फिर लौट कर सामान वगैरह ले कर रखा। वखशीशे दी, और आ गया। गाडी चल पडी। रेखा ने कहा, "कितनी सुन्दर है धूप—और रोशनी —मैं मानो फिर से दुनिया को विजिट करने आ रही हूँ—"

अपनी ही वात पर वह उदास हो गयी। "वापस लेकिन कोई कही नही आता।"

"न सही वापस—वापस आना कोई चाहे क्यो ? दुनिया अनवरत अपने को नया करती जाती है—वह नयापन—"

टैक्सी नीची सडक पर नदी के पास गुजर रही थी। वेत के वृक्षो के नीचे कीचड की पपडियाँ जमी थी और सूखने से चटक गयी थी, दरारो के कई पैटर्न उन मे बने हुए थे।

"यही है वह नयापन—देखो न, दुनिया को नया होते हुए ! ठीक है . पर उस का तो सोचो, जो नदी की इस धुलाई मे वह गया—नदी के वे द्वीप जो मिट्टी के ही सही, कितने सुन्दर थे, पर अव हो गये ये सूखती पपड़ियाँ !"

भुवन रेखा की ओर देखने लगा।

"हाँ, मै जानती हूँ, तुम सोच रहे हो, व्यक्ति की भावनाओ—अनुभूतियो का आरोप प्रकृति पर करना बचपन है। मै भी जानती हूँ। फिर भी भुवन—आखिर मै फिर से मिट्टी से ही तो शुरू कर रही हूँ। बाढ के बाद की सूखती पपडी से !"

भुवन धीरे-धीरे उस का हाथ थपथपाने लगा। बोला नही। गाडी बडी सडक छोड कर वँगले की ओर चढ़ने लगी।

"लेकिन यह सेल्फ-पिटी नही है भुवन, मै दीन नही हो रही। जो हमे मिला है, वह वहुमूल्य है—अव भी, वल्कि अव और ज्यादा—" और एक मधुर चितवन से उस ने भुवन को देखा और मुस्करा दी।

गाडी फाटक के अन्दर मुडी। दूर से सेंबो से लदी हुई शाखे दीखने लगी।

रेखा ने कहा, "अव तो सेव पक गये होगे।"

भुवन ने कहा, "हाँ।" फलो पर और पेडो के नीचे की हरियाली पर खेलती धूप अत्यन्त सुन्दर थी, उसे किसी कविता की एक पक्ति याद आयी—'द एपल ट्री, द सिंगिंग, एड द गोल्ड' सुन्दर, व्यजना-भरी पक्ति है—गाल्सवर्दी ने इसी पक्ति को ले कर एक कहानी लिखी है जो उसे कभी वहुत अच्छी लगी थी 'शरद्, धुन्ध और स्निग्ध सुफलता की ऋतु'—लेकिन सहसा उसे याद आयी रात में चुप-चाप टपक पडने वाले पके फल की वह लोमहर्षक आवाज, और एक अनिर्वचनीय गहरी उदासी उस पर छा गयी। पका फल—चुपचाप टपक पडना—उस के वाद फिर ? हाँ, है शरद् की धूप का सोना, पकती दूव का सोना, है वह गिरा हुआ फल भी, पर—क्या वह अन्त है ?

* * *

भुवन दिल्ली तक रेखा के साथ गया।

कलकत्ते की गाडी मे वैठ कर रेखा प्लेटफार्म पर खड़े भुवन को देखने लगी। क्षण-भर के लिए, जैसे सिनेमा मे होता है, एक चित्र घुल कर दूसरे में पल्ट गया . भुवन हाथ से कुछ मसल कर उस की गोली ठोकर से उछाल रहा है—उस का प्लेटफार्म टिकट; फिर

पहला दृश्य लौट आया। न, अब वह भुवन से नही कहेगी, किसी अनुभव को दुबारा चाहना भूल है और अभी वह वैसी यात्रा पर जा भी नही रही वह चुपचाप पडी रहना चाहती है, और—भुवन को भी अकेला छोड देना चाहती है। उस अकेले चिन्तन मे जो निकले, निकले। वह वुद्धिमती होती, तो भुवन को पास रखना चाहती, उस के पास रहना चाहती, उस से बराबर सम्पर्क रखती कि जानती रहे, उस के मन से क्या गुजर रहा है, पर वह वुद्धिमती नही है, न होना चाहती है। उसे कुछ चाहिए नही, उसे कुछ सँभालना नही है—'हाउ टु होल्ड ए मैन'

भुवन ने थोडे फल लेकर उस के पास रख दिये। फिर भीतर आ कर एक नज़र इधर-उधर डाली, फिर विस्तर खोल कर कुछ बिछा दिया, कुछ लपेट कर ऊपर रख दिया। रेखा ने कहा, "यही बैठो न ?"

भुवन कुछ झिझका। जनाना डब्बा था, और भी दो-एक स्त्रियाँ बैठी थी। उस ने कहा, "नही, मै खिडकी पर खडा होता हूँ—"

"टहले—"

"नही रेखा, तुम बैठो। थक जाओगी—और अभी कितना सफर वाकी है।"

रेखा ने हाथ खिडकी पर रखा था भुवन ने वाहर से उस पर अपना हाथ रख दिया। धीरे से पूछा, "ठीक हो न, रेखा ?"

"हाँ, विलकुल तुम ?"

"हाँ—"

थोडी देर वाद भुवन ने पूछा, "रास्ते भर क्या करोगी—कुछ पढने को ले दूं ?"

"क्या ? ये स्टेशन वाली किताबे-मैगज़ीन! न—इस से तो सोऊँगी।"

"तो मै कुछ दूं ? कविता है—ब्राउनिंग—" फिर सहसा रुक कर, "नही और एक चीज देता हूँ—मेरी एक कापी—"

रेखा ने खिल कर कहा, "तुम्हारी कापी, भुवन ?"

भुवन जल्दी से वोला, "नही, वैसी नही, यह दूसरे ढग की कापी है—एकदम भानमती का पिटारा। जो पढता हूँ उस मे जो अच्छा लगता है लिख लेता हूँ—वरसो की पढाई का मुरब्बा है।"

भुवन का सामान प्लेटफार्म पर रखा था खोल कर उस ने कापी निकाली और रेखा को दे दी। रेखा ने सब पन्ने चुटकी मे ले कर फडफडा कर देखे, फिर सहसा कापी उलटती हुई वोली, "दोनो तरफ से लिखी हुई है ?"

भुवन कुछ सकपकाता-सा वोला, "उधर कुछ नही है।"

स्त्री-स्वभाव से रेखा ने पहले 'कुछ नही' वाला पक्ष देखना शुरू किया।

"वह रहने दो, रेखा, अच्छा रेल में पढती रहना—वह जो मेरे अपने दिमाग मे आया लिखता रहा हूँ—"

"ओ—उधर मुरब्बा है, इधर रसायन है," रेखा ने चिढाया। "तो ठीक तो है—पहले रसायन का सेवन, फिर मुरब्बे का—"

"नॉटी वुमन !" कह कर भुवन हँसने लगा।

दूसरी तरफ भुवन की गाड़ी भी लग गयी। कुली ने कहा, "साहब, सामान रख लीजिए नही तो भीड हो जायगी।"

"होने दो।" कह कर भुवन कुछ रुका, फिर उस ने कहा, "अच्छा ले चलो।" फिर रेखा की ओर मुड कर, "मैं अभी आया।" रेखा के हाथ को उस ने थपथपा दिया।

चार-पाँच मिनट मे वह लौट आया। रेखा अपनी कापी में कुछ लिख रही थी, थोडा मुस्करा रही थी। भुवन खिडकी पर खडा हुआ, तो लिखा हुआ परचा फाड कर रेखा ने उसे दिया।

उस ने पढा, "यह जो पड़ोसिन बैठी है, मुझ से पूछ रही थी, ये आप के हज़बैंड है ? मैंने कहा, हाँ। शादी को कितने बरस हुए हैं ? मैंने कहा, सात। बोली, बडी भाग्यवती है आप ! क्यो ? कि सात बरस बाद भी आप के हजबैंड आप को इतना प्यार करते है ! भुवन, आकारो मे हम क्यो इतना बँध जाते है कि आत्मा मर जाय ?"

रेखा की ओर देख कर वह मुस्करा दिया।

थोडी देर बाद गाडी ने सीटी दी। भुवन ने कहा, "पहुँचते ही लिखना, रेखा ! और नियम से लिखती रहना कि कैसी हो—जल्दी से ठीक हो जाओ !"

"लिखूंगी, भुवन ! रेल ही में से नही लिखूंगी, यह कैसे जानते हो ?" वह मुस्करा दी।

गाडी चल दी। भुवन ने उस के दूर हटती खिड़की पर रखे हाथ को दबा कर कहा, "गाड ब्लेस यू।"

रेखा के ओठों की गति से उस ने समझ लिया, वह कह रही है, "एड यू।"

गाडी दूर हट गयी। जब उस की गति तेज हुई, तो रेखा के ओझल होते हुए आकार को एक-टक देखते भुवन को एक अजीब अनुभूति हुई; उसे लगा कि गाडी उस के सामने से दूर नही, उसे भेदती हुई चली जा रही है आर-पार, जहाँ से गुजर रही है वहाँ एक बहुत बडा रिक्त छोडती हुई, उस रिक्त को एक असह्य गड़गडाहट और गर्म फुफकारती भाप से भरती हुई...

एकाएक उस ने अपने हाथ की ओर देखा—उस मे एक कागज था। ओ—हाँ "भुवन, हम क्यो आकारों से इतना बँध जाते है कि आत्मा मर जाय ?"

दूसरे प्लेटफार्म पर दूसरी गाडी है। उस में भुवन का सामान है। वह उस में सवार होगा, फिर वह भी चल देगी, उसे आर-पार भेदती हुई, एक बडा रिक्त बना कर उस में असह्य गड़गडाहट और गर्म भाप भरती हुई। और रेखा...

अन्तराल

रेखा द्वारा भुवन को

वहाँ फूल थे, सुहानी शारदीया धूप थी, और तुम थे ! और मेरा दर्द था ! यहाँ गरम, उद्गन्ध, बौखलायी हुई हरियाली है, धूप से देह चुनचुना उठती है और तुम नही हो। और दर्द की वजाय एक सूनापन है जिसे मै शान्ति मान लेती हूँ .

नदी यहाँ भी है, किनारे वनी हुई पक्की रौंस पर दो-तीन सरुओ की ओट मे—जो ऐसे बने-ठने रहते है कि नकली मालूम हो (और क्या यह समूचा बगीचा ही नकली नही है—नकली इटालियन बगीचे की नकल !)—मै बैठ कर दिन बिता देती हूँ। सामने दक्षिणेश्वर का मन्दिर दीखता है, और घास, उस पार और मेरी रौंस के वीच मे गहरी लाल या कभी काली धारीदार सफेद धोतियाँ पहने वगालिने आती है, नहाने, पानी भरने, कभी झगडने, उन के दुवले कमज़ोर शरीर ऐसे लचकते हुए चलते है कि जान पडता है उन्हे आधार के बिना चलने का अभ्यास नही है, मालच पर पली हुई लता जैसे उस से गिर कर डोल भी नही सकती, वैसे ही—और सोचती हूँ कि सारा कलकत्ता ऐसी मालच-विहीन लताओ से भरा पडा है—क्यो ऐसा है कि जो केवल एक सामाजिक स्तर पर हमें स्वाभाविक लगता या लग सकता है, वह वहाँ पर ऊपर से नीचे तक सर्वत्र लक्ष्य होता है ?

मै क्या लिख रही हूँ, इस से तुम समझ लो कि ठीक हूँ, ठीक वल्कि वहुत अधिक शुश्रूषा पा रही हूँ, ओर सोच करने का अवसर मुझे बिलकुल नही मिलता है। यो वैठी रहती हूँ, और वादलो की तरह विचार तिरते हुए आते और चले जाते है, पर जिसे सोचना कहते है, वह नही हो पाता, कभी विचार की छाया भी चेहरे पर पड जाय तो मौसी 'वच्ची' को ले कर इतना 'फस' करती है कि वच्ची घवरा जाती है, और कान छू लेती है कि फिर कभी नही सोचेगी

यो, बच्चो की तरह जीती हूँ ! कितना आसान होता है वयस्क परिपक्व मनोवृत्तियो से फिसल कर बच्चो के दृष्टिकोण अपना लेना ! लोग जव वूढे होते है, तो ऐसे ही अनजाने फिसल कर बच्चो की मानसिक प्रवृत्तियाँ अख्तियार कर लेते है, उन्हें पता भी नही लगता कि कब दूसरे वचपन में प्रवेश कर गये। क्या मै भी वूढी हो रही हूँ ?

लेकिन मै ठीक हो जाऊँगी—जागूँगी—भुवन, तुम कैसे हो ? पत्र जल्दी लिखना

रे०

रेखा द्वारा भुवन को

भुवन मेरे,

क्यो नही तुम पत्र लिखते ? इतने दिन वाट देखते हो गये, और अव नदी को देखना और अच्छा नही लगता, न अव मन वच्चो की तरह मुकुर वना वैठा रहता है। मेरे विचार

उमडते हैं, तुम तक जाते हैं, तुम्हारी ओर से कोई सकेत नही मिलता तो एक भयानक उदासी मन पर छा जाती है, जिस से लगता है कि कभी उबर नही सकूँगी। कोई इशारा, कोई सकेत तो दो, भुवन—यो क्यो मुझे छोड दिया है तुम ने ?

तुम्हारी ही
रेखा

रेखा द्वारा भुवन को .

भुवन, मैं क्या समझूँ ? तुम क्यो नही लिखते ? क्या तुम ने मुझे छोड दिया, भुवन ? उस दिन तुम ने कहा था, "अब भी—अब और ज्यादा"—क्या वह उसी दिन तक था ? ऐसा है, भुवन, तो ऐसा ही लिख दो—जो भी है स्पष्ट लिख दो ! मै सब सह लूंगी। और सह ही नही, समझ भी लूंगी वैसा ही है, तो शिकायत नही करूँगी; फिर भी कृतज्ञ रहूँगी कुछ तो लिखो, मेरे भुवन !

रेखा द्वारा भुवन को

भुवन,

तो 'इस तरह अन्त होता है सब-कुछ, धडाके के साथ नही, धडाके के साथ नही, रिरियाहट के साथ !' क्या हो गया है, भुवन ? कार्य-व्यस्त तुम हो सकते हो, पर क्या मुझे एक पक्ति लिखने की फ़ुरसत भी तुम नही निकाल सकते ? मैं नही मानती या कि क्या तुम अस्वस्थ हो ? सोचती हूँ, तुम्हारे प्रिंसिपल को तार दे कर तुम्हारा पता पूछूँ, पर उस में भी सकोच होता है। क्या करूँ ?

कभी सोचती हूँ, हर वक्त इस तरह तुम्हारा ध्यान नही करती रहूँगी इसी लिए इधर कुछ काम भी शुरू किया है ! पर अगर सारा दिन भी अपने को उलझाये रखूँ, तो रात को जब सोने जाती हूँ—और फिर नीद में—मैं बिलकुल बेबस हो जाती हूँ, और तुम्हारी सुधि न जाने कहाँ-कहाँ खीच ले जाती है कभी सवेरे सपना देख कर उठती हूँ, तो फिर वह दिन भर छाया रहता है, मुझ से कोई काम नही होता, नशे-से मैं बाहर आ कर बैठ जाती हूँ, और नदी को देखती रहती हूँ, पर नदी भी नदी नही रहती, उस का प्रवाह मेरा तुम्हारी ओर प्रवाह बन जाता है

भुवन, क्या मेरी सुध नही लोगे ?

रेखा

रेखा द्वारा भुवन को

मेरे भुवन,

आज मैं अकेली लम्बी सैर के लिए गयी थी नदी के साथ-साथ ! बादल घने हो कर झुक आये थे, लग रहा था कि बारिश अब हुई, अब हुई, पर उन के नीचे छोटे-छोटे टुकड़े अलग भटक रहे थे और उन को सूर्य का प्रकाश एक नारगी सुनहला रग दे रहा था। भट-कने का मुझ पर वही गहरी उदासी छा गयी और मैं तुम्हारे लिए छटपटा उठी, यो तो

तुम्हारी इस उपेक्षा मे सदैव उदास रहती हूँ और छटपटाती रहती हूँ फिर मन मे विचार उठा, तुम्हारे मौन से मुझे जो इतना कष्ट होता है, मैं जो तुम्हारे इस व्यवहार से मर्माहत हो रही हूँ उस का कारण यही है कि जो मुझे मिल चुका है उसी को और पाना चाहती हूँ। और यह लालच कितना अनुचित है मैं क्यो उदास होऊँ ? मान ही लो कि तुम उदासीन हो रहे हो, कि तुम मुझ से दूर चले जाओगे, तो भी विषाद क्यो—अवसाद क्यो ! जो कुछ भी मैं चाह सकती, वह मैं ने तुम्हारे साथ मे पाया है—प्यार भी, वासना भी, दोनो का चरम सुन्दर रूप—तव और लालच क्यो ? तुम्हारा मौन मुझे खलता है क्योकि मैं अधिकाधिक माँगती हूँ और वह सम्भव नही है, वह उचित भी नही है, अतीत को कोई भविष्य नही वना सकता

इस लिए भुवन, मैं पिछले पत्रो मे कुछ उलटा-सीधा लिख गयी होऊँ तो मुझे माफ कर देना। तुम्हारे मौन पर क्लेश मुझे हुआ है, होता है, मेरा स्नायु-तन्त्र ऐसा जर्जर हो गया है कि जरा-सी वात से झनझना उठता है और मैं झल्ला उठती हूँ—पर इस समय मैं शान्त हूँ, और मैं अपनी आकुलता के लिए क्षमा माँगती हूँ। तुम मुक्त हो भुवन, विलकुल मुक्त, मैं चाहती हूँ कि सर्वदा सगर्व कहती रह सकूँ कि तुम मुक्त हो मेरे भुवन, मुझे भूल जाने के लिए उतने ही मुक्त जितने मुझे प्यार करने के लिए थे और हो तो भुवन, मेरे प्रिय, मेरे क्लेश की परवाह न करो, अगर चिट्ठी लिखने का मन नही है तो मत लिखना, या जव वैसा जानोगे तो मुझे एक पक्ति लिख कर सूचित कर देना कि तुम्हारी भावनाएँ वदल गयी हैं। सह लूँगी

इधर तीन-चार दिन से मैं सोचती रही हूँ कि क्या हमारा भविष्य एक हो सकता है —क्या उस की कोई भी सम्भावना है ? क्या हम फिर कभी मिलेंगे ? मैंने वहुत ठडे दिल से सोचा है, भुवन, और अव कभी यह भी सोचती हूँ कि क्या मुझे जैसे-तैसे वापस हेमेन्द्र के पास ही नही चला जाना चाहिए अगर वह राजी हो ? मैं भीतर मर गयी हूँ, भुवन, तुम से कट कर फिर मैं कही भी वह जा सकती हूँ—किसी भी वुरे से वुरे नर-पशु के साथ भी रह सकती हूँ एक तुम्ही ने मेरी जडित आत्मा को जगाया था—था !— और उस के वाद उस के फिर जड हो जाने पर मैं पहले से वदतर मृत्यु में सहज ही जा सकती हूँ। इसी लिए सोचती हूँ, क्या वही न ठीक होगा टूटी हुई रीढ वाली इस देह के लिए एक सहारा—एक छत—आत्मा की वात तो अव कौन करे !

यह वात मैं कैसे लिख गयी—मैं—यह नही जानती। पर यह आत्मा की जडता की ही एक निशानी है, भुवन ! आशा करती हूँ कि यह अधिक नही रहेगी—यह आहत पक्षी फिर वैसे ही उड सके यह तो असम्भव है, पर—वह अभी नही, वह कभी नही .

मेरी सव शुभाशसाएँ तुम्हारे साथ हैं, भुवन !

तुम्हारी
रेखा

रेखा द्वारा भुवन को :

एक जमाना था जब मैं स्त्रियो को ऐसे समय का हिसाब रखते देख कर हँसती कि अमुक घटना 'अमुक बेटे या बेटी के जन्म से तीन मास पहले' हुई थी; या कि 'जब अमुक एक वर्ष का था' या 'जिस साल अमुक की लडकी की शादी हुई' .और आज मैं स्वय हिसाब लगा रही हूँ, तुम से पहली भेंट से दस महीने बाद, तुलियन से आठ महीने बाद, और तुम्हे अन्तिम बार देखा तब से चार महीने कैसे मानव अपने सारे जगत् को अपने छोटे-से जीवन की छोटी-छोटी घटनाओ के आस-पास जमा लेता है, और विराट् का समूचा सत्य उस निजी छोटे-से सत्य का सापेक्ष्य हो जाता है ! लेकिन वह निजी छोटा सत्य छोटा क्यो है ? विराट् असीम को दिखाने वाली मेरी खिडकी—वह लाख छोटी हो, एक तो मेरी है, दूसरे मेरे लिए विराट् को बाँधे हुए है, विराट् का चौखटा है सोचते-सोचते यह ध्यान आता है, यह झरोखे से देखना गलत है, यह अपने को विराट् से अलग रख कर देखना है, उसे बाहर मान लेना , मुझे चाहिए कि उस मे लय हो जाऊँ घर से बाहर निकलूँ, अपनी अनुभूति के पिंजरे से बाहर निकलूँ और विराट् के प्रति अपने को सौप दूँ, उसी की हो जाऊँ—उस को झरोखे से न देख कर स्वयं उसका झरोखा हो जाऊँ . पर क्या यह भी निरा शब्द-जाल नही है, घूम-फिर कर अपने तक लौट आना नही है ?

तुम्हे देखे हुए चार महीने—तुम से बिछुडे हुए चार महीने—तुम्हारी ओर से कोई पत्र, सूचना, सकेत पाये हुए चार महीने विश्वास नही होता। लेकिन फिर सोचती हूँ, शायद अवचेतन मन मे मैंने इसे स्वीकार ही कर लिया है, तभी तो मैं काल-गणना इस ढग से करने लगी हूँ। क्योकि हम केवल निजी के सहारे नही देखते, उस निजी को अपेक्षा मे देखते है जो हमारे जीवन में महत्त्व का था लेकिन जो था, यानी अब नही है, यानी जिस का बीत जाना, बीत गया होना हम ने स्वीकार कर लिया है 'जिस साल मेरा ब्याह हुआ', इस गणना का कारण एक तो वह सुख है जिसे प्रकारान्तर से याद किया जा रहा है, दूसरा यह है कि वह सुख आज दूर चला गया है क्योकि अगर आज भी निकट और सजीव होता तो उस की बात हम न कर सकते

भुवन, तुम्हे एक खबर देनी है, तीन सुनाइयो के बाद अदालत ने फैसला दे दिया है हमारा विवाह रद्द हो गया है; हेमेन्द्र तो अफ्रीका चला ही गया है और अब मैं भी मुक्त हूँ। मुक्त—किस से मुक्त—किस लिए मुक्त ? मुक्त स्मृतियों को सेने के लिए, मरने के लिए—मुक्त अतीत के बन्धन मे जकडी रहने के लिए तलाक का विधान अच्छा नही है यह कौन कह सकता है, पर कितने अपर्याप्त है मानवीय विधान प्रकृति की समस्याओ के सामने—बल्कि मानव की ही समस्याओ के सामने यो तो शायद यह विच्छेद अभी वैकल्पिक है, पक्का होने के लिए छ मास का अन्तराल होता है न ? पर वह तो कम-से-कम इस मामले में कोरी फ़ार्मेल्टिी है। आज न सही, पाँच-एक महीने बाद सही .रद्द तो वह हो ही गया। लेकिन क्या रद्द हो गया ? वह दर्द ? वह ग्लानि, वह आत्मावसाद,

वे मर्माघात—क्या वे रद्द हो सकते हैं ? कानून मान ले कि उस ने मुक्ति दे दी है, कि एक अन्याय का निराकरण कर दिया है.

अब आगे, भुवन ? मेरा जी नही लगता, और अब कलकत्ते नही रहूँगी। सोचा है कि मौसी को साथ ले कर तीर्थ-यात्रा को निकल जाऊँ। तुम शायद हँसो, क्योकि तीर्थ-यात्रा के लिए जो श्रद्धा चाहिए वह तुम ने मुझ में न देखी होगी, मौसी भी तितीर्षु हो, तीर्थों के भरोसे नही है। फिर भी, एक तो घूमने मे, निरन्तर दृश्य-परिवर्तन मे कुछ शान्ति मिलेगी, दूसरे अपनी श्रद्धा न हो तो श्रद्धावानो की श्रद्धा देख कर ही कुछ सान्त्वना मिलती है या मिल सकती है दो-तीन दिन मे ही हम लोग चल देगे पुरी से आरम्भ कर के क्रमश. दक्षिण जहाँ तक जाना हो सके। यह फरवरी है, सोचती हूँ कि गर्मियाँ उधर कट जायेंगी और बरसात लगते इधर लौट आवेगे।

तुम पत्र तो लिखोगे नही, फिर भी कह दूँ कि पता यही काम देगा, यहाँ से चिट्ठियाँ जहाँ भी हम होगे चली जाया करेंगी।

अच्छा, भुवन विदा दो। चाहती हूँ, झुक कर एक बार तुम्हारे चरणो की धूल ले लूँ।

सदैव तुम्हारी
रेखा

चन्द्रमाधव द्वारा भुवन को

माई डियर भुवन,

तुम्हे चिट्ठी लिखे, तुम से चिट्ठी पाये या तुम्हारे बारे मे भी कोई चिट्ठी पाये बहुत दिन हो गये। लेकिन जानता हूँ, तुम उन लोगो मे से नही हो जो सम्पर्क छूट जाने पर खो जाते है, या जिन का कुछ अनिष्ट हो जाता है जिस बोतल मे कार्क का बडा-सा डाट लगा हो, वह पानी के भीतर छिपी रह कर भी डाट के सहारे डूबती-उतराती रहती है, डूब नही जाती। उसी तरह तुम्हारी जाति के लोग होते है—स्पिरिट के एक लचकीलेपन का डाट बाहर के बोझ को सँभाले और भीतर के खोखल को छिपाये रहता है और तुम लोग तिर जाते हो, जब कि मुझ जैसे डूब जाते है मै जानता था कि मै हलका सफर करने वालो मे हूँ, बाहर का बोझ मुझ पर नही है, पर मै पुरानी लकडी की तरह उतराता हूँ और पानी धीरे-धीरे मुझ में बस जाता है, लकडी सड जाती है और भारी हो कर डूब जाती है।

तुम कहोगे, यह चन्द्र को क्या हुआ कि ऐसा दर्शन बघारने लगा—और वह भी पराजय का दर्शन ! न, पराजय का दर्शन वह नही है, थोड़ा आत्मावसाद है, ठीक है, पर चन्द्र हारने वाला नही, मै अब समझ रहा हूँ कि यह दृष्टान्तो के सहारे जीवन को समझना चाहना ही गलत है, ऊपरी साम्य भीतर के वैषम्य को ओझल कर देता है। लकडी गीली हो कर डूबती है, ठीक है, पर वह क्या मै हूँ ? न, मेरी समझ में आ गया कि वह भी एक

साँचा है, केवल क्लास-भावनाओ का एक पुज , मैं नही सडता, केवल एक भद्रवर्गीय खोल सड गया है—सड जाने दो, सड कर वह झर जायेगा और मुक्त मैं बाहर निकल आऊँगा ! फिर मैं ही उस गली लकडी को पैरों से ठुकराऊँगा, उसे स्वय अपनी ठोकर से अतल गर्त में डुवा दूंगा ! मुझे उस का मोह नही है—मुझे किसी चीज का मोह नही है ।

अवसाद का कारण रहा । लखनऊ में अकेला नही रहता रहा । बीबी-बच्चे आये थे, साथ रहते थे । वह अपने जीवन के साथ समझौता करने की मेरी आखिरी कोशिश थी । कामयावी नही हुई और अव जानता हूँ कि कोशिश ही गलत थी क्योकि यह जीवन ही मेरा जीवन नही है । मैं क्यो इस वुर्जुआ ढाँचे के साथ समझौता करना चाहूँ, क्यो उन मान्यताओं से अपना जीवन बाँधने को राजी होऊँ जिन मान्यताओं को पैदा करने वाले समाज को ही मैं नही मानता ? उन सब को मैंने घर भेज दिया है । मैं भी लखनऊ छोड कर बम्बई जा रहा हूँ दो-तीन विदेशी एजेंसियो का प्रतिनिधि बन कर । यहाँ से सम्वन्ध तो रहेगा पर ऐसा नियमित नही, सवाद भेजा करूँगा । वम्वई मे जिन्दगी है—तेज़ बहती हुई आजाद जिन्दगी, वहाँ काम भी कर सकूँगा, और इस मनहूस ढाचे को तोड गिराने मे भी योग दे सकूँगा—उस नयी दुनिया को वनाने मे, जिस मे मुझ जैसे मेहनतकशो का राज होगा, दूसरों के राज के निरीह साधन हम न वनेंगे क्या इस बात को तुम समझोगे ? तुम अपने विज्ञान को ले कर ही डूबे हो—लेकिन मैं कहता हूँ, यह विज्ञान ही तुम्हे ले कर डूबेगा . क्योकि विज्ञान भी वर्ग-स्वार्थों का गुलाम है—तुम सत्य का शोध नही कर रहे, सत्य कुछ है ही नही, वह केवल एक वर्ग के उपयोगी ज्ञान का नाम है, दूसरे वर्ग का विज्ञान भी दूसरा होगा क्योकि उस की उपयोगिताएँ दूसरी होंगी । यह तुम् ने कभी सोचा है कि तुम्हारा सारा विज्ञान किस काम का है, किस के काम का है, किस के काम आयेगा ?

जाने दो । ये सब बातें केवल तुम्हें थोडा प्रोवोक करने को लिख गया कि तुम जवाब जल्दी दो । असल में पत्र तुम्हे खुशखबरी देने को लिख रहा हूँ । अभी मालूम हुआ कि रेखा देवी का डाइवोर्स हो गया है—जज ने फैसला दे दिया है । हेमेन्द्र यहाँ आया हुआ था, वह अफ्रीका गया—वह तो अपनी मलय मेम से शादी करेगा ही, पर रेखा जी भी अव आजाद हैं । औरत के लिए आजादी सिर्फ एक खतरा है, इस लिए—रेखा जी में तुम्हारी दिलचस्पी को ध्यान में रखते हुए—तुम्हे दोस्ताना सलाह दे रहा हूँ कि अभी उपयुक्त समय है उन की सेवा का । डिग्री पक्की तो छ. महीने वाद होगी, पूरी आजादी तो तभी होगी, पर तव तक वैठे रहना तो हिमाकत है । जो मौसम में फूल चाहता है, वह वक्त पर क्यारी तैयार करता है न ! तुम मेरे पुराने दोस्त हो, इस लिए दुस्साहस कर के यह परामर्श तुम्हें दे रहा हूँ और अपने स्वार्थ-त्याग की दुहाई नही दूंगा । नही तो मैं ही एक वार—पर जाने दो; आइ नो ह्वेन आइ'म लिक्ड ! वेस्ट आफ लक टु यू !

तुम्हारा
चन्द्रमाधव

पुनश्च

बम्बई का पता वहाँ पहुँचते ही लिखूँगा, तब तक दादर के पोस्ट मास्टर की मारफत लिख सकते हो।

चन्द्रमाधव द्वारा रेखा को

प्रिय रेखा जी,

उस बार आप दिल्ली से अचानक गायब हो गयी, तब से बहुत दिनो तक कोई पता ही नही मिला, फिर मालूम हुआ कि आप कश्मीर में हैं और बहुत बीमार रही है, कुछ आपरेशन की भी बात सुनी पर ठीक पता न लगा कि क्या हुआ, कैसी है, पता लगा तो यही कि कलकत्ते चली गयी हैं जिस से मैं ने मान लिया कि स्वस्थ ही होगी। यह भी पता लगा था कि भुवन भी शुश्रूषा के लिए गये थे, सोचा था कि उन से ही पूरे हालात पूछूँ पर फिर उन्हे कष्ट देने का साहस नही हुआ। सुना है कि वह आज-कल अपनी खोज में ऐसे डूबे हैं कि किसी को पत्र-वत्र नही लिखते, बल्कि शायद आयी हुई डाक भी नही पढते---किसी से कोई मतलब उन्हें नही है, बस वह है और कास्मिक रश्मियाँ है। वैज्ञानिक में अनासक्ति की यही तो खूबी होती हैं न जाने कहाँ से वे कास्मिक रश्मियाँ आती है, पृथ्वी के वायुमडल की परिसीमा से या सूर्य से, या तारा-लोक से या सर्वत्र फैले शून्य मे पदार्थ मात्र के बनने-मिटने से---पर वैज्ञानिक का सारा लगाव उन से है, और अपने आसपास की किसी चीज का होश नही, उन का भी नही जिन्हें वह प्रिय बताना चाहता है ठीक कहते है लोग, कि वैज्ञानिक प्रेम कर ही नही सकता, क्योकि उस के लिए स्थूल यथार्थ है ही नही, सब-कुछ एक एब्स्ट्रैक्शन है, एक उद्भावना.. और जहाँ एब्स्ट्रैक्शन है, वहाँ प्यार कहाँ? हम लाल को चाह सकते है, हरे को चाह सकते है पर लाल-पन या हरे-पन की भावना को कैसे? प्रकाश को चाह सकते है, प्रकाशित होने के गुण को कैसे?

अभी-अभी दिल्ली की एक चिट्ठी से पता लगा कि आप आजाद हो गयी है। कुछ दिन पहले हेमेन्द्र से भेंट हुई थी---वह लखनऊ आये थे---तब ज्ञात हुआ था कि तलाक की कार्रवाई हो रही है, अभी पता चला कि इसी हफ्ते डिग्री हो गयी है और आप मुक्त है। रेखा जी, इस काम के इस प्रकार शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो जाने पर मैं आप को सच्चे दिल से बधाई देना चाहता हूँ, बधाई ही नही, आप अनुमति दे तो अपनी पूरी सहानुभूति प्रकट करना चाहता हूँ। और कोई होता तो आप को यह याद दिला कर गर्व या सन्तोष महसूस करता कि मैंने पहले से अनुमान कर लिया था कि ठीक यही होगा और इसी प्रकार होगा, पर वैसे आत्म-सन्तोष के भाव मेरे मन में नही है, मैं केवल आप की उस शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ जो इस समाचार से आप को मिलेगी---उस शान्ति का, और साथ ही मुक्ति की बात सुन कर उभर आने वाली अनेक स्मृतियो के दुख का भी ..आप ने बहुत दुख पाया है, रेखा जी; पर उसकी ग्लानि को अब मन में न आने दे---

पुराने दु.खो की भी नही, उस नये दु ख और निराशा की भी नही जिस से इधर निस्सन्देह आप गुज़री है .अधिक कुछ कहना नही चाहूँगा—कह कर आप के 'रिजर्व' को कुरेदना या आप की संवेदना को चोट पहुँचाना बिलकुल नही चाहता

आप स्वस्थ तो है ? आशा है कि इस लम्बे विश्राम से आप का स्वास्थ्य सुधर गया होगा। कहता कि और दो-एक महीने विश्राम कर लीजिए पर जानता हूँ कि अनिश्चित अवधि तक निठल्ले बैठ रहना आप के स्वभाव के विरुद्ध है, और आप कही बाहर जाना चाहेगी ही। आप लखनऊ आवे यह सुझाने की धृष्टता तो नही कर सकता . मेरी अपात्रता के अलावा लखनऊ की घटनाओ का भी स्मरण कराया जाना आप नापसन्द करेगी। पर क्या बम्बई का निमन्त्रण दे सकता हूँ ? मेरी अपात्रता तो वहाँ भी उतनी ही रहेगी, पर बम्बई बड़ा शहर है, और वहाँ जीवन है, जागृति है, वह प्राणोद्रेक है जो सघर्षो मे पडने पर होता है—बम्बई निस्सन्देह आप को अच्छा लगेगा और—मुक्त करेगा अवसादो से, अतीत के बन्धनो से, जर्जर मान्यताओ से, और—आप यह कहने की धृष्टता मुझे करने दे तो कहूँ—स्वयं अपने-आप से, क्योकि जिसे हम अपना-आप कहते है वह वास्तव मे है क्या ? अपने भीतर की घुटन, जिसे हम अपनी पीडा के मोह मे एक मूल्यवान् तत्त्व समझ लेते है ! अपना-आप कुछ नही है, वह घुटना अयथार्थ है, उस के प्रति हमारा मोह एक धोखा है , सच तो सामाजिक शक्तियो का खेल और खीचातानी और सघर्ष है, जिस में हम या तो सहायक हो सकते है, या बाधक .आइये, हम सहायक हो; अतीत के बन्धन न माने बल्कि वर्त्तमान का, नये भविष्य का निर्माण करे .

लेकिन यह तो मै ने बताया नही कि बम्बई मै कैसे बुला रहा हूँ। लखनऊ मै छोड रहा हूँ। और लखनऊ कहता हूँ, तो मेरा मतलब है वह सारा ढाँचा जिसे मै मानता रहा। कौशल्या घर चली गयी है, दोनो बच्चो को ले कर—बल्कि कहूँ कि दोनो को और तीसरे की प्रतीक्षा ले कर, मै जब उसे वापस घर लाया था तो किसी शर्त या बन्धन के साथ नहीं, वापस लाने और गिरस्ती चलाने के सब दायित्वो को स्वीकार कर के ही. . .पर वह चली नहीं, मेरी पूरी कोशिश के बावजूद भी नही। और अब मै खुश ही हूँ कि वह चली नहीं, क्यो कि वह झूठ थी। गिरस्ती का आइडिया ही असल में झूठ है; एक काल-विपर्यय है, उस वर्ग-जीवन का प्रतीक है जो वर्ग ही आज मर रहा है। क्यो हम उस के द्वारा स्वीकृत एक परिपाटी को मानते चलें, जब कि स्वय उस में ही हमारी आस्था नहीं है ?

तो मै बम्बई जा रहा हूँ। अतीत से नाता तोड कर जा रहा हूँ और उस के कोई बन्धन, कोई दायित्व आगे मानने का मेरा इरादा नही है। अपने वर्ग को मै छोडता हूँ; उस से कुछ और मागूंगा नही और इस लिए आगे उसे कुछ देने को, उस से निबाहने को भी बाध्य नहीं हूँ।

आशा है यह पत्र आप को समय पर मिल जायेगा, और आप उत्तर देने का कष्ट

करेंगी। मै बराबर प्रतीक्षा करूँगा। आप को सर्वदा एक मुक्त व्यक्ति के रूप मे ही मैं ने देखा है, आप के पत्र मेरे लिए बडा सहारा होगे।

आप का कृपाकांक्षी
चन्द्रमाधव

चन्द्र द्वारा गौरा को।

प्रिय गौरा जी,

इन दिनो में यह पहली बार नही है कि आप को पत्र लिखने बैठा हूँ, और कोई निश्चय कर के ढुलमुल करते रहने वाला स्वभाव भी मेरा नही है आप जानती है, फिर भी पत्र नही लिखा गया इस का कारण यही है कि मै पाता हूँ, मुझ में और मेरे परिचितो में एक अजीब व्यवधान आ गया है—एक दूरी जिस का कारण समझ मे नही आता . .लखनऊ से बनारस कुछ भी दूर नही है, लेकिन मै जब यूरोप में था और आप मद्रास मे, तब अपने को इतना दूर नही महसूस करता था जितना अब, और कभी जब सोचता हूँ कि स्वय जा कर मिल आया जा सकता है तब सहसा लगता है कि मै मानो मगल तारे तक हो आने के मनसूबे बाँध रहा होऊँ !

ऐसा क्यो, सोचता हूँ तो कोई कारण नही पाता। बाह्य कारण तो हो ही क्या सकता है—आखिर लखनऊ से बनारस जितना है सो तो हई है, न अधिक न कम, सब्जेक्टिव ही कारण हो सकता है—पर क्या ? आप तो सदा से ही दूर रहती है, मुझे अधिक-से-अधिक एक अवहेलना-भरी अनुकम्पा ही मिलती है; उस में कोई परिवर्तन आने का कारण तो हुआ नही। तब क्या मुझी में कोई बडा परिवर्तन आया है ? शायद यही हो। आप मुस्करायेगी कि चन्द्रमाधव भी इट्रोस्पेक्शन करने चला—हाँ, यह भीतर देखने की बात मुझे हमेशा नकारेपन की दलील लगती रही है—पर यह देखता हूँ कि मेरे ही अनुभव मुझे अलग ले जा रहे है। एक तो इधर का जैसा जीवन रहा—आप कल्पना नही कर सकती, गौरा जी, कि साधारण जीवन की साधारण मर्यादाओ को निबाहने के लिए मैने कितना बड़ा तप किया है, कितना क्लेश भोगा है, और अब मै भी रेखा देवी की कही हुई बात मानने लगा हूँ कि गहरा क्लेश एक व्यक्ति को और सब से पृथक् कर देता है . .दूसरे इस क्लेश ने मुझे यह सिखा दिया है कि हमारी अधिकतर मान्यताएँ केवल एक ढकोसला है—हमारे जीवन को, हमारे वर्ग-स्वार्थो को, वर्ग से मिलने वाली सुविधाओं को बनाय रखने के लिए रचा गया भारी प्रपंच ; और यह देख लेने के बाद उसी प्रपंच में फँसे रहना कैसे सम्भव है ? यह दूसरा कारण है जिस ने मुझे औरो से अलग कर दिया है—अपने वर्ग से मै उच्छिन्न हो गया हूँ। और देख रहा हूँ कि वह कितना सड़ा है; अब उसे भस्म कर देने में ही अपनी शक्ति लगाऊँगा. . .इसी लिए कहूँ कि मै वास्तव में इंट्रोस्पेक्शन नही कर रहा हूँ—इंट्रोस्पेक्शन तो आदमी को निकम्मा बनाता है, कर्म-विमुख करता है, कर्म की प्रेरणा नही देता।

लेकिन क्या सचमुच उतना दूर चला गया हूँ ? उस दिन दिल्ली मे आप से तबला सुना था; वह मानो कल की बात लगती है और उस के बोल अभी तक कानो मे गूँज जाते है—सगीत मे मेरी पहुँच नही है लेकिन उस दिन का अनुभव मानो एक लैंडमार्क वन गया है और उस के सहारे मै कई चीजो से सम्बन्ध जोड लेता हूँ जिन तक पहुँचने का और कोई सूत्र नही रहता. सेटिमेटल बाते मुझे कहनी ही नही आती, गौरा जी, सच कहता हूँ कि उस दिन की वह भेट मेरे लिए एक अकथनीय अनुभव था, और कदाचित् वही से मेरे जीवन मे वह परिवर्तन शुरू हुआ जो आज देख रहा हूँ। मै ने कभी कल्पना नही की थी कि आप इस प्रकार मेरी डेस्टिनी बन जायेगी—आप ! और आप ने तो की ही क्या होगी, आप ने तो कभी मुझे इस लायक ही न समझा होगा कि मेरी डेस्टिनी भी कुछ हो !

डा० भुवन से भी वहुत दिन से पत्र-व्यवहार नही हुआ। आप से परिचय उन के द्वारा हुआ था, पर अजब वात है कि उन तक पहुँच आप ही के द्वारा हो। आशा है आप उन के पूरे समाचार देगी। यो मै ने उन्हे पत्र लिखा है, पर आप से जो जान सकूँगा, वह उन से थोडे ही वह तो पहले भी एक सीपी मे रहते थे, और पिछले कुछ महीनो के अपने अनुभवो के वाद तो विलकुल ही पहुँच से परे चले गये है। मै समझता हूँ, कोई भी गहरी अनुभूति जव गोपन रहती है, तव धीरे-धीरे गोप्ता को भी ऐसे वाँध लेती है कि फिर वही अज्ञेय हो जाता है, फिर वह चाह कर भी अपने को अभिव्यक्त नही कर पाता, उस का रहस्य एक ऐसी दीवार बन जाता है जो कि स्वय उसी को छिपा लेता है। कभी सोचता हूँ, क्या डा० भुवन फिर कभी हम से, आप से, हमारे आप के साधारण जगत् से साधारण सम्पर्क जोड सकेगे ? इधर आप की उन से भेट हुई क्या ?

रेखा जी की खवर जव-तव मिल जाती है। डाइवोर्स उन का हो गया है। यह जान कर आप को भी निश्चय ही सन्तोप होगा। विवाहित जीवन उन का अत्यन्त यातनामय रहा, फिर जव उन्हें जीवन मे कुछ ऐसा मिला जो मूल्यवान् हो, जो जीवन को अर्थ दे, तो फिर विवाह का वन्धन ही वाधा वना . अव कदाचित् वह जीवन के विखरे सूत्र फिर समेट सके, उस के अर्थ को फिर पा सके . मै जव भी सोचता हूँ तो इसी परिणाम पर पहुँचता हूँ कि स्त्री-पुरुप का मिलन सव से वडा सुख नही हो सकता क्योकि उस मे प्रत्येक को साझीदार की, दूसरे की जरूरत है, वह परापेक्षी सुख है; सच्चा सुख निरपेक्ष और स्वतः सम्पूर्ण होना चाहिए। पर युक्ति एक वात है, और व्यवहार दूसरी; और वासना दोनो से ऊपर : हम सभी उस अनुत्तम सुख को ही चाहते है और पुरुप से अधिक नारी वह चाहती है . .रेखा जी को मै असाधारण स्त्री मानता था, पर अव देखता हूँ, उन का असाधारणत्व इसी में है कि वह साधारणत्व का चरमोत्कर्प है, साधारण स्त्री की साधारण वासना अपने चरम रूप मे उन में विद्यमान है। और इसी लिए आज उन की

मुक्ति की सूचना से सन्तोष है : प्रार्थना करना चाहता हूँ कि उन्हे उन का वाछित मिले, तृप्ति मिले, शान्ति मिले...

आप की सगीत-साधना कैसी चल रही है ? ससार की जो गति है, उस मे नही दीखता है कि सगीत का भविष्य क्या है, विशेषकर भारतीय सगीत का जो इतनी साधना माँगता है, इतनी सूक्ष्मता, जिस का उदय भी रहस्य से होता है और जिस की निष्पत्ति भी रहस्य मे है—भविष्य मे सगीत होगा तो जन का, वह प्रकृत, पुरुष, सहज तेजस्वी स्वर सब बारीकियो को अपने विवाद मे डुबा लेगा . फिर भी, आप की साधना का कायल हूँ, और, और नही तो आप की आनन्द-कामना से ही प्रार्थना करता हूँ कि आप को उस की सुविधा और साधन मिले .'

मै लखनऊ छोड कर बम्बई जा रहा हूँ। वही रहूँगा। पत्र वही दे—देगी न ? पता रहेगा . केयर पोस्टमाटर, दादर, बम्बई ।

आप का ही
चन्द्रमाधव

भुवन द्वारा चन्द्रमाधव को :

चन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला। दूसरे दिन तुम्हारा रेखा देवी के नाम लिखा हुआ पत्र भी उन के द्वारा भेजा हुआ, मिला, इस उलाहने के साथ कि मै तुम्हे पत्र क्यो नही लिखता ?

उन्होने कहा है, इस लिए यह पत्र लिखे दे रहा हूँ। पर चन्द्र, कैसा रहे अगर आज से हम मान ले कि हम दोनो अजनबी है ? क्योकि हम माने न माने, बात यही है, हम दो विभिन्न दुनियाओ मे रहते है जिन मे सम्पर्क के कोई साधन नही है। विज्ञान को तुम मानते नही, नही तो उस की भाषा मे कहता कि हमारे जीवनो के डाइमेशन अलग-अलग है, और इस लिए वे एक-दूसरे को काट कर भी छू नही सकते।

और जब हम अजनबी ही है, चन्द्र, तो मेरे प्रति किसी मिथ्या लायल्टी का बन्धन तुम न मानो, जिस भी चीज पर तुम्हारा लोभ है, उस के लिए निर्बाध हो कर जुगत करो। और मै तुम से ज्यादा ईमानदारी से कहता हूँ, बेस्ट आफ लक टु यू।

—भुवन

भुवन द्वारा गौरा को .

प्रिय गौरा,

एक बार फिर तुम्हारी ओर से कोच के बिना पत्र लिख रहा हूँ बल्कि अब कभी सोचता हूँ तो ख्याल आता है क्या यह तुम्हारा न कोचना ही कोच का एक नया प्रकार नही है ? पर इस लिखने मे न जाने क्यो, पहले-सा पुण्य-सुख नही है। लिखने की बात मै ने कई बार सोची है, पर न जाने क्यो लिखे बिना रह गया हूँ, आज लिखने बैठा हूँ तो अपने को कारण यह बता रहा हूँ कि बार-बार वचन-भ्रष्ट होने के लिए कम-से-कम

माँफी तो माँग लेना आवश्यक है—यद्यपि तुम्हे पत्र लिखने के लिए क्यो कारण ढूंढ निकालना ज़रूरी है, यह नही जानता, न पहले कभी ऐसा प्रश्न मन मे उठा था।

मैने कहा था, दसहरे मे बनारस आऊँगा। कहा था कि शायद, पर तुम्हे शायद कहता हूँ तो उस मे अपने लिए छूट नही रखता, शायद इसी लिए होता है कि अगर किसी कारण न हो पाये तो तुम्हे निराशा न हो। पर वह नही हो सका—रेखा जी की बीमारी के कारण मुझे श्रीनगर जाना पडा और छुट्ठियाँ उसी मे बीत गयी; फिर सोचा था कि अगली छुट्टियो मे चला जाऊँगा, पर अगली छुट्टियाँ भी आ गयी बडे दिनो की, और मै यही बैठा हूँ। अब की बार कोई बहाना नही है, पर जैसे वही सब से बड़ा कारण है, मै यहाँ बैठा हूँ, यही पडा रहूँगा, न जाने का कोई बहाना नही है; इस लिए नही जाऊँगा; बिना कोई बहाना बनाये मान लूँगा कि मै नही जाता, नही जाता; और इस अपराध को ओढ कर बैठा रहूँगा। अपराध करने की कोई चाहना मन मे नही है, पर यो अपराध ओढ़ कर बैठ जाने मे न जाने क्यो सान्त्वना का बोध होता है।

देखता हूँ कि यह माफ़ी माँगने का तो ढग नही है। पर गौरा, तुम मुझे क्षमा कर ही देना, और मेरे बारे में कोई चिन्ता न करना। मै बिलकुल ठीक हूँ, चिन्ता की कोई बात नही है, केवल चित्त अव्यवस्थित है, और ऐसी दशा में कही किसी के पास नही जाना चाहिए, अपने अस्तित्व का ही पता न देना चाहिए। मै बिलकुल वैसा करता, पर माफी माँगना तो आवश्यक था, इस लिए सम्पूर्ण लोप तो नही हुआ, फिर भी वहाँ आ कर तुम्हें क्लेश न दूंगा। कभी आऊँगा, पर कब इस का अब वायदा नही करता।

आशा है तुम स्वस्थ और प्रसन्न हो; आशा ही नही, विश्वास भी है कि तुम उन्नति कर रही होगी। कभी लागातार बैठ कर तुम से सगीत सुन सकता, तो शायद चित्त को सान्त्वना मिलती—या कौन जाने तब भी न मिलती, अभी यह सोच लेता हूँ और जैसे उस की दूर सम्भावना भी एक सहारा हो जाता है।

पिता जी को मेरा प्रणाम लिखना। आशा है माता-पिता स्वस्थ हैं। कहाँ हैं आजकल?

तुम्हारा
भुवन

भुवन द्वारा रेखा को :

प्रिय रेखा,

जो पत्र लिखने की मै निरन्तर कोशिश करता रहा हूँ, वह मुझ से लिखा नही जा रहा है। न जाने कितनी बार मैं लिखने बैठा हूँ, कभी एक-आध पन्ना लिख भी सका हूँ, लेकिन लिख कर फिर उसे फाड़ दिया है, फिर दुबारा नही लिख सका हूँ. . .रेखा, क्या कहूँ और कैसे कहूँ? मै मानता हूँ कि जो कहना नही आता वह इसी लिए नही आता कि वह मन के सामने ही स्पष्ट नही है—हो सकता है कि मै स्वय ठीक नहीं जानता कि

क्या कहना चाहता हूँ—फिर भी भीतर जो घुमडन है, उस के सामने जैसे कुछ स्पष्ट है, यद्यपि मैं उसे नही जान पाया, और वही मानो मेरे और विचारों और कामो को निर्दिष्ट करती है भले ही वे निर्देश मैं नही समझता .

रेखा, तुम अब भी वही दिव्य स्वप्न हो, जो दीखने की तीव्रता से ही मूर्त्त हो आया था और यथार्थ हो गया था, लेकिन जब कभी मैं अपने साझे जीवन के अशो को सामने मूर्त्त करता हूँ, तो वे जैसे मिल कर एक रूपाकार नही बनते, मूर्ति के टुकडे-टुकडे अलग रहते हैं और फिर मेरे हाथो मे ही मिट्टी हो जाते हैं। जीवन का एक चित्र, एक मूर्ति नही बनती, यद्यपि प्रत्येक खड यथार्थ है—और अत्यन्त यथार्थ है वह व्यथा की टीस जो किसी-किसी खंड की कल्पना-मात्र से देह-मन को झनझना जाती है .

मैं ने कहा कि 'जब कभी'। यह नही कि वैसा कभी-कभी होता है। मैं बराबर ही वैसे खडित स्वप्न देखता रहता हूँ; जागते हुए, काम के बीच मे, क्लास में पढाते हुए, लैबोरेटरी में काम करते हुए, राह चलते सडक के बीच में, बराबर ही ये स्वप्न-चित्र कौंध कर सामने आते रहते हैं। मानो आँखो के आगे हर वक्त एक काल्पनिक चौखटा बना रहता है, जिस के भीतर का चित्र बराबर बदलता रहता है। बल्कि अधिक बदलता भी नही, क्यो कि बार-बार एक ही दारुण दृश्य सामने आता है, और मैं सुनता हूँ तुम्हारी दर्द-भरी आवाज़ मुझे पुकारती हुई, 'प्राण, जान, जान', अन्तहीन आवृत्ति करती हुई एक कराह, जिसे वर्षा की वह अनवरत टपटपाहट भी नही डुबा पाती जो कि उस स्मृति का एक अभिन्न अग है। मैं ने तब तुम्हे कहा था 'हाँ अब भी, अब और भी अधिक' वह गलत नही कहा था और आज भी अनुभव करता हूँ कि वे क्षण आत्म-दान के—अपने से मुक्त हो कर अर्पित हो जाने के तीव्रतम क्षण थे, पर आज यह भी देखता हूँ कि ठीक उन्ही क्षणो में मेरे भीतर कुछ टूट गया। टूट गया, मर गया। क्या, यह नही जानता। प्यार तो नही, प्यार कदापि नही, उस से सम्बद्ध कोई जादू, कोई आवेश, जिस से आविष्ट हो कर मैं प्यार की मर्यादा भूल गया था, जो प्रेय है उसे स्वायत्त करना चाहने लगा था ऐसे जैसे वह स्वायत्त नही हो सकता और मानसिक यन्त्रणा के उस चरम क्षण में यद्यपि प्यार—प्यार, रेखा, करुणा नही—अपने उत्कर्ष पर था, पर उसी क्षण में जैसे मैं ने तुम्हे दोषी भी मान लिया था एक मूल्यवान् वस्तु को नष्ट हो जाने देने का। तुम ने लिखा था कि यदि वैसा न हुआ होता और प्रेम ही मर गया होता या मैं ने तुम्हे छोड दिया होता तब क्या होता, और इस प्रश्न का मेरे पास कोई जवाब नही है—ऐसा हुआ होता तो निस्सन्देह वह भी घोर दुर्घटना हुई होती—और जो बार-बार मेरे आस-पास होता रहा है, होता है, इसे मैं किस दर्प से असम्भव करार दे दूं? वह खतरा तो था ही भविष्य के बारे में कोई दावा करना बेमानी है, फिर उस भविष्य के जिस की अब कोई सम्भावना नही रही। लेकिन आज भी मैं कितना भी कठोर हो कर सोचूं तो मानता हूँ कि उस अजात के कारण जो भी ज़िम्मेदारी मुझ पर आती उस से मैं भाग नही रहा था, भागने का विचार भी

मुझ मे नही था, और उसे स्वीकार करने मे मुझे खुशी ही होती . मैं ने तुम से कहा था कि मैं सुखी होता, आज भी मानता हूँ कि सुखी होता। प्यार मर तो सकता ही है—एक अर्थ मे चिरन्तन हो कर भी वह मर सकता है, पर अगर भविष्य मे कभी ऐसा होता ही, तो वह कम-से-कम उस शिशु के कारण न होता—उसके कारण हमी मे होते।

इस सब से ध्वनि होती है कि मैं तुम्हे उलाहना दे रहा हूँ—वैसा नही है। वैसी भावना मन मे कभी आयी भी होती, तो मानना होता कि तुम ने अगर भूल की भी तो उस का भरपूर शोध भी किया—नही रेखा, मैं ने जो पहले कहा कि तुम्हे दोषी माना था, वह ठीक नही है, दोषी तुम मुझ से अलग या अधिक कैसे हो ?—अपने एक अश को नष्ट होने देने के लिए स्वय अपने को मर जाने दिया, रेखा, उस अश को, जो स्वय भी मूल्यवान् था, और उस से बढ कर जो एक और मूल्यवान् अनुभूति का फल था—इस सब का अनुभव करते हुए मैं तुम्हारे आगे झुक ही सकता हूँ, समवेदना से भर कर तुम्हारे पास खडा हो सकता हूँ, दोष नही दे सकता। और जब यह सोचता हूँ कि यह बहुत बडा आत्म-बलिदान भी मुझ पर तुम्हारे स्नेह की अभिव्यक्ति थी—तब तो गड़ जाने को जी चाहता है।

रेखा, एक बात को तुम समझोगी—तुम नही समझोगी तो कोई नही समझ सकेगा—प्यार मिलाता है, व्यथा भी मिलाती है, साथ भोगा हुआ क्लेश भी मिलाता है; लेकिन क्या ऐसा नही है कि एक सीमा पार कर लेने पर ये अनुभूतियाँ मिलाती नही, अलग कर देती हैं, सदा के लिए और अन्तिम रूप से ? अनुभूतियाँ गतिशील हैं, अतीत हो कर भी निरन्तर बदलती रहती है और व्यक्तित्व को विकसाती हुई उस मे घुलती रहती हैं, लेकिन यह सीमा लाँघ जाने पर जैसे वे गतिशील नही रहती, स्थिर, जड हो जाती हैं; एक न घुल सकने वाला लोंदा, एक वज्र धातु-पिड। फिर व्यक्ति मानो इन अनुभूतियो को चौखटे मे जड कर रख लेता है, जीवन एक चलचित्र न रह कर स्थिर चित्रो का संग्रह हो जाता है, और हर नयी सम्भाव्य अनुभूति के आगे व्यक्ति किसी एक चित्र को प्रतिरोधक दीवार की तरह खडा कर लेता है। मेरे पास अधिक चित्र नही हैं, कह लो कि एक ही है, पर वही—हमारे साझे अनुभवो का सम्पुंजन ही, रेखा !—हमारे बीच में दीवार-सा खडा हो जाता है। हम मिलेंगे, लेकिन मानो इस दीवार के आर-पार, हाथ मिलायेंगे, लेकिन मानो इस चौखटे के भीतर से, एक-दूसरे को देखेंगे, लेकिन मानो इस चौखटे में जडे हुए—तुम उधर से, मैं इधर से . रेखा, मैं अब भी तुम्हे प्यार करता हूँ, उतना ही, पर. . .

भुवन द्वारा रेखा को

रेखा,

तुम्हें पत्र लिखने की कई कोशिशें की पर अभी तक पत्र न लिखा गया, और अब मैं ने मान लिया है कि जो पत्र लिखना चाहता हूँ, वह कभी नही लिखा जायेगा। इस लिए

लिखने की पिछली अधूरी कोशिश ही अन्तिम कोशिश मान कर वह अधूरा पत्र ही तुम्हे भेज रहा हूँ। और उसे भी फिर पढ़ूंगा नही, नही तो शायद भेजूँगा नही। तुम्हारे सब पत्र मुझे मिल रहे है, प्रत्येक पर अपने को और अधिक कोसता रहा हूँ कि तुम्हे क्यो इतना क्लेश पहुँचा रहा हूँ, फिर भी इस से पहले नही लिख पाया हूँ, नही पाया हूँ। अब भी पाया ही हूँ, यह तो नही है, और कदाचित् यह पत्र भेजना भी उतनी ही क्रूरता है जितना पत्र न लिखना—मै नही जानता, रेखा। तुम मुझे क्षमा कर देना यह सोच कर कि मै इस समय भ्रान्त हूँ।

तुम्हारा
भुवन

भुवन द्वारा रेखा को

रेखा,

तुम्हारा पत्र पाकर थोडी देर विमूढ-सा सोचता रह गया—क्या सचमुच चार महीने हो गये दिल्ली स्टेशन पर तुम्हे ट्रेन मे बिठाये हुए और उस के बाद तुम्हे पत्र लिखे हुए? पर तुम्हारी गणना ठीक है यो अभी दो-एक दिन पहले मै ने तुम्हे चिट्ठी डाली है—अब तक तुम्हे मिल गयी होगी।

तो विवाह रद्द हो गया या हो जायेगा। यह बात अपने को कहता हूँ, तो सहसा कुछ स्पष्ट नही होता है कि क्या हो गया। क्योकि किसी चीज के होने मे, और उस होने के हमारे बोध में, हमेशा ही एक अन्तराल रहता है, यह इतनी बार लक्ष्य करता हूँ कि किसे वास्तव मे होना माना जाय यही सन्देह हो आता है। फिर तलाक तो एक कानूनी कार्रवाई है और कानून हमारे जीवन की जीवित यथार्थता कभी होता है तो तभी जब हम उसे तोडते है या तोडने की सजा पाते है, नही तो उस से हमें कोई सरोकार ही नही होता। फिर यह भी ध्यान आता है कि यही अगर पहले हुआ होता—समय पर हुआ होता—तो तुम्हारा जीवन कितना भिन्न होता। सहसा हार्डी की बात याद आती है, कि 'जब पुकार होती है तब आगन्तुक नही आता', और एक तीखा आक्रोश मन मे उमड आता है .

फिर भी, यह मान लेना होगा कि इस प्रकार एक अन्यायपूर्ण, असत्य, अयथार्थ परिस्थिति का अन्त हो गया है—जो तुम हो (या नही हो) और जो तुम कानूनन हो, उस का विपर्यय अब मिट गया है। और इस पर सन्तोष होना ही चाहिए।

तुम यात्रा पर निकल रही हो, दक्षिण जा रही हो। अच्छा ही है। शान्ति की बाते कहने वाला मै कौन होता हूँ, पर इस से तुम्हे सान्त्वना तो मिलेगी ही। क्षण-भर के लिए मन मे उठा था, सागर-तट पर तुम्हारे साथ मै भी खडा हो सकता—पर नही, उस से व्यथा ही जागेगी शायद, रेखा, उस विशाल एकाकी को, जो न प्रेम करता है न प्रेम पाता है, तुम अकेली ही देखो—तुम्हें अकेले मे ही वह सान्त्वना मिले जो मेरा साथ तुम्हें न दे सका—मैने चाहा था देना, पर दे सका केवल नयी व्यथा 'सी, यू शैडो आफ़ आल

थिंग्स, मॉक अस टु डेथ विद योर शैडोइंग...*

कभी सोचता हूँ, इसी तरह मैं भी अकेला सागर पर चला जाऊँ—दर्द तभी तक क्लेश-कर होता है जब तक हम उस से लड़ते हैं, जब तक हम अपने अपनेपन को बनाये रखना चाहते हैं। विशाल के आगे अपने को समर्पित कर देने के बाद सब क्लेश मानो झर जाते हैं या डँसते भी हैं तो उन का डंक निर्विष होता है.. शायद मैं भी जाऊँगा कहीं—और सागर के पास ही जाऊँगा।

गाड ब्लेस यू, रेखा।

तुम्हारा
भुवन

गौरा द्वारा भुवन को :
मेरे भुवन दा,

आप चिट्ठी—चाहे यही चिट्ठी—दो चार-दिन पहले लिख देते, तो मैं ही वहाँ न आ जाती? पर अब छुट्टियाँ खत्म हो चुकीं : अब छुट्टी ले कर आ तो सकती हूँ पर उस में कुछ दिन तो लगेंगे और फिर आप के काम के दिनों में मैं आ धमकूँगी तो आप नाराज़ होंगे—न भी होंगे तो मुझे अनुमति तो लेनी चाहिए।

भुवन दा, मैं ने आप को न आने पर या चिट्ठी न लिखने पर कोई उलाहना दिया है कि आप मुझे ऐसी चिट्ठी लिखें? आप बड़े हैं, यही नहीं, मैं यह भी नहीं भूलती कि स्नेह करते हैं, माफ़ी माँगने का कोई प्रश्न नहीं उठता। मैं अबोध हूँ सही, पर मूर्ख नहीं हूँ; यह भी समझती हूँ कि आप कोई बड़ा क्लेश मन-ही मन सह रहे हैं, मेरा कोई दावा होता तो आग्रह कर के पूछती, और जान कर कुछ मदद न कर पाती तो कम-से-कम कुछ बहला तो सकती ही; पर आप बतायेंगे तो स्वयं बतायेंगे, मेरे पूछने से कुछ न होगा यह मुझे मालूम है। इस लिए अगर मैं कहूँ कि मैं आप के किसी भी काम आ सकूँ तो आप इंगित-भर कर दीजिए, तो मेरी बात रामजी की गिलहरी की बात से अधिक कुछ नहीं हो सकती।

भुवन दा, आप के पत्र से मुझे बेहद क्लेश पहुँचता; पर नहीं पहुँचा तो केवल एक बात के कारण—आप ने लिखा है कि 'अपराध ओढ़ कर बैठे रहेंगे, और उस में आप को सान्त्वना मिलती है।' मुझे शायद इस की ओर इशारा नहीं करना चाहिए, चुपचाप वर-दान मान कर इसे ले लेना चाहिए—पर इस में जो वात्सल्य बोल रहा है, उस के सहारे शायद मैं आप तक पहुँच सकूँगी, और—गर्व नहीं करती—आप की कुछ सहायता भी कर सकूँगी। भुवन दा, मुझे अनुमति दे दीजिए न—मैं थोड़े दिन वहाँ आऊँगी—जल्दी ही, जितनी जल्दी छुट्टी मिल सकी क्योंकि इस महीने के अन्त में परीक्षाएँ भी हैं—तब तक

---

* अरी सागर, तू जो सब कुछ की परछाईं है, अपनी छाया के व्यंग्य से हमारे प्राण हर ले! —डी० एच० लारेंस

आप चाहे जो ओढे रहिए, पर मेरे आने के बाद आप कम-से-कम अपराध ओढे तो नही बैठे रह सकेंगे। मैं क्या ओढाना चाहूँगी वह तो नही बताती, आप अपने ही मन से ओढेंगे तो बुजुर्गी चाहे ओढे बैठे रहिएगा, मैं घर-भर में किलकती रहूँगी।

पर नही भुवन दा, आप की शान्ति भग नही करूँगी, सच कहती हूँ। आप मुझे कुछ दिन के लिए आ जाने दीजिए। कहती कि आप बुलाइये, पर उतना मान मेरा नही है।

आप ही की
गौरा

गौरा द्वारा रेखा को :

प्रिय रेखा दीदी,

मेरा पत्र पा कर आप को विस्मय हो भी सकता है, नही भी हो सकता है, मैं शायद न लिखती। लिख रही हूँ तो इस लिए कि और एक चिट्ठी लिखने से बच जाऊँ।

चन्द्रमाधव ज़ी का एक पत्र मिला है। उस में उन्होंने अपने बम्बई जाने की बात लिखी है, और साथ ही आप के बारे मे कुछ सूचना दी है। यो किसी की निजी बातो मे हस्तक्षेप करते बडी झिझक होती है और विशेष कर आप की, क्योंकि आप के जीवन के बारे में कुछ न जान कर भी मै इतना जानती हूँ कि आप ने बहुत सहा है और आप की कोई भी निजी बात निजी कष्ट की ही बात होगी—फिर भी यह कहने की अनुमति चाहती हूँ कि चन्द्रमाधव जी की सूचना से शान्ति मिली, और मै आशा करती हूँ कि आप को भी मिलेगी—अभी भी और भविष्य में भी। छोटे आशीर्वाद नही देते, इसे मेरी प्रार्थना समझ लीजिए कि आप का जीवन शान्तिमय हो, कल्याणमय हो।

आप को यह पत्र लिख कर मै मान लूँगी कि चन्द्रमाधव जी के पत्र का डिस्पोज़ल हो गया, उन्हें अब उत्तर न दूंगी।

दो महीने हुए, भुवन दा के एक पत्र से ज्ञात हुआ था कि आप पहले बहुत अस्वस्थ रही, आशा है अब आप पूर्ण स्वस्थ है। उस के बाद भुवन दा का पत्र नही आया, पर मुझे वह पत्र शायद ही कभी लिखते है। यो वह ठीक ही है, यद्यपि उद्विग्न रहते है।

रेखा दीदी, मेरे पत्र से नाराज़ तो नही होगी न ?

स्नेहाकांक्षिणी
गौरा

भुवन द्वारा गौरा को :

नही गौरा; नही, अभी नही—आइ फारबिड यू ! लेट मी स्ट्यू इन माइ ओन जूस *। थोडे दिन बाद—शायद, तब मैं आऊँगा या मैं न आया तो तुम्हें बुलाऊँगा—आने की अनुमति नही दूंगा। बुजुर्गी मुझ से झड गयी है, यह मैंने पिछली बार ही कहा

* मै मना करता हूँ। मुझे अपनी आँच में पकने दो।

था; और जो तुम ओढाओ सिर आँखो पर, मगर पहले यह अपराध की कँबली झाड लूं तव न !

पर मैं तुम्हारा वहुत कृतज्ञ हूँ, गौरा ; वह कहने के लिए शब्द नही है मेरे पास।

तुम्हारा
भुवन

भुवन द्वारा रेखा को :

प्रिय रेखा,

तुम इस समय न मालूम कहाँ हो, क्या कर रही हो—शायद रामेश्वर के मन्दिर मे वैठी होगी, या कन्याकुमारी के सागर-तट पर—सहसा मुझे जमुना की रेती की याद आती है और ख्याल होता है, उस समय जव मैं वालू का घर बना रहा था तो विधि निस्सन्देह हँसती रही होगी कहाँ चले आये वहाँ से इन थोडे से दिनो मे हम—अव मैं मोचना चाहूँ कि वहाँ तुम ने मुझे मैन फ्राइडे कहा था और मैं ने तुम्हे मिस राविनसन तो विश्वास नही होता। लेकिन क्या अव भी हम कम खोये हुए है किसी अज्ञात द्वीप पर—कम असहाय है ? इस से क्या कि आसपास जो जलराशि है वह स्थिर सागर नही है, वह एक ओर-छोर-हीन भीम-प्रवाहिनी महानदी है—द्वीप तो फिर भी द्वीप है, और सव मे सम्पर्क छूट जाने पर उत्पन्न होने वाला करुण आत्म-विश्वास फिर भी करुण।

रेखा, मै देश छोड कर जा रहा हूँ। एक और एक्सपेडीशन डच इडीज मे जा रहा है, उसी मे जा रहा हूँ। एक वैज्ञानिक अमेरिका से जावा पहुँच रहे है—वह भी भारत-वामी ही है वैसे—और मैं यहाँ से जावा जाऊँगा। वह तो अप्रैल में पहुँचेगे, पर मैं पहले ही जा रहा हूँ कि वहाँ कुछ आरम्भिक प्रवन्ध कर रखूं। कालेज से अभी एक वर्ष की छुट्टी ले ली है और होली की छुट्टी लगते हो चल दूंगा—सात-आठ दिन तैयारी के लिए काफी है। परीक्षार्थियो की पढाई तो अव तक लगभग पूरी हो ही जाती है इस लिए कालेज के काम में कोई व्यतिक्रम नही होगा।

जहाज कलकत्ते से पकडूंगा। पहले सोचा था कोलम्वो जाऊँ—रामेश्वरम् होते हुए जाने का मोह था —पर क्या होगा उस से रेखा .

तुम्हें क्या कहूँ, रेखा ? तुम्हारे जीवन की खोज पूरी हो—उसे सार्थकता मिले. . .

भुवन

पुनश्च · फागुन की अष्टमी का धूमिल चाँद देख कर न जाने क्यो लारेंस की कविताएँ निकाल लाया; उस में से एक कविता यह भेज रहा हूँ .

हाइ एंड स्मालर ग्रोज द मून : शी इज स्माल एंड वेरी फार फ्राम मी,
विस्टफुल एंड कैंडिड, वाँचिग मी विस्टफुली फ्राम हर डिस्टेंस, एंड आइ सी

ट्रेम्ब्लिंग ब्लू इन हर पैलर ए टीयर दैट शोरली आइ हैव सीन बिफ़ोर,
ए टीयर ह्विच आइ हैड होप्ड ईवन हेल हेल्ड नाट अगेन इन स्टोर।*

गौरा द्वारा भुवन को :

भुवन दा, यह क्या सुनती हूँ—आप जावा जा रहे है—और आप ने मुझे खबर भी नही दी ? आज स्टाफ रूम मे ही सहसा सुना—बात आप की नही थी, यही थी कि एक दल जावा जा रहा है कास्मिक रश्मियो की खोज के सिलसिले मे जिस मे दो भारतीय वैज्ञानिक होगे · इस से सहसा कान खडे हुए तो सुना कि एक आप है और एक कोई और . .कब जा रहे है भुवन दा ? मुझ से मिले बिना आप नही जा सकेगे—मुझे फौरन पता दीजिए—या तो आप बनारस होते हुए जायेगे या मै आऊँगी जहाँ आप कहे। चिट्ठी फ़ौरन लिखिएगा, फौरन।

आप की ही
गौरा

गौरा द्वारा भुवन को

आप को चिट्ठी भेज चुकी तब आप की यह सूचना मिली। आप मुझ से मिल कर नही जायेगे, मुझे भी नही आने देगे आप की इच्छा, भुवन दा, मै क्या कहूँ ? आप बनारस के पास से गुजरते हुए चले जायेंगे—बल्कि अब तक तो चले गये होगे और में न मिल सकूँगी फिर भी, मेरे भुवन दा, इसे मै आप का अतिरिक्त स्नेह ही मानती हूँ कि आप ने मुझे इस अन्याय के लिए चुना—लेकिन क्यो, भुवन दा, क्यो, क्यो, मेरी कुछ समझ में नही आता, क्यो आप मुझ से दूर भागे जा रहे है जो आप को अपने पथ का प्रकाश मान कर जी रही है—क्यो ?

गौरा द्वारा भुवन को

भुवन दा,

अभी एक चिट्ठी आप को डाल आयी हूँ। उसे वापस तो नही लेती, पर उस मे एक बात कहना आवेश मे भूल गयी थी। आप की यात्रा निर्विघ्न और सफल हो, आप शीघ्र ही स्वदेश लौटें और इस से आगे अपनी प्रार्थना मे यह भी जोड दूँ, भुवन दा, कि आप स्वदेश ही नही, मेरे पास लौटें तो क्या मेरी प्रार्थना आप की किसी इच्छा से प्रतिकूल चली जायेगी ? वैसा हो, तो कहूँगी, तो आप की इच्छा ही जयी हो, वही पूर्ण हो—मेरी

*चांद ऊँचा और छोटा होता जाता है : ऊँचा और मुझ से बहुत दूर, उदास और स्पष्टवादी, अपनी दूरी से उदास-भाव से मुझे देखता हुआ। और उस के पीलेपन में नीला काँपता हुआ मै देखता हूँ एक आँसू जिसे मैंने निश्चय ही पहले देखा है और जो मैंने आशा की थी कि नरक में भी फिर देखने को न मिलेगा !

—डी० एच० लारेंस

प्रार्थना यही हो कि मेरी प्रार्थना भी आप की इच्छा के अनुकूल हो, उस की अनुगता हो।

प्रणत

गौरा

पुनश्च : यह चिट्ठी कलकत्ते भेज रही हूँ कि चलने तक मिल जाय।

रेखा द्वारा भुवन को, कुछ पत्र और कुछ पत्र-खड :

भुवन,

मेरा प्याला भरने मे शायद यही कसर थी—तुम भी मुझे दोषी ठहराओगे। यही सही, भुवन, यह भी सही। मै टूट चुकी हूँ, मुझ में न शक्ति बाकी है, न धैर्य, न युयुत्सा, शायद और व्यथा पाने का भी सामर्थ्य अब नही है; तुम जो चाहे कह लो, मुझे कुछ नही होगा। और क्यो हो, किस लिए हो—कौन-सी वह आशा है जिस के कारण कोई निराशा, कोई चोट मुझे खले ? लेकिन भुवन, तुम क्या नही समझते कि मेरे लिए मानवी प्यार की आखिरी अभिव्यक्ति तुम थे—थे नही, हो, रहोगे—और इसी लिए मै मर गयी और अब नही जियूंगी ? अगर मै रो सकती, तो रोती—अतीत के लिए नही, अपने लिए नही, उस सब के लिए नही, जो अब नही रहा, रोती इस तुम्हारे अभियोग के लिए—क्यो कि यदि यह अभियोग है तो फिर मुक्ति न मेरे लिए है, न तुम्हारे लिए—मै जो सोचती थी कि जो भी हुआ, मै जो टूट गयी, उस की वडी व्यथा हमारे चरित्र में फैलेगी, मेरे से अधिक तुम्हारे मे, वह सब झूठ होगा; वह व्यथा एक अर्थहीन ट्रेजेडी हो जायेगी क्योंकि उस मे अभियोग होगा, और उस की अर्थहीनता हम दोनो को ले डूबेगी। मेरा तो कुछ नही, मै तो डूबी ही हूँ—पर तुम, भुवन, तुम ! मेरी सारी आशाओ का केन्द्र तुम हो—मेरे अन्तरतम की सारी व्यथा को इस तरह व्यर्थ न कर दो, भुवन ! व्यथा सृजन करती है, मेरी व्यथा वाँझ रह गयी, मुझे भी झुलसा गयी, पर मै ने मानना चाहा था कि वह तुम्ही को वनायेगी, और मै अपनी व्यर्थता तुम्हे अर्पित कर के सार्थक हो जाऊँगी। वह सान्त्वना भी मुझे नही मिलेगी ..

जाने दो। न मिले। अव और कोई सान्त्वना मुझे नहीं चाहिए, मुझे मर जाने दो, भुवन !

भुवन,

तुम्हारी अधूरी चिट्ठी का जवाव मै तुरत लिख गयी थी, वह तुम्हें अब तक न मिला हो तो फिर उसे मत पढना—पढ चुके हो तो क्षमा कर देना। तुम्हारी चिट्ठी मै ने फिर पढी है, कई वार फिर, शायद दोष तुम ने नही दिया—तुम्हारे पत्र में परिताप ही है जिसे मै ने अभियोग माना। पर नही, मेरे सहभोक्ता, अभियोग वह नही है, मै समझती हूँ; और जो आघात मै ने पाया था उस का घाव भर गया है—अपना आक्रोश मै वापस लेती हूँ और क्षमा माँगती हूँ। तुम्हारी चिट्ठी पा कर जानूंगी कि तुम ने माफ कर दिया—यद्यपि

मेरे आग्रह से तुम लिखोगे नही यह जानती हूँ।

तुम्हारी
रेखा

. .आज एक वर्ष होता है जब हम पहले-पहल लखनऊ में मिले थे—चन्द्रमाधव के यहाँ तुम ने मुझे बाद में बताया था, तुमने मुझे क्लान्त और अपनी शक्तियो को समेटती हुई देखा था—वह क्लान्ति आज और बढ गयी है और समेटने की शक्ति ही अब मुझ मे नही रही। मै केवल स्मरण करती हूँ, और बिखर जाती हूँ—मुझे याद आती है काफी हाउस की हमारी पहली ही बहस—और यह भी आज जैसे विधि का सकेत लगता है कि उस बहस में हम सत्य की वेदनामयता की बात करने लगे थे, और तुम ने एक सन्दर्भ दिया था **'द पेन आफ लविंग यू इज़ आल्मोस्ट मोर दैन आइ कैन बेयर'**. . .उस दिन पहली पक्ति में से तुम 'डीयरेस्ट' शब्द छोड गये थे, चाहूँ तो मान सकती हूँ कि वह छूट जाना भी विधि का सकेत था, पर नही, वह नही, इतना जरूर है कि आज मै एक शब्द और छोड जाऊँ 'आल्मोस्ट'—क्यो कि सचमुच यह दर्द मेरी सहन-शक्ति से परे है, मै उसे नही सँभाल सकती कोई भी नही सँभाल सकता शायद प्यार का दर्द, इसी लिए शायद प्यार रहता नही, दर्द रह जाता है—केवल ईश्वर सँभाल सकता है अगर वह—या कहूँ कि जो सँभाल सकता है वही ईश्वर है **"प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्'** कितनी सार्थक वन्दना है यह ईश्वर की, वही सह सकता है, वही एक, और कोई नही .

भुवन,

तुम्हारी दो चिट्ठियाँ एक साथ मिली है—बहुत भटकती हुई कोई छ· सप्ताह बाद। तो तुम जावा जा रहे हो—जा क्या रहे हो, अब तक तो पहुँच भी गये होगे। ठीक है भुवन, जाओ, तुम्हारा मार्ग प्रशस्त हो।

हाँ, मै हूँ सागर के ही किनारे—कदाचित् तुम भी सागर के किनारे होगे, पर ये किनारे दूसरे-दूसरे है—और क्या सागर भी दूसरे-दूसरे है भुवन ? मै दिन-भर बैठी लहरें देखती हूँ लेकिन उन की दौड मानो गति-हीन, प्रेत-दौड है; उन का टकराना सुनती हूँ पर वह भी मानो शब्द-हीन, प्रेत-टकराहट है—केवल दौड़ की, टकराहट की अन्तहीनता ही सजीव है, प्रेत नही है। .

एक और वर्ष-गाँठ—आज हम तुलियन पहुँचे थे, और मै ने गाया था **'लव मेड ए जिप्सी आउट आफ़ मी'**, और इस प्रेत केलैंडर की वर्ष-गाँठ गिनते-गिनते मै भी प्रेतिनी हो गयी शायद—जी चाहता है कि ठठा कर हँसूँ—कैसी जिप्सी बनाया प्रेम ने। पिछले वर्ष आज उत्तर मेरु पर थी, आज दक्षिण मेरु पर हूँ, उस दिन दुनिया की छत पर थी, आज—इस से गहरा और कौन-सा पाताल होगा जिस मे मै आज हूँ! और आगे सागर हहराता है आदिहीन और अन्तहीन, और सहसा स्वयं अपनी अन्तहीनता एक भया-

वना स्वप्न वन कर मेरे सामने आ जाती है—भुवन, यह अन्तहीन जिप्सी प्रेतिनी जायगी कहाँ !

तुम ने एक वार मुझे लारेंस की कविता भेजी थी। लो, आज मैं तुम्हें एक का अश भेजती हूँ। कोई सिर-पैर इस का नही है, फिर भी कुछ प्रासगिकता मानो उस मे है।

सर्मथिग इन मी रिमेम्वर्स एंड विल नाट
फार्गेट;
द स्ट्रीम आफ़ माइ लाइफ इन द डार्कनेस
डेथवार्ड सेट।
एंड सर्मथिग इन मी हैज़ फ़ार्गाटन,
हैज सीज्ड टु केयर,
डिजायर कम्स अप एंड कटेंटमेंट
इज डिवानेयर।
आइ हू एम वोर्न एंड केयरफ़ुल
हाउ मच डू आइ केयर ?
हाउ इज़ इट आइ ग्रिन देन, एंड चक्ल्
ओवर डिस्पेयर ?
ग्रीफ, ग्रीफ़ आइ सपोज़ एंड सफीशेंट
ग्रीफ़ मेक्स अस फ्री
टु वी फेथलेस एंड फ़ेथफुल टुगेदर
एज वी आल हैव टु वी।*

प्रिय भुवन ;

मौसी अव यात्रा से ऊवने लगी है, मैं भी ऊव गयी होती अगर पहले अपने से ही न ऊवी हुई होती, और हम लोग लौट रहे हैं। इस वीच में दो-तीन सप्ताह वीमार भी रही, उस ने मौसी को और उवा दिया। लौटते हुए हम लोग श्री अरविन्द आश्रम भी और श्री

---

*कुछ मुझ में है जो स्मरण करता है और भूल नहीं सकता; अन्धकार में मृत्यु की ओर उन्मुख मेरी जीवन-धारा।

और कुछ मुझ में भूल गया है और परवाह नहीं करता; वासना फिर जागती है और सन्तोष मौज़ में आता है।

मैं जो क्लान्त और चिन्ता-ग्रस्त हूँ—मुझे कितनी परवाह है ? कैसे मैं हँसता हूँ और निराशा पर खिलखिलाता हूँ ?

दुःख, दुःख—मेरी समझ में पर्याप्त दुःख ही हमें स्वतन्त्र करता है एक साथ ही वफादार और वेवफा होने के लिए, जैसा कि हम सभी को होना पड़ता है।

—डी० एच० लारेंस

रमण महर्षि के आश्रम भी होते आये। कोई आध्यात्मिक अनुभव मुझे हुआ हो, ऐसा तो नही, पर आश्रमो का वातावरण अच्छा लगा—यद्यपि था दोनो में कितना अन्तर! रमण महर्षि के दर्शन भी हुए, मौसी ने उन से कई प्रश्न भी पूछे। उन्होंने क्या-क्या कहा यह न तो याद है न लिखने मे कोई तुक है, पर चलते समय मुझ से जो दो-एक बात उन्होंने कही उस से उन की मानवी सवेदना का गहरा प्रभाव मुझ पर पडा।

अध्यात्म की ओर मेरी रुचि नही है, भुवन, उधर सान्त्वना खोजने की कोई प्रेरणा भीतर से नही है। पर सोचा है कि लौट कर फिर कुछ काम करूँगी—और अब आर्थिक आज़ादी की प्रेरणा से नही, आत्म-निर्भरता की प्रेरणा से नही, एक डिसिप्लिन के रूप मे

. दर्द है तो है, अपना जीवन मैं ने उसे दे दिया, अब कहाँ तक उसे सँजोये फिरूँगी? इस कथन में कुछ विद्रोह का-सा स्वर है; विद्रोह मुझ मे नही है, सम्पूर्ण नैराश्य ही है, इतना सम्पूर्ण कि अब उस की दुहाई कभी नही दूँगी

तुम अब पत्र लिखोगे, भुवन? तुम्हें गये चार महीने हो चले, तुम ने अभी पहुँच की भी खबर नही दी! वैसे अखबार मे मैंने पढा था, तुम्हे नौ-सेना और वायु-सेना से भी मदद मिली है—गनबोट मे तुम लोग माप लेने गये थे भुवन, तुम्हारे समाचार अखबारो से मिला करेंगे, यह नही सोचा था। अखबारो मे भी निकलेंगे, यह तो विश्वास था, पर मैं भी उन्ही पर निर्भर करूंगी, यह नही!

गाड ब्लैस यू

तुम्हारी
रेखा

भुवन,

अभी वकील की चिट्ठी आयी है कि तलाक की कारंवाई सम्पूर्ण हो गयी—डिग्री को छ महीने हो गये और अब मैं मुक्त हूँ, सर्वथा मुक्त—और उन्होंने मुझे बधाई दी है। और हेमेन्द्र के वकील की भी इसी आशय की चिट्ठी आयी है। उन्होंने यह भी सूचना दी है कि हेमेन्द्र का विवाह अगले महीने हो रहा है और मुझे सलाह दी है कि मैं उसे अपनी शुभ-कामनाएँ भेजूं, कड़ुवाहट बनाय रखने से कोई लाभ नही होता। इस सलाह की मुझ आवश्यकता नही थी—मुझे हेमेन्द्र से अब कोई शिकायत नही है, और उस के विवाह पर मैं बिना मन मे कुछ रखे उस की कल्याण-कामना करूँगी—पर वकील ने अनिवार्य कर्त्तव्य से आगे जा कर यह सब मुझे लिखा है इस के लिए मैं उस की कृतज्ञ ही हूँ। उन्होंने मेरे लिए भी आशा प्रकट की है कि मैं पुराने आघातो को ही न सहलाती रह कर भविष्य का निर्माण करूँगी—उन्हे मेरे भविष्य में विश्वास है, और उन का अनुरोध है कि जब भी कुछ महत्त्वपूर्ण मेरे जीवन मे घटे तो उन्हें सूचित करूँ। इस का क्या उत्तर दूं, भुवन? हँस दूं? लिख दूं कि आप का आवेदन देर से आया—महत्त्वपूर्ण तो सब घट चुका?

वह सब मैं सोच लूंगी, भुवन! अभी मेरे मन में तुम्हारे भविष्य का विश्वास उमड आया है, और मैं तुम्हे आशीर्वाद दे रही हूँ। तुम्हारे पिछले पत्रो में जो गहरी निराशा

थी, उसे मैं नही स्वीकार करती, तुम उस मे से निकल आओगे। जिस चौखटे की, जिस दीवार की बात तुम ने कही है, उस से भी तुम ऊँचे उठोगे। मुझे छूने के लिए नही—मैं गिनती मे नही हूँ—अपनी बाँहो मे दुनिया को घेरने के लिए! निराश मत होओ, भुवन, अपने जीवन को परास्त-भाव से नही, स्रष्टा-भाव से ग्रहण करो; एक विशाल पैटर्न है जो तुम्हें बुनना है; तुम्हारी प्रत्येक अनुभूति उस का एक अंग है, प्रत्येक व्यथा एक-एक तार—लाल, सुनहला नीला. . .मैं—मैं भी उसी ताने-बाने के तारो का एक पुंज हूँ—तुम्हारे जीवन-पट का एक छोटा-सा फूल। मेरे बिना वह पैटर्न पूरा न होता, लेकिन मैं उस पैटर्न का अन्त नही हूँ—मैं इस मे सुखी हूँ कि मैं ने भी उस में थोडा-सा रंग दिया है—शायद थोड़े-थोडे कई रग . .सब उज्ज्वल नही है, लेकिन कुल मिला कर यह फूल कभी अप्रीतिकर या तुम्हारे पैटर्न मे बेमेल नही होगा यही मनाती हूँ। मेरा आशीर्वाद लो, भुवन, और आगे बढो, जहाँ भी तुम जाओ, जो भी करो, मेरा प्यार और आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। मेरा विश्वास तुम में अडिग है।

और मैं ? मेरी चिन्ता मत करो। काल के पास एक अमोघ मरहम है। मैं भी काम कर रही हूँ। दो महीने से स्वयसेविका नर्स का काम मैंने लिया है, साथ काम सीख भी रही हूँ; पूरा नर्सिंग सीखने में तो अधिक समय लगता पर प्रबन्ध का काम भी मैं करती हूँ; मेरे लिए वह आसान है पर नर्सों मे प्रबन्ध-कुशल कम मिलती है और इस लिए वह काम मुश्किल समझा जाता है—या उस काम के लिए कार्यकर्त्ता पाना मुश्किल समझा जाता है। फलत. मेरा काम बराबर बढता जाता है, और सोचने के लिए मुझे कम अवकाश मिलता है . .कुछ सोचती हूँ तो कभी जब बीमार होती हूँ—और बीमार बीच-बीच में हो जाती हूँ—मेरी वाइटैलिटी बहुत कम हो गयी है। और भुवन, श्रीनगर में मैं मर कर भी नही मरी, पर तब से अधूरी मृत्यु कई बार हो चुकी है; अब डाक्टर ने कहा है कि एक आपरेशन फिर करना पडेगा नही तो इस तरह घुल कर मर जाऊँगी। मरने में और नया कुछ होगा यह तो नही लगता, पर घुल कर घिसट कर मरना नही चाहती. . .लेकिन आवृत्ति भी नही चाहती—नही, आवृत्ति तो नही हो सकती पर आजकल बड़े जोरो की बारिश होती रहती है, यह ज़रा थम ले तो. . .वैसे भी बारिश का मौसम अच्छा नही होता। डाक्टर का कहना है, अगले महीने या अक्टूबर में आपरेशन हो जाय—और अगर दार्जिलिंग जा सकूँ तो और अच्छा, या कही पहाड पर। देखें. . .

भुवन द्वारा गौरा को :

गौरा,

आज छः महीने बाद तुम्हें फिर पत्र लिखने बैठा हूँ। इन छः महीनों में तुम्हारा भी कोई पत्र नही आया है। तुम्हारा पत्र क्यो नही आया, इस का एक कारण तो यही है

कि मैंने पता नही दिया। न देने पर भी तुम पता लगा कर चिट्ठी भेज सकती थी यह मै जानता हूँ, पर यह भी जानता हूँ कि फिर भी तुम चुप रही तो यह मान कर ही चुप रही होगी कि मै ने वैसा चाहा है—या कि उस मे मेरा हित है। तुम्हारा जो पिछला पत्र मुझे मिला था—कलकत्ते नही, सिंगापुर मिला वह—उस से भी यह स्पष्ट होता है। यह सब जान कर भी, मै अपने को समझा लेना चाहता हूँ कि तुम मुझे भूल गयी क्योकि, क्यो कोई मेरे हित को ले कर इतना चिन्तित हो, क्यो कोई मेरे अन्याय, मेरे आघात सहे ? यह सब स्नेह, करुणा, वात्सल्य—सब मानो एक बोझ-सा मुझे दवाये डालता है. . एक नये बोझ-सा, क्योकि एक बोझ पहले ही मेरे कन्धो पर है—मानो एक सजीव बोझ, एक सजीव शाप का बोझ, सिन्दबाद के कन्धो पर सवार सागर के बूढे-सा, जो विवश न मालूम किधर ले जा रहा है। कई महीनो से जानता हूँ कि मेरा जीवन किसी नयी अज्ञात, अकल्पित दिशा में बहा जा रहा है, और शायद एक ट्रैजेडी की ओर। ठीक क्या नही सोच पाता, और न काम में अपने को सोचने का मौका ही देता हूँ। पर कभी-कभी बहुत वृष्टि में काम बन्द हो जाता है, अपने बाँस और लकडी के घर में वन्दी हो कर केवल वर्षा की टपाटप सुनता रहता हूँ जैसे आज तीन दिन से सुन रहा हूँ, सब कपडे, कागज़, खुली हुई कोई भी चीज़ सील जाती है, तब खाली वैठ कर सोचने को बाध्य हो जाता हूँ तव लगता है, इस सागर-यात्रा के साथ जिस जीवन से निकला, उस में अब लौटना नही है, कुछ मेरे भीतर बराबर मरता जा रहा है और कुछ नया उस के स्थान पर भरता जाता है जो स्वय भी मरा है या जीता है नही मालूम यहाँ काम समाप्त होगा तो शायद लौटना ही होगा, पर मानो लौटने का, लौट कर किसी से भी मिलने का मुझे डर है, जैसे मै स्वय अपना प्रेत हो गया हूँ, और डरता हूँ कि लौट कर जब लोगो से मिलूँगा तो पाऊँगा कि मै तो अब सच नही हूँ, केवल प्रेत हूँ—और वैसा पाना मै नही चाहता, नही चाहता !

लेकिन न जाने क्यो तुम से मिलने को, तुम से बात करने को, तुम्हें न जाने क्या कुछ बताने को मन होता है .मुझे लगता है कि मै खडे-खडे बहुमूल्य वस्तुओ को नष्ट होते, मरते देखा किया हूँ, अकेले देखा किया हूँ और इस लिए साथ ही स्वय भी मरता रहा हूँ; अगर उस अकेलेपन से निकल सकता, जो देखा है वह कर सकता, तो शायद उस मृत्यु से भी उवर सकता

नही, गौरा ! ये सब बातें लिखने की नही है। मै अच्छी तरह हूँ, काम रुचिकर है और शायद कुछ उपयोगी भी। कास्मिक रश्मियो के साथ-साथ रेडियो का भी काम हम लोग कर रहे है। वैसे यहाँ अशान्ति है और बढ़ रही है, पर हमारा काम ऐसा है कि हमें सब कुछ से अलग ले जाता है। तुम क्या कर रही हो ? आशा है कि अपने लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बना सकी हो, और अपने काम में तृप्ति पा रही हो—काम से अभिप्राय सिर्फ़ सिखाने का नही है, उस की बात कह रहा हूँ तुम जिसे अपना काम जानती हो,

जिस मे तुम्हारी अभिव्यक्ति है। लिखना जरूर। माता-पिता का भी हाल लिखना।

तुम्हारा
भुवन

गौरा,

नही, मेरा मन यहाँ से उचट चला—चला नही, एकदम असह्यय रूप से उचाट हो गया .जगह बहुत सुन्दर है, लोग बडे हँस-मुख, स्त्रियाँ रूपवती—उन के खुले कन्धों और बाँहो मे ऐसी एक कान्ति है कि कही नही जाती, जैसे अखरोट की लकडी की पुरानी और पालिशदार मूर्ति पर कोई पारदर्शी ओप चढा हो—पर नही, लकडी कैसे उस जीवित त्वचा की बराबरी कर सकती है? नृत्य भी मैने देखे है, मन्दिरो मे चर्मवाद्यो का सगीत भी—पर नही, नही, नही! सहसा भीतर कुछ उभर आया है कि नही, यह तुम्हारा स्थान नही है, चलो! और यह निरी 'होम सिकनेस' नही है—यहाँ का न होने में देश की भावना बिलकुल नही है, सारी परिस्थिति से असन्तोष है। मै जैसे किसी सुदूर पोत-भग का एक टूटा, वह कर आया हुआ विपन्न तख्ता हूँ—फ्लाट्सम—लहरो के थपेडे खाता लुढ़कता-पुढकता कही लगा हूँ और जानता हूँ कि नही, वह ठिकाना नही है, और वह पोत तो अब हई नही जिस का मै अश हूँ—था! अपने को ऐसे बहते देखा जा सकता है एक प्रकार की तटस्थता से और निरन्तर देखते रहने से एक मोहावस्था भी हो जाती है, पर सहसा वह टूटती है तो

तुम सोचोगी कि इस उच्चाटन की सूचना देने का क्या अर्थ हुआ अगर साथ यह नही कह रहा हूँ कि मै वापस आ रहा हूँ। पर नही। वापस तो नही आ रहा। और 'वापस' शब्द ही समझ मे नही आता—वापस कोई कभी गया है? फिर भी मन हुआ कि इस मन स्थिति की सूचना तुम्हें देनी चाहिए, वह दे दी .अगर इसे तुम उद्भ्रान्ति समझो, तो ठीक है, उदभ्रान्त तो मै हूँ ..

तुम्हारा स्नेही
भुवन

मेरी प्रिय गौरा,

इस स्थान के तीन ओर पानी है—समुद्र तो नही, पर समुद्र से लगी हुई खारी झील का—मैं चार महाकाय सागौन वृक्षो और छ.-सात ताल वृक्षों की ओट में से उसे देखता हूँ, और यह ओट उसे और भी विस्तार दे देती है। पीछे एक छोटी हरी पहाडी है। पेडो की आड में पानी के दूसरी पार की नीची पहाड़ियो की शृंखला है, और सागौन के बड़े-बड़े पत्तो के गवाक्ष में से दीख जाती है थिरकती हुई पालदार नौकाएँ। और मै 'होम-सिक' हूँ—मान लेता हूँ कि होम-सिक हूँ—यद्यपि यह मेरे लिए एक शब्द ही है, मै तो निर्गृह ही हूँ और यह केवल ऊब का दूसरा नाम है! पर नही, सच कहूँ तो तुम्हारी स्मृति से भर गया हूँ। मेरा शरीर आज ठीक नही है; मै दोपहर से ही आराम-कुर्सी पर बैठा हूँ,

अब रात हो गयी है, इन छ -सात घटो मे मैंने कुछ नही किया है सिवा तुम्हारी बात सोचने के, एक-टक तुम्हें देखते रहने के। तुम्हारी पलको की एक-एक झपक देखता रहा हूँ, और वेणी को किरीटाकार पहन हुए तुम्हारे सिर के—क्योकि जिसे देखता रहा हूँ, वह आज की संगीत-शिक्षिका नही, कई बरस पहले की विद्यार्थिनी है ! —एक-एक उडते ढीठ बाल को मेरी आशीर्वाद-भरी दृष्टि ने गिन डाला है। तुम ने नही जाना—मेरा यह अवलोकन बिलकुल नीरव, निराग्रह, नि सम्पर्क है—मै दूर, बहुत दूर वन की साँस हूँ, स्पर्शातीत . . .

पश्चिम धीरे-धीरे रंजित हुआ, फिर लाल, फिर और लाल, फिर उस लाली में उदासी आने लगी मैंने कहा, गौरा, एक दिन तुम्हें मै अपनी कहानी सुनाऊँगा, लाल और उदास . .फिर धीरे-धीरे अँधेरा हो चला, आकार ओझल होने लगे और एक हलकी-सी हवा झील की ओर ले बह निकली। मैंने कहा, नही गौरा, कुछ नही सुनाऊँगा, सुनाने को है ही क्या, चुपचाप सिर झुका लूँगा और प्रतीक्षा करूँगा कि तुम्हारे क्षमा-भरे, करुणा-भरे हाथ मेरे माथे को छू दे . क्या ऐसा नही हो सकता कि हवा के झोके से तरगायित यह झील एकाएक सूख जाय, लुप्त हो जाय, कि उसे निरन्तर भागते हुए वाष्पयानो के धक्के न सहने पडें, समुद्र मे मिल कर खारा न होना पडे—खारेपन मे अपने को खो देते हुए भी समुद्र के बेदर्द थपेडे न खाने पडे—इस दुर्गति को आत्म-समर्पण न करना पडे ! फिर ध्यान आया, ये सब रूपक व्यर्थ है, यह सब सुनने-समझने की फुरसत किसे है . . कोई भविष्य नही है, कोई अतीत नही है, अतीत से अपने को उच्छिन्न कर लिया है इस लिए और भी कोई भविष्य नही है, क्योकि भविष्य होता क्या है ? अतीत का स्फुरण. . केवल वर्तमान जीता है और उस वर्तमान को चाहे समझ लो—तीन ओर पानी, सामने सागौन के पेड, दूर पहाडियाँ, तिरती पालदार नावे, सान्ध्य आकाश, अर्थात् सौन्दर्य और शान्ति—बाह्य वर्तमान, चाहे समझ लो एकाकीपन, ऊब, सूना, उच्चाटन, उत्कठा अर्थात् आन्तरिक वर्तमान, दोनो एक ही है, एक ही वर्तमान, आगे अपनी-अपनी पसन्द है .

सवेरे। रात में दो-तीन बजे वर्षा शुरू हो गयी बडे जोरो से; अब कुछ ठड है। मेरा शरीर भी कुछ ठीक है। कल से शायद काम करने लायक हो जाऊँ, आज अभी और आलस करने का जी है। पत्र भी लिखता रह सकता हूँ—पर सोचता हूँ, इसे इतना ही छोड दूं। और लिखा तो अलग भेज दूंगा।

तुम्हारा
भुवन

गौरा द्वारा भुवन को :

भुवन दा, मेरे भुवन दा ! आज मेरी साधना फली है, और जी होता है, आप की चिट्ठी सामने रख कर गा उठूं, कोई वाद्य ले कर—सितार, नही वीणा ले कर बजाने बैठूं मोहन रागिनी, और घटो बजाती रहूँ, जब तक कि हाथ सन्न न हो जायें—हाथ ही, मेरा उत्साह

नही, मेरे प्राणो की वह हँसी नही जो किसी तरह आप तक पहुँच कर आप के पैरो से लिपट जाना चाहती है !

लेकिन फिर दुवारा आप की चिट्ठी पढती हूँ, और मेरी मोहन रागिनी सहसा धीमी पड कर नीलाम्वरी में वदल जाती है। भुवन दा, यह सब क्या है, आप क्या सोचते है, क्या वह कष्ट है जो आप इस तरह छिपाये वैठे है ? छिपाये भी नही, कष्ट है यह तो दीखता ही है, और कष्ट के कारण आप इतना अन्याय भी कर जाते है कि अगर कष्ट दीखता न होता तो आप का पत्र पाने वाला मर्माहत हो कर बैठ जाता—क्या है यह कष्ट कि आप उस से ऐसे हो गये ? मै वार-वार पत्र पढती हूँ, और सोचती रह जाती हूँ कि क्या यह भुवन दा का ही पत्र है, मेरे भुवन दा का . आप मुझे लिखिए—बताइये कि क्या बात है —क्या मै किसी काम नही आ सकती ? एक वार आप ने कहा था, 'गौरा, अब से तुम से वरावर-वरावर वात करूँगा', बरावर तो मै कभी नही हो सकती पर अगर आप बिलकुल छोटी ही नही मानते तो क्या मुझे अपना पूरा विश्वास देगे ?

ऐसी बुरी-बुरी बातें मत सोचिए, भुवन दा ! मै तो कहती हूँ, आप आइये, आ कर आप पायेंगे कि आप का डर बिलकुल निर्मूल है। यह नही कि आप सच नही है, जैसा आप ने लिखा है, वल्कि आप ही सच है—क्योकि आप दूसरो को भी जीवन देते है। सच भुवन दा, आप कव तक जावा में बैठे रहेंगे ? अब आ जाइये न।

पिता जी मसूरी ही है, माँ भी। अब वही रहेंगे—वहाँ अपना मकान ले लिया है। अब की वार मै जाऊँगी तो उस को ठीक-ठाक सजा दूँगी। और आप जव आवेंगे तो आप को पहले सीधे वही आना होगा—मै हुई तो भी, और न हुई तो भी क्योकि तब खबर मिलते ही आ जाऊँगी—फिर चाहे जहाँ आप जावें । पिताजी आप को वहुत याद करते है। आप जो ऐसे चुपके से चले गये, उस का उन्हे खेद भी है—यद्यपि कभी कहेंगे नही।

मै वहुत परिश्रम कर रही हूँ, सोचती हूँ, अगले साल फिर दक्षिण चली जाऊँ, कम-से-कम एक वर्ष के लिए और हो सका तो दो के; पर अभी कुछ स्पष्ट नही सोच पायी हूँ। आप का परामर्श चाहती—पर आप आवेंगे तभी पूछूँगी। कब आवेंगे आप ? मै दिन गिनती रहूँगी।

आप की ही
गौरा

भुवन दा,

वस अब आप आ जाइये वापस—मैं पापा को लिख रही हूँ कि आप आ कर मसूरी रहेंगे, और एक कमरा आप के लिए तैयार कर दिया जाय—वह आप के लिए तैयार ही रहेगा, आप जव भी आयें। वह आप का ही कमरा रहेगा, भूलिएगा नही।

गौरा

भुवन दा,

आप फिर चुप लगा जायेंगे ? जब से आप को जाना, तब से कभी नही सोचा कि ऐसा होगा—यों आप चिट्ठी नही लिखते थे पर वह इस लिए नही होता था कि आप कुछ नही बताना चाहते, वह इसी लिए होता था कि बताने की ज़रूरत नही, मुझे मालूम है. .पर अब ? आहत हो कर मैं ने सीख लिया कि नही, ऐसा भी हो सकता है कि आप मुझे बहुत-सी बातो से दूर रखना चाहें—कुछ सीख कर फिर मैं ने उसे भी स्वीकार कर लिया, आप ही ने दूर हटा दिया तो मैं कौन-सा मुँह ले कर पास आने या बुलाये जाने का आग्रह करूँ ? अब फिर—आप ने मझे माफ कर दिया है, मूर्च्छा से जगा दिया है—अब फिर आप दूर ठेल कर डूब दे जायेंगे ? जैसे कोई दु स्वप्न देख कर जब जागता है तो आँख खोलते डरता है—कि न जाने क्या दीख जाये, न जाने कही सपने के भयावने आकार सचमुच न सामने आ जायें यद्यपि आँख खोलने में ही उन से निस्तार है—स्वप्न की मोहावस्था से छुटकारा है—वैसी ही मैं हो रही हूँ ; दु स्वप्न से डर गयी हूँ पर प्रकाश में आँखें खोलते डर रही हूँ, धीरे-धीरे आँख खोल रही हूँ, कि प्रकाश की अभ्यस्त हो जाऊँ, फिर चारों ओर नज़र डालूँ—भुवन दा, मुझे फिर डरा न दीजिएगा, प्रकाश में मैं फिर वे भयावने आकार न देखूं मैं तो यह भी कर सकती हूँ कि अब आँखें मीचे ही पडी रहूँ, जब तक आप ही आ कर न जगायें और कहें कि उठो, कही कोई डर नही है, देखो मैं हूँ . आप कहेंगे कि यह वयस्क दृष्टि नही है, बच्चो की-सी बात है—कह लीजिए, आप के सामने बच्चा बनते भी मुझे डर नही है। आप ने कन्धो चढाया था, सिर चढाया था; मैं उसी की आदी हो गयी हूँ। आप पटक दीजिए, तब बिना रोये चल भी लूँगी, तब तक अपने-आप तो अपनी जगह से हटती नही।

आप कहेंगे इतरा रही है—रही हूँ न ? नही भुवन दा, आप कहेंगे तो तुरत हट जाऊँगी, नही भी कहेंगे, तो जभी जानूंगी कि आप वैसा चाहते है, चाह सकते है, या उस में आप का हित या सुख या शान्ति है, तो भी हट जाऊँगी।

आप बिलकुल स्वस्थ हैं न ? मुझे शीघ्र पता दीजिए।

आप की
गौरा

भुवन दा, आप बडे अच्छे है। पिता जी का पत्र आया है कि आप की चिट्ठी उन्हे मिली है, चलिए आप ने मुझे न लिख कर उन्हें तो लिखा, अच्छा ही किया। पर उन्होने यह भी लिखा है कि आप फिर और कही दूर जाने की सोच रहे है—यह क्या मामला है ? क्या इसी लिए मुझे पत्र नही लिखा—कि मैं दु खी हूँगी ? पर भुवन दा, मेरे लिए कितनी भी दु खद खबर क्यो न हो, आप सीधे मुझे लिखिए। खबर कैसी भी हो, उस से मुझे जितना क्लेश होगा उस से ज्यादा इस बात से कि वह मुझे सीधे आप से नही मिली, औरो के जरिये मिली . मैं ने तो सोचा था—पर जाने दीजिए जो सोचा था !

आज तक किस का हुआ सच स्वप्न जिस ने स्वपन देखा ?
कल्पना के मृदुल कर से मिटा किस की भाग्य-रेखा ?[१]

भुवन दा, मुझे आशीर्वाद दीजिए, बल दीजिए कि आप दूर हो चाहे पास, आप के स्नेह से मँज कर शुद्ध हो कर मैं चमकती रहूँ; असफलता और निराशा मुझे कड़वा न बना सकें ..

आप की ही
गौरा

रेखा द्वारा भुवन को ·

भुवन,

यह पत्र तुम्हे अस्पताल से लिख रही हूँ—नही, तुम घबराना नही, यह नर्सिंग होम है, और मैं अब बिलकुल ठीक हूँ। और शुश्रूषा पा रही हूँ। मौसी भी साथ है, और कलकत्ते से डाक्टर भी साथ आये थे, वह भी यही है। बीच मे चले गये थे, अब मुझे लिवाने फिर आये है—दीवाली के दिन मै कलकत्ते पहुँच जाऊँगी और दीवाली घर पर ही होगी। तुम उस समय कहाँ होगे ? दिया जलाओगे ? और नही तो एक आकाश-दीप जला देना—मै प्रेतात्मा तो नही हूँ—या कि हूँ, भुवन ?—पर मेरी शुभाशंसा तुम्हारे चारो ओर मड़रायेगी और तुम पथ दिखा दोगे तो तुम्हे छू जायगी .

हेमरेज फिर हुआ था—बहुत—उस का तात्कालिक उपचार कर के डाक्टर रमेशचन्द्र मुझे यहाँ ले आये थे। कुछ ग्रोथ थी भीतर। यहाँ आपरेशन हो गया; अधिक कष्ट नही हुआ और तब से मै बिलकुल स्वस्थ हूँ। दार्जिलिंग का जलवायु और यह शरद ऋतु की धूप—एक अलस, ताप-स्निग्ध तन्द्रा देह पर छायी रहती है, पर उस अलसानेपन में भी शरीर का पुर्ननिर्माण हो रहा है, और बहुत दिनो के बाद उसे स्वस्थता का बोध हो रहा है—जैसे अब जब वह हिले-डुलेगा, कर्म-रत होगा, तो कर्तव्य भावना के कारण नही, शून्यता के भय के कारण नही, कुछ करने की माँग के कारण, स्फूर्ति के कारण, प्रवृत्ति के कारण.. कैसी अद्‌भुत लगती है यह भूल गयी-सी भावना ! और इस का श्रेय बहुत-कुछ डाक्टर रमेशचन्द्र को है। आपरेशन उन्होने नही किया—मैंने ही उन्हे नही करने दिया—पर शुश्रूषा-चिकित्सा सब उन की रही; चिकित्सा से भी बढ कर उन्होने एक गहरी संवेदना मुझे दी जिस मे मेरी गाँठ बँधी हुई कचोट मानो द्रव हो कर धीरे-धीरे बह गयी वह भी तुम्हारी तरह धुनी और कार्य-व्यस्त जीव है, तुम्हारी तरह कम बोलते है, पर जिस से भी मिलते है, उस पर उन का गहरा असर होता है—थकी, झुकी, अवसन्न चेतना को जैसे उन की संवेदना तुरत सहारा दे कर सीधा कर देती है। 'राइज़ अप एंड वाक'[२] और 'थेरिलो ही थ्रू अवे हिज़ क्रचेज़ एंड वाक्ड, एंड द पीपुल मार्वेल्ड'[३] ..तुम न मालूम

[१] नरेन्द्र शर्मा

[२] उठ और चल

[३] सचमुच उस ने अपनी बैसाखियाँ फेंक दीं और चलने लगा और लोग चकित हो गये।
—बाइबिल

स्वदेश कब लौटोगे, नही तो तुम से कहती, उन से मिलना---तुम्हे उन से मिल कर खुशी होती, मुझे पूरा विश्वास है।

तुम कैसे हो भुवन ? तुम ने पिछले पत्र मे मुझे लारेंस की जो कविता भेजी थी उसी से अनुमान लगाऊँ तुम्हारी मन.स्थिति का तो वह स्वीकार नही होता---नही भुवन, दर्द को, परिताप को जी से चिपटा कर मत बैठो---देखो, यह तुम से मै कहती हूँ, मै ! एक निग्रो कविता है

आइ रिटर्न द बिटरनेस
ह्विच यू गेव टु मी;
ह्वेन आइ वांटेड लव्लिनेस
टैंटेलैट एंड फ़्री।
आइ रिटर्न द बिटरनेस
इट इज वाश्ड बाइ टीअर्स
नाउ इट इज लव्लिनेस।
गार्निश्ड थ्रू द यीअर्स।
आइ रिटर्न इट विद लव्लिनेस
हैविंग मेड इट सो :
फ़ार आइ वोर द बिटरनेस
फ्राम इट लांग ऐगो।*

इस के पहले पद को उलहना न समझना सार की बात अन्तिम पद मे है हम अपने भीतर पका कर व्यथा को सौन्दर्य बनाते है---यही सृष्टि का रहस्य है, बल्कि यह तुम ने मुझे बताया था ! पकाने में समय बीत जाता है, हम बूढे भी हो जा सकते है, परास्त भी हो सकते है, हमारी आकांक्षाए अधूरी भी रह जा सकती है---पर उस सब का कोई महत्त्व नही है, बूढे होने का नही, हारने का नही---महत्त्व है उस आन्तरिक शान्ति का जो पकने मे मिलती है, उस तन्मयता का मै तो यही अनुभव करती हूँ, तुम मालूम नही ऐसा करते हो कि नही, पर उस गम्भीर शान्ति का बीज मुझ में तुम्ही ने बोया था, और उस की जडे निरन्तर गहरी होती जा रही है। मै शान्त हूँ, जो भावनाएँ मुझे तोडती-मरोडती, चिथडे कर के रख देती थी, अब मुझे छूती भी नही। और

*मै लौटाती हूँ वह कटुता जो तुम ने मुझे दी थी, जब कि मै चाहती थी सौन्दर्य, मुक्त और दोलायमान।

मै लौटाती हूँ वह कटुता; अब वह आँसुओ से घुल गयी है---अब वह वर्षो बीन-बीन कर संग्रह किया हुआ सौन्दर्य है।

मै उसे लौटाती हूँ सौन्दर्य के रूप में, जो मै ने बनाया है, क्यो कि कटुता तो उस में से मै ने कब की धो डाली।

यह नही कि मै हृदय-हीन हो गयी हूँ, सवेदनशून्य हो गयी हूँ—नही, मै अधिक सवेदनशील भी हूँ, पर अधिक अनासक्त भी . .

लेकिन मै बहुत बक रही हूँ—अपने बारे में बहुत बाते कर रही हूँ ! भुवन, एक बार जडता की सीमा को छू आ कर ही जीवन वास्तव में शुरू होता है; मुझे लगता है कि तुम भी उस अवस्था में से गुज़र रहे हो एक बार अपने को मर जाने दो—अपनी ही राख मे से फिर तुम उदित होगे—परिशुद्ध हो कर, कान्तिवान् .

यह सब तुम्हें दम्भोक्ति या प्रलाप लगे तो ध्यान कर लेना कि मै नर्सिग होम की आराम-कुर्सी से लिख रही हूँ—ए जैबरिंग ओल्ड सिक हैग !*

मेरा हार्दिक स्नेह लो ।

तुम्हारी
रेखा

भुवन,

तुम्हारी चिट्ठी मिली है। मै कृतज्ञ हूँ। शायद सात महीने बाद तुम्हारी यह चिट्ठी है, लेकिन इसे पढ कर मुझे लगा कि हम दोनो की मानसिक प्रगति लगभग समान्तर होती रही है। फिर मैने तुम्हारे पिछले दो-चार पत्र भी निकाल कर पढे, और उस से यह भावना और भी पुष्ट हो गयी। समान सोचते है तो दूर नही है, इतना ही नही, मुझ में जो परिवर्तन—ठीक परिवर्तन वह नही है, विकास, प्रस्फुटन, भीतरी और घटना-जन्य सम्भावनाओ का स्फुरण—हो रहा है उसे लक्ष्य कर के तुम्हारे बारे में आश्वस्त भी हो सकती हूँ. मैने एक बार प्रतिज्ञा करनी चाही थी कि अपने कारण तुम्हारा कोई अहित नही होने दूँगी, फिर सहसा इस डर से रुक गयी थी कि क्या जाने, चाह कर भी इसे निभा पाऊँगी कि नही, इस लिए यही शपथ ली थी कि जहाँ तक हो सकेगा नही होने दूँगी . . .अब जानती हूँ कि वह प्रतिज्ञा शायद टूटी नही—अहित बिलकुल नही हुआ यह तो नही कह सकती, पर जहाँ तक सकी—नही, जितना हुआ, उसे घातक होने से शायद बचा सकी हूँ, और मेरी आशाएँ तुम में जी सकेंगी, सुफल हो सकेंगी .

तुम भटक रहे हो, भटकोगे, और भटकना चाहते हो, यायावार हो जाना चाहते हो। चाहते हो तो क्यो नही हो जाते ? भुवन, मै तो स्त्री हूँ, और मेरा स्वास्थ्य भी चौपट ही है, लेकिन मैने भी कई बार चाहा है यायावार हो कर बन्धन-हीन विचरना। पर जहाँ, जैसे, जैसी हूँ, मै जान गयी हूँ कि वह नही है मेरे लिए, कि कभी-न-कभी—और शायद जल्दी ही—मुझे कहीं टिक जाना होगा, स्थिर हो जाना होगा, मान लेना होगा कि पडाव आ गया—इस लिए नही कि मेरी आकाक्षा की दौड वही तक थी, उस लिए कि मेरी सकत की दौड़ आगे नही है. . .पर तुम, तुम घूमो, महाराज, मुक्त विचरण करो, प्यार दो और पाओ, सौन्दर्य का सर्जन करो, सुखी होओ, तुम्हारा कल्याण हो. .

*एक बड़बड़ाती हुई बीमार बुढ़िया !

मैं बिलकुल ठीक हूँ, काम मैंने फिर आरम्भ कर दिया है। डा० रमेशचन्द्र के आग्रह और प्रयत्न से मैं अस्पताल से हट कर केवल व्यवस्था के काम मे लग गयी हूँ . उन का आग्रह था कि मैं रोग और रोगियो के वातावरण में न रहूँ। और मैं अब अनुभव कर रही हूँ कि ठीक ही था—उस का मेरे मन पर निरन्तर बोझ रहता था, और इस व्यवस्था के काम में बढते हुए उत्तरदायित्व से कुछ प्रेरणा भी मिलती है, कुछ सान्त्वना भी।

उधर युद्ध के बादल घिर रहे है। तुम कब तक उधर रहोगे, भुवन ? अब तो फिर जाडे आने लगे! कभी पढा था, जाडे आते है तो वसन्त भी दूर नही है—पर अब मालूम होता है कि यह बात भी किसी 'इनफ़ीरियर फिलासफ़र' की कही हुई है, जिस से बचना चाहिए।

तुम्हारी
रेखा

भुवन द्वारा गौरा को :

गौरा,

खबर तुम ने सुनी ? जरूर सुनी होगी ! बडे धडल्ले के साथ जापान युद्ध मे कूद आया। और एक ही चोट में उस ने अमेरिका को कितना बडा आघात पहुँचाया है। देश में बहुत होंगे जो इस पर खुश हो रहे होंगे—चालीस-एक बरस पहले जब जापान ने रूस को हरा दिया था और यूरोप चकित हो कर देखता रह गया था कि एक छोटे-से एशियाई द्वीप-राज्य ने एक यूरोपीय साम्राज्य-शक्ति को पछाड दिया, तब जो एशियाई गर्व जागा था, उसे आज नया प्रोत्साहन मिलेगा। परं उस में और इस मे जो अन्तर है, उस की लोग उपेक्षा कर पायेंगे : तब गर्व करना उचित था, क्यो कि एक दबी हुई जाति ने सिर उठाया था और उस मे दूसरी उत्पीडित जातियो के लिए आशा का सकेत था; पर अब ? अब जापान भी एक उत्पीडक शक्ति है, साम्राज्य भी और साम्राज्यवादी भी—और आज उस को बढावा देना, एक नयी दासता का अभिनन्दन इस आधार पर करना है कि वह दासता यूरोपीय की नही, एशियाई प्रभु की होगी। कितना घातक हो सकता है यह तर्क! परदेशी गुलामी से स्वदेशी अत्याचार अच्छा है, यह एक बात है, यह मानी जा सकती है; पर क्या एशियाई नाम जापान को यूरोप की अपेक्षा भारत के अधिक निकट ले आता है, जापानी को यूरोपीय की अपेक्षा अधिक अपना बना देता है ? जाति की भावना गलत है, श्रेष्ठत्व-भावना हो तो और भी गलत—हिटलर का आर्यत्व का दावा दम्भ ही नही, मानवता के साथ विश्वासघात है; पर अपनापे या सम्पर्क की बात कहनी हो तो मानना होगा कि यूरोप ही हमारे अधिक निकट है, आर्यत्व के नाते नही, सास्कृतिक परम्परा और विनिमय के कारण, आचार-विचार, आदर्श-साधना और जीवन-परिपाटी की आधारभूत एकता के कारण . यह हमारे भारत के एक स्थानीय प्रश्न (विश्व की भूमिका में हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न को स्थानीय ही मानना होगा) से उत्पन्न कटुता के कारण है

कि हम नही देख सकते कि न केवल यूरोप के बल्कि निकटतर मुस्लिम देशो के—'मध्य-पूर्व' के—साथ हमारा कितना घनिष्ट सांस्कृतिक सम्बन्ध न केवल रहा है बल्कि आज भी है, और हम चीन से, और चीन की मारफत जापान से सास्कृतिक आदान-प्रदान का नाता जोडते हैं। फ़ाह्यान और यूवान च्वाग थे, ठीक है, पर अतीत का ऐतिहासिक सम्बन्ध आज का सजीव सम्बन्ध नही भी हो सकता है; और केवल मूर्ति-कला को ले कर हम कहाँ तक दौडे जायेंगे, धर्म और दर्शन, गणित और विज्ञान, आचार और विचार के सम्बन्धो की अनदेखी कर के ? और हाँ, अत्याचार और उत्पीडन, दास-दासियो के क्रय-विक्रय, लूट और व्यापार और धर्षण और विवाह के सम्बन्धो की, रक्त के, रीति-रस्म के, कला और साहित्य के, भोजन-वसन के, भाषा के, नामो के मिश्रण की अनदेखी कर के ? हम किसी देश का, किसी देश की जनता का, अहित नही चाहते, पर एशियाई नाम को ले कर जापानी साम्राज्य-सत्ता का अनुमोदन करना या उस के प्रसार को उदासीन भाव से देखना, खड के नाम पर सम्पूर्ण को डुबा देना है, अँग्रेजी कहावत के अनुसार अपन मुँह से लड कर अपनी नाक काट लेना है, मानवता के साथ उतना ही बडा विश्वासघात करना है जितना उन्होंने किया था जो मुसोलीनी द्वारा अबीसीनिया या हिटलर द्वारा चेकोस्लोवाकिया के ग्रास के प्रति उदासीन थे .

पर यह सब मै क्या लिख रहा हूँ ? कहना यह चाहता हूँ कि इस खबर न मुझ झकझोर दिया है। यहाँ काम भी अब आगे नही हो सकता—बडी तेज़ी से फौजी सगठन हो रहा है और और सब काम रुक गया है। हम तुरत यहाँ से जा रहे है—आजकल में शायद वायुयान से सब सामान समेत सिगापुर ले जाये जायेंगे; वहाँ से आगे जैसा हो। मैं भारत-वर्ष लौट रहा हूँ। क्रिसमस से पहले नही तो मासान्त तक अवश्य पहुँच जाऊँगा। यह नही कह सकता अभी कि कलकत्ते पहुँचूंगा, या कोलम्बो, या कहाँ—जैसा प्रबन्ध हो जाय। पक्का पता लगते ही तार से तुम्हे सूचित करूँगा। मेरे मन मे अनेक विचार उठ रहे है—अनेक प्रकार के इरादे—पर अभी कुछ स्पष्ट नही है, उस बारे में अभी नही लिखूंगा, पर सोचता हूँ, तुम से मिल कर बात-चीत करूँ, तो विचार भी कुछ स्पष्ट हो, और आगे का मार्ग भी कुछ दीखे। गौरा, अगर मै सीधा तुम्हारे पास न आ सका, और तुम्हे मै ने मिलने के लिए बुलाया, तो आ सकोगी न—आओगी न ? या कि रूठ जाओगी ? तुम ने एक पत्र में लिखा था, "आप बुलावे, उतना मान मेरा नही है,"—तुम क्या जानो कि कितना है ! पर वह जो हो, उस की बात मिलने पर, अभी इतना ही कि शायद बुलाऊँ ही—तो आना, क्षमामयी गौरा !

जल्दी में—सहसा बहुत-सा काम करन को हो गया है !

तुम्हारा
भुवन

गौरा के नाम भुवन का केबल

सुरक्षित हूँ लौट रहा हूँ सब को सूचित कर दो निश्चित स्थान तारीख अनन्तर सूचित करूँगा।

भुवन

गौरा के नाम भुवन का केबल

सिंगापुर सकुशल पहुँचा आशा है कल कलकत्ता प्रस्थान पहुँचने की अनुमानित तिथि २३ दिसम्बर सको तो मिलो पता मारफत कुक या डच एयरलाइन।

भुवन

गौरा का जवाबी तार, एक प्रति टामस कुक, नकल के० एल० एम० डच लाइन कलकत्ता

सन्देश डा० भुवन के लिए अनुमानित पहुँच २३ दिसम्बर कृपया पहुँचा दीजिए सन्देश आरम्भ मसूरी प्रतीक्षा करती हूँ सीधे आइये असम्भव हो तो तार दे कहाँ मिलूँ आऊँगी मिलना आवश्यकीय स्नेह पिताजी के आशीर्वाद गौरा सन्देश समाप्त पहुँचाने पर या देरी होने पर तार से सूचित कीजिए।

मिस नाथ सुकेत मसूरी

गौरा का पत्र, भुवन के नाम, उपर्युक्त दोनो पतो पर :

तो आप आ रहे है, भुवन दा! मै ने तार दिया है कि आप मसूरी आ जाइये। पापा का स्वास्थ्य बहुत अच्छा नही है और मै उन के पास हूँ। फिर भी आती ही—चिन्ता की कोई बात नही है—पर आप २३ दिसम्बर को पहुँचते है तो कालेज तो तुरत जाना नही होगा, इस लिए यहाँ आ सकेगे यह मै ने मान लिया है। यहाँ आप को भी अच्छा लगेगा, पापा को भी, और मै भी आप की सेवा कर सकूँगी—कलकत्ता तो कैसी जगह है. न जाने। पर अगर कोई कठिनाई हुई तो मै तुरत आऊँगी—कलकत्ते या और जहाँ आप कहें। मै तैयार बैठूँगी—आप का तार आते ही चल दूँगी। भुवन दा, आप आ रहे है, सोच कर मै पागल हुई जा रही हूँ—इतनी कि उस दुर्घटना को ही धन्य कह देती जिस के कारण आप को जावा छोडना पडा—पर नही, इतना अविववेक नही !

ओ मेरे सुख धीरे-धीरे गा अपना मधु-राग
ऊँचे स्वर से सोयी पीडा जावे कहीं न जाग

आप की, आप ही की

गौरा

गौरा

गौरा को कमरे में प्रवेश करते हुए भुवन ने न देखा था, न सुना था; उस की उपस्थिति को उस ने सहसा चौक कर जाना तो बैठा-का-बैठा रह गया, गौरा ने उस के कोट के बटन-होल में नरगिस का एक डाँठा लगा दिया और उँगलियो के हलके स्पर्श से पल्ला सहलाती हट गयी तो भुवन ने पूछा, "ये कहाँ से—इस वक्त ?"

रात का भोजन कर के भुवन अपने कमरे मे आ कर बैठा था। सहसा लम्बी यात्रा का अवसाद और दिन-भर के अनुभवो की थकान उस पर छा गयी थी तो कुरसी खिडकी की ओर खीचकर, बदली से घने हो रहे आकाश की पृष्ठिका पर खिचे हुए पत्रहीन गुडहल के आकार पर एक नजर डाल कर उस ने हथेलियो से आँखे ढँक ली थी और स्पष्ट आकार-विहीन किसी विचार मे डूब गया था। तनी हुई थकान ढीली पड कर मीठी-मीठी फैलने लगी थी।

सुकेत छोटा-सा अच्छा बँगला था, ढाल पर बना हुआ, दुमजिला ; निचली मजिल सामने को खुली थी, ऊपर की मजिल से सामने से सीढी उतरती थी, पर पिछवाडे भी उतरने का रास्ता था—ढाल के कारण पिछवाडे दो-तीन सीढियाँ ही उतरनी पडती थी, फिर एक रास्ता धीरे-धीरे उतरता हुआ सामने की सडक मे आ मिलता था। ड्राइग रूम और एक बडा बरामदा ऊपर था, उस के साथ गौरा के पिता का अध्ययन-कक्ष और फिर सोने का कमरा और एक छोटा कमरा, निचली मजिल मे भी एक ड्राइग-डाइनिग रूम था और तीन सोने के कमरे, पर निचला ड्राइग-रूम प्राय काम में नही आता था—या किसी बहुत ही औपचारिक ढग की भेट के लिए ही सुरक्षित था, और भोजन भी प्राय ऊपर के बरामदे में होता था। गौरा के माता-पिता ऊपर की ही मंज़िल में रहते थे और पिछवाडे के रास्ते ही उतर कर टहलने जाते थे, सामने की सीढी शायद ही कभी काम मे आती थी—गौरा ही उस से आती-जाती थी। नीचे वाला एक शयन-कक्ष उस का था, दूसरा प्राय खाली रहता था और उस में गौरा ने पुस्तकालय और वाद्य-यन्त्र रखने का स्थान बना रखा था, वही वह सगीत का अभ्यास करती थी। तीसरा कुछ अलग था और उस के बाहर एक बहुत छोटा-सा अलग बाडा भी था—यह मेहमान कमरा था और इसी मे भुवन को ठहराया गया था।

"मै अपने कमरे से लायी हूँ।"

भुवन ने लक्ष्य किया कि उस के पल्ले पर लगी हुई चार फूलो वाली एक डाँठी ही नही, गौरा एक गहरे ऊदे रग का फूलदान ले कर आयी है जिस में नरगिस भरे हैं। उस ने ग्रीवा एक ओर को झुका कर गहरी साँस से कोट मे लगे वृन्त की सुवास लेते हुए कहा, "सारे ले आयी—वहाँ नही रखे ?"

गौरा न उत्तर नही दिया। चुपचाप थोडी देर उसे देखती रही। एक बहुत हलकी मुस्कान—मुस्कान भी नही, एक खिलापन—उस के चेहरे पर था। फिर बोली, "आप को सर्दी तो नही लगेगी ? रात को बारिश हुई थी—आज फिर हो सकती है।"

"नही, गौरा, इतनी ठड तो नही है।"

गौरा ने चारो ओर नज़र डाली। "मैंने दो कम्बल और भी रख दिये है—और अँगीठी में लकडियाँ भी चिनी रखी है—कहिए तो आग जला दूँ—"

यह भुवन ने नही लक्ष्य किया था—क्यों कि कोर्निस के आगे लकडी की एक छोटी तिरस्करणी रखी थी जिस से अँगीठी छिपी हुई थी।

"और डोल में चीड की कुकडियाँ भी रखी है—जलती भी अच्छी है और सुगन्ध भी देती है—"

भुवन ने कुछ अधिक तत्परता से कहा, "नही गौरा, नही—मुझे आग जला कर सोने की आदत नही—"

एक सन्नाटा-सा छा गया। गौरा कोर्निस के सहारे खडी हो गयी। दोनो अनमने से एक-दूसरे की ओर देखते रहे। फिर सहसा गौरा ने कहा, "आप थके है—मैं जानती हूँ—किसी चीज़ की जरूरत हो तो आवाज़ दे दीजिएगा—"

भुवन ने भी मानो अपने को समेटते-से कहा, "नही, गौरा, तुम ने किसी जरूरत की गुंजाइश कहाँ छोडी—", फिर गौरा की पीठ को देखते हुए उसे मानो ध्यान आया कि वह उस की कुछ अवज्ञा कर गया है—गौरा बात करने आयी थी—उस ने कहा, "बैठो—अभी क्या वक्त हुआ है ?"

गौरा क्षण-भर ठिठकी। फिर मुडे बिना ही उस ने कहा, "नही, आप सो जाइये। सुबह—अगर आप बुलायेंगे तो घूमने चल सकती हूँ।"

भुवन ने कहा, "सुबह ?" कुछ ऐसे ढंग से जो न प्रश्न था न उत्तर, न इनकार और न स्वीकृति; गौरा भी बात को वही छोड कर पीछे आहिस्ता से किवाड़ बन्द करती हुई चली गयी।

भुवन ने उठ कर बत्ती बुझा दी, और फिर पूर्ववत् बैठ गया। उस का शिथिल हुआ मन धीरे-धीरे मानो एक-एक कदम बढता हुआ प्रत्यवलोकन करने लगा।

गौरा के पिता ने सरल और खुले आनन्द से उस का स्वागत किया था; वह प्रणाम करने झुका था तो हाथ बढा कर हाथ मिलाया था, दूसरे हाथ से भी कलाई पकडते हुए, फिर खींच कर गले-सा लगा लिया था। "तुम आ गये भुवन—गौरा तो चिन्ता करके सूख गयी थी !"

भुवन को पहुँच जाना चाहिए था बारह बजे, वह साढे चार बजे पहुँचा था; पर किसी ने उस से पूछा नही कि इतनी देर कहाँ लगी। बात यह हुई थी कि कलकत्ते से उस ने दूसरा तार दिया था अपने पहुँचने के दिन का; देहरादून स्टेशन पर वह उतरा तो गौरा

प्लेटफार्म पर खडी थी—वह सुबह की सर्विस से चली आयी थी। भुवन को देखते ही वह लपकी हुई दोनो हाथ बढा कर उस की ओर दौडी थी, भुवन ने उस के दोनो हाथ अपने हाथो मे पकड लिये थे और कुछ बोल नही सका था, थोडी देर बाद गौरा ने धीमे से कहा था, "आप आ गये " और फिर धीरे-धीरे उस के हाथ छोड दिये थे। लेकिन जब सामान वगैरह सँभाल कर भुवन ने पूछा था, "अभी अड्डे पर चलना होगा—या मैं मुँह-हाथ धो लूँ वेटिंग रूम में ?" तो गौरा स्वय अपने को विस्मित करती कह गयी थी, "धो लीजिए—इस सर्विस से नही जायेंगे मसूरी !"

भुवन ने बिना कुछ कहे मान लिया था। मान ही नही लिया था, मानो उस क्षण से बागडोर गौरा को सौप दी थी कि जैसा वह कहेगी वैसा ही चलता जायगा। केवल जब मुँह-हाथ धो कर वह निकला था और गौरा ने पूछा था, "नाश्ता करेंगे ?" तो उस ने पहले पूछा था, "तुम्हारा क्या हुक्म है ?" लेकिन फिर गौरा के कुछ कहने से पहले ही कहा था, "नही, चलो स्टेशन से बाहर निकले।"

ताँगा लेकर वे मैदान तक गये थे, वहाँ से पैदल टहलते हुए डालनवाला की ओर निकल कर रिसपना के किनारे पहुँच गये थे, नीचे सूखी नदी के पाट मे उतर कर पत्थरो में वे चलते रहे थे, फिर एक ऊचे कगारे पर एक पेड देख कर उस के नीचे बैठे गये थे। चलते हुए दोनो बहुत थोडा बोले थे, गौरा ने छोटे-छोटे प्रश्न पूछे थे—कब चले, कैसे आये, कहाँ कितना ठहरे, यात्रा कैसे हुई, इत्यादि—और भुवन ने वैसे ही छोटे-छोटे जवाब दे दिये थे, पर बैठ कर दोनो बिलकुल ही चुप हो गये। भुवन सामने पडे हुए ककडो मे से एक-एक उठा कर निरुद्देश्य-सा नीचे फेकने लगा, गौरा देखती रही। थोडी देर बाद वह भी यन्त्रवत् एक-एक ककड उठा कर भुवन को देने लगी, भुवन अन्यमनस्क-सा ककड ले लेता और मानो पहले फेके हुए पत्थर का निशाना बाँधता हुआ-सा फेक देता। इस प्रकार एक-एक ककड से समय का एक-एक अन्तराल लाँघते हुए वे काल की या अस्तित्व की ही किसी अज्ञात दिशा में बढते रहे।

सहसा गौरा ने कहा, "चले अब।"

इतनी देर तक नीरवता अलक्षित थी, अब इन शब्दों से वह मानो दोनो की चेतना मे घनी उभर आयी। भुवन ने कहा, "गौरा, तुम्हे कुछ कहना नही है ?"

"और तुम्हें ?" सहसा गौरा कह गयी। फिर कुछ सकपका कर सँभलती हुई, "आप ने तो लिखा था बहुत कुछ बताना है—सलाह करनी है—" वह खडी हो गयी।

भुवन ने हाथ बढा कर उस का हाथ सहारे के लिए पकड कर उठते हुए कहा, "और तुम्हे तो और भी अधिक सलाह करनी थी।"

गौरा हँस पडी। "चलिए, मसूरी चल कर सलाह ही सलाह होगी—अभी थोडी देर मे आप तो बुजुर्ग हो जायेंगे—बुजुर्गी आने से पहले—मैं—थोडी देर चुप-चाप आप के पास बैठना चाहती थी।"

भुवन ने मुस्करा कर कहा, "बुजुर्गी तो गयी गौरा, सदा के लिए।" फिर सहसा गम्भीर हो कर, "लेकिन हम सीधे तुरत मसूरी नही गये—इस के लिए तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। मुझे डर था—"

"क्या डर था?"

"कि कही—कही हम अजनबी न हों—कही मुझे बेयरिंग्स न खोजनी पडे—"

गौरा ने उमड कर हाथ उस की ओर बढ़ाया और कुछ घनी आवाज़ मे कहा, "भुवन दा?" फिर तुरत सयत होती हुई बोली, "तो आप साल-भर से कम मे इतने साहब हो गये कि देश की बेयरिंग्स भूल गये? और जावा तो ऐसा साहब भी नही है—"

भुवन हँस दिया।

धीरे-धीरे वे लौटे थे और अगली सर्विस उन्होने पकड ली थी। रास्ते मे फिर बहुत कम बात हुई थी, गौरा सुकेत का नकशा उसे समझाती रही थी, बस। बीच-बीच मे भुवन उस की ओर देखता था, वह मुस्करा देती थी और वह भी मुस्करा देता था। किनक्रेग उतर कर वे पैदल चढाई चढने लगे तो बात हो ही नही सकती थी, बँगले पर पहुँच कर गेट के भीतर घुस कर गौरा दौडती हुई छोटे रास्ते से ऊपर चढ गयी थी पुकारती हुई कि "पापा, पापा, भुवन दा आ गये!" भुवन जब तक गेट से प्रविष्ट हो कर भीतर पहुँचे, तब तक पापा बाहर आ कर सामने की सीढी से उतरने लगे थे, सीढी के नीचे ही दोनों की भेट हुई थी। गौरा कही अदृश्य हो गयी थी, और फिर लगभग घटे भर बाद तक नज़र नही आयी थी, आयी थी तो सूचना देने कि चाय तैयार है। पिता ने पूछा था, "बेटी, चाय ही है कि कुछ खाने को भी?" और मुड कर भुवन से, "खाना खा कर चले थे?"

भुवन ने कहा था, "जी, मोटर-यात्रा से पहले कम ही खाता हूँ—" और गौरा ने साथ ही उत्तर दिया था, "जी खाने को भी रखा है पर ये तो कुछ खाते ही नही, और अब तो जावा से पूरे साहब हो कर आये होंगे—"

भुवन ने आँख बचा कर इशारे से ही उसे घुडक दिया था।

तीसरे पहर थोड़ी देर उस ने आराम किया था, फिर चाय पी थी और फिर गौरा के पिता के साथ घूमने गया था, इस बीच गौरा ने उस का कमरा सजा दिया था। लेकिन शाम को भी गौरा से विशेष बात नही हुई थी, खाने पर तो होती ही क्या।

और अब भुवन ने फिर अपने को हिलाया। इस समय निस्सन्देह गौरा बात करने आयी थी—और फूल ले कर . और उस ने पूछा ही नही कदाचित् वह आहत हो कर चली गयी। क्यों नही उसे ध्यान आया? बाद में उस ने कहा था, अवश्य, पर बाद में कहने से क्या फ़ायदा।

सवेरे? शायद। गौरा ने तो स्पष्ट घूमने का निमन्त्रण दिया था। शायद वही अच्छा है, सवेरे टहलते हुए बात होगी तो और ढग की होगी, रात को कमरे में बैठे-बैठे शायद बड़ा उदास हो जाती यह नही कि वह वैसा चाहता . .पर मन जैसा है सो सो है ही,

फिर रात का अपना असर होता है...और सवेरे का अपना, टहलने का अपना ..

भुवन उठ कर अँधेरे मे ही कपडे बदलने लगा। बदल चुका, तो क्षण भर जा कर खिडकी पर खडा रहा; बदली अभी थी, कही-कही एक-आध तारा दीखता था; यहाँ की रात, यहाँ की हवा, यहाँ की नीरवता में जावा की रात और हवा और नीरवता से कितनी भिन्नता थी—मात्रा की नही, प्रकार की, स्वभाव की

वह धीरे-धीरे जा कर लेट गया। थोडी देर बाद सहसा उठा, कोट टटोल कर उस ने उस मे लगा हुआ नरगिस का डाँठा निकाला और सिरहाने रख कर फिर लेट गया। फूलदान के नरगिसो की भारी, सालस, स्तब्ध गन्ध सारे कमरे में फैल गयी थी, सिरहाने रखे एक वृन्त की गन्ध अलग नही पहचानी जाती—पर वह एक वृन्त उपयोगिता के विचार से थोडे ही वहाँ रखा गया है . क्या यह वृन्त भी बात करना चाहता है ? अच्छा तो अब की उस से चूक नही होगी, वह सुनेगा, और वृन्त को कान के पास रख कर सुनेगा निहोरे कर के—उस के तन्द्रिल मन मे एक अधूरा पद तैर आया 'लंपितु किमपि श्रुतिमूले'—श्रुतिमूल मे कुछ धीरे से कहने को—कौन ? क्या वह ऊँघ गया .

* * *

गौरा जाग कर उठ बैठी। किसी अनवरत शब्द ने उसे जगाया था। उस ने सुना · पैरों की चाप, पाँच-सात पगो के बाद एक अन्तराल, फिर पाँच-सात पद। भुवन के कमरे से आ रही है आवाज़, तो भुवन कमरे मे चक्कर काट रहा है—लेकिन चाल भी समान नही है, क्या गौरा कल्पना कर रही है, कि सचमुच वह पद-चाप उद्वग की सूचक है ? उस ने घड़ी देखी : साढे-बारह, फिर उस ने एक चादर कन्धो पर और अपने खुले बालो पर डाली ओर दबे पाँव कमरे से बाहर हो गयी।

भुवन के द्वार पर वह ठिठकी। पैरो की चाप और भी असम हुई, फिर सहसा रुक गयी।

गौरा ने सावधानी से किवाड खोला, वह ज़रा-सा चरमराया और फिर चुपचाप खुल गया। भीतर हो कर किवाड फिर धीरे से उढका कर गौरा वही खडी रही, आगे नही बढी, इधर-उधर सटे हुए पर्दो में से एक को हाथ से पकडे हुए, आधी पर्तों की ओट। कमरे के फीके अन्धकार में खोजती हुई उस की आँखो ने देखा, भुवन खिडकी के पास फर्श पर बिछे गलीचे पर बैठ गया है, कुछ वैसी मुद्रा मे जैसी चित्रो पर धनुष पर चिल्ला चढाते हुए कुमार राम की होती है—लेकिन वैसी कसी हुई नही, परास्त, एक घुटना भूमि पर, दूसरे पर कोहनी टिकी हुई; उठा हुआ हाथ धीरे-धीरे माथे पर आ टिका और माथे को पकड़े रहा .

कहाँ है भुवन ? किस चिन्ता मे है—नही, चिन्ता तो निरी विचार की अवस्था होती है, किस गहरी अनुभूति में है ?

लेकिन—यह भुवन का निजी क्षण है, निजी अनुभूति है; ऐसे उसे देखते रहना चोरी है। वडे कोमल स्वर मे गौरा ने कहा, "भुवन दा, क्या बात है, नींद नही आती ? बत्ती जला दूं ?"

भुवन वडे ज़ोर से चौका। खडा हो गया। थोडी देर बाद हक्का-बक्का-सा उसे देखता रहा। "गौरा, तुम—तुम !"

गौरा ने फिर कहा, "थोडी देर आप के पास बैठूं ? आप कुरसी पर वैठिए।" और वह स्वय अँगीठी के आगे से तिरस्करिणी हटा कर, अँगीठी के लकडी के चौखट पर वैठ गयी, कुरसी के सामने।

भुवन कुछ अतत्पर भाव से वैठ गया। फिर जैसे शून्य को भरने के लिए कुछ कहना ही है, ऐसे वोला, "मै सो गया था, फिर—चौक गया।"

"क्यो—कोई सपना देखा था ?"

"शायद। नही—कोई रोया था !"

"रोया था ? नही भुवन दा—रोने की आवाज़ कहाँ से आ सकती है—"

"हाँ," भुवन ने साग्रह कहा, "चिडिया का बच्चा रोया था।"

गौरा ने विस्मय को दवा कर क्षण-भर बाद फिर कहा, "बत्ती जला दूं ?"

"न। अच्छा, जला दो।"

गौरा ने टेवल लैम्प जला दी। लचकीले तार के स्टैंड वाली लैम्प थी, उसे दवा कर उस ने नीचा कर दिया, प्रकाश दीवार पर पडने लगा और वहाँ से प्रतिबिम्बित हो कर कमरे में फैला।

भुवन ने हाथों से आँखें ढंक ली, जैसे चौंध लगती हो। उस का शरीर एक वार सिहर गया।

गौरा ने कहा, "मै आग जला देती हूँ, सर्दी वहुत है ! और आप कुछ ओढ़ लीजिए।"

भुवन ने तडप कर कहा, "नही गौरा, आग नही !"

गौरा विस्तर पर से कम्वल उठाने मुडी थी, ठिठक गयी। फिर उस ने कम्वल उठा कर धीरे से भुवन के कन्धो पर डालते हुए कहा, "क्या वात है भुवन दा—चीड़ की आग तो वड़ी स्निग्ध होती है—आप को अच्छी लगेगी—"

"नही, नही, मुझे आग में चेहरे दीखते है !"

गौरा ने पीछे खडे-खड़े ही दोनों हाथ भुवन के कन्धो पर रखते हुए कोमल स्वर से पूछा, "किस के चेहरे, भुवन दा ?"

"चेहरे—मृत चेहरे—बच्चों के चेहरे।" गौरा के हाथों के नीचे उस का शरीर एक वार फिर सिहर गया।

गौरा क्षण-भर अनिश्चित खड़ी रही। फिर उस ने सहसा भुवन के सामने जा कर कहा, "भुवन दा, अब और नहीं मानूंगी। बताइये क्या बात है।" जैसे साहस वटोर कर

उस ने दोनो हाथ-भुवन के कानों पर रखे, उन के हलके दबाव से भुवन का मुँह ऊपर उठाते हुए कहा, "देखिए मेरी तरफ देखिए—आप को बताना होगा !"

उन की आँखें मिली, दोनों स्थिर एक-दूसरे को देखते रहे। गौरा ने लगभग अश्रव्य स्वर मे कहा, "मै पूछती हूँ, भुवन, नही बताओगे तुम ?"

भुवन ने उत्तर नही दिया; दोनो वैसे ही देखते रहे। फिर गौरा के हाथ धीरे-धीरे शिथिल होने लगे—वह हार गयी है—और भुवन नही बोलेगा, कि भुवन ने कहा, "अच्छा गौरा, बताता हूँ। अच्छा, तुम बैठ जाओ।"

गौरा उस के सामने की ओर, अँगीठी के सामने बिछे गलीचे पर वैठने लगी। अध-वैठी ही थी कि भुवन ने जल्दी से और एक अजब रुखाई के साथ कहा, "रेखा को तुम जानती हो—आइ लव्ड हर।"[1]

गौरा वैठती-बैठती रुक गयी। धीरे से बोली, "जानती हूँ।" थोडा-सा रुक कर, "आइ लव हर टू।"[2]

भुवन ने चकित भाव से कहा, "गौरा !" फिर रुकते-से, "लेकिन तुम ने तो उसे देखा ही नही—"

"मै—मिली थी। लेकिन—यह—मिलने से अलग बात भी है।"

भुवन ने बात काटते हुए पूछा था, "कव ?" पर वह प्रश्न बीच ही मे डूब गया, दोनो चुप बैठे रह गये।

कई मिनट बाद भुवन ने कहा, "कहानी लम्बी है गौरा। पर—बहुत छोटी भी है।" सहसा एक कठोर, निष्करुण भाव से, "आइ लव्ड हर। वी वेयर टु हैव ए चाइल्ड। आइ किल्ड हिम।"[1]

"अ—" गौरा के मुँह से निकला, दोनो की आँखें मिली तो भुवन ने देखा, गौरा की आँखो में व्यथा है, विमूढता है, और—अविश्वास है। गौरा धीरे-धीरे बोली, "झूठ मत वोलिए, भुवन दा, अपने को ऐसे क्यो कोस रहे है ?"

भुवन ने सहसा उबल कर कहा, "कोसूं भी नही गौरा—तुम नही जानती कि मैंने क्या किया है !"

"एक रूखी बात कहूँ, भुवन दा ? आप कहना चाहते हो तो—वात कहे, जजमेंट आप मुझे न दे—वह करना होगा तो मै स्वय करूँगी।" सायास मुस्करा कर गौरा वोली, "उतनी कठोर भी हो सकती हूँ—आप की शिष्या हूँ आखिर !"

फिर एक लम्बा सन्नाटा रहा। फिर भुवन ने कहा, "अच्छा गौरा, आग जला दो। मै कहता हूँ।"

---

[1] मै उसे प्रेम करता था। [2] मैं भी उसे प्रेम करती हूँ। [1] मै उसे प्रेम करता था। हमारी सन्तान होने वाली थी। मैंने उसे मार दिया।

गौरा ने कहा, "सच, भुवन दा ? आप नही चाहते तो कोई ज़रूरत तो नही है—"

"नही, जला दो। अगर दीखेगा ही तो देखता जाऊँगा और कहता जाऊँगा।"

गौरा ने आग जला दी। क्षण ही भर में चीड की कुकडियों ने आग पकड़ ली, प्रकाश जहाँ-तहाँ नाचने लगा, चीड के सोधे, उदार, हृद्य गन्ध-धूम ने वातावरण को छा लिया, जैसे खुले वनाकाश की साँस वहाँ आ कर बस गयी हो।

"गौरा, मै भाग गया था—तुम से भागा था—पर तुम से भागने के लिए ही नही —एक वोझ मुझे दवाता लिये जा रहा था—मेरे कन्धो पर सवार सागर का बूढा—" भुवन कुरसी से उतर कर नीचे गलीचे पर बैठ गया, आग के निकट आ कर आगे झुका हुआ वड़ी-वडी अपलक आँखों से आग की लपटों को देखता हुआ। गौरा भी अपलक उसे देखने लगी, भुवन की आँखों मे ऐसा आविष्ट, मन्त्र-मुग्ध भाव उस ने कभी देखा नही था —मानो भुवन उसे भूल गया है, देश-काल-परिस्थिति सब भूल गया है, केवल लपटो मे ही उस का अस्तित्व केन्द्रित हो गया है, उसी में से वह प्राण खीच रहा है ..

एक अद्भुत भाव गौरा के भीतर उमड अया : कुछ डर, कुछ आशंका, कुछ जुगु-प्सा, कुछ श्रद्धा, और सव के ऊपर एक आप्लवनकारी स्नेह ..कुछ वहुत निजी, बहुत पवित्र, जिसे उघडा नही देखते, वहुत निकट से नही देखते—ऐसे भाव भर कर वह उठी और भुवन के पीछे जा कर कुरसी पर वैठ गयी। भुवन मानो अकेला हो कर, कुछ और भी आगे झुक कर, धीरे-धीरे वोलने लगा।

"तुम उस के वारे मे वुरा नही सोचोगी, गौरा; वह—वैसे लोग दुर्लभ होते है दुनिया में—और—उस ने मुझे वहुत प्यार किया था, जितना—" वह तनिक रुका और फिर कह गया, "जितना किसी ने नही किया। और अब भी करती है। और "

गौरा सुनती रही। भुवन का स्वर पहले असम था, धीरे-धीरे सम, सधा हुआ होने लगा; और उसी अनुपात में दूर, निर्व्यैक्तिक, रागमुक्त, असम्पृक्त, मानो गौरा के आगे एक सजीव व्यक्ति नही, शब्द का एक झरना हो, जो अजस्र भाव से वहता जा रहा हो, कौन पास है, कौन उस के झरझर वहते हुए अभिप्रायो को सुनता है या नही सुनता, उस की सवेदना की झिलमिल छायित-द्योतित पन-चादर को देखता है या नही देखता, इस से सर्वथा असंलग्न .

और कमरे में चीड की आग के आलोक की शिखाएँ नाचती रही, लकडी की और चीड की कुकड़ियो की हलकी चटपट और विस्फूर्जित वाष्पों की फुरफुराहट जैसे स्वर-पृष्ठिका वन कर भुवन की वात को अतिरिक्त वल देती रही .

" ..मै उसे वही छोड़ कर चला आया; चलते वक्त उस ने एक कापी और अपनी नीन्दी गाढी पैकेट वना कर मुझे दी थी जो मैंने वाद में देखी, कापी में वहुत-सी वाते थी और वाइवल के 'साग आफ़ सांग्स' के वहुत-से अंश—'माइ विलवेड स्पेक एंड सेड अंटू मी, राइज़ अप, माइ लव, माइ फ़ेयर वन, एंड कम अवे; फ़ार लो, द विंटर इज

पास्ट, द रेन इज ओवर एड गान, द फ्लावर्स एपीयर,' वगैरह, फिर मै श्रीनगर चला गया—"

गौरा ने दबे-पाँव उठ कर आग मे चीड की कुकडियाँ और डाल दी, भुवन की ओर एक बार भी नही देखा, फिर पूर्ववत् उस के पीछे आ कर बैठ गयी।

" तुलियन मे हम चार दिन रहे, फिर मै उसे पहुँचाने पहलगाँव आया, रास्ते मे नदी के आर-पार पडे एक तख्ते के बीच मे खडे हो कर उस ने कहा—उस ने मुझे कहा —मुझ से पूछा कि जीवन मे मेरी आकाक्षा क्या थी। मैंने बताया, सर्जन होने की, वह स्वय बीनकार होना चाहती थी—फिर उस ने कहा, 'उसे मै वीणा भी सिखाऊँगी, और सर्जन भी बनाऊँगी'—फिर वह चली गयी और मै तुलियन लौट गया काम करने— "

आग लपकती और गिरती, कभी एक अध-जली लकडी बीच मे से टूट कर गिरती और आग का एक भाग दब कर अँधेरा या नीलाभ हो जाता, फिर फुरफुरा कर एक छोटी-सी शिखा उस में से उमग आती और बढ जाती। उसी प्रकार भुवन का स्वर कभी मद्धिम पड जाता, कभी धीरे-धीरे ऊँचा उठ जाता, कभी उस की वाणी क्षण-भर अटक कर फिर कई-एक द्रुत चिनगारियाँ फेंक देती—यद्यपि साधारण रूप से उस की बात फुलझडी-सी नही थी, न उस मे तारा-फूलो की लडियाँ थी, न घटती-बढती कलाओ का आकर्षण, न वह चटचटाहट जो स्फूर्ति देती है, न वह रग-बिरग चमक जो लुभा लेती है वह थी महताबी की तरह, जिस के भीतर से अगारे बूँद-बूँद टपकते है, पिघली हुई आग के आँसुओ की तरह, जो हवा मे भी झरते है, पानी के नीचे भी झरते है, चुप-चाप, बेरोक झरते जाते है, जलते जाते है

" लेकिन दुबारा जब मै गया तब—वह बदल गयी थी—मेरी सात-आठ दिन की अनुपस्थिति मे उसे ऐसी चिट्ठियाँ आयी थी कि—मेरी बात उसे आश्वस्त नही रख सकी थी और उस ने—उस ने आपरेशन करा लिया था। यह बात मेरे ध्यान में भी न आयी थी —पर मुझे उसे छोड कर नही जाना चाहिए था क्योकि तब शायद उस का विश्वास न टूट जाता—मै "

भुवन का स्वर धीरे-धीरे बदलने लगा। गला भर्रा आया, क्रमश वाक्तन्त्रो की झकृति कम, और केवल वायु का स्वर बढता चला, यहाँ तक कि बात केवल एक तीखी फुसफुसाहट हो गयी जो कभी-कभी टूट कर स्वनित हो जाती थी, बस गौरा के रोगटे खडे हो गये—वह आवाज मानो मानवीय ही नही थी, मानो वातावरण में भटकती हुई कोई प्रेत-व्यथा वहाँ पूंजीभूत हो कर स्वरित हो रही हो। वह निश्चल सुनती न रह सकी, पर भुवन को रोक भी न सकी, दबे-पाँव उठ कर उस ने टेबल लैम्प बुझा दी और फिर वही आ कर बैठ गयी, भुवन आग को देख रहा था, उसे मालूम ही नही हुआ कि पीछे प्रकाश कम हो गया है, वह वैसे ही अमानुषी ढग से बोलता रहा

"वह कलकत्ते चली गयी। दिल्ली तक मै साथ आया था, यहाँ रेल में बिठाया था।

रेल में एक और सवारी ने उस से पूछा था, ये कौन है ? तो उस ने कह दिया मेरे—हज-वैंड, सात साल हुए शादी हुई थी। पडोसिन उसे बधाई देने लगी—"

सहसा स्वर बन्द हो गया।

निस्तब्ध निश्चलता—आग की जीभें भी उठ रही थी तो मानो इसी लिए कि पहले से उठ गयी हैं और अब रुकना ही गति होगा, उठते रहना तो अगति है; वैसी हो साँसे—उठती और गिरती क्यों कि सदा से गिरती आयी है, वैसी ही क्षणों की धारा बहती क्योकि अजस्र बहती आयी है ..

न जाने कितनी देर बाद, भुवन की एक शब्द-हीन विरस हँसी—"यह सब मैं क्या कह रहा हूँ।" फिर एक लम्बा मौन, फिर भुवन का रुकता-सा, सोचता-सा स्वर : "यही है मेरी कहानी, गौरा—और तब से मैं आग में देखता हूँ चेहरे—मृत बच्चो के चेहरे—स्वय अपना चेहरा क्यो कि मैं भी तो मर गया हूँ उस के साथ।"

फिर मौन। फिर भुवन सहसा सिहरता है, एक काला बादल-सा उस के सिर-माथे पर छा गया है और चारों ओर से बहता हुआ-सा उसे डुबाये जा रहा है—वह लडखडा जायगा और धँस जायगा—आँखों के आगे अँधेरा हो रहा है—टटोलते से हाथ वह अपने सिर की ओर, सिर के ऊपर उठाता है—

ऊपर गौरा का झुका हुआ सिर है, उस के खुले बाल आगे ढरक आये है और भुवन के चेहरे पर छा गये है—भुवन का हाथ स्तब्ध रुका रह जाता है, वह बादल भी स्थिर रुका रह जाता है—फिर टप से एक बूंद उस के माथे पर बरस जाती है—

भुवन के दोनो हाथो की उँगलियो ने ढरके हुए बालो की एक-एक लट पकड ली। फिर एक हाथ उस ने छोड दिया, हाथ बढा कर गौरा के माथ को धीरे-धीरे थपकने लगा। .

"राह चलते जिस दिन बैठे-बैठे जानूंगा कि मेरे पीछे कोई है और मुड कर नही देखूंगा, और वह झुक कर अपने खुले बाल मेरी आँखो के आगे डाल देगी, उस दिन मैं जान लूंगा कि मेरी खोज—मेरे लिए खोज समाप्त हो गयी और पडाव आ गया।"

यह किस ने कहा था ? मानो किसी पुस्तक में पढी हुई भविष्यवाणी है यह—

सहसा भुवन ने कहा, "गौरा, अब तुम इस सारी बात को भूल जाओ—शायद मुझे तुम्हे कहनी ही न चाहिए थी, व्यर्थ .."

गौरा ने दोनों हाथ भुवन के कन्धो पर रख दिये, और धीरे-धीरे सीधी खडी हो गयी। पीछे खडी-खडी ही बहुत धीमे, खोये-से स्वर मे बोली, "तुम—तुम कभी पछता-ओगे तो नही मुझे यह सब बता देने पर ? मैं—"

भुवन ने कहा, "नही गौरा, यह तो नही लगता। मुझे तो लगता है, कि वह जो बोझ मुझ पर था—यह सागर का बूढा जो मेरे कन्धो पर सवार था, वह उतर गया। सोचता हूँ, पहले ही तुम से कहा होता.. पर—शायद कहने का समय नही आया था—"

"अब---तुम भागोगे तो नही ? बोझ उतर गया तो---बताओ, फिर चले तो नही जाओगे ?"

भुवन थोडी देर नही बोला। फिर उस ने एकाएक कहा, "गौरा, बत्ती कैसे बुझ गयी ?"

गौरा ने हटते हुए सिर ज़ोर से झटक कर बाल पीछे कर लिये; मेज की ओर बढ कर टेबल लैम्प उस ने जला दी, कुछ बोली नही। भुवन भी नीचे से उठ कर अँगीठी के जँगले पर बैठ गया, ढेर-सी कुकडियाँ उस ने आग मे डाल दी। आग भडक उठी तो उस ने पूछा, "गौरा, कुछ कहोगी नही ?"

गौरा चुपचाप उस के पास नीचे बैठ गयी। भुवन का एक हाथ नीचे लटक रहा था, उसे अपने हाथो मे ले कर धीरे-धीरे सहलाने लगी।

भुवन ने फिर कहा, "गौरा, तुम्हे कुछ कहना नही ?"

गौरा फिर भी चुप रही।

भुवन ने अपना हाथ खीचते हुए धीमे, कुछ हताश स्वर से कहा, "समझ गया, गौरा। लेकिन एक बार मुँह उठा कर वैसा ही कह दो---"

गौरा ने मुँह उठा कर थरथराते मर्माहत स्वर मे कहा, "आप इतने---तुम इतने अबूझ कैसे हो सकते हो ? फिर तत्काल सयत, "आप---रेखा दीदी से नही मिलेगे ?"

भुवन ने कुछ विस्मित स्वर से कहा, "मै कलकत्ते मिलता आया हूँ।"

तीन बजे के लगभग गौरा अपने कमरे मे चली गयी।

रेखा से भेंट की बात बताते हुए भुवन खडा हो गया था, फिर धीरे-धीरे न जाने कैसे दोनो खिडकी के पास जा खडे हुए थे। भुवन रेखा की बात कह कर चुप हो गया, फिर थोड़ी देर बाद उस ने हठात् पूछा, "गौरा, तुम रेखा से कब मिली थी, यह तो तुम ने बताया नही ?"

"वह मिलने आयी थी---पिछली गर्मियो मे।" कुछ रुक कर, "तुलियन से लौटने के बाद। चन्द्रमाधव जी मिलाने लाये थे।"

"ओह।" कह कर भुवन चुप हो गया। आगे कुछ पूछने का उस का मन नही हुआ।

"आप चन्द्रमाधव जी से नाराज है, भुवन दा ?"

भुवन सहसा कुछ नही बोला, बाहर रात की ओर देखता रहा।

"क्यो नाराज़ है भुवन दा ? वह आप के मित्र रहे---"

"मित्र !" भुवन ने कडुवे स्वर से कहा । फिर, जैसे इस प्रसग को यही छोड देना चाहिए, वह चुप लगा गया।

गौरा ने उस के बात काटने की उपेक्षा करते हुए अपना वाक्य पूरा किया, "और---इतने बडे भी नही है कि आप उन के ऊपर गुस्से का भार ढोते चलें---छोडिए गुस्सा !"

भुवन थोड़ा-सा मुस्करा दिया। फिर धीरे-धीरे बोला, "तुम ठीक कहती हो---उस

पर गुस्सा व्यर्थ है। और अब है भी नही। पर मैंने चिट्ठी-पत्री बन्द कर दी थी"—फिर सहसा नये विचार से, "तुम्हे उस की चिट्ठी-विट्ठी आती है? कहाँ है?"

"नियमित आती हो, ऐसा तो नही, हाँ, बन्द नही हुई। पिछले महीने आयी थी एक बम्बई से। आप क्यो नही उन्हे एक चिट्ठी लिख देते—यही से?" तनिक रुक कर वह फिर बोली, "सुना है, वह फिर शादी कर रहे है—"

"अच्छा?"

फिर थोडी देर मौन रहा, दोनो सूनी रात को देखते रहे। लोग एक ही आकाश को एक ही बादल को, एक ही टिमकते तारे को देखते है, और उन के विचार बिलकुल अलग लीको पर चलते जाते हैं, पर ऐसा भी होता है कि वे लीके समान्तर हो, और कभी ऐसा भी होता है कि थोड़ी देर के लिए वे मिल कर एक हो जाये; एक विचार, एक स्पन्दन जिस मे साझेपन की अनुभूति भी मिली हो। असम्भव यह नही है, और यह भी आवश्यक नही है कि जब ऐसा हो तो उसे अचरज मान कर स्पष्ट किया ही जाय, प्रचारित किया ही जाय—यह भी हो सकता है कि वह स्पन्दन फिर द्विभाजित हो जाय, विचार फिर समान्तर लीके पकड़ ले .

गौरा ने कहा, "यह बड़ा दिन है, भुवन दा। 'आल पीस आन अर्थ, गुडविल टु मेन।' सोचती हूँ, तो ख्याल आता है कि कितनी सुन्दर भावना है यह—और लगता है कि सचमुच इसे कोई सम्पूर्णतया अनुभव कर सके तो—शिशु ईशा के साथ उस का भी नया जन्म हो जाता होगा।"

भुवन ने सोचते हुए-से कहा, "बिना पीडा के जन्म नही होता, गौरा—देव-शिशु का भी नही। शान्ति की भावना से शान्ति नही मिलती—"

"मै कब कहती हूँ? बल्कि बिना पीडा के यह व्यापक कल्याण-भावना भी तो नही जागती—'आल पीस आन अर्थ' कह ही वह सकता है जो पीडा से गुजरा है, नही तो इस भावना के ही कोई अर्थ नही होते।"

फिर एक मौन हो गया। भुवन ने पूछा, "क्या सोच रही हो, गौरा?"

"बहुत कुछ।"

"क्या?"

"पर कह नहीं सकती।"

"नहीं सकती, या नहीं चाहती?"

"ठीक चाहती भी नहीं, ऐसा तो नहीं कह सकती—पर—सकती नहीं।"

"[illegible], 'जो विचार स्पष्ट कहना नहीं आता, वह असल में मन में भी स्पष्ट नहीं है। स्पष्ट चिन्तन हो तो स्पष्ट कथन अनिवार्य है'।" भुवन ने कुछ गम्भीरता से कुछ [illegible] हुए कहा।

"[illegible]। पर मैं तो [illegible] नहीं हूँ, पर मेरे आगे बिलकुल स्पष्ट है। वह नहीं

सकती तो—इसलिए कि सोचना चित्रो से, प्रतीको से होता है, कहना शब्दो से, और—शब्द—अधूरे हैं।"

"ऊँहुक्! विचार शब्दो के साथ हैं—शब्द अधूरे है तो विचार ही अधूरा है!" भुवन ने जिद की।

गौरा ने सहसा घूम कर, दोनो कोहनियाँ खिडकी पर टेक कर उसकी ओर मुँह कर के कहा, "आप—मुझे चैलेंज कर रहे ह?"

"वैसा समझो तो—" गोरा एकदम गम्भीर हो गयी है, यह उस ने लक्ष्य किया, पर वह खिलवाड कर रहा है ऐसा उसे नही लगा, उस का ढंग चिढाने का था पर नीचे गम्भीरता थी। "तो—अच्छा, वही सही।"

"तो सुनिए। शब्द अधूरे है—क्यो कि उच्चारण माँगते है। मै कह नही सकती थी, पर लिख सकती थी चाहती तो। लेकिन आप कहलाना चाहते है—लीजिए मै सोच रही थी—किसी तरह, कुछ भी कर के, अपने को उत्सर्ग कर के आप के ये घाव भर सकती—तो अपने जीवन को सफल मानती—"

भुवन ने स्तब्ध भाव से कहा, "यह मत कहो गौरा—मै और नही सुन सकता, और अब आगे—हलका ही चलना चाहता हूँ"—

"मै—तुम्हे कुछ दे नही रही; वह मेरी ही साधना होती, मैने इस से वढकर कभी कुछ नही माँगा कि तुम्हारे काम आ सकूँ और आज भी नही माँगती।"

भुवन उस के और पास आ गया। क्षण-भर उस की उठी हुई ठोडी के नीचे कठ की नाडी का स्पन्दन देखता रहा, फिर उस की ओर सिर झुकाता हुआ वोला, "तुम मेरी कृतज्ञता लो, गौरा; तुम जो कह रही हो—जो मैने कहला लिया वही बहुत है—और—आइ एम आल्रेडी हील्ड, नही तो तुम से कह पाता?"

गौरा ने एक हाथ से उस के वाल उलझाते हुए कहा, "न—भुवन—मुझे कृतज्ञता से डर लगता है—उस की ओट मे तुम—फिर दूर चले जाओगे न?"

भुवन सीधा हो गया। "क्या करूँगा, गौरा, यह तो नही जानता, यह जानता हूँ कि विधि ने मुझे मेरी पात्रता से अधिक दिया है। और यह अच्छा नही लगता। लोगो से—अपने स्नेहियो से—अधिक ले सकता हूँ, उन का कृतज्ञ हो सकता हूँ, विधि से नही, क्योकि उस के प्रति कृतज्ञता का कोई मतलव नही होता।"

गौरा के सामने से हट कर वह कमरे मे टहलने लगा। गौरा वही खड़ी उसे देखती रही।

"गौरा, रात वहुत हो गयी—वल्कि यह तो भोर है—जाओ, सोओ अव। सवेरे उठोगी?"

"हाँ—घूमने चलोगे? पर अभी जाने को जो नही है। आग वडी सुन्दर जल रही है।"

"तुम तो इतनी दूर खडी हो आग से--" भुवन ने सहसा कोर्निस की देख कर कहा, "और ये तुम्हारे नरगिस तो इस गर्मी मे मुरझा गये—मैंने पहले ध्यान नही दिया --" उस ने वढ कर कोर्निस से फूलदान उठाया और कमरे के पार मेज की ओर ले चला। गौरा ने रास्ते मे आगे वढ़ कर उस से फूलदान ले लिया, वोली, "सूँघिए इनको।" भुवन ने फूलों मे मुँह छिपा कर लम्बी सांस खीची।

"वस, अव मुरझा जायें!" कहती हुई गौरा ने फूलदान मेज पर रख दिया। "और वहुत है—रोज लाऊगी।"

भुवन ने स्नेहपूर्ण आग्रह से कहा, "अच्छा, अव सोने जाओ।"

"मै तो सोयी ही थी। तुम्ही तो नही सो पाये—अकेले डर लगता है!" गौरा ने चिढाया।

भुवन ने मुस्करा कर स्वीकार किया कि वह दोषी है।

"अच्छा, अव तो नही डरोगे?" कुछ रुक कर, कोमलतर स्वर से, "आग से तो नही डरोगे अव—"

"नही। अव नही। यह आग तो तुम्हारी आग है।"

गौरा ने एक क्षण चारो ओर देखा।। फिर आगे जा कर वहुत-सी कुकडियाँ आग में डाल दी। वोली, "हाँ, यह मामूली आग थोडे ही है—आप की नीद के लिए खास सुगन्धित आग जलायी गयी है—हा।"

भुवन खडा मुस्कराता रहा। गौरा ने पास आ कर आँख भर कर उसे देखा, फिर वोली, "अच्छा मैं जाती हूँ--तुम सो जाना अभी, हाँ?"

भुवन ने धीरे से सिर हिलाया, "हाँ।"

गौरा ने सहसा खिल कर कहा, "वच्चे हो तुम भी—विलकुल शिशु! अच्छा, अव से तुम्हे यही कहूंगी—वडे-वड़े वैज्ञानिक नामो से डर लगता है।"

वह चल पडी। किवाड़ खोल कर आधी वाहर जाते-जाते मुड कर शरारत से वोली, "शिशु?" और चली गयी, पीछे उस ने भुवन का स्वर सुना, "जुगनू।"

भुवन सो कर देर से उठा, नींद खुलने के साथ ही एक वाक्य उस के मन मे गूंज गया: "शब्द आड़े हैं—क्योंकि उच्चारण माँगते है, मैं कह नही सकती थी, पर लिख सकती थी चाहती तो।" और सहसा उस की सब इन्द्रियो की चेतना सजग हो आयी, सब से दीर्घसूत्री घ्राणेन्द्रिय की भी, उस के नासा-पुटो में चीड़ के धुएँ और नरगिस के फूलो की मिश्रित गन्ध भर गयी और उस ने जैसे उस मे दोनो गन्धो को अलग-अलग पहचान लिया।

"यह आग तो तुम्हारी आग है।" और यह गन्ध? यह गन्ध? भुवन अकुलाया-सा उठा, जल्दी से उस ने मुँह-हाथ धोया और ड्रेसिंग गाउन लपेट कर फिर पलँग के सिरे पर बैठ गया।

क्यो उस ने गौरा को बाध्य किया था बोलने को ? अपनी बात वह कहना चाहता था, उसे कहनी चाहिए थी, उस से वह भार-मुक्त भी हुआ, वह ठीक था—पर गौरा से क्यो उस ने कहलवाया जो कहलवा कर छोड नही दिया जा सकता—कुछ कर्म माँगता है ?

यह नही कि गौरा ने कहा नही था। जब वह अपनी कहानी कह रहा था तब गौरा जिस प्रकार से अदृश्यप्राय हो गयी थी--फिर सहसा उस ने अपने केशो से उसे छा लिया था--उसे जिस ने गौरा को कहा था कि जब वैसा होगा तब वह जान लेगा कि खोज पूरी हो गयी--फिर उस का अधिकार-पूर्वक चन्द्रमाधव की ओर से पैरवी करना, ये सब क्या है अगर नही है एक आत्म-विश्वास के सूचक, ऐसे आत्म-विश्वास के, जो किसी गहरे भावैक्य से, सम्पर्क से पैदा होता है ? शब्द अधूरे है—उच्चारण माँगते है, गौरा अनुच्चारित सम्पूर्ण बात कह गयी है।

भुवन खडा होकर इधर-उधर टहलने लगा। नही यह असम्भव स्थिति है, ऐसा नही चल सकता ! वह भी अधूरा है, बल्कि पगु है, क्या हुआ वह पगुता घाव नही है तो—सम्पूर्ण को वह कैसे स्वीकार कर सकता है ? कुछ भी कैसे स्वीकार कर सकता है जो केवल स्वीकार है, दान नही है ? 'दो, दो, दो, जब तक कि तुम्हारा हृदय मुक्त न हो जाय !'—देने में ही मुक्ति है—स्वास्थ्य है—यह तो किसी ने नही कहा कि ले लो, सब स्वीकार करते चलो—दुर्भाग्य हो, व्यथा हो, हाँ, तब स्वीकार है . 'आमार भार लाघव करि नाई वा दिले सान्त्वना, वहन जेन करिते पारि', *—पर यह . यहाँ स्वीकार से पहले बहुत सोचने की ज़रूरत है . उसे याद आयी रेखा की बात, "और भी बाते सोचने की है न, इसी लिए यह बात सोचने की नही रही—यह तभी सोची जा सकती है जब एक और अद्वितीय हो, दूसरी किसी बात से असम्बद्ध हो। " वह प्रसग दूसरा था, और तब वह झल्लाया था, पर रेखा की बात ठीक थी—रेखा की सब बाते ठीक थी, क्या हुआ वह फिर भी हारी तो—बल्कि इसी लिए तो हारी वह, मानव का विवेक सम्पूर्ण नही है, पर या तो वह बिलकुल अमान्य है, या वह अनिवार्यतः सर्वदा मान्य है नही, वह गौरा से कह देगा, आज ही कह देगा।

वह उद्विग्न-सा बाहर जाने लगा। किवाड उस ने खोले, फिर क्षण-भर वही ठिठका रहा, दिन तो बहुत चढ गया है, क्या इसी रूप में बाहर घूमना उचित होगा, या वह कपडे पहन ले ?

दूसरी ओर किवाड खुला। उनीदी आँखो को झपकती हुई गौरा निकली। उसे किवाड में खडा देख कर बोली, "अरे, तो आप अभी उठे है—मैं समझी अकेले घूमने चले गये होगे—मैं तो घबरा गयी थी—मैं अभी मुँह-हाथ धो कर आयी, आज तो बड़ा दिन है—

* मेरा भार हलका करके सान्त्वना चाहे न भी देना, उस भार को वहन कर सकूँ (ऐसा ही हो)। —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मेरा बडा दिन—" सहसा रुक कर उस ने आँखे बडी कर के देखा, क्यो कि भुवन तब तक कुछ बोला ही नही था, भुवन के चेहरे का गूढ भाव देख कर फिर बोली, "क्या सोच रहे हो सवेरे-सवेरे, शिशु ?" उस की मुस्कराहट के उत्तर मे भुवन भी सायास मुस्कराया, वह लौट कर फिर कमरे मे चली गयी।

भुवन भी किवाड़ खुला छोड़ कर कमरे मे लौट गया, और मेज़ के पास लगी कुरसी पर बैठ गया, एकाएक असहाय। वह कहेगा—कह देगा, पर अभी नही, आज के बड़े दिन नही . . .

सामने मेज पर पड़े नरगिस अपनी अनझिप आँखो से उस की ओर देखते हुए फीके-से मुस्करा दिये।

हाँ, यह गन्ध भी तुम्हारी गन्ध है—आग की भी, फूल की भी . . .

*   *   *

गौरा अपने कमरे मे जाकर तुरन्त सोयी नही।

उस के कमरे की दो खिडकियो मे से छोटी खुली थी, बड़ी नही, क्यों कि उस ओर हवा का रुख था, अब उस ने बडी खिडकी भी खोल दी। हवा के झोंके ने एक हलकी सिहरन उस की देह मे दौडा दी, वह उसे अच्छा लगा। वह खिड़की में जा कर खडी हो गयी। इस खिड़की के नीचे गेंदे के चार-पाँच बडे-बड़े पौधे थे; बिजली की रोशनी में उन के बडे-बडे पीले और कत्थई फूल चमक गये। क्या बेतुका फूल है गेंदे का भी; यूरोपियन मेमों को जब भारत आते ही एकाएक साडी पहनने का शौक सवार होता है तब वे जो, जैसी, जिन चटक रगो की साडियाँ—और जैसे !—पहनती हैं, उस पर मानो नीरव अन्योक्ति है गेंदे का फूल ! इस तुलना पर गौरा तनिक-सी मुस्करा दी, फिर वह बत्ती बुझाने को मुडी कि इन फूहड़ मेम साहबो की उपस्थिति से छुट्टी पा जाय पर इरादा बदल कर वही लौट आयी। गेंदो की ओर उस ने फिर देखा, स्थिर दृष्टि से; कल्पना की जा सकती है कि ये झाडियां जल रही हैं—झाडियो के भीतर छिपायी गयी आग फूट कर बाहर निकल रही है . .भुवन के कमरे से बडी स्निग्ध गरमाई थी—भुवन शीघ्र सो जाय शायद, उसे अभी नीद नही आ रही है और इस कमरे में आकर तो और भी नहीं, यह ठंड शरीर को नयी स्फूर्ति दे रही है।

उसने कल्पना की भुवन की उस मुद्रा की, जिस में वह उसे छोड आयी थी कमरे के बीच मे खड़ा हुआ; और भुवन की आवाज उस के कानो में गूंज गयी, "जुगनू !" न जाने बचपन में वह इस नाम से इतना क्यो चिढती थी; अब भी भुवन ने उसे चिढ़ाने या पुरानी चिढ़ की याद दिलाने के लिए ही इस नाम से पुकारा था, पर वह उसे अच्छा लगा था, और लग रहा था: यह नाम मानो एक सेतु था इतने दिनों के व्यवधान और दुराव के पार उन के बचपन के सुखमय दिनो तक, जब वे एक-दूसरे की बात नही सोचते थे पर

एक-दूसरे को जानते थे, सहज भाव से...सहज भाव अब नही है, अब वे सोचते है, कहते है, दूर हटते है और फिर दूरी को उलाँघते है · बचपन के साथी पास होते है, यौवन के साथी पास आते है—लेकिन आने की अवस्था ही क्या होने की श्रेष्ठ अनुभूति नही है ?

वह भुवन से क्या कह आयी है—कितना कह आयी है ? कुछ भी कह आयी हो, वह कुछ भी कह नही पायी है यह वह जानती है, और भुवन सुन कर भी क्या सुनता है वह नही जानती।

"आप मुझे चैलेंज कर रहे है ! तो सुनिये—" किस दुस्साहस से वह कह गयी थी.. लेकिन उसे अच्छा लगा कि वहाँ वह साहस कर आयी—सचमुच वह भुवन का दर्द धो देने के लिए कुछ भी कर सके तो सहर्ष तैयार है। भुवन के लिए नही,अपने लिए, क्यो कि सुखी भुवन उस के जीवन के लिए आवश्यक है—उसके आधार पर उस ने अपने जीवन का दर्शन खडा किया है...."मै कह नही सकती थी अगर चाहती तो,"—अगर भुवन उसे फिर चुनौती देता कि अच्छा देखूँ, लिखो—तो.. क्या वह लिखती ? शब्द अधूरे है, उच्चारण माँगते है, लेकिन शब्दो के अन्तराल, पदो-वाक्याशो की यति मे, उस यति के मौन मे एक शक्ति है जो उच्चारण के अधूरेपन को ढँक देती है, सम्पूर्णता देती है, और लिखने मे वह नही है, लिखना बहुत पडता है.. जैसे स्पर्श मे—हलके-से-हलके भी स्पर्श में—कहने की जो शक्ति है वह किसी दूसरी इन्द्रिय में नही है—स्पर्श-सवेदना सब से पुरानी सवेदना जो है, और बाकी सब उस के विस्तार .

गौरा धीरे-धीरे खिडकी से हट कर बिछौने पर बैठ गयी, पास की छोटी मेज़ के निचले ताक से उस ने पैड और कलम उठाया और गोद मे रख लिया। नही, वह कुछ लिखना नही चाहती है, लिख कर कहना तो और भी नही; पर केवल एक आत्मानुशासन के रूप मे—केवल अपने को स्थिर-चित्त करने के लिए वह दो-चार वाक्य लिखेगी—और नही तो इस प्रकार अपना प्रतिबिम्ब देखने के लिए—उस के भीतर जो है वह कितना खरा है ? कितना अच्छा है ? कितना गहरा, सच्चा, अर्थाविष्ट है ? या नही है

वह रुक-रुक कर बारीक अक्षरो मे एक-एक दो-दो पक्ति लिखने लगी।

"सचमुच मेरे जीवन का सब से बडा इष्ट यही है कि तुम्हें सुखी देख सकूँ—तुम्हारा व्रण ठीक कर सकूँ। मेरे स्नेह-शिशु, मै तुम्हारे ही लिए जीती हूँ, क्यो कि तुम मे जीती हूँ ·

"मेरा सहज बोध मुझे बताता था—पर तुम दूर थे, तुम और दूर भागते रहे, और मै विश्वास नही जुटा पाती थी—मै अन्तर्यामी तो नही हूँ। मैने मान लिया, भक्त कवि ही ठीक कहते है, प्रिय को पाना ही निष्पत्ति नही है, विरह का भी रस है, और वह रस भी एक मार्ग है...

"मेरे शिशु, स्नेह-शिशु। भक्तो ने जो कृष्ण के बाल-रूप की कल्पना की है, वह

वहुत वड़ी कल्पना है . जिसे मैं गोद खिलाती हूँ, वह अवतार भी है, भगवान् भी है—यशोदा जिसे पालने झुलाती है, वात्सल्य देती है, उसी को अपार श्रद्धा भी देती है, राधा जिस दही-चोर को धमकाती है, उसी के पैर भी पूजती है—कोई भी प्यार नही है जो वत्सल नही है; कोई भी दान नही है जो विनीत नही है ..

"तुम मेरा भविष्य हो, इस लिए मैं तुम्हे बनाती हूँ।

"तुम ने मुझे विश्वास दिया है; मैं तुम्हारी वहुत कृतज्ञ हूँ। मुझे लगता है, मैंने वहुत वडी निधि पायी है, ऐश्वर्य पाया है। और तुम से। मेरे जीवन के सारे तन्तु तुम्हारे चारो ओर लिपट गये हैं। वे वहुत सूक्ष्म हैं, तुम्हे बाँधेगे नही, पर तुम उन्हे छुडा नही सकोगे, तोड़ ही सकोगे—और सव नष्ट कर के ही। उन का कोई बोझ तुम पर नही होगा. .

"आग से तुम नही डरोगे अव—किसी चीज़ से नही डरोगे! आग को मैं सुगन्धित कर दूंगी, शिशु; जरूरत होगी तो स्वय उस मे होम हो जाऊँगी पर तुम नही डरोगे, मुझे वचन दो, अपने को नही सताओगे—डर से नही, परिताप से नही. . .और हाँ, प्यार से भी नही—वह तुम्हे क्लेश दे तो उसे भी हटा देना! तुम देवत्व की साँस हो, देवत्व की शिखा हो जिसे मैं अन्त.करण मे पालूंगी. . ."

पन्ना उलट कर गौरा रुक गयी। पिछले तीन घटो का दृश्य उस के मन मे फिर उभर आया। उसे ध्यान आया, उस ने जव-जव पूछा था कि तुम भाग तो नही जाओगे, तव-तव भुवन ने वात पलट दी थी, उत्तर नही दिया था। तो क्या वह उसे छोड कर चला जायेगा—क्या वैसा इरादा उस ने कर रखा है ?

गौरा इसे अभी नही सोचेगी। वैसा ही है, तो वैसा ही हो। वह साँस, वह शिखा, छोड कर चली जाये तो चली जाये। उस साँस से वशी वशी है, जिस मे समूचे वन-प्रान्तर की आकाक्षा वोलती है, नही तो केवल वाँस की एक पोर, फिर भी. . .

फिर उस ने लिखना आरम्भ किया .

"वचन दो कि तुम अपने को अनावश्यक सकट में नही डालोगे. . .जो आवश्यक है, उस से मेरी होड नही, वह तुम्हे पुकारे, उसे तुम वरो, पर जो अनावश्यक है, उसे तुम नही पुकारोगे!"

पैड को थोड़ा परे सरका कर, उस ने नि.स्वन ओठो से पुकारा, "भुवन. . ." फिर धीमे ही दुवारा, "भुवन. . "

"मैं तुम्हे पुकारती हूँ। वार-वार पुकारती हूँ, यहाँ तक कि मेरी पुकार ही सम्मोहिनी वन कर मुझे शान्त कर देती है, मेरी माँग को भुला देती है।"

उठ कर उस ने दो-तीन चक्कर लगाये। फिर धीरे से वाहर निकल कर वह भुवन के कमरे तक गयी; किवाड़ से कान लगा कर उस ने सुना, कोई शब्द नही था। किवाड़ों के बीच की दरार से झाँका, भीतर अंधेरा था, आग की वहुत हल्की-सी लोहित आभा

थी, बस। लौटती हुई क्षण-भर वह बीच के कमरे के आगे ठिठकी, उस का मन हुआ कि भीतर से सितार निकाल कर बजाने बैठे, पर फिर वह आगे बढ कर अपने कमरे मे चली गयी। किवाड बन्द कर के बत्ती बुझा कर लेट गयी।

दूर बहुत हलके चार खड़के, पर गौरा ने नही सुना।

बडा दिन.. गौरा भुवन को नाश्ते के लिए ऊपर ले गयी, नाश्ते के बाद सब लोग टहलने निकले। अधिक नही घूमे, शाम को दुबारा घूमने जाने की ठहरी। लौट कर गौरा के पिता बरामदे मे आराम-कुरसी पर लेट गये और भुवन उन के पास बैठा बाते करता रहा। दोपहर का भोजन हुआ, उस के बाद पिता फिर उसी कुरसी पर बैठ कर तिपाई पर पैर फैला कर ऊँघते रहे, गौरा से यह सकेत पा कर कि 'लच के बाद पापा आराम करेगे', भुवन अपने कमरे मे चला गया। बडे दिन को कभी विशेप महत्व उस ने नही दिया था, पर गौरा की बात का असर उस पर था, बैठ कर उस ने चन्द्रमाधव को एक छोटी-सी चिट्ठा लिख डाली, फिर रेखा को भी एक, और अपने कालेज को भी दो-एक, फिर रात के जागरण के कारण उसे भी ऊँघ आने लगी और वह सो गया। दो-ढाई घटे की नीद के बाद कोई पाँच बजे जब वह उठा, तो गौरा के कमरे से सितार के बहुत हलके स्वर आ रहे थे। उस का मन हुआ, अगर वह गा सकता पर नही, गाता तो शायद कुछ उदास गान ही गाता, और गान को उदास होना हो तो मौन ही क्या बुरा है? वह अलसाया-सा लेटा सुनता रहा, सितार के तार झनझना भी देते है, पर विचलित भी नही करते, जैसे किसी सोये को कोई थपकी दे-दे कर उद्बोधन करे .

सितार बन्द हो गया, उस के दो-चार मिनट बाद गौरा चाय का ट्रे लिये उस के कमरे में प्रविष्ट हुई। ट्रे रखते हुए बोली, "सोये?"

"हाँ, खूब। तुम ?"

"थोडा। दिन मे सो नही पाती—जाडो मे।"

"रात तो सोयी थी—जा कर क्या करती रही?"

"और रतजगा थोडे ही करती?" गौरा ने टाला।

भुवन ने ताडते हुए पूछा, "क्या करती रही ?"

"आवृत्ति।"

"क्या—काहे की ?"

गौरा ने एक बार नकली झल्लाहट की अर्थ-भरी दृष्टि से उस की ओर देखा, और मुस्करा कर बोली, "शिशु, शिशु, शिशु।"

भुवन ने भी मुस्करा कर उस की नकल करते हुए कहा, "जुगनू, जुगनू," और क्षण-भर की अवधि दे कर, खिल कर, "हिडिम्बा!"

चाय पीते-पीते भुवन ने पूछा, "घूमने की पक्की है न—मै तैयार हो जाऊँ?"

"आप को शर्म नही आयेगी माल पर एक हिडिम्बा के साथ घूमते?"

भुवन ने अप्रस्तुत भाव से कहा, "धत् !" फिर सँभल कर, "पर मैं तो पिता जी के साथ जाऊँगा न—"

"वह तो चले गये पहले—आप सो रहे थे तब। ज्यादा ठंड मे वह नही रहना चाहते न!"

गौरा जब तैयार हो कर आयी तो भुवन ने कहा, "ओ, यह हिडिम्बा का माया-रूप है न, इतना सुन्दर!"

गौरा तनिक-सी झेंप गयी, पर उस के चेहरे की कान्ति ढलती धूप मे और भी दमक उठी। भुवन अचम्भे में भरा देखता रहा, जैसे पहले-पहल उसे देखा हो।

*　　　　*　　　　*

सप्ताह बहुत छोटा होता है—बहुत जल्दी बीत गया। उस मे कुछ लम्बा था तो उन की बहसें, लेकिन वे भी किसी परिणाम पर नही पहुँची; प्राय. ही बात-चीत के बाद परिणाम निकलता कि घूम आया जाये—या कभी-कभी गौरा सितार बजाने बैठ जाती, कभी भुवन अकेला सुनता, कभी गौरा के माता-पिता भी रहते।

नये साल के दिन भुवन भी सवेरे जा कर बहुत से फूल खरीद कर लाया, गौरा भी। गौरा पहले लौटी थी और फूल सजा रही थी जब भुवन पहुँचा; भुवन की 'अरे!' सुन कर वह उठी, भुवन के हाथो मे वही-वही फूल देख कर 'अरे' का अर्थ तुरत समझती हुई उस ने भुवन के हाथ से सारे फूल ले लिये और बोली, "ये सब मैं अपने कमरे में रखूंगी। आप चल कर सजा दीजिए न—"

भुवन ने कहा, "गौरा, नया वर्ष शुभ हो तुम्हारे लिए—"

"और आप के—"

गौरा के कमरे में पहुँच कर भुवन ने एक नज़र चारो तरफ डाली, गौरा ने फूल उसे पकड़ाते हुए कहा, "जरा इन्हें लीजिए, मैं फूलदान ले आऊँ।" पानी-भरे फूलदान ला कर उस ने खिड़की में रख दिये और बोली, "लीजिए, अब अपने मन से इन्हें सजा दीजिए।"

भुवन सजाने लगा। गौरा ने कहा, "मै अभी आयी," और बाहर चली गयी, भुवन के कमरे में फूल रख कर वह लौटी तो वह एकाग्र चित्त से फूल सजा रहा था, एक फूलदान उस ने पलँग के सिहारने रख दिया था, दो और सजा रहा था। गौरा का आना उस ने लक्ष्य नहीं किया। वह क्षण-भर उसे निहारती रही, फिर एकाएक आगे बढ कर उस ने भुवन के पैरों में झुकते हुए धीरे-से कहा "मेरा प्रणाम लो, शिशु—"

भुवन ने बिल्कुल अचकचा कर कहा, "यह क्या गौरा—शिशुओं को प्रणाम करते हैं?" उस के हाथ का फूल छूट कर गौरा की पीठ पर गिया।

"हाँ—देव-शिशु को प्रणाम ही करते हैं।" गौरा धीरे-धीरे उठी, उठते-उठते उस ने

एक हाथ पीछे मोड कर पीठ पर गिरा फूल पकड लिया कि नीचे न गिरे, फिर उसे बालो मे खोस लिया।

तीसरे पहर की सर्विस से, पूर्व-निश्चय के अनुसार, भुवन नीचे चला गया, दूसरी तारीख को उसे कालेज पहुँचना था।

* * *

सगीत-शिक्षित गौरा अपने कालेज में सर्वप्रिय थी; पर मसूरी से लौट कर कालेज जाने पर मानो लोगो ने उसे नयी दृष्टि से देखा। "मसूरी आप को बहुत माफिक आयी है।" "मिस नाथ, आप कोई कम्प्लेक्शन क्रीम लगाती है—हमे भी बता दीजिए!" "मसूरी की हवा मे कुछ जादू मालूम होता है।" इस प्रकार के बीसियो वाक्य उसे रोज़ सुनने पडते—अन्य अध्यापिकाओ से भी, छात्राओ से भी, कभी वह मन-ही-मन झल्ला उठती पर चेहरे पर एक सूक्ष्म अन्तर्मुखीन मुस्कराहट लिये वह अपने काम मे लीन घूमती रहती, कुछ कहती नही, कभी इन बातो से वह थोडा-सा झेंप जाती और धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाने लगती, कभी एकान्त मे बैठ कर देर तक सितार या तबला भी बजाती रहती, उस की यो ही ढीली रहने वाली कबरी खुल जाती और बाल कन्धे पर झूल जाते, एक-आध उड कर माथे पर आ जाता या आँखो के नीचे कुडल बना देता और उस की छवि और भी मनोहारिणी हो आती. अध्यापिकाओ में गौरा का कवरी-बन्धन पहले ही एक मज़ाक था· अध्यापिका, फिर युक्त प्रान्त की—बालो को कस कर, चिपका कर बाँधने का उन के निकट बहुत महत्त्व था और गौरा की इस महत्त्वपूर्ण विषय मे इतनी उपेक्षा को वे सहज भाव से न ले पाती थी। दो-एक मलाबारिनें भी ढीले बाल बाँधती थी, पर वह दूर द्राविड देश है, और रामायण पढने वाली महिलाओ के मन मे अव चेतन रूप से यह बात तो रहती ही है कि विन्ध्य के पार सब जगल है—और दूर दक्षिण मे तो वनौकस रहते है, जानी बात है। लेकिन गौरा दक्षिणी नही है . पर छात्राओ को यह प्रकृत रूप अच्छा लगता, वे कभी मज़ाक भी करती तो प्रीति-भाव से।

महीने के अन्त मे—जनवरी १९४२—गौरा और भुवन के एक-दूसरे को लिखे गये पत्र दोनो को लगभग साथ-साथ मिले। भुवन ने गौरा को वसन्त की शुभ कामनाएँ भेजी थी और यह सूचना दी थी कि वह फिर बाहर जा रहा है—ठीक विदेश नही, पर सागर-पार, हिन्द महासागर में कही—कदाचित् अडमान मे—रेडियो के नये प्रयोग के लिए एक छोटा-सा केन्द्र बन रहा है, उसी मे। केन्द्र सैनिक नियन्त्रण में होगा और इस अन्वेषण का इस समय सामरिक महत्त्व ही अधिक है यद्यपि आगे वह अत्यन्त उपयोग होने वाला है। अधिक दिन के लिए नही जा रहा है, नये सेशन से पहले ही लौट आयेगा शायद। गर्मियो की छुट्टियो में गौरा तो दक्षिण होगी शायद, हो सकता है कि लौट कर वह उधर आये. .अन्त मे एक वाक्य और था, "मै असुखी नही हूँ गौरा, न—उन पिछली बातो से

तप रहा हूँ, तुम चिन्ता न करना, और अपनी देख-भाल करना।"

गौरा की चिट्ठी भी मुख्यतया सूचना के लिए थी। गर्मियो का अवकाश वह दक्षिण मे ही वितायेगी—मद्रास या वगलौर मे किसी सगीताचार्य के पास—और तभी वही निश्चय कर लेगी कि और एक वर्ष भी उधर ही रह जाय या वापस बनारस आवे। पत्र के साथ उस ने वम्वई के अखवार की कतरन भेजी थी "इस कटिंग मे अवश्य तुम्हें दिलचस्पी होगी: मै तो अवाक् हो कर सोचती हूँ कि चन्द्रमाधव कैसे कम्युनिस्ट हो सकते है—मनसा भी, और उन के इधर के काम तो विल्कुल इस के विरुद्ध जाते है, और यह विवाह ..फिर भी आशा है तुम उन्हे शुभ कामनाओ का एक पत्र लिख दोगे। मै भी लिख रही हूँ। ववाई का भाव तो मन मे नही उठता—झूठ क्यो वोलूँगी—पर सत्कामनाएँ भेजूँगी।" अन्त में उस ने भी अधिक निर्जिपन से लिखा था, "मै 'तुम' लिख गयी हूँ—विना इजाजत लिये ही—बुरा तो न मानोगे? वोलने मे, लगता है अब भी मिलूँगी तो 'आप' ही कहूँगी, पर चिट्ठी मे 'तुम' लिखना ही आसान भी और ठीक भी जान पड रहा है, वल्कि सोचती हूँ, 'आप' अब कैसे लिखूँ? आप नाराज तो न हो जाइयेगा, देव-शिशु?"

उस के साथ जो कतरन थी उस मे चन्द्रमाधव के विवाह का समाचार और विवरण था। उस का साराश यह था कि वम्वई मे २७ जनवरी सन् १९४२ को सुप्रसिद्ध जर्नलिस्ट कामरेड चन्द्रमाधव का विवाह आर्य-समाजी पद्धति से मिस चन्द्रलेखा से हुआ। मिस चन्द्रलेखा प्रसिद्ध अभिनेत्री हैं। विवाह के पूर्व शुद्धि-सस्कार का उल्लेख था जिस से विदित होता था कि मिस चन्द्रलेखा अहिन्दू रही। विवाह के वाद पार्टी हुई जिस में सिनेमा जगत् के अनेक सितारे उपस्थित थे, और वम्वई के भद्र-समाज के कई अग्रणी व्यक्ति—इन की सूची भी थी। कामरेड चन्द्रमाधव स्थानीय 'प्रोग्रेसिव जर्नलिस्ट विरादरी' के उप-प्रधान और प्रमुख प्रोग्रेसिव बौद्धिक और लेखक थे, अनेक जर्नलिस्ट और प्रोग्रेसिव लेखकों तथा कम्युनिस्ट केन्द्रीय समिति के कुछ सदस्यो ने भी उत्सव मे भाग लिया था और कामरेड चन्द्रमाधव को ववाई दी थी।

भुवन का उत्तर गौरा को एक महीने वाद मिला। किसी सैनिक डाकघर की उस पर मुहर थी, गौरा ने अनुमान से जान लिया कि अदमान मे आया होगा। चन्द्रमाधव को भुवन ने शुभ कामनाएँ भेज दी थी; गौरा के दक्षिण जाने का निश्चय पक्का हो गया यह जान कर उसे प्रसन्नता हुई थी और आशा थी कि वह उसे शीघ्र मिलेगा—जहाँ वह था वहाँ काम तो बहुत था पर इस की सम्भावना कम थी कि अधिक दिन रहना पड़े। (इस से गौरा ने अनुमान लगाया कि कदाचित् वहाँ सकट आने की सम्भावना है।) और चन्द्रमाधव के विषय मे गौरा ने पूछा था, उस का उत्तर देते हुए लिखा था 'मार्क्सवाद के बारे में मेरा कुछ कहना अनधिकार है—मेरा वह क्षेत्र बिल्कुल नहीं है। पर जैसा मै देखता हूँ, [illegible] कम्युनिस्ट का प्रकार [illegible] है—पर तो जो वास्तव मे

मज़दूर हैं, दूसरे मध्य या उच्च वर्ग के कुछ लोग जो अपनी परिस्थितियों के उत्तर-दायित्व से भागते हैं--या भाग गये हैं। यह तुम्हारा प्रश्न ठीक है कि ऐसे आदमी कैसे कम्युनिस्ट हो सकते हैं; मेरा ख्याल है कि ऐसे सम्पन्न साम्यवादी, साम्यवादी क्षेत्र मे भी उतने ही अविश्वसनीय होते है जितने उस क्षेत्र मे जिस से वे भागते हैं—यानी जिस के उत्तरदायित्व से भागते हैं पर जिस की सहूलियतो और विशेषाधिकार को नही छोडना चाहते। और मैं समझता हूँ कि वे तब तक अविश्वससीय रहते हैं, जब तक कि कोई बडी कुठा उन्हे सदा के लिए पगु नही बना देती—कुठित व्यक्ति ही विश्वास्य वर्गवादी बन सकता है. मजदूर वर्ग के जो हैं, उन्हे तो सामाजिक वर्गीकरण का और वर्ग-स्वार्थों का उत्पीड़न कुठित किये ही रहता है, जो वर्ग-समाज मे ऊँचे पर होते हैं वे किसी दूसरे प्रकार से कुठित हो कर पक्के हो जाते हैं। चन्द्रमाधव भी अत्यत कुठित व्यक्ति है--जब तक नही था, तब तक उस मे असन्तोप बहुत था पर यह रूप उस ने नही लिया था अब वह कुठित हो चुका है और उस का असन्तोष युक्ति से परे हो गया है--कुठित होना अब उस के जीवन की एक आवश्यकता बन गया है, उस की कुठा और उस का वाद परस्पर-पोषी है, और एक-दूसरे को और गहरा पहुँचाते हैं। किसी पर दया करना पाप है, नही तो मैं चन्द्र को दया का पात्र मान लेता। अब इतना ही कहूँ कि वह भी 'वन मोर ट्रायम्फ फ़ार डेविल्स एंड सारो फ़ार एंजेल्स * है "

पत्र मे अन्तरग बात कुछ नही थी। गौरा को कुछ निराशा तो हुई, पर अधिक नही, उसे इसी मे स्वाभाविकता दीखी, कुछ यह भी लगा कि यही उस की वर्तमान स्थिति को सहनीय बनाता है, नही तो वह व्याकुल हो उठती। पत्र मे कुछ औपचारिक आत्मीयता की बात होती तो अधिक क्लेशकर होती, आत्मीयता की कोई बात ही न होना उदा-सीनता का नही, अनुशासन का द्योतक था, और आत्मानुशासन अगर भुवन के लिए सहल है तो उस के लिए और भी सहल होना चाहिए--सहल और हाँ, उपयोगी भी क्योकि वह जीवन को माँजेगा और और एक नयी कान्ति, नयी गहराई भी देगा

गौरा के जीवन की एक लीक बनने लगी--न बहुत गहरी कि उस से उबरा न जा सके, न बहुत कडी कि उसे मिटा कर नयी लीक न डाली जा सके, फिर भी एक लीक। प्राणी जब शरीर को बाँध कर रखता है, तब उस का विद्रोह मिट्टी को खूँदने के रूप मे प्रकट होता है, जब मन को बाँधता है, तब वह विद्रोह एक पटरी पर निरन्तर आती-जाती गति के रूप मे प्रकट होता है—जब तक कि वह विद्रोह है, यह दूसरी बात है कि धीरे-धीरे भीतर वह विद्रोह मर जाय, पटरी क्रमश फौलादी लीक बन जाय जिस से इधर-उधर हटना मुक्ति नही, पटरी से गिर जाना हो, उलट जाना हो .

रेखा को भी उस ने एक-आध पत्र लिखा; रेखा का उत्तर भी आया। उत्तर में

---

* शैतान की एक और विजय, देवताओ का एक और दु.ख--ब्राउनिंग

अपनापा भी था, पर एक तटस्थता भी, कुछ यह भाव कि मेरी तरफ से कोई यन्त्र या सीमा नही बनायी गयी है, पर मैं स्वयं अपने भीतर के अन्वेषण मे खोयी हुई हूँ और बाहर से मेरा सम्बन्ध उदार दृष्टि का ही है, बाहर को ओर बहने का नही ..इतना उसे ज्ञात हुआ कि रेखा फिर अस्वस्थ है, अस्वस्थ ही रहती है, और यत्न कर रही है कि उस का काम उसे विदेश ले जाय—कदाचित् पश्चिम की ओर वह चली भी जायेगी।

होली पर उस ने भुवन को एक लिफ़ाफ़े मे भर कर थोडा अबीर और अभ्रक का चूर भेजा, साथ यह आग्रह कर के कि इसे वह गौरा की ओर से अपने मुँह पर मल ले ; कुछ दिन बाद उत्तर आ गया, और अगली डाक से एक पैकेट मे कुछ सूखे फूल। पत्र मे भुवन ने लिखा था कि होली उस ने खेल ली, दो-एक फोटो भी रगे मुँह के लिये गये थे जो वह शायद बाद मे भेज सके , अलग डाक से वह कुछ फूल भेज रहा है जो स्थानीय श्रेष्ठ उपहार है—एक केवडे का, और कुछ नाग-केशर के : केवडा तो खैर परिचित है, पर नाग-केशर उस ने पहले नही देखा था और गौरा ने भी कदाचित् न देखा होगा—इस का भव्य वृक्ष और इकहरे सफेद जगली गुलाब-सा फूल दोनो ही दर्शनीय है। और गन्ध—गन्धमादन पर्वत जहाँ भी रहा हो, उस का नाम ज़रूर नाग-केशर की गन्ध के कारण ही पड़ा होगा ..

फिर उस ने लिखना आरम्भ किया था कि "ये फूल तुम पहन लेना"—लेकिन इस वाक्य को काट कर लिखा था "तुम तक पहुँचते फूल तो सूख जायेंगे—पर गन्ध शायद बनी रहे, उसे सूँघो तो स्मरण कर लेना कि मेरे स्नेह की साँसें भी तुम्हारी स्मृति को घेरे है।"

लेकिन जो सूखे फूल गौरा तक पहुँचे उन में गन्ध भी नही थी। यह सूचना उस ने भुवन को दे दी—"तुम्हारे भेजे हुए फूल मिले—पर उन की गन्ध तो उड गयी। काश ! मैं भी ऐसे ही उड जा सकती—उड कर शून्य में विलीन होने नही, उन पेडो तक पहुँचने को, जिन के नीचे बैठ कर तुम उन की सुगन्ध नासा-पुटो मे भरते होगे, जिन के नीचे तुम्हें मेरी याद आयी। तुम्हारी साँसें मेरी स्मृति को घेरती है—(?)—पर मुझे भुवन, कहाँ ? मुझ से तुम दूर-ही-दूर जाते हो और जाते रहे हो। अच्छा, जाओ, जहाँ भी जाओ, सुखी रहो; जो दूर रहना चाहता है, उस के पास जाने की कोशिश क्यों—और तुम्हारी ऐसी मानना है तो उसे मैं क्यों विफल करने लगी ! मै ने सोचना चाहा था कि तुम आ जाओगे, पर नही सकी, और अब यत्न भी नही करती। तुम पहले भी कह गये थे, 'आशा-भरोसा छोड कर' चले गये थे, फिर तुम वापस आये—पर वहाँ रहते, मैं ने भी समझ लिया क्योंकि वैसा ही मैं मानना चाहती थी ! पर उन बातों को छोडो ... कहना भी अच्छा है—आशापूर्वक भी, निराशापूर्वक भी क्योंकि आशा और निराशा दोनों कल्पना के ही मापक हैं।"

जिन अध्यापिकाओं और मुँह-लगी छात्राओ ने मिस नाथ के कम्प्लेक्शन और मसूरी के जलवायु के प्रताप की चर्चा की थी, वे अब जब-तब कहने लगी, "मिस नाथ, आप को यहाँ अच्छा नही लगता ? आप फिर मसूरी हो आइये न––आप का चेहरा न जाने कैसा हो रहा है ? नही,अस्वस्थ नही, पर न जाने कैसा एक कठोर भाव उस पर आता जाता है।" ऐसी बात सुन कर गौरा को सहसा स्वय बोध हो आता, हाँ, उस के चेहरे पर एक तनाव है जो नही होना चाहिए, क्षण-भर आयासपूर्वक वह चेहरे के स्नायु-तन्तुओ को ढीला कर के हँस कर कहती, "कुछ नही, शायद मास्टरनियो वाला चेहरा हुआ जा रहा होगा––मास्टरनी का चेहरा एक अलग किस्म का होता है––जिस तरह आदमी और सिख दो अलग-अलग जातियाँ होती है उस तरह औरत और मास्टरनी भी दो अलग जातियाँ होती है।" बात हँसी मे उड जाती; पर पीछे गौरा सोचने लगती, क्या सचमुच ऐसे उस का चेहरा कठोर हो जायगा––क्यो ? अनुशासन बाहर से आरोपित किया गया हो; जो भीतरी है, जो साधना है, और जो आनन्ददायिनी भी है, वह क्यों कठोर रेखाएं लावे––उस की रेखाएँ तो मृदु होनी चाहिएँ––पुस्तको में तो यही लिखा है कि साधना से चेहरे पर एक कान्ति आती है, शरीर भले ही कृश हो जाय। उसे, कुमार-सम्भव' की तपस्या-रत हिमालय-सुता की याद आ जाती, कालिदास की पक्तियाँ वह धीरे-धीरे दुहरा जाती :

मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि
प्रवेयमानाधरपत्रशोभिता।
तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदां
सरोजसन्धानमिवाकरोदपाम्॥

फिर सहसा इस में निहित तुलना की अहम्मन्यता पर वह लज्जित हो जाती और कोई वाद्य ले कर बजाने बैठ जाती कि उस में लज्जा और उस समूची विचार-परम्परा को डुबा दे.. और वास्तव में वह बजाते-बजाते विभोर हो उठती, तब वे सब रेखाएं मिट जाती और सचमुच एक अद्भुत कान्ति उसके चेहरे पर छा जाती––मसूरी के जल-वायु से पायी कान्ति से भी अधिक आभायुत––लेकिन वह स्वयं उसे न जान पाती, वादन समाप्त कर के वह उठती, तो उस के केहरे पर एक मृदुल स्थिरता का भाव होता जैसा सद्य. सो कर उठे स्वस्थ शिशु के चेहरे पर होता है।

इसी प्रकार सेशन पूरा हो गया, छुट्टियाँ लगी, गौरा तीन-चार दिन के लिए मसूरी हो कर, भुवन को अपने दक्षिण जाने की सूचना दे कर मद्रास चली गयी।

* * *

६ अप्रैल सन् १९४२ को भारत में पहला जापानी बम गिरा। गौरा उस दिन मसूरी

में थी, समाचार मिलते ही उस ने रेखा को पत्र लिखा, उस का कुशल-समाचार पूछा और यह सम्भावना प्रकट की कि रेखा का काम अब बहुत बढ जायेगा—क्या वह इतना परिश्रम कर सकेगी, और क्या उस का विदेश जाने का विचार अभी है कि बदल जायेगा ? भुवन के बारे में भी उस ने चिन्ता प्रकट की—भुवन न जाने कहाँ है, कैसी स्थिति मे और कब लौटेगा या आगे क्या करेगा पत्र उस ने डाल दिया, फिर भुवन के बारे मे चिन्ता ने सहसा उसे जकड लिया, उस ने कुशल पूछने का तार लिखा और भेजने चली पर न जाने क्या सोच कर उस ने तार नही दिया, एक-दो लाइन का पत्र ही लिख कर टाल दिया ।

मद्रास पहुँच कर उसे मसूरी से लौटा हुआ भुवन का पत्र मिला । पत्र बहुत छोटा था, पर अभिप्राय-भरा, उसे पढ कर गौरा बहुत देर तक सन्न बैठी रही, फिर उस ने पत्र ने ही आँखें ढँक कर दोनो हथेलियों से उसे आँखों और माथे पर दबा लिया ।

भुवन ने सूचित किया था कि भारतीय भूमि पर जापानी बम पड़ने के बाद वह अपना कर्तव्य स्पष्ट देख रहा है . उसी दिन वह सेना मे भरती हो रहा है । युद्ध घृण्य है, और कोरी देश-भक्ति भी उस के निकट कोई माने नही रखती बल्कि घृणा और युद्ध की जननी है, पर इस सकट से भारत की रक्षा करना देश-भक्ति से बडे कर्त्तव्य की माँग है—वह मानव की बर्बरता से मानव के विवेक की रक्षा की माँग है, बर्बरता के सब साधन विज्ञान ने ही जुटाये है , अत विज्ञान को यह सब बडी ललकार है . या तो वह अपनी शिवता, कल्याणमयता को प्रमाणित करे—या सदा के लिए नष्ट हो जाये । विज्ञान एक ओर ज्ञान-दर्शन है, दूसरी ओर यन्त्र-कौशल, बर्बरता ने दूसरे पक्ष को लिया है पहले का खंडन करते हुए; सभ्यता अगर कुछ है तो वह पहले का उद्धार करने को बाध्य है—उद्धार कर के उसी के द्वारा दूसरे को अनुशासित रखने को । "मैं नही सोच सकता कि मैं कैसे किसी भी प्रकार की हिंसा कर सकता हूँ, या उस में योग दे सकता हूँ—पर अगर कोई काम मैं आवश्यक मानता हूँ, तो कैसे उसे इस लिए दूसरों पर छोड दूँ कि मेरे लिए वह घृण्य है ? मुझे मानना चाहिए कि वह सभी के लिए—सभी सभ्य लोगों के लिए—एक-सा घृण्य है, और इस लिए सभी का समान कर्तव्य है..."

पत्र के अन्त में 'पुनश्च' कर के दूसरे दिन जोड़ी हुई सूचना थी कि वह बर्मा भेजा जा रहा है ।

कमल के पत्ते पर पानी की बूँदे. .फिर जब समाचार उसे मिला, तो भुवन के पत्र से नही, रेखा द्वारा भेजे एक तार से।

और अनन्तर भुवन की एक कापी से।

* * *

रेखा को भुवन के सेना मे भरती हो जाने की सूचना समाचारपत्र से ही मिली थी। फिर यह पता उस ने स्वय पूछ-ताछ कर के लगाया था कि वह बर्मा मे कही भेजा गया है। इस समाचार के बाद कुछ दिन तक तो उस ने कुछ नही किया, फिर भुवन को एक पत्र लिखा

भुवन,

मुझे पता लगा कि तुम सेना मे भरती हो कर बर्मा गये हो, यह भी पता लगा कि वहाँ भेजा जाना तुम ने स्वय चाहा था—नही तो तुम-से वैज्ञानिक को शायद पश्चिम भेजा जाता—या लका मे। कई दिन तक मैं इस समाचार को ग्रहण न कर सकी, पर अब मैं ने उसे स्वीकार कर लिया है, तुम्हारे भीतर की अनिवार्य प्रेरणा को कुछ-कुछ समझ भी लिया है, और जैसे पाती हूँ कि इस मे मेरे लिए मार्ग का भी सकेत है। बीच मे एक दिन तुम्हारी निकट उपस्थिति की एक तीव्र व्यथा मन में उठी थी, सम्भव है तुम उस दिन कलकत्ते रहे होगे या कलकत्ते से गुजरे होओ—यद्यपि आये होते तो मुझे सूचना दी होती ऐसा मैं अब भी मानती रहना चाहती हूँ फिर एक दिन स्वप्न मे तुम्हे देखा था —देखा कि तुम हमारे घर आये हो—हमारे घर, मेरे माता-पिता और छोटे भाई सब की उपस्थिति मे, और सब से मिले हो, पिता तुम्हे बाहर नदी के किनारे की रौंस पर मेरे पास बिठा गये है, फिर हम लोग कागज की नावे बना कर नदी मे डालते है और उन का वह जाना देखते है। नावे कभी दूर-दूर तक चली जाती है, कभी पास आ जाती है, कभी टकरा भी जाती है, कभी नदी मे बहते हुए शैवाल से उलझ जाती है। सहसा देखती हूँ कि उन्ही हमारी कागज़ की नावो मे हम भी बैठे है—रौंस पर बैठे देख भी रहे है, पर नावो मे भी है, फिर नावें एक बालू के द्वीप मे जा लगती है जहाँ हम उतर कर नावो को खीचने लगते है—पर नावो मे बैठे भी रहते है। अब हम रौस पर से देखते भी है, नावो में बैठे भी है, नावो को खीच भी रहे है। फिर देखती हूँ, बहुत से द्वीप है, हर एक पर हम नाव मे भी बैठे, नाव को खीच भी रहे है—और रौस पर बैठे देख तो रहे ही है। सहसा नदी का पानी बहती हुई सूखी बालू हो जाती है, और तुम्हारा चेहरा तुम्हारा नही, कोई और चेहरा है, तुम मुस्कराते हो तो वह चेहरा तुम्हारा भी है, पर नही भी है, मैं कहती हूँ, यह सपना है, जागेगे तो तुम्हारा चेहरा दूसरा हो जायेगा, तुम कहते हो, सपना थोडी देर और देखो न, फिर चेहरा बदल नही सकेगा। फिर मैं तुम्हारी मुस्कान देखती रही, थोडी देर मे जाग गयी। सपनो के सिर-पैर नही होते—होते हो जैसा

मनोविश्लेषक जताते है तो उन का अर्थ जानने की जरूरत नही होती—पर मैं जागी एक मधुर भाव ले कर, फिर ध्यान आया कि तुम तो बर्मा मे कही होगे. .

भुवन, तुम्हे एक समाचार देना चाहती हूँ। नही जानती कि तुम्हे कैसा लगेगा, पर—जानती हूं तुम प्रसन्न ही होगे। मुझे आशीर्वाद दो, भुवन। डाक्टर रमेशचन्द्र ने मुझ से विवाह का प्रस्ताव किया था, मैंने उन्हे स्वीकृति दे दी है। इसी महींने के अन्तिम सप्ताह मे विवाह हो जायगा। सम्भव है कि विवाह के दो-एक महीने बाद वह 'मिडल ईस्ट' की तरफ कही जावे—मै भी साथ ही जाऊँगी शायद। काम मै ने अभी नही छोडा है, पर आठ-दस दिन बाद छोड दूंगी।

विवाह के लिए हम दार्जिलिंग जावेंगे—रमेश का आग्रह है। कोई समारोह नही होगा—लेकिन क्यो कि 'कानूनी आधार' आवश्यक है—यह लीगैलिटी, भुवन!—इस लिए रेजिस्ट्रेशन तो होगा ही।

यह क्या है, भुवन? बरसो मै श्रीमती हेमेन्द्र कहलायी, उस के क्या अर्थ थे? अब अगले महीने से श्रीमती रमेशचन्द्र कहलाऊँगी—उस के भी क्या अर्थ है? कुछ अर्थ तो होगे, अपने से कहती हूं, पर क्या, यह नही सोच पाती. . मै इतना ही सोच पाती हूँ कि मेरे लिए यह समूचा श्रीमतीत्व मिथ्या है, कि मै तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी; तुम्हारी ही हुई हूं, और किसी की कभी नही, न कभी हो सकूंगी . .ये पार्थिवता के बन्धन, ये आकार, ये सूने कंकाल ..महाराज, मेरे त्रिभुवन के महाराज, किस साज में तुम आये मेरे हृदय-पुर मे—और कैसे तुम चले गये, मेरा गर्व तोड कर, भूमि में लुटा कर—पर नही भुवन, तोड कर नही, तुम्ही मेरे गर्व हो, तुम्हारे ही स्पर्श से 'सकल मम देह-मन वीणा सम बाजे...

रमेश को मै धोखा नही दे रही। मै ने उन्हे बताया है। पर क्या बताया है, क्या मै बता सकती हूँ, भुवन? उन में बडी उदारता है, गहरी सवेदना है, वह समझते है। तुम उन्हे जानते, तो बहुत अच्छा होता—तुम्हे निश्चय ही वह अच्छे लगते। मै कल्पना करती हूँ, मै तुम दोनो को समीप ला सकती—मिला सकती—दोनो को जिन से मैंने बहुत कुछ पाया है, जिन्हे मैंने बहुत कुछ दिया है.. शायद भविष्य में वह कभी हो सके, मै नही मानना चाहती कि यह सम्भव नही है क्योंकि वैसा मानना, मुझे लगता है, दोनो के प्रति विश्वासघात होगा. . .

भुवन, अपनी बात तो मै कह चुकी। तुम्हारी बात जानना चाहती हूं। तुम भटक रहे हो, भटक ही नही रहे, मुझे लगता है कि भाग रहे हो। पहले अपने को कोसती थी कि मुझ से—यद्यपि मेरे कारण तुम्हारे मन पर बोझ न आये इसकी पूरी कोशिश करती रही हूँ, कितना भागी हूँ, सफल कहाँ तक हुई यह दूसरी बात है.. .पर अब नही कोसती, पर सोचना भी अहंकार ही था क्योंकि अब लगता है, नही मुझ से नही, कुछ और है जिस से तुम भागते हो, क्योंकि उस से तुम बंधे हो, जिस मे तुम्हारी नियति गुंथी है, और यह जानना [illegible] का वह धर्म-विकार्य है जो अन्ततोगत्वा अनुकूल स्थिति

लावेगा मैंने एक बार तुम से कहा था, हम जीवन की नदी के अलग-अलग द्वीप हैं—ऐसे द्वीप स्थिर नही होते, नदी निरन्तर उन का भाग्य गढती चलती हैं; द्वीप अलग-अलग हो कर भी निरन्तर घुलते और पुन. बनते रहते हैं—नया घोल, नये अणुओ का मिश्रण, नयी तल-छट, एक स्थान से मिट कर दूसरे स्थान पर जमते हुए नये द्वीप. . .

मेरी इन बातो को अनधिकार प्रवेश न समझना, भुवन, मुझ से पृथक् जो भी तुम्हारा निजी है, निज के लिए अर्थवान् है, उस से मुझे ईर्ष्या नही, न कोई अनुचित कौतूहल उस के विषय मे है : वह अर्थवान् है तो और अधिक अर्थवान् हो, यही मेरी प्रार्थना है ।

भुवन, तुम्हारे पत्र की, तुम्हारे आशीर्वाद की, तुम्हारे समाचार की उत्कट प्रतीक्षा करूँगी। तुम्हारी शुभ-कामनाएँ पा कर रमेश भी प्रसन्न होगे।

तुम्हारी ही
रेखा

भुवन का उत्तर तार से आया हार्दिक शुभ-कामनाएँ और आशीर्वाद, और पत्र वह लिख रहा है। एक सप्ताह बाद पत्र भी आया—एक पार्सल मे बन्द, पार्सल मे किसी प्राचीन बर्मी ग्रन्थ का चित्र-लिखित वेष्टन, और ताल-पत्र पर खिचे हुए चित्र थे, ग्रन्थ पूरा नही था। "यह ग्रन्थ क्या है मैं नही जानता, लिपि भी मै नही पढ सकता न तुम पढ़ सकोगी, पर चित्र सुन्दर है और वेष्टन भी मुझे सुन्दर लगा—मैंने सोचा कि ऐसे अवसर पर जो उपहार भेजूँ उस का सुन्दर होना ही आवश्यक है, बोधगम्य होना उतना नही—वैसे आज मेरी प्रार्थना है कि विधि का विधान सुन्दर हो, आज हम उसे जाने भले ही न, उस का क्रमिक प्रस्फुटन सुन्दर से सुन्दरतर दीखता चले . ."

दार्जिलिंग से एक पत्र रेखा ने भुवन को और लिखा ·

भुवन,

आज अभी थोडी देर पहले मै रजिस्टर मे पहले-पहल 'रेखा रमेशचन्द्र' नाम से हस्ताक्षर कर के आयी हूँ। उस के बाद न जाने क्यो भीतर कुछ कहता है कि मेरा पहला काम होना चाहिए तुम्हें सूचना देना, तुम्हें पत्र लिखना। भुवन, कभी सौ वर्षो में भी मेरी कल्पना मे यह बात न आती कि अन्त में मेरा ठिकाना यह होगा—इस घाट आ कर मै किनारे लगूंगी . जीवन की अजस्र तीव्र धारा कैसे सब को खीचती ठेलती बहाती लिये जाती है, कैसा भौचक कर देने वाला है उस का प्रवाह—जिस में तसल्ली के लिए यही है कि हमी नही, दूसरे भी उतने ही भौचक बहे जा रहे है। यह उद्यम की अवहेलना नही, उद्यम तो अपने स्थान पर है ही, पर कैसा दुर्निवार, बेरोक, विवशकारी है यह प्रवाह. .

तुम्हारा पत्र मिला था, भुवन, तुम्हारा वह दर्द-भरा, पर मधुर, सुन्दर आशीर्वाद; और तुम्हारा उपहार भी। उस आशीर्वाद के लिए मै कितनी कृतज्ञ हूँ, भुवन, क्या मै कह सकती हूँ कभी ? और तुम्हारा उपहार भी सुन्दर है—हाँ, दुर्बोध तो है ही विधि, और शायद उसे जान लेना चाहना मानव की भी दु स्पर्द्धा है, वह स्वत स्फुट होती चले .

लेकिन तुम्हे मै जानती हूँ, भुवन, तुम्हे मैने जाना है और तुम मे जो जाना है वह जीवन-मरण स परे है—पाने और खोने से परे है।

इस के बाद दो महीने तक रेखा को भी भुवन की ओर से कोई समाचार नही मिला, जब मिला तो भुवन का पत्र नही, फौजी अस्पताल से एक नर्स का टेलीफ़ोन मिला कि वह अस्पताल आ कर मेजर भुवन को देख जावे।

*　　　　*　　　　*

क्षण-भर के लिए रेखा को लगा कि सारी स्थिति मे कही कुछ विपर्यय है, कोई विरोधाभास—कि अस्पताल के लोहे के पलँग पर उस बरसाती दिन मे लाल कम्बल ओढे भुवन नही, वही पटी है, और भुवन उसे देख रहा है, और वह असहाय भाव से धीरे-धीरे कह रही है, 'जान, प्राण, जान ' एक ज्वार-सा उसके भीतर उमड आया, इतनी व्यथा, इतने गहरे मे पर इतनी सहज आह्वेय, उसमे सचित है, इसके तात्कालिक अनुभव से वह लडखडा-सी गयी। फिर तुरन्त सँभल कर उस ने धीरे से पुकारा, "भुवन।" लेकिन भुवन ने पहले ही उसे पहचान लिया था, उस के चेहरे पर एक मुस्कान थी और वह कोशिश कर रहा था कि कम्बल के भीतर से एक हाथ निकाल कर रेखा की ओर बढाये।

रेखा ने दोनो हाथ उस के गालो पर रख कर आग्रह से पूछा, "यह क्या कर आये भुवन? तुम्हें मै ऐसे देखूँगी, ऐसी सम्भावना ही कभी मन मे न आयी थी।"

"कुछ नही, रेखा!" और भुवन के दुर्बल स्वर मे एक नयी गहराई थी जो रेखा को दहला गयी—मानो कोई व्यक्ति नही, कोई दूर पहाडी जगह बोल रही हो—कोई कन्दरा, या किसी बडी-सी चट्टान के नीचे की छाया, "मलेरिया है। अडमान से शुरू हुआ था शायद—शायद बर्मा के जगलो ने बढा दिया, और पेचिश साथ जोट दी। वैसे मै ठीक हूँ—बिलकुल ठीक।"

"हाँ हाँ, ठीक हो, सो तो शक्ल ही बता रही है। दुष्ट मलेरिया और पेचिश, वैसे ठीक हूँ—और क्या लाये वहाँ से?"

"क्यो—"

"रहने दीजिए, लगेंगे सम्भाव्य बीमारियो के नाम गिनाने, यही न! बताया भी नही।"

"जब बताने से कुछ फायदा होता, तब बता तो दिया—"

रेखा थोड़ी देर पलँग की बाँही पर बैठ गयी थी। अब उठ कर एक स्टूल पर बैठी हुई बोली, "सो अब बाकायदा विज़िट करूँगी। पहले तुम्हारा हाल पूछूँ।"

"फिर शुरू से बीमारी का इतिहास, फिर पथ्य, फिर—" भुवन मुस्कराया, फिर सहसा ठहर कर बोला, 'तुम अकेली आयी हो रेखा?"

कुछ रुक कर रेखा ने कहा, 'हाँ, भुवन। हेमेन्द्र यहाँ नही हैं। बम्बई गये हैं। दूसरे-

भर मे लौट आयेगे, तब लाऊँगी । हम लोग जा रहे है विदेश--"

"अच्छा--कब ? मै हफ्ता-भर यही रहूँगा शायद--हम सब दक्षिण भेजे जा रहे है --बगलोर--स्वास्थ्य-लाभ के लिए। यहाँ तो प्रबन्ध के लिए रुके है--जहाज़ से आये थे, अब रेल से जाना होगा--"

रेखा ने कुछ उदास हो कर कहा, "ओ।" फिर कुछ देर बाद, "बगलोर--गौरा तो मद्रास मे है, उसे ख़बर दे दूं, वह बगलोर ज़रूर जा सकेगी--"

भुवन ने सक्षिप्त भाव से कहा, "हाँ।" फिर काफी देर बाद, "तुम से उस का पत्र-व्यवहार रहा है ?"

"हाँ--तुम जो नही लिखते , तो मै गौरा से ही पत्र-व्यवहार कर लेती हूँ।"

भुवन ने फिर सक्षिप्त ढग से ही कहा, "हूँ।" थोड़ी देर बाद बात को निश्चित रूप से नयी दिशा देने के लिए उस ने कहा, "रेखा, विवाह कर के--कैसा लगता है--हाउ डू यू फील ? या कि--न पूछूं ?"

"नही, पूछो ! आइ डोट फील एट आल। वन डज़ट फील, वन जस्ट इज। मै भी हूँ, होना ही काफी है, अनुभूति क्यो जरूरी है ?" रेखा थोडी रुकी। "लेकिन--भुवन, रमेश मे यथेष्ट अडरस्टैंडिग है, नही तो "

भुवन ने कहा, "आइ एम सो ग्लैड, रेखा।" उस ने हाथ रेखा की ओर बढाया। रेखा ने उस का हाथ अपने दोनो हाथो मे ले लिया और धीरे-धीरे सहलाने लगी।

"भुवन, मेरा तो हुआ, पर तुम ? तुम भविष्य की ओर नही देखते ? जरूर देखते होगे--बल्कि मै चाहे न देखूँ, तुम तो रह नही सकते, तुम्हारे मन का सगठन ही ऐसा है--"

भुवन हँसा। अब की बार रेखा ने लक्ष्य किया, उस के स्वर में जो गहराई है, वह एक हद तक शायद इस लिए भी है कि कही कुछ खोखला है, शून्य है--ऐसी सूनी थी वह हँसी, जैसे उस के नीचे अनुभूति या आनन्द की कोई पेंदी न हो, अधर मे ही वह फूट पडी हो। "मै ! शायद सोचता भी--पर अभी तो जरूरत ही नही मालूम होती। वहाँ--भविष्य का भरोसा ले कर कौन बैठता है जहाँ जीवन का ही भरोसा नही--"

"वह तो कही भी नही है--यही क्या भरोसा है ? रोज सुबह होती है, सूरज निकलता है, हम आदी हो जाते है और मान लेते है कि न केवल सूरज कल निकलेगा बल्कि हम भी उसे कल देखेगे। प्रकृति का स्थायित्व देख कर ही मानव अपने लिए स्थायित्व माँगता है, प्रकृति के रुपान्तर देख कर ही वह अपने रूपान्तर की कल्पना करता है या उन के द्वारा अमरत्व की आशा--"

"हाँ, लेकिन वह सब यहाँ होता है। वहाँ--वहाँ चीजें उलट जाती है, आदमी अपने को देख कर ही प्रकृति के बारे में निर्णय करता है। और--मेरा क्या भरोसा, कल रहूँ

या न रहूँ' यह सोच कर वह सब विचार स्थगित कर देता है। बल्कि इस विचार का सहारा आवश्यक भी हो जाता है।"

रेखा ने विरोध करते हुए कहा, "लेकिन यह तो पलायन है, भुवन !"

"पलायन !" भुवन वही खोखली हँसी हँसा, "तो फिर ? "

रेखा अचकचायी-सी उसे देखती रही। भुवन कहता है कि 'तो फिर ?' पलायन है, तो फिर ? .

भुवन ही फिर वोला, "सुनो रेखा ; वात यह है कि युद्ध वुरी चीज़ है, घृण्य है, व्यक्तित्व के लिए घातक है—सव कुछ है। पर जव लडे ही, तव जो कुछ रक्षणीय है उसे वचाने के लिए आवश्यक है कि युद्ध की मशीन ठीक से चले, सव कल-पुर्जे ठीक काम करते रहे, हर व्यक्ति—हर पुर्ज़ा या जुज़ एक काम लेता है और आवश्यक है कि उसे वह ठीक से करे। और ठीक से काम करने के लिए आवश्यक होता है कि विचारो को स्थगित कर दिया जाय—चाहे जैसे भी। कोई शराव पी कर करते है, कोई और भी भयानक तरीको से—कोई इतना ही मान कर कि जीवन कभी भी समाप्त हो सकता है और उस के वारे मे सोचना व्यर्थ है—कम-से-कम अभी व्यर्थ है, अभी जो अनुभव-सचय हो जाय, उस के आधार पर वाद मे भी सोचा जा सकता है।"

"पर भुवन, तुम—तुम ? तुम्हारा तो सारा काम ही सोचने का है, तुम्हे तो मार-काट नही करनी—तुम कैसे सोच स्थगित कर सकते हो ?"

"वह तो है, सोच तो नही स्थगित करता, पर सोचने की शक्ति की लीकें वाँधता हूँ—सिर्फ़ काम के वारे मे सोचता हूँ—मशीन को चलाने के वारे मे सोचता हूँ, मशीन के वाहर जो जीवन है, वह—वह तो जीवन है, इस लिए उस का भरोसा क्या ? मेरी वात समझी—?"

रेखा चुपचाप देखती रही। भुवन की युक्ति ठीक थी, पर कुछ था जो उसे स्वीकार्य नहीं हो रहा था, वह कुछ क्या है इसे वह पकड नही पा रही थी . . .

दिन-भर यह असमजस उसे कोंचता रहा। रात को उस ने गौरा को एक छोटा-सा पत्र लिख कर भुवन के वहाँ होने की सूचना दी और यह भी लिखा कि उस के मन की दशा अजव है, रेखा की समझ मे नहीं आ रही। वह और कुछ लिखने जा रही थी पर रुक गयी; फिर उस ने लिखा कि भुवन कदाचित् वगलोर जायेगा, गौरा उसे मिले और हो सके तो उस के पास रहे—उस का मन स्वास्थ्य यह माँगता है कि गौरा उस की देख-भाल करे। दूसरे दिन वह रजनीगन्धा के दो-एक डंठों का गुच्छा ले कर फिर अस्पताल पहुँची। फूल सजा कर वह थोड़ी देर भुवन की ओर देखती रही। फिर जैसे एक वडा

बडी निराशा होगी, रेखा, मेरी कोई भी नर्स ऐसी रूपवती नही है ।"

और भी दुस्साहस भर कर, लेकिन मुस्कराते हुए ही रेखा ने कहा, "टालो मत भुवन, मैं नर्सो की बात नही कर रही हालाँकि नर्सें सब रूपवती है या होगी ।" सहसा उसे बोध हुआ कि उस का दिल धक्-धक् कर रहा है, पर वह रुकी नही, "मेरा मतलब है गौरा ।"

भुवन चमक गया। उसका चेहरा तमतमा आया, ओठो का धनु एक तीखी रेखा बन गया, वह बोला नही ।

रेखा ने भी थोडी देर बाद कुछ सँभल कर कहा, "मै माफी चाहती हूँ, भुवन--है यह मेरा दुस्साहस, पर अगर उस से मेरा अपराध कुछ कम होता हो तो कहूँ, मैंने मजाक नही किया, बहुत सीरियसली कह रही हूँ, क्यो कि मुझे लगा कि तुम इसी बात से पलायन कर रहे हो और वह पलायन गलत है ।"

भुवन ने सतर्क स्वर से, किसी तरफ से भी रेखा की बात को न मानते हुए, न काटते हुए, पूछा, "तुम क्या कहना चाहती हो ?"

"गौरा से मै मिली थी, भुवन, उस से मैंने एक वायदा भी किया था जो--पूरा न निभा सकी । गौरा के मन को मै जानती हूँ ।"

भुवन ने न कुछ कहा न कुछ पूछा, चुपचाप उस की ओर देखता रहा मानो कहता हो, तुम कहती चलो, मै सुन रहा हूँ ।

रेखा ने फिर कहा, "और मै कहती हूँ, वह पलायन गलत है, भुवन !" सहसा नये निश्चय के साथ, "गलत है, अकरुण है और व्यर्थ है ।"

भुवन ने वैसे ही दूर, पकडाई न देते हुए कहा, "तुम मुझे क्या करने को कह रही हो ?"

"मै ? करने को ?" रेखा क्षण-भर सोचती रही। "कुछ नही । केवल यही . तुम में जो सत्य है, उस के प्रति अपने को बन्द मत करो--उस के प्रति खुलो । तुम ने मुझे सुनाया था--भुवन, तुम ने ! 'द पेन आफ लविंग यू'--उस व्यथा के प्रति अपने को खोल दो--और मुझ में कुछ कहता है कि वह तुम्हारे लिए कल्याणप्रद होगा, भुवन ! गौरा के मन को मै जानती हूँ क्योकि स्त्री हूँ, और तुम्हारे मन को बिलकुल न जानती होऊँ, ऐसा तो तुम नही मानोगे, आखिर स्त्री हूँ ।"

रेखा जैसे हाँप गयी थी । चुप हो गयी, लम्बे-लम्बे साँस लेने लगी । थोडी देर बाद जैसे पहले के किसी अधूरे वाक्य को पूरा करते हुए, उस ने फिर कहा, "वह वरदान है, भुवन; उसे स्वीकार करो, चाहे कल--चाहे कल जीवन न रहे, तुम न रहो, भुवन, फिर भी !"

भुवन भी चुप पडा रहा । काफी देर बाद बोला, "रेखा, मै तो समझता था तुम्हारा औचित्य का ज्ञान बहुत बडा है, पर देखता हूँ तुम्हे इतना भी नही आता है कि बीमार से

कैसी बातें करनी चाहिएँ। तुम स्वय हाँप गयी—और एक्साइटमेंट से रोगी का क्या होगा ? और तुम तो नर्सिंग—"

"हाँ, एक श्लथ रोग होता है—रोगी का दिमाग नही चलता। उस का यही इलाज है, मैं जानती हूँ।"

फिर एक मौन रहा, उस मे न जाने क्यो अपने दुस्साहस पर रेखा स्वय आतंकित हो आयी, क्या कह गयी वह, कैसे कह गयी वह, ऐसा हस्तक्षेप कैसे कर सकी वह उस का मन हुआ, भुवन के पास से उठ कर भाग जाय, और फिर कभी उसे मुँह न दिखाये—कैसे अब वह मुँह दिखा सकेगी .लेकिन वह उठ भी न सकी, उठना मानो फिर अपनी ओर ध्यान आकृष्ट करना है और वह वही धँस जाना चाहती है, लुप्त हो जाना चाहती है एक झेंपी-सी हँसी हँस कर उस ने कहा, "देखा, भुवन !—दिस इज़ व्हॉट मैरेज डज टु ए वुमन—आज अपनी शादी हो, कल से सारी दुनिया के नर नारियो की जीवन-व्यवस्था करने मे लग जावें, यह स्त्री-स्वभाव ही है कि पुरुष के जीवन के लिए वह निरन्तर गाँठें बनाती चले।"

भुवन का मन भटक रहा था। उस ने खोये-से भाव से कहा, "हूँ।"

रेखा ने क्षण-भर उस की ओर देखा फिर वह उठी, "अच्छा मैं जाती हूँ भुवन, कल फिर आऊँगी। कुछ लाऊँ—कुछ मँगाना तो नही ?"

"न," भुवन ने रेखा का एक हाथ अपने हाथ मे ले लिया और बोला, "नही रेखा, तुम ने कह दिया, अच्छा ही किया। और यह भी समझता हूँ कि इसी लिए कह सकी हो—मैं तुम्हारा कृतज्ञ हू, रेखा, तुम्हारी बात ठीक है या गलत है, वह प्रश्न दूसरा है।"

रेखा ने कहा, "स्त्री की बात हमेशा गलत होती है भुवन, सिवा एक मामले के, और वहाँ वह हमेशा ठीक होती है।" वह हँस दी। सहसा उस ने झुक कर ओठों से भुवन का माथा छुआ। "जल्दी अच्छे हो जाओ—दक्खिन जाना है।" और मुस्कराती हुई ही वह बाहर चली गयी। ओट होने तक भुवन उसे देखता रहा, फिर उस ने करवट ली और आँखें बन्द कर ली।

पर अगले दिन जब रेखा उसे देखने गयी तब वह दक्खिन जा चुका था। मालूम हुआ कि वह अच्छा हो रहा था, और उसे कन्वेलेसेंट छुट्टी पर कर के आगे भेज दिया गया था [illegible] से [illegible] बंगलोर पहुँच जायेगी।

[illegible] रेखा ने गौरा को तार दे दिया।

* * *

[illegible] बंगाल की आराम-कुरसियो पर [illegible] और [illegible] [illegible] मे बैठे थे, पर [illegible] नही पता, बिना [illegible]

देखे वह सीधे एक कुरसी की ओर बढी चली गयी। पास पहुँच कर उस ने धीमे, बहुत शान्त स्वर मे कहा, "भुवन।"

भुवन पढ रहा था। सहसा चौका और सिर उठाता हुआ पीछे मुडा।

"गौरा।"

गौरा ने धीरे-धीरे फिर कहा, "भुवन!" उस का स्वर भर्राया था। वह डेढ कदम आगे बढ कर भुवन के पैरो के पास घास में बैठ गयी।

देर तक दोनो चुप रहे। फिर गौरा ने वैसे ही भर्राये, काँपते हुए स्वर मे पूछा, "क्या पढ रहे हो?"

"कविता—ऌारेस," कह कर भुवन ने सहसा गोद में पडी खुली पुस्तक बन्द कर दी।

"क्यो--पढो--"

भुवन के दोनो हाथ खोजते से बढे, गौरा ने यन्त्रवत् अपने दोनो हाथ उठा कर उन मे रख दिये। भुवन की मुट्ठियाँ उन पर कस गयी, उन की जकड मज़बूत थी पर एक कम्पन लिये हुए, गौरा थोडी देर वैसे बैठी रही, फिर उस ने आगे झुक कर अपनी आँखे मुट्ठियो पर रख दी। भुवन ने एक हाथ छोड कर उस का सिर धीरे-धीरे थपक दिया, उस मे कुछ निर्देश था मानो—गौरा सीधी हो कर बैठ गयी। भुवन ने पूछा, "तुम्हे कब पता लगा? तुम--"

और गौरा ने कहा, "तुम कब पहुँचे?"

भुवन भी यही कहने जा रहा था कि 'तुम कब पहुँची?' गौरा बात काट कर बीच मे बोल उठी थी पर दोनो के वाक्य समाप्त एक साथ ही हुए। भुवन मुस्करा दिया, उस की ओर देख कर गौरा मुस्करा दी, फिर सहसा हँस पडी, मानो कोई अवरोध हट गया, उमडती हुई बोली, "भुवन, मेरे भुवन दा--आप भुवन, तुम आ गये, कहाँ खो गये थे तुम, मेरे शिशु..."

और भुवन के मन में भी एक साथ कई प्रश्न, कई वाक्य घूम गये जो उक्ति माँगते थे, पर जो कहा उस ने गौरा का ही वाक्य था, "शब्द अधूरे है क्यो कि उच्चारण माँगते है . लेकिन अब भागूँगा नही, इतना कह दूँ "

थोडी देर बाद गौरा ने सहसा उलाहने से कहा, "तुम ने मुझे खबर भी नही दी—यहाँ आते और चले जाते?"

"नही गौरा, इतना बुरा तो नही हूँ। मैने आज तुम्हें पत्र लिखा है--अभी चाहे गया न हो—मैंने सोचा था, खाट पर पडे देखने न बुलाऊँगा, जिस दिन उठूँगा उसी दिन—"

"इतने बुरे हो तुम।" कह कर गौरा रुक गयी। "हो तुम—है आप निरे मास्टर

साहब ही—जो सिखाते हैं, स्वयं नही सीखते—दूसरो की बात आप कभी नही सोचते ?"

भुवन ने सोचते-से कहा, "दूसरो की !" और धीरे-धीरे आवृत्ति की, "दूसरो की . . " थोड़ी देर बाद बोला, "गौरा, अब तक दूसरा मै अपने को ही मानता आया, तुम्हारी शिकायत असल मे यही है कि तुम्हे पहला और अपने को दूसरा क्यो माना मैने; और मेरी मुश्किल यह है कि मै वैसा मानने को गलत नही समझ पाता—अब भी नही !"

गौरा ने कहा, "ऐसा नही हो सकता कि कोई बात—गलत न हो, लेकिन—" तनिक रुक कर, "बुरा न मानना—लेकिन अहंकार हो ? मै जजमेंट नही दे रही, पर बात कहने का साहस कर रही हूँ क्यो कि तुम ने सिखाया है, यह भी तो एक पक्ष हो सकता है ?"

भुवन सोचता-सा काफी देर तक चुप रहा, फिर खोया-सा बोला, "शायद तुम ठीक कहती हो, गौरा गलत नही है, पर अहंकार हो सकता है । मैने तुम्हे बहुत कष्ट दिया है न, गौरा ?"

गौरा बोली नही, भुवन के स्वर मे सहसा जो कोमलता आ गयी थी उस से उस की आँखो में कुछ चमका; उस ने चेहरा भुवन की ओर उठाया और उसकी दृष्टि भुवन के चेहरे को दुलरा गयी ।

*　　　　*　　　　*

दिन छिप गया था, पर गौरा ज्यों-की-त्यो बैठी थी, बत्ती जलाने का उसे ध्यान नही आया । वह भी वैसी ही कैनवस की आराम-कुरसी पर बैठी थी जैसी पर भुवन को उस ने देखा था, उस की गोद मे पुस्तक नही तो कापी पड़ी थी—भुवन की कापी । कैसा अद्भुत था यो बैठ कर दोहरा जीवन जीना वह गौरा भी थी, जो अपने को भुवन के प्रतिबिम्ब के रूप मे देख रही थी, भुवन की बातो को समझ रही थी, उन पर होने वाली अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओ को सूक्ष्मतम छाप ले रही थी और ले कर मानो एक निधि मे जमा करती जा रही थी, जो मसूरी में लिखे गये अपने उन विचारो को याद कर रही थी जो भुवन के प्रति निवेदित हो कर भी भुवन को दिये नही गये, और वह भुवन भी थी ——आराम-कुरसी पर बैठा हुआ भुवन, गोद मे पुस्तक या कापी मे एक-एक दो-दो वाक्य लिखता और फिर कर उन पर और उन के हेतु गौरा पर विचार करता हुआ भुवन .

'स्नेह-सिक्त, तुम्हें छोड़ कर नही भागा । भागा ज़रूर, पर सच कहूँ कि जब भागा तो कुछ अपने साथ लिया तो तुम्हारी प्रतिच्छवि—और मेरे विक्षत मन के फफोले विराग को [illegible] ही जाने से बचाया तो उसी ने. . अब पीछे देखता हूँ तो लगता है, मुझे [illegible] देखना चाहिए था—जिस उथल-पुथल ने मुझे [illegible] किया, (जिस की बात तुम [illegible]) उस मे तुम्हें देखना चाहिए था. . पर मुझे छोड़ कर चली गयी 'ए, [illegible] [illegible]'—[illegible] ने मुझे बताया कि क्या चीज़ है जो अब भी

जीवन में आस्था नही मिटने देती. फिर भी तुम से दूर क्यो गया—क्यो जाना चाहा ? इस लिए कि सीखा, स्नेह मे जब मोह भी होता है तब आघात मिलता है—मिलता ही नही, तब व्यक्ति स्वय उसी को आहत करता है जिसके प्रति स्नेह है। इसी लिए सोचा, तुम जानो, उस से पहले ही दूर चला जाऊँ। स्नेह से दूर नही, स्नेह के लिए दूर

"तुम ने मेरी बात नही समझी थी। तुम आहत हुई। शायद अब भी न समझो। और शायद न समझना ही अच्छा है, समझना सब मानो मेघाच्छन्न होना है, और वह मुझ-जैसो के लिए ही अच्छा है जो बीत गये है, जिन का जीवन आन्तरिक हो गया है, जो अपनी समझ की मेघ-छाया में रहने के आदी हो गये है। तुम्हारे लिए नही, जिस का भविष्य आगे है, भविष्य जो सुनहला हो, जिस मे हँसी हो, बालारुण की आभा हो, आलोक हो मै जैसे तमिस्रा का पोष्य पुत्र हूँ—इसी लिए आलोक को पूजता आया हूँ, कभी दूर से, जैसा कि ठीक है, कभी निकट से, जैसा कि विपज्जनक है, कभी छूने को ललचाया हूँ, जो महान् मूर्खता है, क्योकि छूने से आलोक बुझ जाता है।"

"रवि ठाकुर ने कही लिखा है 'मै उस विशाल मरु की तरह हूँ जो घास की एक हरी पत्ती को पकड लेने के लिए हाथ बढाता है'—मै कहूँ कि मैने इस की विडम्बना जान ली है, घास की पत्ती को निकट लाने के लिए मरु फैलता नही, सिमटता है, सिमट कर अकिंचन हो कर ही वह पत्ती को पकड तो नही, लगभग छू सकता है।"

"स्नेह-शिशु तुम ने मुझे कहा था मै किसी तरह नही सोच पाता कि यह नाम मैने नही ढूंढा था, कि मैने नही तुम्हे दिया था। तुम्हारी ही चीज तुम्हे लौटाता हूँ, लेकिन शतगुण स्नेह से, गौरा।"

"तुम ने मुझ से वचन माँगा था, अपने को अनावश्यक सकट मे न डालूँगा। क्या यह अनावश्यक सकट है ? सकट भी है ? या कि यहाँ न आना ही सकट होता—वहाँ रहना ही सकट होता है ?"

"जगल, घने बादल, तीन बजे दिन मे अँधेरा-सा, हाथियो के झ ड-से बादल—गड्ड-मड्ड होते हुए हजारो हाथियो के महायूथ-से एक आकृति दूसरी में घुल जाती है, लेकिन कलौस ज़रा भी कम नही होती, भीतर न जाने क्या-क्या माँगे उठती है और उतनी ही नीरवता मे, उतनी ही निष्पत्तिहीन विलीन हो जाती है मै सोच नही सकता, ध्यान केन्द्रित नही कर सकता, एक ही स्पन्दन जैसे हर बात मे गूंज जाता है और उस को सुनने के सिवा चारा नही है पर साथ ही उसे सुन कर भी काम नही चलता—उधर ध्यान दूं तो वह ऐसा अभिभूत कर लेगा कि बस "

"आज से छ महीने पहले तुम्हारे साथ आग के पास बैठा था—आग के डर मे मुक्त हो कर. और आज—! वह बडा दिन था। यो आज वास्तव मे बडा दिन है—उत्तरायण के एक-आध दिन ही इधर-उधर—और वह दिन के हिसाब से तो छोटा ही दिन था ! मै देखता हूँ वह आग . हम दोनो से एक-दूसरे की ओर झरती हुई सान्त्वना और आश्वा-

नन की धारा—यह मेरा अहकार तो नही है कि 'एक-दूसरे की ओर' कह रहा हूँ ?

"मैंने कहा था, यह तुम्हारी आग है। तुम ने कहा था, आग से डरना मत। तब से मै मानो उसे लिये-लिये कहाँ-कहाँ फिर रहा हूँ "

"मै लेटा था, किसी ने आ कर पूछा, रेडियो सुनोगे ? और लगाया सहसा शून्य में मे क्या आवाज़ आयी जानती हो ? 'मोर वीणा उठे कौन सुरे बाजि—कौन नव चंचल छन्दे। ए अम्बर प्रांगण माझे नि स्वर मजीर गुजे' *—आकाश ही मेरा घर है, जिस मे वह छन्द गूंजता है "

"मैंने तुम्हे खबर नही दी। अब कभी-कभी विचार उठता है—क्या भूल की ? क्यो कि अब यह ज़रा-ज़रा-सा लिखना भी कठिन होता जाता है—मेजर भुवन मास्टर साहब का एक काला धुँधला खोल भर है, शक्ति-हीन, लगभग निर्जीव लेकिन यही ठीक है गौरा—यही ठीक है जब तक मुझे होश रहेगा, तुम्हे आशीर्वाद देता रहूँगा—अगर न रहेगा—तो भी वह अशीर्वाद रह जायेगा! इस जीवन से आगे कुछ नही है गौरा, यही सम्पूर्ण है, यही अन्त है। लोग ऐसा मानने से डरते है, मुझे लगता है, यही तो जीवन को अर्थ देना है। इस जीवन का दर्द इस लिए मूल्यवान् नही है कि किसी दूसरे जीवन मे उस का पुरस्कार मिलेगा, इस लिए मूल्यवान् है कि इस जीवन से आगे और कुछ नही है। क्यो कि मूल्य किसी पटतालिये के लिए नही होता जो रोकड मिला कर तय करे कि क्या हाथ आया, मूल्य है तो उस व्यक्तित्व के लिए जो उस दर्द मे से गुज़र रहा है और मूल्य उसी अवस्था में है "

"भुवन केजुएल्टी हो गया। उसे देश वापस भेजा जा रहा है ठीक होने के लिए। क्यो जी, ठीक होगे तुम ?

"अपने में ही मध्यम पुरुष मे बात करने लगे कोई सुना है, जेलो मे फासी के कैदी ऐसा करने लगते हैं। लेकिन अपने मे उबरने के दूसरे भी तरीके हो सकने चाहिए।

"अपने से उबरने के। अपना क्या ? क्या कोई अपनी भावनाओ मे, अपने रागो से उबरना चाहता है ? या कि केवल एकातिरिक्त सब रागो मे ही ? क्यो जी, तुम्हारी क्या राय है ?"

"न, गौरा, लगता है यह तुम से विश्वासघात होगा—यद्यपि वचन मैने नही दिया था। मैं ठीक हो जाऊँगा। जरूर हो जाऊँगा—और तुम से मिलूँगा भी "

"देश का आराम तुम कहाँ हो, गौरा ? मैं लिखना चाहता हूँ—"

"नहीं। मैं पागल हो जाऊँगा! आगे नहीं देखूँगा। भविष्य नहीं सोचूँगा, क्यों कि वह नहीं है, वह वर्तमान का ही स्फुरण है। सोचता हूँ, बीच में विचार क्यों बदल गये हैं, सो केवल वही बात याद आती है: शैतान बीमार हुआ तो उस ने साधु होना चाहा :

*रवीन्द्रनाथ ठाकुर

द डेविल वाज सिक, द डेविल ए मंक वुड बी .
द डेविल ग्रू वेल, द डेविल ए मक वाज ही !

पर यहाँ शायद साधु ही बीमार हो कर शैतान होना चाह रहा है !"

"बहुत सुन्दर है लताओ-पत्तियो की झाँझरी यह
पर मुझे आकाश प्यारा है , "

कापी गौरा पढ चुकी थी। उस के वाक्य आगे-पीछे उस के अन्त क्षितिज से उठते और विलीन होते जाते थे। क्या भुवन का यह कहना ठीक है कि जो है, यही जीवन है, आगे कुछ नही है, परलोक नही है, पुनर्जन्म नही है ? वह मान सकती है कि पुनर्जन्म नही है, परलोक भी नही है—इस जीवन का कर्म-फल भोगन के लिए पुन जन्म लेने की कोई आवश्यकता उसे नही दीखती क्यो कि भोग सब इसी जीवन मे भुगता दिये जाते है, देना-पावना सब राई-रत्ती यही चुक जाता है ऐसा वह मान ले सकती है। पर क्या यह जीवन ही सब कुछ है—यह हमारा हमारी चेतना की मर्यादाओ से मर्यादित देश-काल से बँधा जीवन ? क्या हम एक के बाद एक नही, एक साथ ही एकाधिक जीवन नही जीते, एकाधिक लोको मे नही रहते—हाँ, एकाधिक चेतना द्वारा उस के या उन के प्रभावो को ग्रहण नही करते ? सदा न करते रहते सही, जीवन-शक्ति की उत्तेजना के क्षणो मे ही सही, पर कभी भी अगर हम दूसरे स्तर पर, दूसरे लोक मे दूसरे जीवन मे प्रविष्ट हो सकते है, तो वह है. .वही अभी गौरा भी है, भुवन भी है, आज की गौरा भी है, पुरानी भी, आज का भुवन भी है, पुराना भी, कापी पढने वाली भी है, लिखने वाला भी, लिखने वाले की अनुभूति के कई स्तर भी, कई काल भी—और सब परात्पर नही, सब एक साथ, एक क्षण मे ..

और नही, वह कही—वह कही पृष्ठभूमि मे रेखा भी है, रेखा की व्यथा भी और विशालता भी, अकिंचनता भी और दानशीलता भी—वह व्यक्ति का जीवन नही, निरपेक्ष जीवन है, सर्वस्पर्शी, सर्वत्र स्पन्दित . .

वह उत्तेजित हो कर खडी हो गयी। कापी उस की गोद से फिसल कर गिरी, उस के शब्द ने उसे चौंका दिया। गौरा ने आगे बढ कर बत्ती जलायी, और रेखा को तार लिखने लगी कि भुवन वहाँ है, ठीक है, कि उसे बाहर निकलने की इजाजत भी मिल रही है कल से ।

* * *

"गौरा, आज फिर मैं तुम्हारा अतिथि हो कर तुम्हारे कमरे में बैठा हूँ ।"

"ऐसा क्यो कहते हो, भुवन ?" गौरा ने उस की बात का अभिप्राय न समझते हुए कुछ आहत स्वर मे कहा ।

"मुझे याद आता है मसूरी का वह पहला दिन—वह रात जो चलते-चलते बडा

दिन हो गयी थी—तब भी तो तुम्हारा मेहमान हो कर बैठा था।"

"वह तो तुम्हारा कमरा था—मेहमान–कमरा ही था वह। मेरे कमरे मे तो—मेरे कमरे मे तुम कब आये थे तुम्हे याद है ?"

भुवन ने उठ कर एक कोने की ओर बढते हुए कहा, "खूब याद है—नये वर्ष के दिन मैं तुम्हारा कमरा सजाने गया था—" उस ने तिपाई पर रखे फूलदान से एक फूल निकाल लिया था, उसे लिये हुए गौरा की ओर मुडते हुए बोला, "और मेरे हाथ से एक फूल तुम्हारे ऊपर गिर गया था।" कहते-कहते उस ने वह फूल गौरा के कबरी-बन्ध मे अटका दिया।

"ऐसे नही गिरा था, ऐसे गिरा था—" कहते-कहते गौरा उस के पैरो की ओर झुक गयी। "मेरा प्रणाम लो, शिशु।"

भुवन ने जल्दी से झुक कर उस के दोनो हाथ पकडे और उसे खीच कर उठा लिया, हाथ छोडे नही और एक-टक उसे देखता रहा।

देर बाद उस ने धीरे-धीरे कहा, "गौरा, अब मै फिर जल्दी ही चला जाऊँगा—पर अब भागूँगा नही। और—" कहते-कहते वह एक घुटने पर झुका, "प्रणाम मुझे करना चाहिए, क्यो कि तुम—"

हडबडा कर गौरा ने कहा, "नही, नही भुवन, नही।" और उस के हाथ खीचने लगी, भुवन रुक गया पर उठा नही। उसे खीचने के लिए गौरा तनिक निकट बढ आयी थी, भुवन ने धीरे-से अपना सिर उस के पार्श्व मे टेक दिया, गौरा ने एक-एक हाथ छुडा कर उस के सिर पर रखा और धीरे-धीरे बाल सहलाने लगी।

दो-चार दिन भुवन अस्पताल के अहाते मे टहला था, फिर उसे बाहर जाने की अनुमति मिली तो गौरा उसे टैक्सी मे घुमा लायी थी। दूसरे-तीसरे दिन एक सगीत-गोष्ठी मे भी ले गयी थी। पर अपने यहाँ ले जाने की बात उस ने तब तक नही की जब तक भुवन को अनुमति नही मिल गयी कि वह चाहे जहाँ जा सकता है, केवल अपने को थकायेगा नही, सावधानी से खायेगा, और रात के भोजन के समय वापस लौट जायगा। तब गौरा फिर उसे लिवाने आयी, अस्पताल से वे टहलते हुए निकले, कुछ देर बाद गौरा ने पूछा, "भुवन, मेरे यहाँ चलोगे ?"

भुवन ने एक बार उस की ओर देखा और बिना उत्तर दिये ही उस के साथ मुड गया।

"मुड तो गये, यह भी जानते हो कि किधर जाना है ?

भुवन ने मुस्कान से कहा, "न, तुम ले जा रही हो, मै जा रहा हूँ। दैट इज़ आल आइ नो एण्ड आल आइ नीड टू नो।" *

*इतना ही मैं जानता हूँ और इतना ही जानने की जरूरत है।

"मेरा यहाँ तो क्या है, होटल का कमरा है एक। पहले भी वहाँ रह चुकी हूँ। पर थक तो नही जाओगे—टैक्सी ले ?"

"बहुत दूर है ? नही तो पैदल ही चले—लौटते समय चाहे टैक्सी ले लूँगा। चलना अच्छा लगता है—नये सिरे से सीख रहा हूँ।"

कमरा साफ़-सुथरा था; होटल के कमरो से उस मे अन्तर इतना था कि फर्नीचर कम था, एक तरफ़ एक तख्त पडा था जिसे गौरा ने अपने ढग मे सजा रखा था। इसी पर गौरा ने भुवन को बिठाया था।

गौरा की उँगलियाँ भुवन के बालों मे से तिरती हुई पार निकल जाती और फिर लौट आती, फिर उस ने सहसा बाल हिला कर उलझा दिये और मधुर स्वर मे पूछा, "भुवन, अब वचन दोगे ?"

"हाँ, गौरा। अब वचन देता हूँ।"

गौरा फिर धीरे-धीरे बाल सहलाने लगी।

"अब नही भागूँगा। पहले बहुत भागा। पहले जानने से भागा, पिछली बार—मसूरी मे जब वह सम्भव न रहा तो स्वीकृति से भागा। मसूरी मे—मैंने सहसा देखा कि मेरे आगे एक मेघ है और वह तुम्हारे बालो का है—तो जान लिया—जान क्या लिया, तुम ने कह दिया और मुझे लगा कि जान कर ही तुम ने कहा है, नही तो तुम भी कैसे कह पाती ? मैंने तुम्हे कहा था—कुछ हँसी में ही सही, कहा तो था—कि जिस दिन ऐसा होगा जान लूँगा कि कि मेरी खोज—मेरे लिए खोज—समाप्त हो गयी और पडाव आ गया। पर—" वह चुप हो गया। फिर सहसा उठ कर उस ने पूछा, "गौरा, तुम सोचा करोगी न कि मैं कितना वुड्ढ़ा हूँ ?"

गौरा खोयी-सी मुस्करा दी। "सोचा करूँगी ! क्यो, भविष्य की क्यो—शिशु तो तुम हो ही, अब भी हो, हमेशा ही थे—"

"और तू बडी सयानी आयी है कही से चल के !" भुवन ने हलका-सा चपत उस के गाल पर लगा दिया। फिर तख्त पर बैठते हुए, बदले स्वर में बोला, "गौरा, तुम्हारा सगीत तो मैं ने सुना ही नही कभी—मसूरी मे चोरी से ही सुना था सितार—"

"सुनाऊँगी—"

"कब ? अभी नही ?"

"न ! अभी गा सकती, पर तुम्हारे सामने गाऊँगी नही, और यहाँ पर तो नही ही। फिर एक दिन—"

"फिर एक दिन !" भुवन का स्वर थोड़ा उदास हो आया। "थोडे-से तो दिन और है, फिर मैं वापस जो चला जाऊँगा—"

"थोड़े-से ? ऐसा मत कहो, शिशु, देखो, मैं भी नही कहती—बहुत दिन आयेंगे आगे।

नही तो मैं यही बैठी रहूँगी, फ्रंट पर तुम जाओगे; दिनो की लघुता मैं जानती कि तुम !"

भुवन अचम्भे मे उसे देखने लगा। देखता रहा। गौरा ने पूछा, "क्या ताक रहे हो ?"

"मसूरी मे तुम्हारे चेहरे पर एक कान्ति देखी थी, जो पहले नही देखी थी। वही देख रहा था। चाहता हूँ, हमेशा उसे देख सकूँ—"

गौरा ने रुकते-रुकते कहा, "मेरी कान्ति तो तुम हो, पगले !"

* * *

बंगलौर मे भुवन मद्रास गया, छुट्टी से लौट कर वही रिपोर्ट करने का आदेश उसे मिला था, वहीं से जहाज़ में वह फिर फ्रंट पर जायेगा। तीसरे पहर उसे बन्दर पर हाज़िर होना था, दोपहर को वह गौरा के साथ समुद्र की ओर गया—वही विदा ले कर वह चला जायेगा, गौरा बन्दर पर नही जायेगी ऐसा ही उस ने चाहा था, और गौरा ने उस की बात समझ कर मान ली थी।

भुवन ने कहा, "गौरा, कुछ आदिम जातियो का विश्वास है कि आत्मा शरीर से अलग रखी जा सकती है—उन के वीर जब युद्ध करने जाते है तो आत्मा किसी चीज मे धर रख जाते है—पोटली बाँध कर खूँटी पर भी टाँग जाते है।"

गौरा ने अविश्वास से कहा, "नही !"

"हाँ, सच ! और अब की—मैं अपनी आत्मा तुम्हारे पास रखे जा रहा हूँ—उसे सँभाल रखोगी न ?"

गौरा ने उस की ओर देख-भर दिया। उस की साँस जल्दी चलने लगी, वह बोल नही सकी।

"और पोटली बाँध कर नही रखूँगा—तुम्ही मे है वह—"

"मैं जानती हूँ भुवन, मेरी माँग है वह—"

"मैं लौटूंगा, गौरा। काम वहाँ बहुत है, बहुत कड़ा है, तुम्हारा भी काम है—पर—काम अपने-आप मे टूट कर नहीं है—" वाक्य उस ने अधूरा छोड़ दिया, मानो भूल गया है कि [illegible] है।

वर्दी की जेब से एक पुस्तक उस ने निकाल कर गौरा को दी।

"यह लो गौरा, कुछ कविताएँ हैं, लारेंस की। अस्पताल में तुम आयी थीं तब यही पढ़ रहा था। एक कविता है—" पन्ने-पलटते उस ने पुस्तक खोली, 'द मैनिफ़ेस्टो'। वही तब पढ़ रहा था। [illegible] है। तुम पढ़ना—तुम्हें अचम्भा होगा। पर इस लिए कहा था कि [illegible] सारी बातों को लिखना चाहता था, पर मेरे शब्द अधूरे थे, लारेंस [illegible]। फिर बोला, "यह तो तुम अपने-आप पढ़ना, पर तुम्हारी

है जिस की तीन-चार पक्तियाँ तुम्हे सुना देता हूँ—मुझे याद है।"

क्षण-भर वह सोचने को रुका, गौरा प्रतीक्षा मे नीचे बालू की ओर देखने लगी।

"आइ एम नाट एट आल, एक्सेप्ट ए फ्लेम—" भुवन ने सहसा रुक कर कहा, "नही गौरा, मेरी ओर देखो—" और आँखो से उस की आँखे पकडे हुए वह बोलने लगा

"आइ एम नाट एट आल, एक्सेप्ट ए फ्लेम दैट माउंट्स आफ यू—
ह्वेयर आइ टच यू, आइ फ्लेम इटु बीइंग , बट इज इट मी, आर यू ?
हाउ फुल एंड बिग लाइक ए रोबस्ट फ़्लेम
ह्वेन आइ एनफोल्ड यू, एंड यू क्रीप इटु मीं,
एड माइ लाइफ इज फ़ियर्स ऐट इट्स क्विक
ह्वेयर इट कम्स आफ यू !"*

सहसा आगे झुक कर उस ने गौरा का माथा सूँघा और बोला, "अच्छा, गौरा—"

तीन-चार पग की दूरी से उस ने मुड कर देखा और कहा, "वह कान्ति, गौरा—मेरी जुगनू—"

और गौरा कोहनी से दोनो हाथ उठाये नि स्वर शब्दो मे इतना कह पायी, "हाँ मेरे शिशु, हाँ, शिशु—"

*   *   *

गौरा को एक पार्सल मिला।

उस में रेखा का एक पत्र था, और एक छोटी-सी डिबिया , डिबिया उस ने खोली, उस में एक अँगूठी थी। गौरा ने अँगूठी पहचान ली, कुछ चकित-सी वह पत्र पढने लगी

गौरा,

यह मै उसी दिन तुम्हे दे ही देती, पर तुम ने कहा था कि मै इसे तुम्हारी ओर से रख छोड़ूँ, तुम फिर कभी माँग लोगी। मै अधिक आग्रह नही कर सकी थी—तुम ने पूछा था कि माँ ने यह मुझे कब दी थी, और उस से मुझे बहुत-सी बाते याद आ गयी थी जिन्हे मैं याद नही करती और जिन की प्रतिध्वनियो से भरा हुआ मन ले कर यह नही देना चाहती थी

गौरा, तुम तो कभी माँगोगी नही, पर अब मै स्वय भेज रही हूँ, मुझे बार-बार तुम्हारी

---

* मै कुछ नहीं हूँ सिवा एक शिखा के जो तुम से उठती है , जहाँ मै तुम्हें छूता हूँ वहीं दीप्त हो उठता हूँ—किन्तु वह होना मै हू या तुम ?

पुष्ट अग्निशिखा-सा विशाल और सम्पूर्ण मै तुम्हें घेरता हूँ और तुम मुझ में छिप जाती हो , मै और मेरे जीवन की प्रचडतम दीप्ति है उस जीवन्त बिन्दु पर जहाँ वह तुम से उद्भूत होती है।

याद आती है और भीतर कुछ कहता है कि यह जो तुम ने मेरे पास रखी कि फिर कभी भेज दूँ, वह उसी समय के लिए था। मेरा आशीर्वाद लो, गौरा, और मेरा स्नेह , माँ ने आशीर्वाद के साथ यह अँगूठी मुझे दी थी, मुझे आशीर्वाद नही फला अपनी अपात्रता के कारण (पर जीवन के प्रति अकृतज्ञ मैं नही हूँ, न कभी हूँगी, गौरा ; और इस के लिए ऋणी हूँ तुम्हारे 'मास्टर साहब' की) , पर तुम पात्र हो, और मैं गर्व कर के यह भी कह जाऊँ कि मेरा आशीर्वाद भी अधिक सार्थक है, क्यो कि उस के पीछे वह है जो माँ ने नही जाना था

गौरा, जीवन मे आनन्द सब कुछ नही है, पर बहुत बडी चीज़ है, और है वह सुखों मे नही , है वह मन की एक प्रवृत्ति। मै बहुत लालची थी,-मैंने एक साथ ही सारे तारो-भरे आकाश को बाँहों मे घेर लेना चाहा था। तुम मे अधिक धैर्य है। तुम आकाश की छत को छू सकोगी। और एक-एक तारा तुम्हारी एक-एक सीढी होगी जीवन की चरम एक्स्टैसी तुम जानो, गौरा ; उसे जाने बिना व्यक्ति अधूरा है; पर यह फिर कहूँ . आनन्द अनुभूति मे नही है, किसी अनुभूति मे नही, आनन्द मन की एक प्रवृत्ति है, जो सभी अनुभूतियो के बीच मे भी बनी रह सकती है।

तुम्हे सीख नही दे रही, गौरा , हर व्यक्ति एक अद्वितीय इकाई है, और हर कोई जीवन का अन्तिम दर्शन अपने जीवन में पाता है, किसी की सीख मे नही। पर दूसरों के अनुभव वह खाद हो सकते है, जिस से अपने अनुभव की भूमि उर्वरा हो . .

उस समान आनन्द की कामना तुम्हारे लिए करती हूँ, गौरा—तुम्हारे लिए, और भुवन के लिए।

तुम्हारी
रेखा दीदी

गौरा ने अँगूठी हाथ मे ले कर पत्र और डिबिया संभाल कर रख दी, फिर अँगूठी को देखती हुई सोचने लगी। कदाचित् उस ने कभी पहना नहीं था—और यही मानती आयी थी कि वह कुछ साँवले रंग पर सुहाता है। रेखा के हाथ पर वह अच्छा लगता था . सहसा उसे ध्यान आया : रेखा के दोनों हाथ वैसे बढ़े हुए जैसे उसे अँगूठी पहनाने के लिए किसी ने बढ़ाए थे—विशेष सुन्दर नहीं थे वे हाथ, पर अत्यन्त संवेदना-प्रवण, और अँगूठी पहनाते हुए उन की वह मुद्रा स्वयं एक वरदान थी . गौरा ने अँगूठी पहन ली, और एक [illegible] भाव उस के मन में उमड़ आया। [illegible] जा कर उस ने एक पुस्तक निकाली—जो भुवन उसे जाते वक्त दे गया था—और वह कविता पढ़ने लगी जो भुवन [illegible] के समय पर कहा था—'ए मैनिफ़ेस्टो'।

'ए मैन [illegible]—एडमिटेड।'

दो-चार पंक्तियाँ उस ने और पढ़ीं, लेकिन फिर पहली पंक्ति की ओर लौट आयी—

'ए वुमन हैज गिवन मी स्ट्रेंग्थ एंड एफ्लुएन्स---ऐडमिटेड !'---एक नारी ने मुझे शक्ति और ऋद्धि दी है मैं स्वीकार करता हूँ ।

गौरा ठिठक गयी। भुवन चाहे जैसे वह पुस्तक पढता रहा हो, अस्पताल में बैठे-बैठे उस का चाहे जो अर्थ लगाता रहा हो, लेकिन वह पक्ति ठीक कहती है एक नारी ने---नारी ने ही सहसा वह कागज लेने के लिए बढी वह रेखा को पत्र लिखेगी और यह पुस्तक रेखा को भेज देगी। पत्र मे क्या लिखेगी, उस के वाक्य अभी ही उस के मन मे स्पष्ट तिरने लगे थे "तुम्हारी वह मूल्यवान् भेंट लौटाऊँगी नही, रेखा दीदी, लौटायी तब भी नही थी। अँगूठी मैंने पहन ली है, तुम्हारे आशीर्वाद के आगे नत-मस्तक हूँ,---पात्रता की बात मैं नही जानती, पर आशीर्वाद के लिए पात्रता क्या, वह तो पात्रता के प्रश्न के परे जो स्नेह दिया जाता है वह है। रेखा दीदी, भेंट के बदले में नही, अपने ट्रिब्यूट के रूप मे एक चीज भेज रही हूँ। यह भुवन की पुस्तक है जो वह जाते समय मुझे दे गये हैं। मैंने उन से पूछा नही, न पूछूंगी, वह अवश्य समझ सकेंगे। इस पुस्तक मे एक कविता है, 'ए मैनिफेस्टो'---इसी कविता के लिए यह पुस्तक उन्होने मुझे दी थी---उस की पहली पक्ति है 'ए वुमन हैज गिवन मी स्ट्रेंग्थ एंड एफ्लुएन्स---ऐडमिटेड !' मेरा विश्वास है कि इस पक्ति को वह आप से छिपाना न चाहेंगे, न मैं ही चाहूँगी, वह आप ही की है और इसी लिए यह पुस्तक भी। .रेखा दीदी, मेरे पास दर्शन अभी कुछ नही है, एक आस्था है, और कुछ श्रद्धा, और सीखने की, सहने की, और यत्किंचित् दे सकने की लगन है, इन के और आप के स्नेह के सहारे मुझे लगता है कि मैं चारो ओर बहते अजस्र प्रवाह में खडी रह सकूँगी, एक नगण्य व्यक्तिपुंज, अस्तित्व का एक छोटा-सा द्वीप, लेकिन जो फूलना चाहता है, फूल झरा कर नदी के बहते जल को सुवासित कर देना चाहता है---फिर नदी चाहे जो करे, उन फूलो की गन्ध ही पहुँच जाय दूर, दूर, दूर ."

उपसंहार

'वहाँ', 'वर्मा फ्रंट मे कही पर', भौगौलिक अनिश्चितता की धुन्ध मे खो कर भुवन जब-तब गौरा को छोटे-छोटे पत्र लिखता रहा था। लेकिन क्रमश भौगोलिक अनिश्चितता के कृत्रिम वातावरण ने उसे छा लिया था, यह जानते हुए भी कि वह कहाँ है, वह मानो कही नही रहा था। फिर दो महीने तक उस ने कोई पत्र नही लिखा।

लेकिन अक्टूबर १९४२ मे सहसा उस ने पाया कि अपने बाँस के घर मे वह बिलकुल अकेला है। बाँस के उन घरो का वह आदी था—कीचड मे खडी बाँस की चटाई की दीवारे, कीचड पर बिछी बाँस की चटाई का फर्श, बाँस की चटाई की टट्टियो से ढँकी खिडकियाँ, बाँस की खाट पर बाँस की चटाइयो के पलँग, बाँस की चटाई से ढँके चौखटे की मेज़े और जगल मे अकेलापन भी कोई नया अनुभव नही था—यो तो उस भीड मे रह कर सभी अपने भीतर के अकेलेपन मे खिच जाने के आदी थे, पर उसके अलावा शारीरिक अकेलापन भी बहुधा हो जाता था। पर इस अकेलेपन मे कुछ विशेष था। उस का घर जो उस का दफ्तर भी था, वास्तव मे तीन अफसरो का सयुक्त घर-दफ्तर था, जंगल में औरो से अलग और कँटीले तारो से घिरा हुआ वहाँ पर नाना प्रकार के रेडियो और विद्युत् यन्त्रो से घिरे हुए वे तीनो निरन्तर प्रयोग करते थे, अनुलेखो का सग्रह करते थे, और केन्द्रित रेडियो-रश्मियो द्वारा अदृश्य चीजो को पहचानने के नये आविष्कार को सम्पूर्ण सफल और व्यावहारिक बनाने के काम मे योग देते थे। पर उस दिन सबेरे उस के दोनो साथी शिविर मे गये थे और अब तक लौटे नही थे, उधर लडाई की आवाज़ भी उस ने सुनी थी, निकट ही कही जापानी है यह ज्ञात था और आक्रमण की सम्भावना भी की जा रही थी। क्या हुआ ? वह नही जानता था। क्या होगा, यह भी नही। सम्भव है, रात मे उठ कर उसे और कुछ दूर पर बने दूसरे बासे मे रहने वाले आर्डरली-अफसर को एकाएक सब यन्त्र वगैरह विस्फोटक से उडा कर जगल मे निकल जाना पडे, अकेले-अकेले, सम्भव है वह भी अवसर न मिले, पकडे ही जायें, और—यह भी सम्भव है कि शाम को उस के साथी कुछ अच्छा समाचार ले कर लौट आवे, अखबार और डाक ले आवे —अजब होता है युद्ध-मुख का भाई-चारा, जिस मे अजनबी भी एक-दूसरे को अपने अन्तरग पत्र सुनाते है

भुवन की इच्छा हुई कि पत्र लिखे। पर वह बैठा नही, उसे टालने के लिए इधर-उधर यन्त्रो को देखता हुआ घूमने लगा। पर नही, कही कुछ करने को नही था। सहसा उस ने एक यन्त्र के सामने पडी हुई कापी निकाली, क्षण-भर उस के चार-खाने पन्नो को देखता रहा, फिर पेंसिल से द्रुत गति से उन्हे रँगने लगा।

गौरा,

फिर दो महीने से मैने तुम्हे पत्र नही लिखा। जहाँ हूँ, वहाँ पत्र भी अवास्तव लगते है

—केवल मन के भीतर जो है वही वास्तव लगता है। तुम ने एक बार शब्द को अधूरा बताया था उच्चारण की मर्यादा के कारण; पर सभी कुछ अधूरा है जिस के साथ गोचर होने की शर्त है—सम्पूर्ण वही है जो बिना इन्द्रियों के माध्यम के ज्ञात है. .

आज भी पत्र लिखने लगा हूँ तो यथार्थता कुछ अधिक नही है, कदाचित् और भी कम है, क्योंकि आज बिलकुल भरोसा नही है कि यह चिट्ठी डाक मे पडेगी या नही, कभी जायेगी या नही। फिर भी लिख रहा हूँ, यह एक तो मानव की सहज प्रतिकूलता है, दूसरे उस का एक तात्कालिक कारण है। मुझे कुछ कहना है—कुछ पूछना है। और जब पूछ लूँगा तब तुम यह भी जान लोगी कि दो महीने मैं चुप क्यों रहा।

गौरा, मैं लौट कर आऊँगा या नही, क्या पता, कब आऊँगा यह भी कौन जाने। पर अगर आया—आने के साथ यह 'अगर' न होता तो शायद अब भी मैं यह पत्र न लिख पाता!—अगर आया तो क्या तुम मुझ से विवाह करोगी? तुम्हे जानते हुए मैं जानता हूँ कि तुम स्वतन्त्र निर्णय करने के योग्य होते हुए भी चाहोगी कि मैं तुम्हारे पिता से पूछूँ, वह मैं पूछूँगा जब पूछने का समय होगा, अभी तुम्ही से जानना चाहता हूँ कि उन से पूछूँगा भी या नही ..."

लिखते-लिखते भुवन रुक गया। गौरा के पिता का चित्र उस के सामने आ गया, फिर मसूरी के घर का, फिर गौरा के साथ बिताये हुए उस एक सप्ताह का, अपनी आत्म-स्वीकृति का, क्षण-भर के लिए वह केशों का मेघ उस की आँखों के आगे छा गया, फिर उस में लरजती हुई चीड की सुगन्धित आग 'गौरा, यह आग तो तुम्हारी है'.. वह फिर लिखने लग गया और भी द्रुत गति से, चार-पाँच पृष्ठ लिख कर वह फिर रुका, पेंसिल गिरा कर उस की नोक निकाली, और उसे हाथ मे साधे हुए फिर चित्र देखने लगा।

व्यक्ति के सभी कर्मों का बीज सभी दूसरे कर्मों मे निहित है, कार्य-कारण-सम्बन्धों की खोज और उन का निरूपण एक वैज्ञानिक समय है, नही तो सभी कार्य कारण है और उन की यह परम्परा व्यक्ति के जीवन-वृत्त मे ही बँधी नही है, बाहर तक फैली है। सब कुछ है, क्योंकि और सब कुछ है [illegible] फिर भी, हम लोग काल के बिन्दु चुनते है जहाँ से घटनाओं का आरम्भ मानते है—वह भी एक ऐतिहासिक समय है . गौरा के प्रति उस के जो भाव है जो भाव थे—क्या वे अलग है ?

'समर्पण है तो दर्द न बाँधना है, न अपने को बद्ध अनुभव करना है, केवल एक व्या-[illegible] मन में भर जाता है कि तुम हो, कि मैं हूँ। एक-दूसरे को पहचानने के बाद [illegible] कि प्रेम है, कि हम प्यार करते है, आश्चर्य यही है कि हम है, दोनों [illegible] होता है। मैं पहले भी था, अब भी हूँ, पर क्या दोनों 'होने' [illegible], पर नहीं, [illegible], यह परिवर्तन कब से हुआ, तो नहीं जानता; लगता है [illegible], [illegible] तो था, नहीं तो हुआ कैसे ? पर यह परिवर्तन चेतना में [illegible] [illegible] तुम्हें अचम्भा होगा। एक वर्ष पहले,

जब लम्बी चुप्पी के बाद मैंने जावा से तुम्हे दो-तीन पत्र लिखे थे, तब जब मैं अस्वस्थ था और तुम्हे 'होम-सिक' होने की बात लिखी थी तभी मैंने जाना था कि मैं तुम से भाग कर वहाँ गया था, तुम्ही से, और यह जान कर आसपास फैली विशालता मे खो गया था और फिर मैंने जाना था कि वह विशालता भी तुम हो। तुम ने मुझे घेर लिया था, छिपा लिया था, और उस मे एक सान्त्वना थी, एक मरहम था सहसा मुझे लगा कि उसी विशालता के आगे हथियार डाल कर—अपने सब कवच-बन्धन-रक्षण छोड कर मैं स्वस्थ हो जाऊँगा, मेरे क्षत भर जायेंगे मैं कहता हूँ तभी, पर 'तभी' का कोई मतलब नही है, क्यो कि अगर मैं पहले नही जानता था, तो भागा क्यो था ? 'शब्द, शब्द, शब्द'—शब्द अधूरे है, सभी कुछ अधूरा है और इतिहास तो बिलकुल ही अधूरा है "

भुवन उठ कर टहलने लगा। सब कुछ अधूरा है, और ज्यो-ज्यो वह आगे पूरेपन की ओर बढता है, नयी अपूर्णताएँ भी उस के आगे स्पष्ट हो जाती है कितना बडा है जीवन, कितना विस्तृत, कितना गहरा, कितना प्रवहमान, और उस मे व्यक्ति की ये छोटी-छोटी इकाइयाँ—प्रवाह से अलग जो कोई अस्तित्व नही रखती, कोई अर्थ नही रखती, फिर भी सम्पूर्ण है, स्वायत्त है, अद्वितीय है, और स्वत प्रमाण है, क्यो कि अन्ततोगत्वा आत्मानुशासित है, अपने आगे उत्तरदायी है, स्वर्ग और नरक, पुण्य और पाप, दण्ड और पुरस्कार, शान्ति और तुष्टि, ये सब बाहर है तो केवल समय है, सत्य तभी है जब भीतर से उद्भूत हो..

वह फिर लिखने बैठ गया

"वह रूपक मेरा नही है, पर बार-बार मुझे याद आता है और मैं पाता हूँ कि उस मे नया अभिप्राय है हम सब नदी के द्वीप है, द्वीप से द्वीप तक सेतु है। सेतु दोनो ओर से पैरो के नीचे रौदा जाता है, फिर भी वह दोनो को मिलाता है, एक करता है गौरा, मैं तुम्हारी ओर हाथ बढाता हूँ—अनुरोध के हाथ, क्या तुम भी अपने हाथ मेरी ओर बढाओगी—वरद हाथ, कि इस प्रकार हम एक सेतु बन सके जिस पर ईश्वर अगर है तो उस का आसन है ?"

वह फिर उठ कर टहलने लगा। उस बँगला गीत के बोल उस के मन में गूंज गये जो उसने कुछ दिन पहले वही सुना—'तोमार-आमार एइ विरहेर अन्तराल कत आर सेतु बांधि सुरे-सुरे ताल-ताल ?' पहले वह पत्र की ओर बढा कि यह भी गौरा को लिख दे, लेकिन पत्र पर झुक कर उसे लगा कि नही, पत्र इस के बिना ही सम्पूर्ण है, और वह फिर चक्कर काटने लगा। फिर एक चक्कर उस ने यन्त्रो की ओर लगाया। सहसा उस का ध्यान केन्द्रित हो आया, थोडी देर बाद उस ने दूर विमानो की घरघराहट सुनी—एकसाथ कई विमानो की—और विमान-भंजको की पटापट .यह क्या है ? आक्रमण कि प्रत्याक्रमण ? अभी थोडी देर मे वह क्या कर रहा होगा—यन्त्रो की सँभाल या कि विस्फोटको की—? अभी उसे खबर मिलेगी—फ़ोन से या रेडियो मे—

खिड़की के आगे खड़े हो कर बाँस की टट्टी को उस ने पूरा हटा दिया। ढलती रोशनी में उस ने देखा, उस के सहयोगी आ रहे है। उन की चाल देख कर अपने प्रश्न का उत्तर उस ने जान लिया कोई चिन्ता की बात नही है।

फिर वह पूर्ववत् टहलने लगा।

थोडी देर मे उस के साथी वहाँ पहुँच जायेगे, यह जो अप्रत्याशित एकान्त उसे मिला, उसका अन्त हो जायेगा। और कल के—कल क्यो, अभी थोडी देर बाद के बारे मे अनिश्चय ने जो मुक्ति उसे दे दी थी, उस का भी अन्त हो जायेगा। यो जीवन मे किस बात का भरोसा है, पर तत्काल यह मानने का कोई कारण नही रहेगा कि कल का भरोसा नही है—कि कल का सूर्योदय देखने की आशा रखना मूर्खता है।

भुवन ने अनुद्विग्न भाव से चिट्ठी के पन्ने समेटे, उन के कोने और सिरे बराबर-बराबर मिलाये, और फिर सहसा उन्हे फाड डाला। फाड कर स्टोव के पास की एक काली ट्रे मे रख दिया जहाँ प्राय. ही वह और उस के साथी जलाने से पहले अपने कागज़ रखा करते हैं—अभी वह उन्हें जला देगा।

कल—अब तो यह मान लिया जा सकता है कि कल होगा!—वह गौरा को अपने कुशल-समाचार का और पत्र लिख देगा। उस से अधिक कुछ लिखना क्यो आवश्यक है? दो महीने के अन्दर उस ने अगर जान लिया है कि हाँ, वह गौरा से यह प्रश्न पूछेगा, प्रश्न पूछने के और उस का उत्तर पाने के लिए अपने को तैयार कर लिया है, तो उतना ही यथेष्ट है। उस से आगे—जब समय आयेगा तो प्रश्न का पूछा जाना भी अपने आप हो जायेगा—उत्तर भी अपने आप मिल जायेगा! तब तक—गहरी अनुभूतियाँ सचयधर्मा ही होती हैं, उन के आन्तरिक दबाव का संचय इतिहासो को बदल देता है, इतिहास के मलबे को साफ़ कर देता है—नयी नीवें खोद देता, ईंटें पका देता है.

एक बार फिर भुवन खिड़की पर जा कर खडा हो गया। अब शायद दो-तीन मिनट ही उस के पास है और फिर साँझ हो जायेगी, मच्छरो से रक्षा की कारंवाई शुरू हो जायेगी—काल फिर उसे जकड़ लेगा। मानो चक्की के पाटो के बीच दाने को क्षण-भर की स्वतन्त्रता मिल गयी थी—किन्तु कितना मूल्यवान् हो सकता है ऐसा क्षण—सम्पर्क का क्षण—

मूल्यवान् क्षण? मूल्यवान् किन के लिए? सम्पर्क का क्षण? किस के साथ सम्पर्क? हाँ, मूल्यवान्—नश्वर किन्तु मूल्यवान् जिन का सम्पर्क है सभी के लिए चिरन्तन और मूल्यवान्, सम्पृक्त—जो प्रतीक्षा करते हैं उन से सम्पृक्त, वे चाहे बोलें या न बोलें; प्रश्न से सम्पृक्त और उस के उत्तर से सम्पृक्त—प्रश्न चाहे न भी पूछा जाये, उत्तर चाहे न भी दिया जाय। मूल्यवान् और सम्पृक्त क्षण क्यों कि प्रतीक्षा के क्षण—वह प्रतीक्षा चाहे कितनी लम्बी हो, वर्षों की इस अजस्र-प्रवाहिनी नदी से भी लम्बी, भुवन प्रतीक्षा करेगा, और कि, निस्सन्देह गौरा भी प्रतीक्षा करेगी क्यों कि प्रतीक्षाएँ भी अजस्र, अनाद्यन्त काल की नदी के बिखरे किन्तु समय के द्वीप हैं।
